केन्द्रीय पुस्तकालय
(संगीत एवं ललित कला केन्द्र)
क्रमांक ... 459 ...
376

नवशक्ति विशेषांक

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से प्रकाशित मासिक पत्रों में सबसे अधिक लोकप्रिय तथा सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला

राष्ट्रधर्म

अब भारत के प्रत्येक प्रमुख स्थान पर उपलब्ध
तथा विज्ञापनदाताओं के प्रचार का सशक्त माध्यम भी

अतः

आप भी इसे पढ़िये तथा अपने व्यापार
की प्रगति हेतु विज्ञापन देकर लाभ उठाइये

नवीनतम विज्ञापन दरें		
आवरण पृष्ठ ४ (दो रंग)	रु०	१५००
आवरण पृष्ठ २ (एक रंग)	रु०	१०००
आवरण पृष्ठ ३ (एक रंग)	रु०	१०००
साधारण एक पृष्ठ	रु०	८००
साधारण आधा पृष्ठ	रु०	५००
साधारण चौथाई पृष्ठ	रु०	३००

अन्य जानकारी हेतु कृपया सम्पर्क करें :-

व्यवस्थापक

राष्ट्रधर्म मासिक

राजेन्द्र नगर (पूर्व), लखनऊ-२२६००४

फोन : ४२६७१

डाबर आँवला केश तेल का नया सुन्दर रूप देखिए!

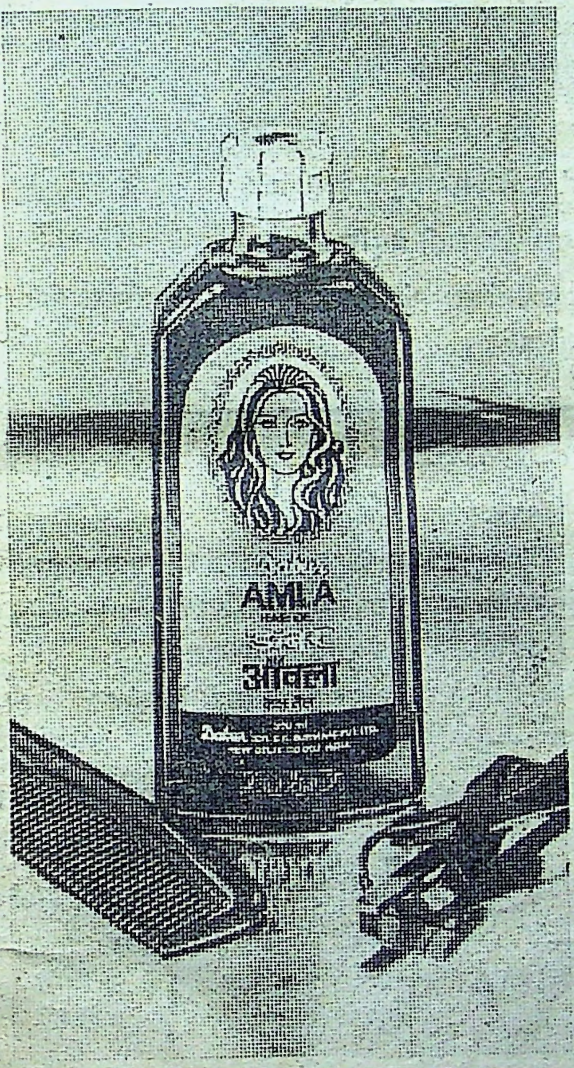

लेकिन लम्बे, काले रेशमी बालों का वर्षों पुराना राज़ वही है!

वही डाबर आँवला केश तेल जिसे आपने सालों से अपनाया है, अब पेश है एक नए पैक में। ठंडक पहुँचाने वाला, पौष्टिक, सुगन्धित डाबर आँवला आपके बालों की देखरेख करता है और उनका सौन्दर्य निखारता है।

यह वही राज़ है जो ५० साल से असंख्य स्त्रियों ने आज़माया है।

डाबर

डाबर आँवला केश तेल रोज लगाइए लम्बे बालों की शोभा बढ़ाइए

आगामी अंक

- क्या 'सन् २००० तक सबके लिए स्वास्थ्य' योजना कारगर हो सकेगी ?
- बहुचर्चित 'स्टार-वार' की असलियत क्या है ?
- हिटलर को चुनौती देने वाला भारतमां का सपूत डॉ० चंपक रमण पिल्लै
- भोजपुरी गीतों में राष्ट्रीय चेतना
- विदेशियों ने संस्कृत कैसे सीखी ?
- 'रामचरित मानस' ने विवेक को पूजा है
- खेलों में बढ़ रही नशा-सेवन की प्रवृत्ति
- लोकमान्य तिलक ऊधमसिंह, मुंशी प्रेमचन्द व मैथिलीशरणगुप्त के जीवन के हृदयस्पर्शी प्रसंग।

'स्वास्थ्य-संपदा'

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आपकी व आपके परिवार की अनेक समस्याएं हो सकती हैं। बस एक पोस्टकार्ड पर सुपाठ्य अक्षरों में अपनी व्याधि के बारे में लिखकर भेज दें। ५० वर्ष से अधिक अनुभव वाले यशस्वी वैद्य आपको ऐसा निदान सुझाएँगे, जो आप अपने स्थान पर ही आसानी से और सफलता-पूर्वक कर सकें। पता रहेगा :—

प्रजावैद्य मुरारीलाल सक्सेना
द्वारा/राष्ट्रधर्म [मासिक]
'संस्कृति भवन' राजेन्द्रनगर (पूर्व)
लखनऊ-२२६००४

समस्या-समाधान नियमित रूप से 'स्वास्थ्य-संपदा' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित होगा। —सं०

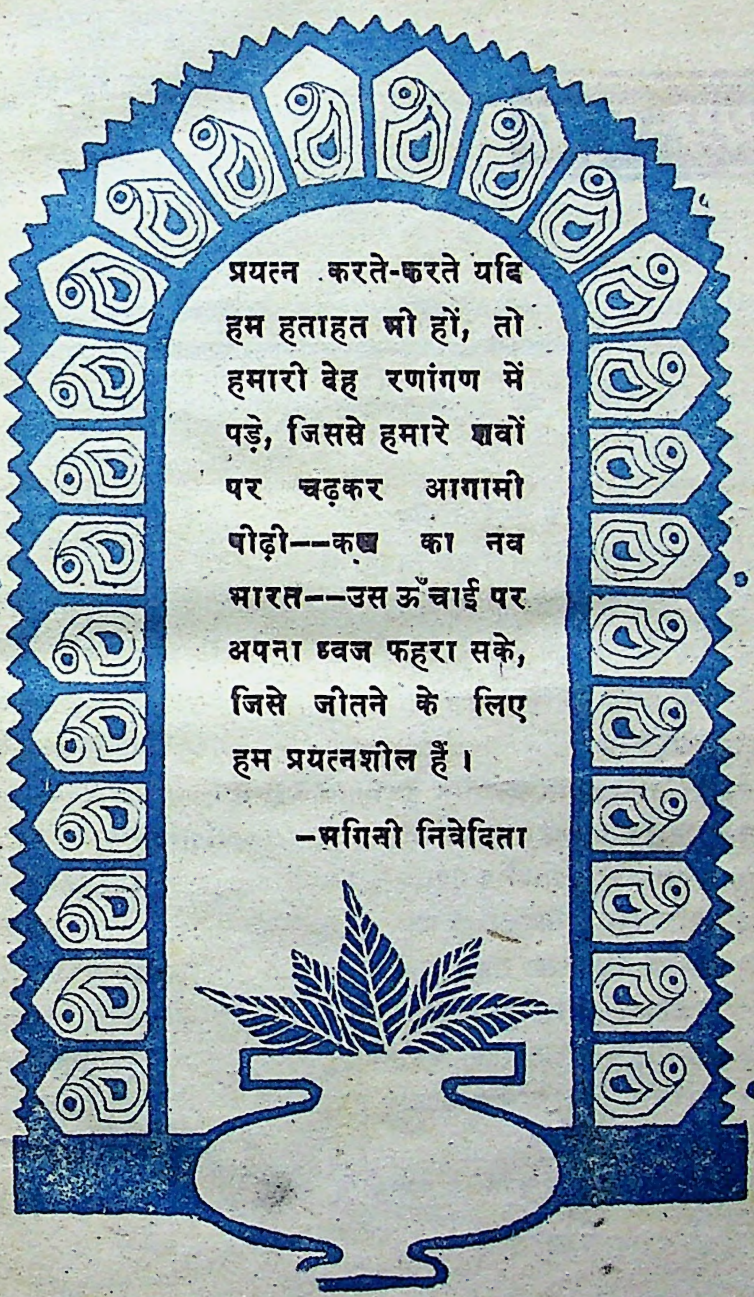

प्रयत्न करते-करते यदि
हम हताहत भी हों, तो
हमारी देह रणांगण में
पड़े, जिससे हमारे शवों
पर चढ़कर आगामी
पीढ़ी--कल का नव
भारत--उस ऊँचाई पर
अपना ध्वज फहरा सके,
जिसे जीतने के लिए
हम प्रयत्नशील हैं।

-भगिनी निवेदिता

सम्पादक
वीरेश्वर द्विवेदी

विषय-सूची

लेख व वार्ता

८.	राष्ट्र-मन्दिर के समर्पित दीप···	सम्पादकीय
१४.	तरुण-जागृति में खपी एक जिंदगी	सम्पादक
१६.	राष्ट्रीय अखण्डता है क्या ?	वचनेश त्रिपाठी
१८.	रण-कंकण पहने हैं !	डॉ० भगवानशरण भारद्वाज
२३.	कैसे सुलझे आरक्षण विवाद ?	शैलेन्द्रकुमार त्रिवेदी
३७.	परश रतन	डॉ० रामशंकर द्विवेदी
४०.	क्या नया नेतृत्व समस्यायें सुलझा पा रहा है ?	वचनेश त्रिपाठी
४८.	राष्ट्रीय अस्मिता का साक्षात्कार हो	डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'
५७.	प्रतिरक्षा-चुनौतियाँ व युवा	डॉ० परशुराम गुप्त
६६.	संदेश स्वामी विवेकानन्द का	चं० प० भिशीकर
७६.	सम्पूर्ण क्रान्ति का सपना कहाँ खो गया ?	के० एन० गोविन्दन
८८.	युवक नहीं; राजनेता दोषी	डॉ० विद्यानिवास मिश्र
९५.	सामाजिक परिवर्तन की चुनौती	सुशीलकुमार मोदी
१०१.	भारतीय विद्याभवन का अनन्य सेवी	स० जो० ला०
१२३.	दो हाथ, दो बात	राजमल डांगी
१३९.	युवा-अधिकार व राष्ट्रीय युवानीति	प्रो० बाल आपटे

कथा, संस्मरण व घटनाएं

६२.	आँसू में कलम डुबोय !	सम्पादक
६५.	आँधी के बाद	भावसिंह हिरवानी

राष्ट्र-धर्म

परामर्शदाता

वचनेश त्रिपाठी

वर्ष–२२ अंक–१

जून १९८५

युगाब्द : ५०८७

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर (पूर्व)
पो० बा० २०७
लखनऊ-२२६००४
दूरभाष : ४२९०१

८२. जिन्होंने सेली व माला छोड़ तलवारें धारण कीं — अंशु अग्रवाल
९२. चतुर्वेदीजी नहीं रहे — वचनेश त्रिपाठी
१०४. अश्क के फूल — सुरेन्द्रकुमार मिश्र
११०. ऐसे थे प्रथम राष्ट्रपति — डॉ० महेश नारायण
११६. ऐसे लौटे बिछुड़े भाई — प्रताप नारायण मिश्र
१२५. चोला देवी — वचनेश त्रिपाठी

गीत व कविताएं

१३. टूटते स्वर — पं० हरिप्रसाद मिश्र
३०. वतन के लिए — सूरज प्रकाश
३५. जब 'खुखरी' घायल हुई — चन्द्रशेखर मिश्र
६१. अनुरोध — डॉ० शत्रुघ्न
६७. जवानी — माखनलाल चतुर्वेदी
७४. आग की भीख — रामधारीसिंह 'दिनकर'
७९. पथ की पहचान — डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'
८०. पथिक से — डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'
८१. युगवाणी — ,, ,, ,,
९९. युगचेतना — आरसीप्रसाद सिंह
११५. हो अग्नि-द्वार में प्रवेश — अनुरोध मिश्र
१३६. २१वीं सदी के युवा के नाम — तमिलनबन्
१४३. लहरों से खेले जो — सुधाकान्त दास

'संयुक्त राष्ट्र संघ' द्वारा अन्तर-राष्ट्रीय 'युवा वर्ष' के रूप में घोषित सन् १९८५ का वर्ष अपनी आधी यात्रा पूरी कर अस्ताचल का उत्तरीय थामने की ओर अग्रसर है। फिर भी विकासमान तीसरी दुनियां के कितने देशों की युवा पीढ़ी को पता है कि इस वर्ष की बारात उसी के नाम पर चढ़नी या सजनी है ? हम अपने भारत का विचार करें ; तो ध्यान में आएगा कि 'युवावर्ष' की योजनाओं व कार्यक्रमों की सुविश्चित रूपरेखा की जानकारी अथवा उसके क्रियान्वयन की बात तो दर-किनार; इतना भी नहीं किया गया है कि 'युवा वर्ष' की निर्धारित विषयत्रयी सहभाग, विकास व शांति युवक युवतियों के मन के आंगन में कमसे कम एक बार तो झांक पाती। यह दशा तो उन युवकों की है, जिन्हें 'शिक्षित' कहा जाता है। जो हत-भाग्य शिक्षा के दायरे में नहीं आते, उनके विषय में तो मौनं हि शोभनम्। बहुत मुमकिन है कि 'युवावर्ष' का बुढ़ापा भी इसी तरह कट जाए और विशेष ध्यान की 'सिन्दूरी सौगातें' जीवन का सपना बनकर ही रह जायें। आखिर 'महिलावर्ष' और 'विकलांगवर्ष' की यादें कोई बहुत पुरानी तो नहीं पड़ गईं। बहरहाल 'युवा वर्ष' का मुकद्दर चाहे जैसा हो, लेकिन युवा

राष्ट्र मंदिर के

पीढ़ी को नसीब से जुड़ी देश की तकदीर को अनदेखा नहीं किया जा सकता। 'निराशावादी' होने का आरोप अपने सिर लेकर यदि यह मान लिया जाय कि 'युवावर्ष' एकदम असफल रहता है, तो क्या देश की जवानी अपने माथे पर हाथ रखकर रांड-रुदन करेगी ? अथवा यह उद्घोष करेगी—

जिंदगी का अर्थ उठना, जिंदगी का अर्थ चलना
जिंदगी सोना नहीं है।
जिंदगी है कर्म की पावन त्रिवेणी
इस त्रिवेणी के तटों पर बैठकर रोना नहीं है।

और;

हार कर भी बढ़ रहा जय के लिए जो
जो स्वयं हारा मगर हिम्मत न हारी
जिंदगी जीता हुआ उसको कहूंगा
राह में ही जिंदगी जिसने गुजारी

सम्पादकीय

अर्थात् 'युवावर्ष' में समाज और देश ने उसके लिए क्या किया ? यह शिकायत-शिकवा करने के स्थान पर, उसे सोचना यह होगा कि देश और समाज को वह क्या दे सकता है ? एक आदर्श नागरिक के रूप में उसे व्यक्तिगत व पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करते हुए राष्ट्र का भी भवितव्य उज्ज्वल बनाने में अपना हविष्य समर्पित करना होगा। बल्कि, अपनी निजी व कौटुम्बिक जिम्मेवारियों की पूर्ति भी सामाजिक-राष्ट्रीय दायित्व-निर्वाह के एक उपकरण के रूप में ही करनी होगी। उसे योगी अरबिन्द का यह आह्वान अंगीकार करना होगा कि अपनी, देह, मन, बुद्धि व आत्मा को भारतमां की सेवा के योग्य बनाओ। अध्ययन करना है, तो मातृ-भूमि के लिए करो, आजीविका कमानी है, तो इस भाव से कि देश के लिए जी

समर्पित दीप हो

सको। त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये।

लेकिन देशसेवा कोई अमूर्त कल्पना नहीं है। भारतमाँ की सेवा का अर्थ उसकी कोटि-कोटि सन्तानों की सेवा है। अर्थात कर्म की इस कठिन पगडंडी पर बढ़ते समय उसे सर्वप्रथम उन समाज-बांधवों की ओर उन्मुख होना होगा, जो शब्दशः अनिकेत हैं; जिनके जीवन की सारी निधियां एक मैली-कुचैली झोली तक सिमट कर रह गई हैं; अन्याय और अभाव की मार सहते-सहते जिनके जीवन की आकांक्षाएँ तक बौनी हो गई हैं; जो सारी जिन्दगी और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मलिनता के महा रौरव में रहने को अभिशप्त है, जिनके घर में अन्न का एक दाना, शरीर पर एक गहना तथा गांठ में एक धेला नहीं है; जिनकी सारी जिन्दगी दूसरों की उतरन पहनते बीतती है; जिनकी छाया तक छूने लायक नहीं

समझी जाती ; जिनके गिरि-वनों में सभ्यता-सूर्य की एक किरण तक नहीं पहुंची है ; जिनके डोली चढ़े अरमान दहेज-दानव की बलि चढ़ जाते हैं—आदि-आदि। यह सूची बहुत लम्बी हो सकती है; पर चुनौतियों के दूसरे आयाम भी हैं।

हमारे अंदर मानसिक गुलामी इतने गहरे पैठ गई है कि हम आधुनिकीकरण के नाम पर पाश्चात्यीकरण के दीवाने बन बैठे हैं—और वह भी ऐसा पाश्चात्यीकरण कि व्यवहार में जिसका अर्थ आंग्लीकरण और अन्ततः ईसाईकरण होता है। तथाकथित प्रगतिशीलता से संबंधित लुभावने नारों के चक्कर में हम जाने-अनजाने साम्राज्यवाद के तमाम अवशेषों को गलबाहें डाले घूम रहे हैं। भाषा, भूषा, राजनीतिक दर्शन ही नहीं ; सामाजिक-धार्मिक समारोहों तक में यह 'जहर' घुलता जा रहा है। 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' (श्रेष्ठ विचारों को सभी दिशाओं से आने दें) के वेदवाक्य की उपासक भारतीय मनीषा ने ज्ञान को मानवता की साक्षी थाती मानकर उससे कभी कोई परहेज

चाह अपनी यह

नहीं किया। किंतु जो कुछ लिया है, उसे अपनी शाश्वत परम्परा में रचा-पचा डाला है। भारत की जवानी दूसरों का भोज्य या अंधानुकरण की मंदाग्नि का शिकार होने के बजाय अपना सांस्कृतिक हाजमा बढ़ाए—कमसे कम बरकरार रखे, यह उसके व भारत के ही नहीं, अपितु सारी दुनियां के भी हित में है। अर्नाल्ड टायनवी जैसे इतिहास-ऋषि तो यह घोषणा दशाब्दियों पहले ही कर चुके हैं। आधुनिक विश्व में भी डालरों के अम्बार तथा विश्व-विध्वंसक अणु-आयुधों के भण्डार पर खड़े बड़े बड़े 'तीस-मारखां' भी भारत की पारंपरिक आत्म-शक्ति की ओर ही निहार रहे हों। गत वर्ष अमरीका के दशम् विश्व हिन्दू सम्मेलन को प्रेषित अपने संदेश में अमरीकी राष्ट्रपति ने यही उद्गार प्रकट किया था कि सारी दुनियां भारतीय संस्कृति को उसकी समस्त विशेषताओं के साथ फलते-फूलते देखना चाहती है। उनकी चिंता है, कि यदि नमक ही अपना नमकीनपन खो देगा, तो फिर उसे किस वस्तु द्वारा नमकीन किया जाएगा। लेकिन 'नमक' है कि नियति-निर्धारित 'मिशन' के साथ नमकहरामी

करता लग रहा है। भौतिकता की चकाचौंध में हमने पश्चिम का ऐसा अंधानुकरण प्रारम्भ कर दिया कि उन अस्ताचलगामियों को भी दुःखी व अचंभित होकर यह कहना पड़ा—यू आर एम्ब्रेसिंग द कल्चर, वी आर किकिंग आउट—अर्थात् हम लोग जिस संस्कृति (पाश्चात्य) को ठोकर मार रहे हैं; आप (भारतीय) उसे सीने से चिपका रहे हैं।

जब-जब और जहां-जहाँ जवानी जागी है; नवयुग का सूत्रपात हुआ है, किंतु उनके द्वारा अपनाए गए तौर-तरीके काल व परिस्थिति के अनुरूप भिन्न-२ रहे हैं। हाँ; आधार तो शाश्वत जीवन-मूल्यों का ही रहा है। राम, कृष्ण, गौतम, शंकराचार्य से लेकर आधुनिक पुनर्जागरण के अग्रदूत दयानंद—विवेकानन्द व क्रान्तिकारियों की मालिका इसका प्रमाण है। अब चूंकि देश स्वाधीन है, अतः संघर्ष नहीं, रचना का मार्ग अपनाना होगा। क्रान्तिकारियों के बलिदान भाव को नए अर्थों में व्याख्यायित व स्थापित करना होगा। आज खून बहाने के स्थान

कि हम जलते रहें

पर अपना खून सुखाने के लिए कमर कसनी होगी। देश के लिए मरना नहीं, अपितु जीना, मिशनरी भाव से अनाम जीवन खपाना, निश्चित रूप से अधिक संयम, साधना व त्याग की माँग करता है। अस्तु, आज यही सबसे बड़ा उत्सर्ग है। देश के नव-निर्माण में स्वयं को बीज की तरह बोकर मिट्टी में मिल जाना होगा, तभी नवांकुरण होगा। चमचमाता कलश-कंगूरा बनने की आकांक्षा छोड़, नींव का पत्थर बनना होगा। जीवन के सब प्रकार के सुनहरे सपनों का मूर्तिभंजन भी इसमें शामिल है, यह स्पष्ट करना आवश्यक है। यदि हृदय में सचमुच समाज बदलने का संकल्प है, तो फिर सत्ता के गलियारों में भटकना भी, असली मंजिल से ध्यान ओझलकर मील के पत्थरों से लिपटे रहने जैसा हास्यास्पद होगा।

यहीं कुछ शब्द चेतावनी के भी। नव-निर्माण की कल्पना क्या होगी? यह निर्विवाद है कि राष्ट्रों द्वारा सदियों लंबे स्वाधीनता-संग्राम केवल इसलिए किए

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

पाठकों की राय

होली अंक

यह मासिक राष्ट्र के सजग प्रहरी की भूमिका साहस के साथ निभा रहा है। मार्च अंक में संपादकीय ने मन को गहरे तक हुआ। श्री वचनेश त्रिपाठी की लेखनी से लिखा बलिदानी परम्परा लेख देश के प्रति दायित्वबोध को जगा गया।

–प्रभात
'समय सारथी' सीतापुर

●

युवा पीढ़ी के लिए, जो अपनी सांस्कृतिक स्वर्णिम परम्परा से पराङ्मुख हो पश्चिम के अंधानुकरण में लगी है, 'राष्ट्रधर्म' अनिवार्य है। होली अंक में 'अलविदा भवानी भाई', श्रद्धांजलि मन-नयन तरल कर देती है।

–रवीन्द्र उपाध्याय
जैतपुर, मुजफ्फरपुर

वैशाखी अंक

'वैशाखी अंक' की कविताएँ, लेख, निबन्ध पढ़कर प्रसन्नता हुई। राष्ट्रीय भावधारा के उन्नयन में 'राष्ट्रधर्म' जो कर रहा है; वह देश-विदित है। सम्पादकीय विशेष रुचिकर लगा। बधाई।

–अनंतराम मिश्र 'अनंत'
गोला, लखीमपुर खीरी

अप्रैल-अंक पढ़ने का गौरव प्राप्त हुआ, अनगिनत बधाइयां! इस अंक में सबसे ज्यादा रोमांचित करने वाला रहा संपादकीय–बहारों में मेरा नशेमन न जलता।

आर०के०बजाज, पावर हाउस, भिलाई

●

अप्रैल अंक सम्पादकीय 'बहारों में मेरा नशेमन न जलता, अगर बागवां की शरारत न होती' ने तन-मन को झकझोर दिया। सचमुच भारत की आत्मा एक है पंजाब, राजस्थान, बिहार आदि की अलग आत्मा नहीं हैं, भारत से अलग उनकी कोई अस्मिता नहीं हैं।

–डॉ० सुरेन्द्र सिंह
बड़पुर, देवरिया

मई अंक

मई–अंक का सम्पादकीय पढ़कर खून खोलने लगा। यदि हिन्दू इसी भांति सोये रहे, तो 'दारुल इस्लाम' के हिमायती इसी प्रकार धर्मान्तरण करते रहेंगे और एक दिन ऐसा भी आ सकता हैं कि हमें बलात् धर्मान्तरण के लिए विवश किया जाय। धर्म-निरपेक्षता का नारा क्या केवल हिन्दुओं के लिए हैं?

–अखिलेश कुमार सिंह
निर्मलपुर, हरदोई

टूटते स्वर

● पं० हरिप्रसाद मिश्र

रागिनी प्रतिपल उदय के गीत का सन्देश लाती,
पर हलक तो सूखता है, गीत क्या गाऊँ प्रभाती !

शून्य में तिरते जलद की क्षीण रेखा हो रही है,
आज 'नन्दन' की धरा भी बीज विष का बो रही है,
ज्योति की परियां मुरझती पलक का जल पी रही हैं
अस्थि-पञ्जर ढांकने को प्राण-पतझर-सी रही हैं,

व्योम-रन्ध्रों से अमृत की बूंद ले आती न स्वाती,
सूखता जाता हलक है, गीत क्या गाऊं प्रभाती !

रक्त के सैलाब में ये स्वप्न शतदल ढह रहे हैं,
पर-जले शावक परिन्दों के इसी में बह रहे हैं,
रो रहा है वियति के कर आज यह तेरा सबेरा,
जल रहा है स्वर्ग के उद्यान में लघु नीड़ मेरा,

दिवस के पहले प्रहर ही आग क्यों ऐसी लगा दी ?
सूखता जाता हलक है; गीत क्या गाऊँ प्रभाती !

—प्रसाद-साहित्य-सदन, नहरपुर, महुलिया, (सैदही) फैजाबाद ।

तरुण-जाग्रति में खपी

तरुण-जाग्रति के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण की मूक साधना में साठ वर्ष से लीन 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' निःसंदेह वह संगठन है, जो इस तथ्य पर विनम्रता-पूर्वक गर्व कर सकता है कि इस महा-यज्ञ में अपने जीवन की आहुति देने वाले जितने 'होता' (संख्या व श्रेष्ठता दोनों में) उसकी 'यज्ञशाला' में हैं-उतने देश की समस्त 'यज्ञशालाओं' में कुल मिलाकर भी नहीं (यदि थोड़े बहुत हों तो)। ऐसे होताओं की प्रथम पंक्ति में शामिल कतिपय श्रमणों में ६६ वर्षीय श्री भाऊराव देवरस का अप्रतिम स्थान है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उत्तर प्रदेश के पितृ-तुल्य व्यक्तित्व श्री भाऊराव ने अपने जीवन के ४५ वर्ष देश की नयी पीढ़ी के बीच अलख जगाने में खपाएं हैं। और, साधना पथ पर बढ़ते हुए पं दीनदयाल उपाध्याय; प्रो० राजेन्द्र सिंह [रज्जूभइया] श्री अटल-बिहारी बाजपेयी व श्री सुन्दर सिंह भण्डारी जैसे सुरभित सुमन राष्ट्रमालिका में गूंथे है। १९३९ में एक स्नातक तरुण के रूप में महाराष्ट्र से बहुत दूर गंगा-यमुना की धरती को अपना कर्म-क्षेत्र बनाने वाले श्री देवरस प्रान्त-प्रचारक,

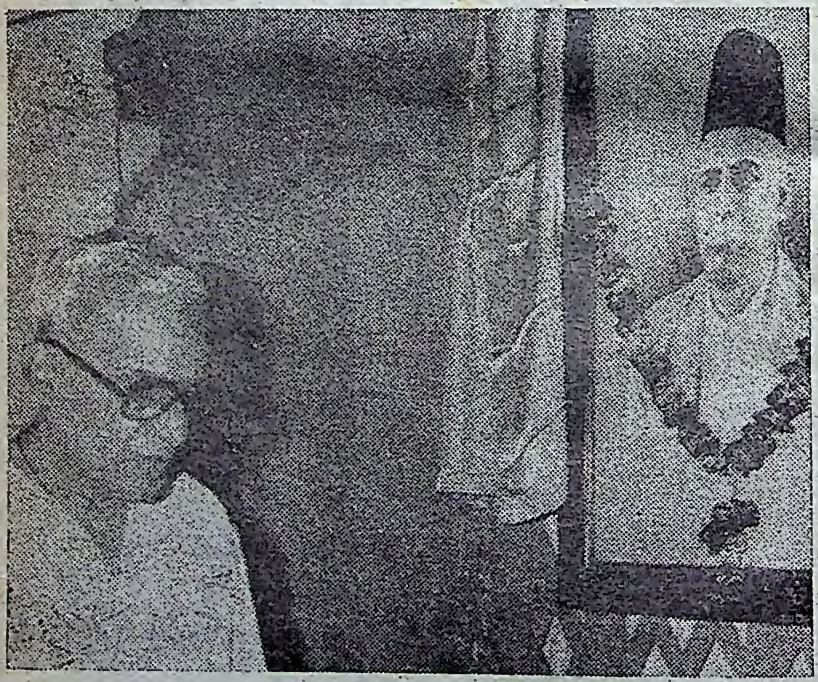

प्रेरणा-स्रोत डॉ० हेडगेवार के चित्र के सम्मुख चिन्तन मुद्रा में भाऊराव

एक जिन्दगी

सम्पादक द्वारा

क्षेत्र-प्रचारक व अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए संघ के सह सरकार्यवाह (सह-महामंत्री) तक पहुंचने वाले श्री देवरस का समस्याओं के विश्लेषण, निदान और समाधान का अपना विशिष्ट तरीका है। हृदय की गहराइयों से बोलने वाले भाऊराव औपचारिकता में बंधन व घुटन अनुभव करते हैं और गपशप-तुल्य सहज स्वाभाविक बातचीत के माध्यम से ही अपने भाव–विचार संप्रेषित करने में अधिक विश्वास रखते है। जटिल से जटिल समस्या के मर्म पर त्वरित व सटीक चोट करने वाले ऐसे व्यक्तित्व से युवा समस्याओं के बारे में बात करने की ललक होना स्वाभाविक है। उनके लखनऊ आगमन पर ६ मई को यह अवसर प्राप्त हुआ। निर्धारित समय पर [अपराह्न ३ बजे] संघ के प्रांतीय मुख्यालय, 'केशव भवन,' पहुंचा तो ज्ञात हुआ कि वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उ०प्र० व बिहार-क्षेत्र-प्रचारक श्री माधवराव देवले से चल रही वार्ता में कहीं मैं व्यवधान न बन जाऊं, यह सोचकर किंचित् ठिठकते व दबे-पैर कमरे में प्रवेश करता हूँ। उनकी निगाह उठते ही मेरा नमस्कार और उनका 'आव-आव' [आओ, आओ] लगभग एक साथ। इसी बीच श्री देवले कमरा छोड़ देते हैं। मैं उनके सामने बैठकर जैसे ही अपना टेप रिकार्डर संभालता हूं, वैसे ही वे हाथ के धीमे किंतु आग्रहपूर्ण संकेत के साथ मना करते हुए बोल पड़ते हैं नहीं, यह सब झंझट ठीक नहीं। मैं सानुनय अपना पक्ष रखता हूं–भाऊराव! कोई उलझाव वाली बात नहीं, बस युवा वर्ष से सम्बन्धित कुछ बातें पूछनी हैं। लेकिन वे टेप बन्द करने के बाद ही बात करने को तैयार होते हैं।

पर यह क्या! एक टेप के बन्द होते ही दूसरा शुरू। लेकिन विषय युवा वर्ष नहीं, अपितु देश की राजनीतिक परिस्थिति, पंजाब समस्या, आरक्षण विवाद आदि। डेढ़ घण्टे की इस नितान्त अनौपचारिक व 'आफ दि रिकार्ड' बात चीत में लगभग आधा समय ऐसा भी रहा; जब इन पंक्तियों के लेखक को वक्ता तथा भाऊराव को श्रोता की भूमिका निभानी पड़ी। चिंतनशील भाऊराव तब सचमुच शांत, धैर्यवान, दत्तचित्त व जिज्ञासु श्रोता बन गए थे।

(शेष पृष्ठ २८ पर)

राष्ट्रीय अखण्डता है क्या?

आज बात-बात पर सत्तापक्ष की ओर से देश की 'अखण्डता और एकता' अक्षुण्ण रखने की दुहाई दी जाती है। खासकर चुनाव के मौके पर यह नारा ज्यादा उछाला गया। इस नारे की शब्दावली बहुत महत्वपूर्ण है, राष्ट्रीय महत्व रखती है—इसमें दो मत नहीं। अलबत्ता यह प्रश्न फिर भी शेष रह जाता है कि स्वयं सत्तापक्ष ने इस शब्दावली का प्रत्यक्ष करनी याकि व्यवहार में कितना निर्वाह किया है? देश की अखण्डता कितनी अक्षुण्ण रखी है और राष्ट्रीय एकता को अपनी रीति-नीति से कितना पुष्ट किया है?

यह भी प्रश्न उठता है कि आज नई पीढ़ी देश के किस स्वरूप को, किन सीमाओं को भारत से जोड़कर अखण्ड मानती है और किस स्वरूप के विरूप या विकृत होने पर उसे खण्डित मानती है? इस संदर्भ में भारत की जो सीमाएं हमारे सामने हैं, केवल उन्हीं को समन्वित करके भारत की अखण्डता बरकरार नहीं रह जाती। कारण, वह इतिहास अभी भी ताजा है, जब स्वयं हमारे ही नेताओं ने देश के उस स्वरूप को खण्डित, विरूप और विकृत कर दिया जो सन् १९४७ के पहले तक दुनिया के मानचित्र पर प्रकाशमान था। सन् १९४७ के मनहूस दिनों में हमारे नेताओं ने बड़ी घृणित सौदेबाजी करके देश के टुकड़े करना स्वीकार कर लिया और स्वतंत्रता के नाम पर वह सौदेबाजी सत्ता की ही थी। सौदेबाजी न की जाती, तब भी देश को स्वतंत्र होने से कोई रोक नहीं सकता था। राष्ट्रीय संघर्ष की सबसे अन्तिम कड़ी थी नेवी-विद्रोह। हमारे १०० युद्ध-पोत सागर में लंगर डालकर अपनी तोपों के मुंह बम्बई की तरफ करके खड़े थे कि भागो, इंग्लैंड जाने के लिए किधर से भागोगे? हम एक-एक अंग्रेज को भूनकर रख देंगे। इस विद्रोह में हिन्दू-मुसलमान सभी शामिल थे; एकजुट थे। अंग्रेज उनकी यह एकता तोड़ नहीं पा रहे थे—न उनका विद्रोह विराम ले रहा था—तब उनकी तोपों के मुंह सागर की तरफ मोड़ने आ पहुंचे हमारे ही नेता, जो खुद को अहिंसा के पुजारी कहते थे। पर उन्होंने उन बहादुर विद्रोहियों तथा अंग्रेजों में 'समझौता' कराने की जिद पकड़ ली। विद्रोहियों को विवश किया कि आन्दोलन समाप्त कर दें और वादा किया कि 'उनमें से इस विद्रोह के कारण किसी का भी कोर्ट मार्शल नहीं किया जायेगा।' विद्रोही मान गये। लेकिन उन्होंने

भारी धोखा खाया। नेवी-विद्रोह तो ठंढा हो गया लेकिन कोई भी विद्रोही कोर्ट मार्शल से नहीं बचा। सत्ता तो आ गई कांग्रेस–नेताओं के हाथ में, लेकिन देश खून से लथपथ हो गया, पंजाब, बंगाल-सिन्ध निरीह लाशों से पट गये और देश बंट गया, कट गया उसका बहुत महत्वपूर्ण भाग। देश की भुजाएं कट गईं। अखण्डता का सपना

● वचनेश त्रिपाठी

उस अंग्रेज ने अपनी कारसाजी दिखाई। कश्मीर का एक भाग उसने पाकिस्तान के जबड़ों में लटका दिया, तब से अभी तक लटका है। अयूब गये, यहिया गये और जिया आये लेकिन कश्मीर का वह हिस्सा भारत से फिर न जुड़ा। पाकिस्तान वहीं छावनी बनाकर भारत पर हमला करता है;

"तब उनकी तोपों के मुंह सागर की तरफ मोड़ने आ पहुंचे हमारे ही नेता, जो खुद को अहिंसा के पुजारी कहते थे। पर उन्होंने उन दहादुर विद्रोहियों तथा अंग्रेजों में समझौता कराने की जिद पकड़ ली। विद्रोहियों को विवश किया कि 'आंदोलन समाप्त कर दें और और वादा किया कि उनमें से इस विद्रोह के कारण किसी का भी कोर्ट मार्शल नहीं किया जायेगा।' विद्रोही मान गये। लेकिन उन्होंने भारी धोखा खाया। नैवी-विद्रोह तो ठंढा हो गया, लेकिन कोई भी विद्रोही कोर्ट मार्शल से नहीं बचा।"

लहूलुहान हो बिखर गया। एकता की अर्थी निकल गई उसी दिन। कौन लोग जिम्मेवार थे इसके लिए? क्या सिर्फ जिन्ना के काटने से देश कट सकता था? कांग्रेस की उससे सौदेबाजी कराने वाला अंग्रेज था लार्ड माउन्टबेटन। वह हमारे नेहरूजी का खास दोस्त बन गया और आजाद भारत का प्रथम वायसराय भी–जैसे कि हमारे उन नेताओं ने उस अंग्रेज को एक सनद लिख दी कि 'आओ, तुम्हीं सम्भालो इस हिन्दुस्तान को–तुमसे योग्य आदमी इस देश में नहीं और इस रक्त-रंजित भारत को सम्भालना हमारे बूते का काम नहीं।'

वहीं मुजाहिदों की भर्ती करता है–उसे 'आजाद कश्मीर' बताता–लिखता है; उसी में एक क्षेत्र था हुंजा–जिसे अयूब ने चीन को बख्श दिया। इसे पाकिस्तान ने जिस दावत में चीन को भेंट किया, उसमें हमारे एक राजदूत बनर्जी ने खूब शराबखोरी की–उस मौके पर चाऊएनलाई ने उससे कहा था; 'मि० बनर्जी, यू आर ए गुड ड्रिन्कर' (तुम एक अच्छे पियक्कड़ हो। कथित अखण्डता के हम कितने बड़े पुजारी हैं यह सचाई इस घटना से उजागर हो जाती है। हुंजा की जो स्थिति है, उससे भारत की सुरक्षा और स्वतंत्रता

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

रण-कंकण पहने हैं।

● डॉ० भगवानशरण भारद्वाज

जब कोई समाज अपनी अनुभूतियों की संचित राशि नई पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है, अपनी ओज और आग भविष्यत् के प्रहरियों के हृदय में उतारता है; तो उसका विश्वसनीय और सहज माध्यम बना करती है—कविता। कविता जब जवानी से सम्वाद करने की रुचि और पात्रता खो देती है; युवा पीढ़ी को जलाने और भिगोने के बजाय उससे नजर चुराने लगती है; तब समझना चाहिए कि कविता के ह्रास का आरम्भ हो गया। कविता का तरुणाई से सीधा सम्बन्ध है। कविता उसकी सखी भी है और पथदर्शिका भी। दोनों के रिश्तों के बीच पनपती दूरी समाज के आन्तरिक संकट की सूचना देती है। कविता से विमुख और उसके प्रति बहरा समाज अपराधियों के जमघट से अधिक कुछ नहीं। युवक किसी समाज की नब्ज होते हैं। जब वे कविता से अछूते, निर्विकार और संवेदनशून्य होने लगते हैं; तो आशंका करनी चाहिए कि समाज किसी भीषण त्रासदी की ओर पग बढ़ा रहा है।

हिन्दी कविता हिन्दीभाषी समाज के आह्लाद-विषाद से समरस रही है। युवकों का हृदय उसका उत्संग रहा है। वह उनके स्वप्न और आकांक्षाओं से आन्तरिक रूप से जुड़ी रही है, उनके प्राण के स्पन्दन से समस्वर। हिन्दी कवि जिस जवानी से सम्वाद-सेतु स्थापित करता है, वह वासना का खिलौना या दीनता और पलायन का पर्याय नहीं—

ओ नव जवान!
तेरे भ्रू भंगों से सीखा करता है प्रलय नृत्य करना।
तेरी वाणी से सीखा करता काल ताल अपनी भरना॥
तेरी उमंग से सिन्धु-तरंगें सीखा करती हैं उठना।
तेरे मानस से सीखा करता गगनांगन विशाल बनना॥

—सोहनलाल द्विवेदी

उसने वीर-व्रत अंगीकार किया है, मरण उसके लिए पर्व है। वह दर्शक नहीं, समर में डटा हुआ है। वह नहीं चाहता कि संकट उसके सामने ही न आये और जीवन में केवल सुख-शान्ति ही हो।

उसमें अखूट आत्मविश्वास है जिसके सहारे वह सनसनाती आँधियों, तमतमाती बिजलियों, विषधरों और प्रलय को भी चुनौती दे देता है—

ओ आँधियो ! तुम न सनसाओ,
निशंक हमने दिया जलाया,
प्रभंजनों की चुनौतियों पर।
पवन झकोरों के पालने में, खिलाई नवज्योति की कलाएं।
प्रकाश पल-पल प्रखर हुआ है, घिरी हैं जब-जब तिमिर-घटाएं।
ओ बिजलियो ! तुम न तमतमाओ,
खुली डाल पर नीड़ बनाया,
अनल-घनों की चुनौतियों पर।

उसने जिस यौवन को सम्बोधन दिया है उसकी भुजाओं में शक्ति का सागर तरंगित होता है, उसकी गर्जना पहाड़ों के दिल में खलबली पैदा कर देती है, उसके हाथ आकाश के अमाप विस्तार को भी अपनी परिधि में घेर लेते हैं और उसके पग अथाही गहराइयों का पता देते हैं—

तुम्हारी बाहुओं में शक्ति का सागर मचलता है।
तुम्हारी गर्जना से भूधरों का दिल दहलता है।।
तुम्हारे कर गहन विस्तार नभ का नाप लेते हैं।
तुम्हारे पग अतल गहराइयों को भांप लेते हैं।।

उसे अपने गन्तव्य, ध्येय और दिशा की पहचान भलीभांति है। उसने अन्धकार के विनाश का प्रण किया है, उसने प्रकाश की उपासना का व्रत लिया है। प्रलय के क्षण उसके सृजन के बिगुल के स्वर को रुद्ध नहीं कर सकते—

हमारा पथ तो प्रकाश का है, ध्येय तिमिर के विनाश का है।
सभी का मंगल लिए हृदय में, हमारा हर पग विकास का है।।

उसकी दृष्टि धुंधली नहीं है। उसकी साधना का आदर्श है—कर्मयोग। उसकी घोषणा है—

स्वत्व के समर में समोद बलिदान होंगे,
रक्खेंगे न ऋण मातृभूमि का चुकाएंगे।
सामना करेंगे शक्तिशाली नर-राक्षसों का,
अबल-अनाथन पै हाथ न उठाएंगे।।

पंचतत्त्व वाले का प्रभुत्व नहीं मानने को,
छोड़ेंगे न धर्म, नाकों चने चबवाएंगे।
माथ न नवाएंगे, गँवाएंगे न गौरव को,
नाथ न कहेंगे और दास न कहाएंगे॥

—शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन'

वह पशुबल पर आत्मबल की श्रेष्ठता का विश्वासी है। उसका मार्ग सत्य, धर्म और मनुष्यता का है, मगर उसके अन्तर्मन में स्वप्न एक ही है—

वर्तमान छलना-अधर्ममयी जगती में
सत्य-धर्म-ध्यान धरने को हम आये हैं।

—आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव

वह विधर्मियों और राष्ट्रद्रोहियों के षड्यंत्र को असफल करने के लिए संकल्प कर चुका है। दमन और क्रूरता उसे विचलित करने में असमर्थ हैं। उसमें संगठन की वृत्ति जग रही है—

बन्द कर तालों में, सड़ाकर चाहे नालों में,
काट-काट, छांट-छांट श्वान को खिलाये जा।
मरेंगे, सड़ेंगे पर व्रत से टरेंगे नहीं,
आपस की फूट, छुआछूत, ऊँच-नीच वर्ण,
राग-द्वेष-काम-लोभ-कीच भरी मन में।
जपते न प्रेम-जाप, करते न प्रेमलाप,
लेते हैं न भाग कभी हिन्दू संगठन में॥

—हरिकृष्ण शुक्ल

साड़ियों के राजा
फैन्सी चिकन इम्पोरियम
लखनऊ चिकन कला की आधुनिकतम डिजाइनों की साड़ियों एवं
ब्लाउज पीस तथा लेडीज एण्ड जेन्ट्स कुर्तों के
थोक एवं फुटकर विक्रेता :-
चिकन बाजार
नजीराबाद, लखनऊ।

वह वरदान मांगने को तैयार नहीं। हार से भी वह हार नहीं मानता। कर्त्तव्य-पथ का आह्वान उसने सुन लिया है, वह वहां से पलायन नहीं कर सकता—

वरदान मांगूगा नहीं।
वह हार एक विराम है, जीवन महा संग्राम है,
तिल-तिल मिटूंगा, पर दया की भीख मैं लूंगा नहीं॥
क्या हार में, क्या जीत में, किंचित् नहीं भयभीत मैं,
संघर्ष-पथ पर जो मिले, यह भी सही, वह भी सही।
चाहे हृदय को ताप दो, चाहे मुझे अभिशाप दो
कुछ भी करो, कर्त्तव्य-पथ से किन्तु भागूंगा नहीं॥

—शिवमंगलसिंह 'सुमन'

मेघ घटाएं चाहे आग बरसाने लगें, चाहें बिजलियां आकाश से टूट गिरें, चाहें पैर फफोलों से भर जायें, चाहें शिलाखण्ड मार्ग रोक लें, किन्तु कोई प्रलोभन हमारी जवानी को डिगाने से रहा—

उमड़ कर घटाएं करें वह्नि-वर्षा,
गिरें बिजलियां व्योम-तल से तड़पकर,
रहें फूटते पांव के तप्त छाले,
रहूंगा प्रगतिमान मैं इष्ट-पथ पर,
शिला-शृंग शत-शत चुभे जा रहे, किन्तु मैं मुस्कराता चला जा रहूं
सुधा के कलश की नहीं चाह मुझको,
विषम प्यास मेरी बुझेगी गरल से,
खिली वाटिकाएं डिगा क्या सकेंगी,
अभय खेलता मैं अनिल से, अनल से।
मुझे हार की हार है, मैं निरन्तर
विजय-गीत गाता चला जा रहा हूं!!

वह भाग्य की कारा का बन्दी नहीं, वह पौरुष से भाग्य को ललकार लगाता है, राहें उसके कदमों से खुद निकलती आती हैं—

ओ भाग्य! नियति!! अपना अस्तित्व सँभालो तुम,
हम अब अपना इतिहास बनाने वाले हैं।
इन फौलादी कदमों के उठते ही जैसे
राहें अपने ही आप निकलती आती हैं।

निर्माण-भरे इन हाथों के छू लेने से
तकदीरें अपने आप बदलती जाती हैं।
जो राह रोककर खड़ा तूल का पर्वत है,
हम अंगारों को श्वास बनाने वाले हैं।।

अतः, हिन्दी कविता में यौवन की दुर्दम पुकार है, वह तरुणाई का दर्पण है। यदि 'युवावर्ष' में हमारा कवि युवा पीढ़ी को तेजवान संकल्प और कर्म में संकल्प को रूपान्तरित करने की क्षमता दे सका, तो कविता के क्षेत्र में आया व्यापक गतिरोध दूर हो सकेगा।

—'कामायनी', इनायतगंज, श्यामगंज, बरेली

फिर 'अपने घर' वापस

२८ अप्रैल को अटनहा (बहराइच) में सम्पन्न धर्मान्तरण-विरोधी हिन्दू सम्मेलन में एक दर्जन नट पुनः हिन्दू धर्म में वापस आए। चित्र में गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवैद्यनाथ उन्हें उत्तरीय व उनकी आराध्या माता देवी का चित्र भेंट करते हुए। महन्तजी के बायीं ओर 'हरिजन एवं अनुसूचित जनजाति विकास समिति' के महामन्त्री श्री जटाशंकरसिंह। 'समिति' का गठन विश्व हिन्दू परिषद की पहल व प्रेरणा से किया गया है। अब तक लगभग साठ व्यक्ति परावर्तित हुए हैं।

क्या समाधान हो आरक्षण विवाद का ?

शैलेन्द्र कुमार त्रिवेदी

विगत विधानसभा चुनावों में राज्य सरकारें बनाने के लिये प्रायः सभी राजनीतिक दलों ने जनता के सामने लुभावने वायदे रखे। विद्यमान राज्य सरकारों ने आरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषय के विविध पहलुओं को नजरंदाज करते हुए पिछड़े वर्ग के आरक्षण में बढ़ोतरी की मनमानी घोषणा रातों-रात कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने की जो कुचेष्टा की, उसका व्यापक परिणाम चुनाव परिणाम आने के तुरन्तु बाद ही आग के शोले के रूप में प्रकट हुआ। विगत महीने में गुजरात में आरक्षण विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात इस व्यवस्था के प्रति व्यापक असंतोष के रूप में उभरा। अग्निशामक का उत्तरदायित्व निभाने वाली पुलिस भी इस आग में अपने विकराल रूप में प्रकट हुई। व्यापक तोड़-फोड़, संहार से केवल गुजरात ही नहीं जला; अपितु आंध्र एवं महाराष्ट्र भी चपेट में आते दिखाई दिये। पत्रकारों एवं समाचार पत्रों के दफ्तरों पर पुलिस के हमले हुए। आरक्षण-विरोधी तथा आरक्षण-समर्थक वर्गों ने एक दूसरे के रक्त में अपने हाथ धोने में कोई कसर नहीं रखी। यदि समय रहते इसका विचारपूर्वक निदान न किया गया, तो आग की चिनगारियां अन्य प्रदेशों में भी भड़क सकती हैं।

भारत में आरक्षण की समस्या दोतरफी है। यदि आरक्षण समाप्त किया जाये, तो पिछड़े वर्ग को (या का?) संरक्षण कैसे मिलेगा ? यदि आरक्षण लागू रखा जाता है; तो सामाजिक विघटन को कैसे रोका जाये ! हमें वही परिस्थिति चुननी होगी, जो सकारात्मक हो। अर्थात पिछड़ापन एवं सामाजिक विघटन दोनों ही समाप्त हों, तभी समस्या का सच्चा निदान होगा। आरक्षण पर विचार करने से पूर्व इसकी वैधिकता पर विचार अवश्य करना चाहिये।

संविधान की धारा १६(१) के अनुसार सरकारी नौकरियों में प्रवेश और नियुक्ति के विषय पर सभी नागरिकों को समान अवसर होंगे। अर्थात नौकरियों में नियुक्ति के संदर्भ में भेदभाव संविधान के मूल सिद्धान्त के विरुद्ध है। किन्तु संविधान की धारा १६(१) को अपवाद धारा १६(४) में कहा गया है कि यदि सरकार चाहे, तो कुछ पिछड़े वर्ग के नागरिकों को; जिनका सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व अपर्याप्त है ; आरक्षण दे सकती है। संविधान की धारा से स्पष्ट है कि आरक्षण 'पिछड़े

वर्ग, को दिया जायेगा, 'पिछड़ी जाति' को नहीं। सुप्रीम कोर्ट ने 'पिछड़े वर्ग' और 'पिछड़ी जाति' को दो अर्थों वाली शब्दावली माना है।

अब प्रश्न उठता है कि 'पिछड़ेपन' की कसौटी क्या हो ? इस प्रश्न का उत्तर न तो संविधान देता है, और न ही आरक्षण के विचारार्थ १९५३ में गठित 'काका कालेलकर कमीशन'।

समाजवादी; प्रजातांत्रिक व्यवस्था; जो जातिगत भेदभाव मिटाना चाहती है और सभी प्रकार की विषमता दूर करना चाहती है, जाति को कसौटी को कभी स्वीकार नहीं कर सकती। आरक्षण की नीति का उद्देश्य तो सामाजिक और शिक्षा के अवसरों से वंचित वर्गों को सहायता देना है।

जातिगत आधार पर आरक्षण पर विचार करने से स्पष्ट है कि इससे निर्बल और पिछड़े वर्ग के लोगों के साथ अन्याय हो रहा है, जिन्हें आरक्षण की आवश्यकता है। आर्थिक दृष्टि से निर्बल और पिछड़े लोग प्रायः सभी जातियों में लगभग ५० प्रतिशत विद्यमान हैं। यदि जातिगत आधार पर आरक्षण रखा जाता है, तो उस आरक्षण की सुविधा का लाभ उस जाति के उच्च वर्ग को ही मिल पाता है, जिसको आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। आरक्षण का उद्देश्य यदि गरीबी और पिछड़ापन दूर करना है, तो आरक्षण की नीति व्यवहार में इस उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतः असफल रही है। यह कारण है कि संविधान में आरक्षण के 'वर्ग' का प्रयोग किया गया है; 'जाति' का नहीं।

संविधान- निर्माताओं ने कुछ परिगणित जातियों'के लिये नौकरियों और विधानसभाओं में स्थान आरक्षित किये। किन्तु इसके अवांछनीय परिणामों पर विचार करके ही आरक्षण की अवधि १० वर्ष रखी थी। समय की आंधी ने आरक्षण के अच्छे परिणामों की आशा पर तुषार-पात तो किया ही है ; कला बाज राजनीतिज्ञ आरक्षण-जनित बुराइयों को नजरंदाज करते हुए इसे पुनः-२ १० वर्षों के लिए बढ़ाते गए। राजनीति के स्वार्थी चट्टे-बट्टे आरक्षण की आग से अपनी रोटियाँ सेकने से बाज नहीं आये। उत्तर प्रदेश में आरक्षण पर जांच के लिये बैठायेगये 'छेदी लाल साथी कमीशन' कीसंस्तुति से स्पष्ट होताहै कि राजनीतिक स्वार्थ कितना दुराग्रही होता है। रिपोर्ट में कहा गया कि 'अगले दस वर्षों तक उच्च जाति के लोगों को एक भी सरकारी नौकरी नहीं दी जानी चाहिये।'

विभिन्न राज्यों में राज्य सरकारों द्वारा लागू किये गए आरक्षण के आंकड़ों से स्पष्ट है कि यह एक सीमाहीन मांग है; जिसकी सीमा कुछ राज्यों में सरकारी तंत्र के अर्धांश से भी ऊपर जाने वाली है। कुछ राज्यों में आरक्षित स्थान शिक्षा-संस्थानों में प्रवेश एवं

नौकरियों में निम्न प्रकार है—

तमिलनाडु–शिक्षा ५० प्रतिशत नौकरियों में५० प्रतिशत, कर्नाटक-शिक्षा ४८ प्रतिशत नौकरियों में ५० प्रतिशत; कश्मीर शिक्षा ४२ प्रतिशत नौकरियों में ४२प्रतिशत; केरल शिक्षा ४० प्रतिशत नौकरियों में २५ प्रतिशत, आंध्र एवं मध्य प्रदेश २५ प्रतिशत, बिहार ३० प्रतिशत, महाराष्ट्र एवं गुजरात १० प्रतिशत।

उपर्युक्त आंकड़े चुनाव पूर्व के है, जिनमें व्यापक वृद्धि हुई है। तकनीकी संस्थानों एवं मेडिकल संस्थानों में अयोग्य चयन से विकास में पर्याप्त अवरोध पैदा हुआ है। प्रतिभावान छात्र चौराहों पर खड़े हैं, वहीं अयोग्य विद्यार्थी अपने निर्धारित कोटे को भी पूरा कर पाने में असमर्थ रहे है। उच्च शिक्षा-प्राप्त योग्य प्रतिभावान छात्र 'अनारक्षित जाति' का होने के कारण बेकार घूमेगा, तो असंतुष्ट तो होगा ही। दूसरी ओर अयोग्य चयन से राष्ट्रीय विकास में बाधा पड़ना भी स्वाभाविक ही है।

यदि आरक्षण की व्यवहार्य परिस्थिति का आकलन किया जाये, तो यह मात्र मृगमरीचिका होगी। जिसका उपयोग किसी वर्ग या जाति को न्याय देना नहीं, अपितु सत्ता-पक्ष को थोक वोट दिलाने में होता है और स्वार्थी राजनीति के घड़ियाली आंसू जनता को छलते रहते हैं।

राजनीतिज्ञों द्वारा निरंतर बढ़ते आरक्षण की नीति का तुष्टिकारक दृष्टिकोण कितना भयानक हैं, इसका स्पष्ट प्रमाण गुजरात के आरक्षण सम्बन्धी दंगे है। इस नीति से देशव्यापी कटुता बढ़ रही है। आरक्षण-विरोधियों का यह बयान कि यदि इस नीति को समाप्त न किया गया; तो यह आन्दोलन सम्पूर्ण देश में एक साथ चलाया जायेगा; कम महत्व का नहीं हैं। यह आने वाले झंझावात की पूर्व चेतावनी है,

देश का शासनतंत्र देश का मेरुदन्ड है। प्रशासनिक सेवाओं के सदस्य जितने ही योग्य, कार्यकुशल, संयत, संतुलित, पक्षपात-रहित एवं देश की चुनौतियोंका सामना करने में जितने सक्षम होंगे, उतना ही राष्ट्र का विकास सम्भव होगा ऐसी परिस्थिति में पिछड़े वर्गों का भी समग्र विकास शीघ्र सम्भव होगा। सही आदमी की सही जगह नियुक्ति होनी चाहिये, चाहे वह किसी जाति या वर्ग का हो।

भारत में आरक्षण की शुरुआत अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति से शुरु होती है। १९०९ के कानूनी सुधारों के साथ ही मुस्लिमों के लिये प्रथक प्रतिनिधित्व की मांग को माना गया; जिसका कुफल १९४७ में देश-विभाजन के रूप में चखना पड़ा। एकता के सारे प्रयास बेकार गये। अंग्रेजों ने ही सर्व प्रथम १९१९ के सुधारों के साथ भारत के निर्बल वर्ग के लिये अलग

प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव रखा था जिसका विरोध गांधी जी ने अनशन से किया था। अन्त में अंग्रेज सरकार को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा था। गांधी ने अपने आँचल में इस समस्या को ढक लिया तथा डा० अम्बेदकर से समझौता किया। साथ ही दलितों के व्यावहारिक उत्थान हेतु अपने को समर्पित भी किया। हरिजन बस्ती में रहना, हरिजनों में शिक्षा प्रसार, शराब बन्दी आदि हरिजनोद्धार कार्यों एवं 'हरिजन' पत्र द्वारा जनता से सामाजिक न्याय की अपील ने उस समय आ पड़ी समस्या को संभाल लिया था। किन्तु आरक्षण आज पुनः राजनीतिज्ञों के लिये शतरंजी मोहरा बन गया है; जिसे अपनी सुविधानुसार बढ़ाया जा रहा है; उसके परिणाम कितने ही भयावह क्यों न हों। कल अपने स्वार्थ के लिये जो अंग्रेज कर रहे थे, वही आज स्वदेशी सत्ताधीश कर रहे हैं।

जरा ध्यान दें

यदि पिछड़ी जातियों को शत प्रतिशत आरक्षण दे दिया जाये; तब भी आरक्षण की आवश्यकता कम न हो सकेगी। तब आवश्यकता होगी कि अन्य वर्गों को नौकरी से निकाला जाये। उदाहरण से स्पष्ट होगा। यदि ३०० नौकरियों के लिये ६ लाख प्रार्थी हैं और ६ लाख में से दो लाख पिछड़ी जाति के हैं, तो १०० प्रतिशत आरक्षण करने पर भी ६६६ में से कुल एकही व्यक्ति चुना जा सकेगा। यह एक दलावा ही होगा।

आरक्षण स्वतः में ही एक अनुचित व अन्यायपूर्ण धारणा है; जिसे लागू रखना दुर्भाग्यपूर्ण होगा। आज की परिस्थिति में आरक्षण-प्राप्त जातियां अपने में गुणात्मक विकास करने में विश्वास न रखकर आरक्षण को कवच मान बैठी हैं। यह उनके विकास में बाधक है। यह अधिकार नहीं, दया है; जो अपने स्वाभिमान में अविश्वसनीयता जाहिर करते हैं। पिछड़े हुए वर्ग को अपने विकास के लिये आधारभूत तैयारी करनी होगी। दया की भीख प्राप्त करने का मोह छोड़कर अपने ज्ञान एवं श्रम की सहभागिता का अधिकार लेना होगा; तभी कथित पिछड़ी जाति वाले लोग आत्म सम्मान से आगे बढ़ सकेंगे तथा देश के विकास में भी गुणात्मक वृद्धि कर सकेंगे। यह कार्य अधिकतम १ पीढ़ी का समय लेगा; अन्यथा परमुखापेक्षिता का जीवन जीते हुए हजारों साल में भी उन्नति सम्भव नहीं होगी।

राजनीतिज्ञों को चाहिये कि पिछड़े जनों की गरीबी, मजबूरी की कीमत पर अपने स्वार्थों को सरक्षित करने की नीति का त्याग कर आरक्षण [दया] के मोह से उन्हें दूर करें और उनके क्षेत्र में उनकी श्रमशक्ति का सदुपयोग कराकर उन्हें प्रतियोगिता के लिये उत्तम व सक्षम बनायें। उन्हें गांधी और वर्तमान में गिरिवासियों के मध्य कार्य करने वाले बाबा साहेब देशपाण्डे सरीखे चरित्रों के कार्य का अनुसरण करना चाहिये। यदि वे सन्

दिल से प्रयत्न करेंगे; तो वह दिन दूर नहीं जब भारत में न आरक्षण की आवश्यकता पड़ेगी, न कोई पिछड़ी जाति रहेगी और न कहीं सामाजिक विघटन। राष्ट्र स्वत: ही समाजवादी समतायुक्त गणतंत्र बन जायेगा, जहां भेदभाव तो होगा ही नहीं ; सभी एक दूसरी जाति को सहयोग करते भी मिलेंगे। इससे राष्ट्र की एकात्मता व अखण्डता निश्चित होगी और रोटी के लिये भाइयों में होने वाला रक्तपात बन्द हो जायेगा।

जनता सरकार ने १९७९ में बी० पी० मण्डल की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्ग आयोग की स्थापना की थी, जिससे राजकीय सेवाओं तथा शिक्षण संस्थाओं में पिछड़े वर्ग के लिये आरक्षण की व्यवस्था के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करने को कहा गया था। 'मण्डल आयोग' की रिपोर्ट को ३ मई '८२ को केन्द्र सरकार द्वारा संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। आयोग ने ३७०० पिछड़ी जातियों के लिये २७ प्रतिशत का आरक्षण राजकीय एवं वित्तीय सहायता-प्राप्त संस्थाओं तथा व उद्यमों शैक्षिक संस्थानों में करने की संस्तुति की थी।

इस रिपोर्ट पर विचार करने के लिये मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन बुलाया गया। परन्तु उनमें से अधिकतर ने आयोग द्वारा सुझाई गई पिछड़ी जातियों की सूची, जो देश की लगभग ५२ प्रतिशत जनसंख्या को सम्मिलित करती है, को स्वीकार नहीं किया। केन्द्र सरकार ने मंत्रिपरिषद कीसमिति को इसको परीक्षण के लिये कहा। वह अधर में है। कुछ राज्यों में पहले से ही इसी कोटि का या इससे अधिक आरक्षण मौजूद था।

गुजरात में शिक्षा संस्थानों में लागू आरक्षण की सीमाहीन बढ़ोतरी देखें।

गुजरात–शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण

संस्थान	कुल स्थान	आरक्षित	सामान्य
इन्जीनियरिंग कालेज	१७२५	१३५८	३६७
मेडिकल कालेज	७२०	४९७	२२३
पॉलिटेक्निक कालेज	३७३०	२८३१	८९९
कृषि इन्जीनिरिंग कालेज	४०	३२	८
एग्रीकल्चर (कृषि) कालेज	४२५	३६६	८९
वेटनरी कालेज	१००	७८	२२
दन्त चिकित्सा कालेज	२०	१४	६
आयुर्वेदिक कालेज	२७०	१५०	१२०

जून '८५

L030–4326–1628२७

प्रकाशन विभाग

शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक बाल साहित्य

- आल्हा उदल ४–००
  ले० : चन्द्रशेखर मिश्र
- देश विदेश की लोक कथाएं ७–५०
- एक दिन का मेहमान ५–५०
  ले० : काशीनाथ जोगलेकर
- ज्यादा का चक्कर ८–००
  ले० : आशापूर्णादेवी
- काकेशस का कैदी ११–००
- लौरिक चन्दा ४–५०
  ले० : चन्द्रशेखर मिश्र
- सुवर्ण भूमि की लोक कथाएं १२-५०
  ले० : दुर्गाप्रसाद नौटियाल
- सारथी का बेटा ११–५०
- उपनिषद की प्राचीन ७–५०
  कथाएं
- वैदिक काल की कहानियां ६–००
  ले० : डा० शुभा शर्मा
- आंवला दान ८–००
  ले० : ए० के० विद्यालंकार
- लो गुब्बारे ५–५०
  ले० : जयप्रकाश भारती
- मनोरंजक कहानियां ३–००
- पजाब और फुल्लू की ५–२५
  कहानियाँ
- स्वर्ण हंस तथा अन्य जातक ६–००
  कथाएं
  ले० : ऊषा बाला दुबे
- सुन्दर लोक कथाए ६–००
- शेकर का दिल ६–००
  ले : बंशीलाल गुप्ता
- तुलसी का ब्याह ४–००
  ले० दुर्गा भगवत
- विश्व की श्रेष्ठ कथाएं
  भाग-१ ७–५०
  भाग-२ ८–००
- भारत की आध्यात्मिक ७–००
  कथाएं
  ले० : चमन लाल

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने पर पुस्तकों की खरीद पर 10% की छूट। विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध। निःशुल्क सूची-पत्र मंगाइए।

(डाक खर्च भुगत)

25 रु से कम के आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रिजस्ट्रेशन फी) अतिरिक्त भेजना होगा। पुस्तकें स्थानीय विक्रेता से लें अथवा सीधे हमें लिखें

व्यापार व्यवस्थापक,
विक्रय केन्द्र
प्रकाशन विभाग ।

* पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001
* सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
* बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
* 10-बी स्टेशन रोड, लखनऊ-226001

(पृष्ठ १५ का शेष)

सहजता की नाव किनारे लगते ही वे 'राष्ट्रधर्म' की वर्तमान स्थिति के बारे में कुछ सरसरी जानकारी करते हैं और फिर कहते हैं, 'अच्छा अब बताव' प्रश्न क्या हैं' ? मैं अपना पौड निकालकर एक-एक कर पांचो प्रश्न पढ़ जाता हूं और यह कहकर कि ये तो कोई जटिल प्रश्न नहीं है, वे आंख लगभग बन्द करके एक-एक शब्द पर आत्मविश्वास की मोहर लगाते हुए अपनी बात प्रारम्भ करते हैं। श्रोता के हृदय को सीधे संबोधित करने वाले उनके उत्तरों का सारांश यहां प्रस्तुत है।

स्वातंत्र्य-पूर्व की पीढ़ी के सामने अंग्रेजों को यहाँ से भगाकर भारत को मुक्त कराने का स्पष्ट लक्ष्य विद्यमान था, अतः उस महान लक्ष्य की पूर्ति हेतु लोग बड़े से बड़ा बलिदान करने को तैयार रहते थे। आजादी के बाद देश के राजनेता केवल सत्ता तक ही सीमित होते गए, अतः नयी पीढ़ी के दृष्टिपथ से महान प्रेरणाएं विलुप्त होती गईं। स्वाभाविक रूप से उसी अनुपात में जाग्रति और प्रखरता भी कम होती गई। युवा पीढ़ी को यह समझते देर नहीं लगी कि राजनीति अब देशोत्थान का मिशन नहीं, बल्कि कमाई का धन्धा बन गया है। युवक को भी न्यूनतम प्रतिरोध के इसी मार्ग पर चलना सुविधाजनक लगा। चिन्तन मुद्रा गहराती है। 'कई बार ऐसा लगता है कि स्वतंत्र होने के बाद शायद प्रत्येक देश को ऐसे दौर से गुजरना पड़ता है।' यह पूछने पर कि क्या यह दौर काफी लम्बा नहीं हो रहा ? क्या ३८ वर्ष कम हैं सम्हलने-संभालने के लिए ? उनकी आश्वस्तकारिणी गंभीर वाणी उभरती है—होगा, सब ठीक होगा।

'आरक्षण के विवाद में उलझी युवा पीढ़ी के लिए आपका परामर्श क्या है?' सुनते ही माथे पर चिन्ता की रेखाएं उभरती हैं। कुछ क्षण की नीरवता और फिर विचार-प्रवाह। विषय बड़ा नाजुक है, लेकिन मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि वे परिस्थितियाँ टाली जानी चाहिए, जो जाति-विहीन समाज-निर्माण की हमारी (राष्ट्र में) आकांक्षा को क्रियान्वित करने में बाधक बनती हों। सदियों के अन्याय की मारी अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के आरक्षण [उन्हें शेष समाज के बराबर आने तक] का विरोध तो नासमझ लोग ही करेंगे लेकिन कुछ जाति विशेष के थोक मत पाने के लिए 'अन्य पिछड़े वर्ग' के नाम पर जो अस्वस्थ राजनीति की जा रही है, उससे तो जातिवाद की धार कम होने के बजाय और पैनी होगी। इससे जातीय कटुता बढ़ेगी, जो अंततः राष्ट्रीय टकराव को जन्म दिए बिना नहीं रह सकती।

अपनी बात पर थोड़ा जोर देते हुए वे कहते हैं कि यदि प्रत्येक प्रान्त अपने-अपने हिसाब से 'पिछड़े वर्ग' की

परिभाषा करके उन्हें आरक्षण प्रारंभ करता रहेगा, तो एक दिन यह राष्ट्र जातियों–उपजातियो के अहंकार के बोझ से दबकर टूट जाएगा। अतः यदि राष्ट्र की एकता व अखण्डता को सुरक्षित रखना है, तो 'पिछड़े वर्ग' के आरक्षण के प्रश्न पर लोकप्रियता की कीमत पर भी प्रामाणिकता व साहस के साथ पुनर्विचार करना होगा। पर वे फिर स्पष्ट करते हैं कि यह उनका निजी दृष्टिकोण है, इससे संगठन की सहमति या असहमति आवश्यक नहीं।

लेकिन श्री देवरस सबसे अधिक चिंतित दिखाई पड़े पंजाब के बारे में। तब श्री लोगोंवाल ने शिरोमणि अकाली दल की अध्यक्षता से इस्तीफा नहीं दिया था और ट्रांजिस्टर बम का आतंक भी प्रारंभ नहीं हुआ था, फिर भी समस्या कहीं भी, कोई भीगंभीर व खतरनाक मोड़ ले सकती है, वह आशंका उनके चेहरे पर विषाद की गहरी रेखाएं तो उभार ही रही थी, उन्हें कहीं बहुत गहरे झकझोर भी रही थी। इस 'आशंका' का कुछ खुलासा हो पाता, इसके पूर्व ही एक बाल स्वयंसेवक आ धमका और मैं प्रश्नों के घेरे में लिपटी पंजाब - समस्या का बंडल बांधकर चल दिया। बहुत संभव है यह अंक पाठकों के हाथों में पहुंचने तक समस्या कोई करवट ले बैठे। 'घल्लूघारा' (नरसंहार-विरोधी) सप्ताह की पूर्व-संध्या न जाने कितनी आशंकाओं से कांप रही है। ०

वतन के लिए

● सूरज प्रसाद

ज्योति भारत के जन-जन में ऐसी जले,
हम मरें देश पर; देश मेरे लिये।
बस शहीदे-वतन नाम लब पे रहे,
प्यार के दिल में सागर मचलते रहे रहें।
राह सूनी अगर साथ कोई न हो;
कंटकाकीर्ण मग में अंधेरा भी हो।
बहशी तूफान भी आ झटकते रहें,
रौंदते बढ़ चलें, देश की शान में।
होवे विश्छल हृदय प्यार सबके लिए,
प्यार के गुल का, हर जन गुलिस्तां बने।
ऊंचे-नीचे की दीवार को तोड़ दे,
हम हैं बेटे सभी एक ही मातु के
लेके परचम तिरंगा कदम बढ़ चले,
हर जुबां एकसंग वन्देमातृम कहे।
हो गये जो शहीदे-वतन हैं यहाँ
'सूरज' रोशन रहे; फलक सिजदा करे।

–सहोवतगंज, लखनऊ

(पृष्ठ १७ का शेष)

को पलीता लग सकता है। उस हुंजा के इलाके में चीन ने सड़कें बना ली हैं, हम सिर्फ तमाशा देखते रहे, किसे कहते-मानते हैं हम देश की अखण्डता ? वे कौन सीमाएं हैं हमारी, जिन पर दुश्मन के दांत नहीं लगे, बारूदी दाग नहीं लगे ? वह ढाका, चटगांव, कुष्ठिया, कुमिल्ला, रंगपुर, मेमनसिंह, मिदनापुर जो हमारे कभी क्रान्ति-केन्द्र थे। जहां अरविन्द घोष, भगिनी निवेदिता, बारीन्द्र घोष और त्रैलोक्य महाराज ने विप्लव-शाखाएं खोली थीं—आज कहाँ हैं भारत के नक्शे में ? यह सही है कि इन्दिराजी ने पाकिस्तान को बांट दिया, काट दिया, उसकी सीमाएं छोटी कर दीं लेकिन हमारी सीमाएं बढ़ी नहीं। वह लाहौर, जहां सिख गुरु ने बलिदान दिये, कहां है हमारे भारत में ?

हम अपने छात्र जीवन में ब्रह्मा (बर्मा), अफगानिस्तान-बिलोचिस्तान, लंका को भूगोल बतौर भारत की भूगोल पढ़ते थे—भारत का नक्शा बनाना होता तो उसमें ये प्रदेश बनाए बिना भारत की सीमाएं, उसका मानचित्र पूर्ण नहीं होता था और बिना उन्हें अंकित किये परीक्षा में अंक कट जाते। रंगून के चावल, वहां की मारकीन (कपड़ा) तब हमारे लिए विदेशी चीज न थी। आज भारत के नक्शे में इन्हें कहीं खोजा नहीं जा सकता—उल्टे वही श्रीलंका भारत से टेढ़ी आंख करके चीन-अमेरिका, ब्रिटेन, पाकिस्तान की तरफ हाथ बढ़ा रहा है।

और यह इतिहास तो अभी कल का है, जहां तक भारत की अखण्डता—उसकी सीमाओं का सवाल है, वह हजारों वर्षों के इतिहास से जुड़ा है। हमने तो अभी चीन से युद्ध के दिनों में देखते-देखते लद्दाख का १८ हजार वर्ग मील क्षेत्र चीन के कब्जे में चले जाने दिया, वहां आज चीनी फौजें डेरा डालकर पड़ी हैं, हम सिर्फ दूरबीन से उनकी वहां कवायद-परेड होते देखते हैं लेकिन उस इतिहास को अभी भुलाया नहीं जा सका—जब काबुल, कन्धार ही नहीं ईरान की सरहद से भारत की सीमा जुड़ी हुई थी। अफगानिस्तान तब हमारे कागज-पत्र में 'अहिगण स्थान' प्रसिद्ध था और संस्कृत का महान केन्द्र था। उसी को गान्धार कहते थे, गान्धारी वहीं की थी। वह पर्वतमाला जिसे आज हिन्दू कुश कहते हैं—भारतीय सीमा में आने से ही हिन्दूकुश कहलाती थी। शहीद अश्फाकउल्ला खां वारसी ने क्या खूब लिखा है कि

'हमारा हिन्दूकुश
हुआ हिन्दू-कश !'

अर्थात् वही हिन्दूकुश पहाड़ अब हिन्दू की हिंसा करने वाला हो गया। काबुल नदी को तब भूगोल में 'कुभा' कहते-लिखते थे, आज की 'हरहवती' ही हमारी तब 'सरस्वती'

नदी थी और वहीं हिन्दूकुश के दामन में बहा करती थी हमारी 'दृशद्वती'। आज उस मोहेनजोदेड़ो—मुर्दों के उस विशाल टीले से आवाज आती है कि कहां हैं भारत की वे विशाल सीमाएं जिसमें कहीं गजवनी' थी, जहाँ हिन्दू राजा गज राज्य करता था और जहां कभी वृष्णिक वासुदेव (श्रीकृष्ण) के किसी पौत्र ने भी राज्य किया था—वह 'गजनी' कैसे हो गया? वह गजनी जहां के मुहम्मद गजनवी ने १७ बार भारत पर हमले किये।

आज रूस के ताशकन्द-समरकन्द को सभी जानते हैं, लेकिन जब यही दक्षकन्ता और यक्षकन्ता कहलाते थे, तब किस देश की सीमा-संस्कृति में आते थे, यह कौन बतायेगा? कैस्पियन सागर को तब 'कश्यपसागर' क्यों कहते थे, यह मर्म कितने लोगों को पता है? आज तो ठीक हमारे तट को छूने वाले समुद्रों में भी अमेरिकी प्रक्षेपास्त्रों से लैस युद्ध-पोत डेरा डाले हुए हैं, हमारे कितने ही द्वीप हमारे हाथ से निकल जा चके हैं। किसे कहते हैं हम देश की अखण्डता? क्या उस अखण्डता में हमारी कोई सागर-सीमा भी नहीं रह गई? जिन दिनों सिकन्दर की सेना ने सिन्धु नदी के तट पर पड़ाव डाला, उस समय वहां जो हिन्दू गणराज्य था—उसे पाणिनी ने 'ब्राह्मणको नाम जनपदः' लिखा है।

इसी 'ब्राह्मणक' गणराज्य ने सिकन्दर से युद्ध किया था। आगे गजनी के समय में वही 'ब्राह्मणक' ब्राह्मणाबाद कहलाया, फिर वही 'करांची' और अब 'इस्लामाबाद' हो गया। जैसे कि यह नाम पाकिस्तान ने अपनी राजधानी का 'ब्राह्मणाबाद' के ठीक जवाब में रखा हो। उसी तरह प्राचीन 'पट्टनप्रस्थ' हैदराबाद (सिन्ध) हो गया। इसी तरह जो कभी 'क्रमु,' कहलाता था, वह 'कुर्रम' हो गया और 'सुवास्तु' ही 'स्वात' बन गया। वेदों में उस सीमान्त (सरहदी) क्षेत्र की जिस नदी को 'गोमती' लिखा गया है, वही 'गुमुल' कही जाने लगी। इस बीच अवश्य चन्द्रगुप्त मौर्य ने ध्येय बनाया कि हिन्दूकुश पर जहां ये सब वेदोक्त नदियां बहती हैं—भारत का, हमारा ध्वज लहराये। इसी कारण चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को अल्टीमेटम दिया कि काबुल-'कन्धार (गान्धार) से लगाकर हिन्दूकुश पर्वतमाला तक जितना क्षेत्र तुमने यूनानी राज्य-सीमा में हथिया लिया है, उसे तत्काल हमें लौटा दो।' यह बात ईसा पूर्व ३१५ की है। दोनों में तुमुल संग्राम हुआ। सेल्यूकस हारा और कन्धार से हिन्दूकुश पहाड़ तक पूरा क्षेत्र भारतीय सीमा में आ गया। 'अखण्डता' का बिना नारा लगाये उसकी जो एक प्रक्रिया थी—वह ऐतिहासिकरूप में पूर्ण हुई। अक्षुण्ण हो सकी भारत की सीमा, खण्डित न कर

पाया उसे सेल्यूकस। वह सीमा आज हमारे नक्शे में कहां है? कहां है देश की वह अखण्डता? उस अखण्डता में न सिर्फ काबुल-कन्धार, हिन्दूकुश वरन् हिरात और बिलोचिस्तान भी शामिल थे।

हिन्दूकुश के उस पार जिसे आज 'बैक्ट्रिया' कहते हैं, वही तब 'वाल्हीक' था। उसी वाल्हीक तक यवन या यूनानी सेनाएं सीमित रहीं—भारत की तरफ, काबुल-कन्धार-हिरात-बिलोचिस्तान की ओर सैकड़ों वर्ष तक उन्होंने कभी आंखें नहीं वक्र कीं। पुष्यमित्र का पुत्र वसुमित्र महीनों अश्वमेध-यज्ञ का अश्व लिए उस बीहड़-दुर्गम क्षेत्र में घूमता रहा, किसी ने उसे पकड़ने-रोकने की जुर्रत न की। ऐसी गरिमामयी थी वह अखण्डता। जैसे कि वे आर्यवीर हुंकार लगाते घूम रहे हों उस कबायली इलाके में कि 'युद्धं देहि'। युद्ध करो लेकिन कोई सामने न आता। यद्यपि उसी वाल्हीक (बैक्ट्रिया) के परली पार शकों के घोड़े हिनहिनाया करते थे और वे शक-समूह अपनी बनचारी जिन्दगी ज्यों-त्यों बिताने को विवश थे—उस सीमा के भी पार मध्यएशिया में कुषाण भी किसी तरह पेट पाला करते थे। फिर एक दिन अकस्मात बोलनदर्रा उन्हीं शकों के घोड़ों से भर गया। उस रास्ते बढ़ता आया सिन्ध, काठियावाड़, गुजरात तक शकों का विराट काफिला। भारत खंडित होने लगा, सीमाएं छोटी होने लगीं।

बलूचिस्तान, सिन्ध, काठियावाड़, गुजरात, कोंकण से लेकर उज्जयिनी तक शकों के ये काफिले छा गये।

निष्कर्ष यह कि यदि देश को और खंडित नहीं करना है तो सीमा-द्वार की अर्गला कसो, वे द्वार खुले मत रखो। इसीलिए स्व० राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद चेतावनी देते थे कि 'तिब्बत जब तक चीन के चंगुल में है, भारत की सीमा सुरक्षित नहीं रह सकती।' किसने ध्यान दिया इस चेतावनी पर? तिब्बत से ही फौजें सजाकर चीन ने भारत पर हमला किया था। वही उसका द्वार है। वही हाल गुलाम कश्मीर का है, पाकिस्तान के लिए भारत में घुसने का वही दरवाजा है। और वह क्षेत्र हमारा अपना होकर भी हमारा नहीं है! क्यों? ००

संपादक-पत्नी

मायके से लौटी
सम्पादक की पत्नी
क्रोधावेश में लगी पूछने—
'उत्तर क्यों नहीं दिया
मेरे पत्रों का तुमने?
सम्पादक ने यूं समझाया—
'मैं ऐसे पत्रों का
उत्तर नहीं देता
जिनके साथ
पता लिखा, टिकट लगा
लिफाफा नहीं होता।'

—सत्यराज

(पृष्ठ ११ का शेष)

जाते हैं कि उन्हें अपने 'स्व'; अपनी अस्मिता के निर्बाध प्रकटीकरण और तदनुसार मानव सभ्यता की विकास-यात्रा में अपने योगदान का अवसर प्राप्त हो। अतः हमें भी अपने 'स्वत्व' को ठीक पहचानकर, उसमें गौरवानुभूति के आलोक में अपनी सांस्कृतिक–ऐतिहासिक दृष्टि को ढालकर ही राष्ट्रजीवन के विविध क्षेत्रों की रचना करनी होगी। शैक्षिक परिवर्तन, बेरोजगारी व गरीबी जैसी नाना समस्याओं के समाधान का पथ देर-सवेर इसी से प्रशस्त होगा। यदि आदर्श, सिद्धांत, नीति व कार्यक्रम में परस्पर-विरोधाभास नहीं हुआ; तो हमारे प्रगति-अभियान को कौन रोक सकेगा ? 'युवावर्ष' के आदर्श स्वामी विवेकानन्द, के अनुसार मानव के अंदर छिपे देवत्व के प्रकटीकरण के पूर्ण अवसर तथा मानव गरिमा की स्थापना के माध्यम से 'आत्मनः मोक्षार्थं, जगत्-हिताय च' का अवलम्बन कर आगे बढ़े,–दुनियां में भारत का डंका बजकर रहेगा।

यदि आज की युवा पीढ़ी अपने निजी काम-धंधों और आमोद-प्रमोद में ही लगी रही और समय रहते सामाजिक दायित्व-निर्वाह नहीं किया; तो कल उसे किसी से शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं होगा। वह अपने अन्दर ऐसा विश्वास पैदा करे, कि यदि सारी दुनियां भी उसके विरुद्ध खड़ी हो जाए; तो भी उसके कदम लड़खड़ायें नहीं। यदि चारो ओर अंधकार ही अंधकार दिखे, तो भी उसे 'अप्प दीवो भव (अपने दीपक स्वयं बनो) के अनुसार चलने की तैयारी करनी होगी। फिर दोहरा दिया जाय कि 'मेरा क्या होगा ? मुझे क्या मिलेगा ? कितना मिलेगा?' आदि की विवेचना करने वालों द्वारा महत् कार्य नहीं होते। परमोच्च ध्येय का साधक सर्वस्व का स्वाहाकार करने में हिचकिचाता नहीं। अतः 'संग्राम करते-करते यदि हम हताहत भी हों; तो हमारी देह रणांगण में ही पड़े ; जिससे हमारे शवों पर चढ़कर आगामी पीढ़ी–कल का नव भारत––उस ऊंचाई पर अपना ध्वज फहरा सके ; जिसे जीतने के लिए हम प्रयत्नशील हैं।'०

सन् '७१ के युद्ध में 'खुखरी' युद्धपोत के बहादुर कप्तान महेन्द्रनाथ मुल्ला की साहस-गाथा।

जब 'खुखरी' घायल हुई

● चन्द्रशेखर, बाराणसी

घायल खुखरी हुई जवानो कूद झमाझम पानी में
कथा शुरू है बलिदानी की आये मजा कहानी में ।।

खुखरी खा बैठी गोला, रूठ गया होगा भोला
खड़ा डेक पर वीर महेन्दर, दोनों हाथ उठा बोला
सागर करता हरर हरर, लहर के ऊपर चढ़ी लहर
सांप के ऊपर है सांपिन, डसकर उलट गयी नागिन
जहर कण्ठ तक भीना है, मौसम झीना-झीना है
ओ कुम्भज के बेटो ! तुमको, फिर से सागर पीना है
यान जा रहा नीचे रे ! पानी कौन उलीचे रे !
समरसिंधु में ग्राह पकड़कर, गज को फिर से खींचे रे !
हमें भरोसा हाथ का, नहीं द्वारिकानाथ का
तो फिर नहीं गुहार करो, डूबो चाहे पार करो
छोड़ो कुंवर कन्हैया को, बलदाऊ के भइया को
याद करो अन्तिम वेला में, प्यारी भारत मइया को
हम द्वारिका बचायेंगे, लहर लहर पर ढायेंगे
गज के ऊपर कर्ज कृष्ण का, व्याज समेत चुकायेंगे
सैनिक ही भगवान है, जिसका बल बलिदान है
और शहीदों के बल पर ही, जीवित हिन्दुस्थान है
बूढ़ा होकर मरे अभागा, जूझो रे पौठानी में ।। १ ।।
एक सिपाही आया है; जीवन जैकेट लाया है
सर इसको स्वीकार करें ! पहन समुन्दर पार करें
ऐसा मत कह रे भइया ! रोवेगी भारत मइया

याद महेन्दर की हम कब लें।

परम्परा यह रीति की, रणचण्डी रणनीति की
जब तक जल पर यान रहे; अन्तिम क्षण कप्तान रहे
और मरे तो सागर की, छाती पर हिन्दुस्थान रहे
भारी बहुत समुन्दर है; छोटा बहुत महेन्दर है
लघु विराट में लय होगा; कौन बड़ा संशय होगा
परम्परा यदि टूटी तो, भारतीयता रूठी तो
शायद मुल्ला बच लेगा, कहीं किनारे लग लेगा
किन्तु लाजबश महाहिमालय; चुल्लू भर में डूबेगा
खुखरी के संग मरने दो, मरते दम कुछ करने दो
खारे पानी में थोड़ा सा; पावन लोहू भरने दो
सुनकर बलिदानी पैदा हों, देश के छप्पर-छानी में ।। २ ।।

यदि संयोग से बच जाना; कहीं किनारे लग जाना
मिले भाग्य से भारत मां तो, यह संदेशा पहुंचाना
टूटी नहीं परम्परा; सुन ले वीर बसुन्धरा
कवि गायेगा गीत नया; मां तेरी बच गयी हया
सागर का जल हारा मैया, दूध तुम्हारा जीत गया
पहले मुल्ला डूबा; उसके बाद फरहरा डूबा था
मैं सागर का रहवैया; पानी बीच फंसी नैया
यह अन्तिम अभिलाषा है; पूरी होगी आशा है
मरकर बनूं नहीं रेती; मैं बन जाऊँगा मोती
गोताखोर पठा देना; मोती वहीं कढ़ा लेना
उस मोती को भारत मां की, पायल बीच जड़ा देना
मां के चरण रहेंगे, निशिदिन मेरी ही मेहमानी में ।। ३ ।।

(सौजन्य से श्री रामचन्द्र पाण्डेय, लखनऊ)

परश रतन

● मूल–रवीन्द्रनाथ ठाकुर ● रूपान्तर–रामशंकर द्विवेदी

तांर नाम परश रतन
पापी हृदय तापहरण
प्रसाद तांर शान्तिरूप भकत हृदये जागे।

–उसका नाम परशरतन है। उससे पापी के हृदय का भी ताप दूर होता है। भक्त के हृदय में उसका प्रसाद शान्ति के रूप में जागता है।

उसी परशरतन को क्या हम प्रातः-

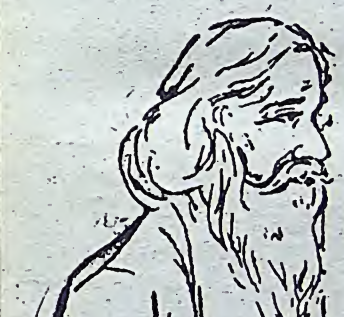

काल की उपासना में उपलब्ध करते हैं? यदि उसका एक कण भी हम उपलब्ध कर लेते; तो मन के मध्य केवल एक भावरस की उपलब्धि में ही उसे बांधकर न रख लेते। उसका स्पर्श कराना होगा, उसका स्पर्श हमारे सारे दिन को सोने के रूप में बदल देगा।

दिन के बीच क्षण-क्षण उसी परशरतन का स्पर्श अपने मुख की वाणी को कराना होगा, अपने मन के विचारों को कराना होगा और अपने सांसारिक कर्मों को कराना होगा। ऐसा होने पर जो हलका था, उसमें गौरव संचार होगा; जो मलिन था, वह उज्ज्वल हो उठेगा, जिसका कोई मूल्य नहीं था; । वह मूल्यवान हो जायेगा।

हमारा समस्त दिन प्रातःकाल की इस उपासना, उसके नाम, उसके ध्यान और 'शान्तम् शिवम् अद्वैतम्' मंत्र के स्पर्श से युक्त हो जायगा। हम उपासना को केवल हृदय का धन ही नहीं कहेंगे; उसे चरित्र का सम्बल बनायेंगे, उसके द्वारा केवल स्निग्धता लाभ नहीं करेंगे; प्रतिष्ठा लाभ भी करेंगे।

लोक में प्रचलित है कि प्रभात के मेघ व्यर्थ होते हैं, क्योंकि वे बरसते नहीं हैं। हमारी यह प्रभातकाल की उपासना भी मेघों की तरह क्षण भर के लिए आविर्भूत होकर प्रभातकालीन हवा से ही उड़ कर न चली जाय। क्योंकि जब प्रखर धूप होती है; तभी स्निग्धता की आवश्यकता होती है, जब प्रबल

तृषा होती है, तभी वरसना काम आता है। संसार के घोर कामों के बीच ही शुष्कता है, दाह का जन्म होता है। जब भीड़ खूब जमती है, कोलाहल खूब होता है, तभी हम अपने को खो देते हैं। अपने प्रभात के संचय को ऐसे ही समय हम किसी काम में नहीं लगा पाते, वह यदि देवता की सम्पत्ति की तरह मन्दिर में ही पूजा अर्चना के काम में नियुक्त है, संसार के प्रयोजन में लगने का उसमें कोई जोर नहीं है, तो इससे तो कोई काम होता नहीं है।

दिन में ऐसा-ऐसा समय आता है; जो अत्यन्त नीरस और अनुदार होता है। जिस समय गूंगा सबसे बढ़कर प्रच्छन्न रहता है, जिस समय हम एकान्त में भी आफिस के जीव अथवा रोटी जुटाने की जड़ता से हमारी आत्मा की उज्ज्वलता अत्यन्त म्लान हो जाती है, उस शुष्कता और जड़ता के आवेशकाल में तुच्छता के आक्रमण को, जिससे हम प्रश्रय न दे बैठें, इसके लिए हमें उस समय भी आत्मा की महिमा को गोचर रखना होगा, जिससे लगे हम उस समय भी मानो 'भूर्भुवः स्वर्लोक' में खड़े हैं, मानो जो अनन्त चैतन्य स्वरूप है इस क्षण भी हमारे अन्तर में चैतन्य विकीर्ण कर रहा है, लगे जो 'शुद्धं अपापविद्धं' है इस मुहूर्त्त में भी हमारे हृदय में अधिष्ठित है। समस्त हास्यालाप, सब काज-कर्म समस्त चाञ्चल्य के मूल में जो एक अविचलित परिपूर्णता की उपलब्धि है, जिससे पूर्णरूप से ढक न जाय।

इसी कारण किसी के मन में यह बात नहीं आती है कि संसार के समस्त हास्य-गल्प, समस्त आमोद-आह्लाद को एकदम विसर्जन कर देना ही साधना है। जिसके साथ हमारा जितना स्वाभाविक सम्बन्ध होता है, उसकी रक्षा करने से वह हममें उतने ही अस्वाभाविक रूप से फैलकर बैठ जाता है। त्यागने की कृत्रिम चेष्टा के कारण गांठ और मजबूत होती जाती है। स्वभावतः बाहर जो क्षणिक वस्तु थी, वही त्यागने की चेष्टा के कारण कई बार हमारे अन्तःकरण के ध्यान की वस्तु हो जाती है।

त्याग नहीं, रक्षा करो, किन्तु ठीक स्थान पर रक्षा करो। छोटे को बड़े रूप में नहीं मानोगे, श्रेय को प्रेय के आसन पर मत बैठने दो, और सब समय सम्पूर्ण कर्मों के अन्तर में गूढ़ कक्ष के अचल दरबार में उपासना को चलने दो। 'वे नहीं हैं' इस बात को किसी भी समय किसी भी तरह मन को न लगने दो, क्योंकि यह पूर्णरूप से मिथ्या है।

प्रभात में एकान्तिक भक्ति से उसके चरणों की धूल मन में लगाओ, वही हमारा परश रतन है। हमारा हंसी-खेल, हमारे काम-काज, हमारी विषय-वासना, जो कुछ है उसके ऊपर उसी भक्ति को टिकने दो। इससे स्वयं ही सब कुछ बड़ा हो उठेगा, पवित्र हो उठेगा, उसके समक्ष उत्सर्ग करने योग्य हो जायगा।

—२६, नारो भास्कर, जालौन

अपने दोनों बच्चों के बीच तीन वर्ष का अन्तर रखें

निरोध कापर टी ओरल पिल

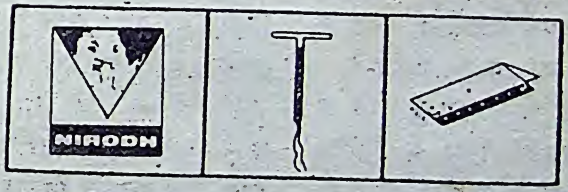

कोई भी तरीका अपनाएं

davp 84/225

क्या नया नेतृत्व समस्यायें सुलझा पा रहा है ?

वचनेश त्रिपाठी

आज केन्द्र में जहां तक नये नेतृत्व द्वारा देश के ज्वलंत प्रश्नों के हल की बात है, लोक-मत यह कहने को विवश है कि 'बहुत नाम सुनते थे पहलू में जिनका, जो चीरा तो दो कतरये खूं न निकला–' मंशा यह कि नया नेतृत्व, राजीव गांधी की सरकार देश की कौन-सी समस्या है, जिसे सुलझा पाई है ? आज नहीं तो कल देश की जनता नये नेतृत्व से इस प्रश्न का जवाब मांगेगी। अपनी समस्याओं के लिए जनता सड़कों पर निकल आये तो सवाल उठता है, सरकार फिर किसलिए है ? हर असंतोष के शमन के लिए यदि केन्द्र कदम-कदम पर सेना भेज देता है तो क्या इसे समस्या का हल कहेंगे ?

राजीव गांधी के शासन में आने के बाद पंजाब में जो नये सिरे से निर्दोष और निहत्थे लोगों की हत्याएं की गईं, दिन दहाड़े लूट की भी कई वारदातें हुईं और गुजरात अपनी ही आग में जिस तरह जल रहा है–कितनी ही लाशें वहां गिर चुकी हैं–उसके लिए जहां तक शासन-प्रशासन और नीति-निर्धारक का प्रश्न है, कौन जवाबदेह है ? किसकी पेशानी पर बेगुनाहों-निरीहजनों के खू के ये दाग आज मिटाये नहीं मिट रहे क्या वह केन्द्र का नया नेतृत्व ही नहीं है ? गुजरात में राजीव सरकार के सूबेदार (मुख्यमन्त्री) शासन की गद्दी पर पूरे दर्प से जमे बैठे हैं, वे क्या झक मारने के लिए ? वहां की जनता औ उसकी समस्याओं के प्रति क्या उनक कोई जवाबदेही नहीं ? आखिर मिट्टी के इन माधवों की पूजा आंख बन्द क कोई कब तक करता बैठा रहेगा इंदिराजी के खून की कीमत पर शास बनने वाले देश के प्रायः सभी कांग्रेस शासित प्रदेशों के मुख्य मन्त्रियों की य स्थिति है, वह केवल राजीव गांधी आगे-पीछे रहकर उन्हें खुश रखने अपने 'कर्तव्य' की सीमा मानते उनकी प्रदेश की जनता का किस त आये दिन जनाजा निकल रहा है, इस उन्हें कोई गम नहीं। सद्यः सम्पन्न चुनावों के परिणामों ने भी शासन गरेबान पकड़कर बदली हुई फिजा खबर दे दी है, इसके बावजूद य प्रदेशों के ये सूबेदार राजीवगांधी के पर खांटी सरसों का तेल कान में डा

कर सोते रहते हैं तो आने वाला समय इन्हें सिंहासनों से धराशायी किये बिना रहेगा नहीं।

आज आजादी के ३८ वर्षों बाद भी देश के कई अञ्चलों में डेढ़ रुपये से लेकर दो रुपये प्रति बाल्टी के हिसाब से खरीदकर लोग पीने का पानी प्राप्त करने के लिए विवश हैं। और शासन है, जो उपग्रहों और अन्तरिक्षीय उड़ानों की कल्पना में बेसुध और विभोर है। इन्हें दिन में तारे नजर आ रहे हैं और उधर जनता है जो अपनी बेकसी और बेबसी में कई-कई दिन निरन्न फाके करके आत्म-हत्या कर रही है। ८-८ सदस्यों के कई-कई परिवारों के भूख से तंग आकर आत्म-हत्या कर लेने के समाचार छपे हैं। शायद ये शासन-कर्त्ता बजाय खुद को उन खबरों को छापने वाले समाचार-पत्रों और उनसे सम्बद्ध पत्रकारों को लानत दें! परन्तु जन-गण-मन तो यही पुकार कर रहा है, 'लानत है हुकूमत की हवस में जीने वाले इन नये मुगलों के निकम्मेपन को।' अंग्रेज बिना अकाल के ही भारत-वासियों को भूखों मारने के आदी थे तो हर हथकण्डे से हुकूमत हथिया लेने वाले ये दगाबाज, धोखेबाज, पेशेवर राजनीतिज्ञ भी भारतीय जनता को भूखों मारने में उन हत्यारे अंग्रेजों से किसी कदर कम नहीं। गरीबी, बेकारी-बेरोजगारी-भूख-हताशा और निराशाधंकार में घुटकर जिस देश में लोग मौत को

राजीव गांधी : कौन सी दृष्टि अपनाऊं गुत्थी सुलझाने के लिए

गले लगाते हैं, उस देश के शासक को इतिहास कभी क्षमा नहीं करता।

चुनावों के दरम्यान प्रधानमन्त्री राजीव गांधी आनन्दपुर-प्रस्तावों का जिक्र जिस सन्दर्भ से जोड़कर किया करते थे, उससे लगता था कि आनन्दपुर-प्रस्तावों के नाम पर उनकी सरकार कभी अकालियों से कोई समझौता नहीं करेगी परन्तु लोंगोवाल के अल्टीमेटम देने के बाद राजीव गांधी की सरकार ने आनन्दपुर-प्रस्तावों के साथ जो दरिया-दिली बरतनी शुरू की और जिस तरह उग्रवादी छात्र संगठन से उसने प्रतिबन्ध हटा लिया—धड़ाधड़ उनकी रिहाई जारी की, उससे खत का मजमून लिफाफे में बन्द रहते भी छिपा नहीं रह गया है। सरकार घुटने टेकने पर तुली है, अब न इन्दिरा गांधी का खून इसमें उन्हें बाधक नजर आता है, न उस प्रधानमन्त्री की

रक्त-रंजित लाश जिसने पंजाब-समस्या के प्रति अपने न झुकने के रुख के कारण जान गंवा दी। वस्तुत: आनन्दपुर-साहिब-प्रस्तावों का प्रभाव समग्र देश की एकता, अखण्डता और सुरक्षा पर पड़ेगा—उस पर किसी भी समझौते के तहत सरकार कैसे स्वीकृति की मुहर लगा सकती है ? देश की जनता किसी भी सरकार को यह दुष्कृत्य और देश-घाती सौदेबाजी कभी करने न देगी। यह सरकार तो इस सन्दर्भ में विराट् जन-मत के मुकाबले एक तिनका है, नाचीज और तुच्छ है। कितने भी बलि-दान देशवासियों को देने पड़ें—अब देश को कोई दुश्शक्ति विभाजित नहीं कर सकती। इन्दिरा गांधी का खून भी यही पुकारता है। कैसी विडम्बना है कि अभी उस जघन्य निर्मम हत्या का खून भी नहीं सूखने पाया था कि उन्हीं हत्यारों को सन्त लोंगोंवाल की मौजू-दगी में अकाली मंच से 'शहीद' का रुतबा दिया जाने लगा और उनके परि-वार-जनों को खुलेआम सार्वजनिक तौर से समादृत भी किया जाने लगा, वर्त्त-मान के इन काले पृष्ठों में अनागत भविष्य की मनहूसियत और उसके काले चेहरे की छाया प्रतिबिम्बित है—खबर-दार ! ये नादान और दबी हुई दुर्नी-तियाँ देश से और कितनी कुरबानियां लेंगी ? क्या चीज बदली है ? राज-नीतिक क्षितिज पर, शांति, सुरक्षा, व्यवस्था या आर्थिक आकाश में क्या कोई नया चांद, नया सूरज, नव प्रभा उदित हुआ ? फिर हम किसको सराहें किसके स्वागत में पलक-पांवड़े बिछाये किसका जीवन-संगीत के सप्त स्वरों से स्तवन करे ? यह अंधेरा, यह कुण्ठा, यह घुटन, यह भूख-गरीबी-बेकारी, कुनबापरस्ती-भ्रष्टाचार और कालेधन की काली आंधीं का जोर, हवा में खौफनाक सरसराहट, ये डरे-डरे सहमे हुए लोग, ये हारे-थके-हताश-उदास चेहरे ! किस रास्ते भटक गया है भारत का विकास ? उसकी समृद्धि-प्रदायनी योजनाएं ? लोकतंत्री व्यवस्था का वह खुला-खुला, खुशनुमा और जीवन-दायी आकाश-बातास कहां है ? कहां हैं वे दृढ़-व्रती युगाधार ? टिटिहरी के बच्चों की तरह मनु की वह नौका कौन सागर ज्वार बहा ले गया है ?

आज हिन्द महासागर में अमरीका अपनी नौसेना का एक सशक्त अड्डा जमाकर बैठा है, दियागोगार्सिया में। कभी चीन तो कभी पाकिस्तानी और अनेक बार अमेरिकी आणविक पनडुब्बियां गश्तें मारती हैं भारतीय समुद्र-तट पर, हमारी सरकार की तरफ से कब किसने चुनौती दी है उन्हें ? भारत को घेरने वाली ये महाशक्तियां किस कदर उच्छृंखलता बरत रही हैं हमारे प्रति, हमारी प्रभुसत्ता के विरुद्ध—फिर भी हमारे शासक किस विनम्रता से मौन हैं निष्क्रिय। आज भाभा, साराभाई सदा के लिए खो गये हैं, उधर इस्लामी अणु-

बम दूर कहीं वीरान मरघट में ठठाकर पशाचिक अट्टाहस्य गुंजा रहा है और हमारे शासक उद्घाटनों, स्वागत-समारोहों और नित नये जलसों की धूम में मशगूल हैं !

असम में विदेशी घुसे बैठे हैं, किसी मौके की ताक में–तलाश में और हम यहाँ बगलें झांक रहे हैं। नीरो वंशी बजाये जा रहा है, असम जल रहा है, पंजाब जल रहा है, कश्मीर की केसर-क्यारियां सुलगने वाली हैं। और नीरो की वंशी मादक स्वरों से देश को तंद्रिल बनाये जा रही है।

हम कितने आत्म-निर्भर हैं, यह ब्रिटेन के बनियों की हाल की धमकी से जाहिर है ! और हम कितने सजग हैं—यह सच पंजाब में पाकिस्तान के सशस्त्र सौ कमाण्डों की गिरफ्तारी से अनावृत हो गया है। दो-चार, नहीं एकदम सौ कमाण्डों की पंजाब में मौजूदगी ? स्पष्ट है कि रोम का वह नीरो आज भारत में ही रम रहा है और राष्ट्र-जीवन के हर स्तर पर हावी है उसकी इतिहास-प्रसिद्ध आत्म-घाती बंसरी। पाकिस्तानी कमाण्डों की गिरफ्तारी का उक्त सवाल लोकसभा में इन्दिरा-कांग्रेस के ही एक सांसद के० के० तिवारी ने उठाया, बधाई उन्हें इसके लिए और इसके लिए भी कि उन्होंने गृहमंत्री से इस मामले में बयान देने की मांग की।

और क्या खूब सोने के फूल फूले हैं इस नये नेतृत्व के राज में ! सबूत पेशे

लोंगोवाल : उग्रवाद के आगे विवश ?

नजर है और काबिले गौर कि खुद जनाब खाद्य और नागरिक पूर्ति–मंत्री राव वीरेन्द्रसिंह लोकसभा में कबूल करते हैं कि 'बजट के बाद से देश में सभी जरूरी चीजों की कीमतों में ऐसी 'अभूत-पूर्व' तेजी आई है, जो सरकारी अन्दाज के आंकड़ों से बहुत ज्यादा है।' महंगाई यों दूर हो गई नये शासन में ! नंगा क्या नहाये, क्या निचोड़े ! अपने मतदाता को क्या खूब उपहार बख्शे हैं राजीव गांधी की सरकार ने।

और क्या लोग हैं ये विपक्ष वाले भी। मांग करते हैं कि 'गुजरात में राष्ट्रपति।शासन लागू कर दो।' भला जिस प्रदेश में कांग्रेस सत्तारूढ़ हो, वहां राष्ट्रपति-शासन की जरूरत क्या ? क्या अपने ही पांवों में कुल्हाड़ी मार लें ? अतः राज्यसभा में फितूर से भरी यह फिजूल मांग सरकार ने नामंजूर कर दी।

और अमृतसर के क्षतिग्रस्त स्वर्ण-मंदिर में सरकार ने जो भी मरहम लगाया—उसे नकारते हुए अकाली नेता कह रहे हैं कि 'अकाल-तख्त तोड़कर फिर से बनायेंगे।' किसी तरह विघटन की राजनीति जिन्दा रहनी चाहिये, दीर्घजीवी। वर्ना उक्त मंदिर के जिस शिखर (गुम्बद) में सेना-प्रवेश के पहले ६४ किलो सोना मंडित था, सरकार ने 'कारसेवा' के समय उसमें ११ किलो सोना और बढ़वाकर ७५ किलो सोना मंडित कराया। अकेले एक करोड़ रुपये का तो हालैंड से खास किस्म का सीमेन्ट मंगाया सरकार ने मंदिर-शिखरों की मरम्मत में लगाने के लिए। मंदिर की इमारतों तथा अकाल तख्त की मरम्मत में सरकार ने ६ करोड़ ८० लाख रुपये खर्च किये। इस तरह कोई १० करोड़ रुपये सरकार ने मरम्मत में खपाये, फिर भी अकाल तख्त को तोड़-कर नये सिरे से बनाने की मुहिम अकाली नेता चला रहे हैं, ये क्या पंजाब-समस्या के हल होने की प्रक्रिया के प्रमाण है, आसार?

इतना प्रलाप कर जाने के बाद सम्पादकजी ने कहा, 'कुछ हाल श्रीलंका का भी आ जाता तो अच्छा होता!' मैंने बहुत बगलें झांकी पर वे न माने। तब सोचा क्या लिखूं श्रीलंका पर! प्राचीन राज-वंशों के काल में इस देश में सिंहली हाथी, सिंहल के गजराज प्रसिद्ध थे। अतीव विशालकाय, बड़े सुन्दर और उनका प्रकृत शृंगार जैसे प्रकृति ने याकि सिरजनहार ने स्वयं अपने हाथों किया हो। शाहजहां का पुत्र दारा शिकोह सिंहली हाथी पर चढ़कर जब तक औरंगजेब के विरुद्ध चल रहे युद्ध में समर-भूमि में घूमता रहा, तब तक औरंगजेब के पक्ष की मिट्टी पलीत होती रही, जैसे ही दारा अपने सिंहली हाथी से उतरकर घोड़े पर बैठा कि युद्ध की बाजी पलट गई। और फिर याद आते हैं सिंहलद्वीप के सन्दर्भ में मलिक मुहम्मद जायसी—वे भी सिंहली हाथियों की प्रशस्ति में कलम तोड़ते हुए नजर आते हैं। लिखते हैं, 'सिंहली गजराज जब धरती पर पांव रखते हैं तो वह उनका बोझ सह नहीं पाती—हिल उठती है; कच्छप की पीठ टूट जाती है और शेषनाग के सहस्रफन फट जाते हैं, ऐसी है सिंहली हाथियों की चाल कि

'कुसुम टूट फन फाटे, तिन्ह हस्तिन की चालि…'

और कैसा है सिंहल द्वीप?…

'सिंघल के बरने सिंघली…'

'वहां 'नीर-खीर' नाम्नी दो नदियां हैं, 'मोती चूर' का कुण्ड है, कपूर का का जहां कीच भरा है और पानी जैसे 'अंब्रित' (अमृत)। जो उस कुण्ड का पानी पीले, वह यावज्जीवन युवा रहेगा। कंचन के 'बिरिख' (वृक्ष) हैं सिंहल में, जैसे इन्द्रलोक के कल्पतरु-मूल उनकी पाताल में और 'साखा'

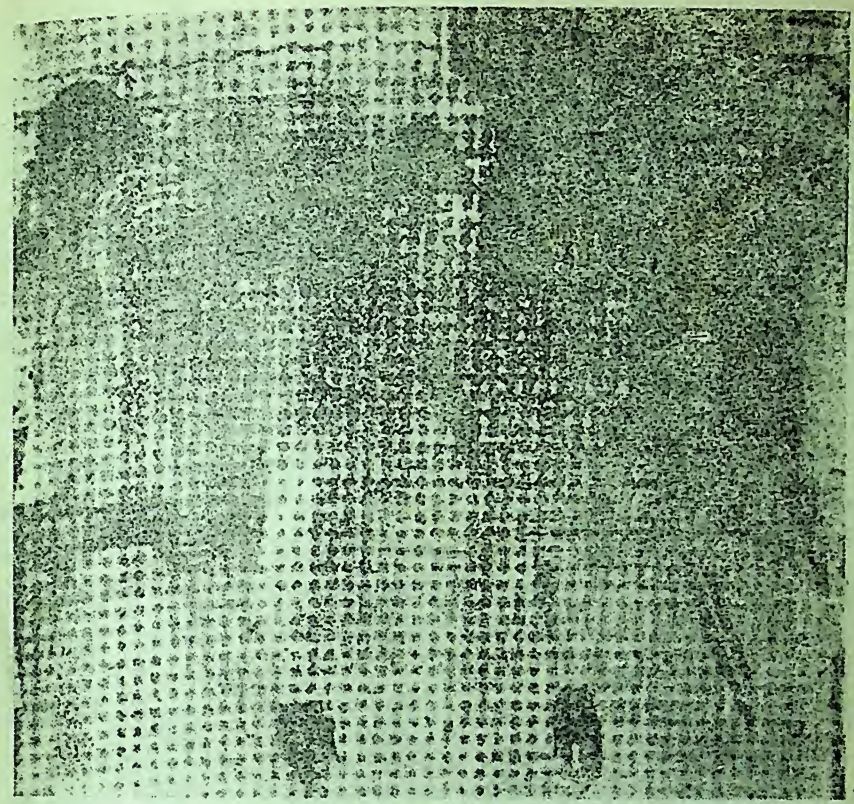

(बाएं से) बेअंत सिंह की पत्नी बिमल खालसा, बेअंत का पिता तथा खिड़कावाले का पिता जोगिन्दर सिंह : इरादे क्या हैं ?

सरग में। चांद पात···, चन्द्रमा के पत्ते हैं उनके और उनके फूल तारागण हैं लेकिन ऐसे 'बिरिख' के फल उसी को नसीब होते हैं जो तपस्या करता है योगी होकर। राजा भये भिखारी···, उस 'अमृत-फल' के लिए कितने ही राजा भिक्षुक बन गये और जो वह फल पा सका वह अमर हो गया। उस सिंहलद्वीप के ६ खण्ड हैं, और ६ द्वार हैं, 'अष्ट चक्रा-नव द्वारा देवानां पूः, देवों की ऐसी ही एक नगरी का वर्णन तो वेद भी करते हैं और जायसी कहते हैं, जो तपस्वी सिंहल के ये नवों खण्ड चढ़ सके, वह ब्रह्माण्ड को ही प्राप्त कर लेगा। 'लंका चाहि ऊंच गढ़ ताका···' लंका का ऊंचा दुर्ग वहीं है, 'जानहु ठाढ़ सुमेरु,' कि जैसे सुमेरु पर्वत खड़ा हो। यह तो हुआ प्राचीन सिंहल का यशोगान। भारत से वह आत्मारूप में कितना जुड़ा रहा है—उसकी साक्षी दे गया प्रियदर्शी अशोक; अपने प्राणप्रिय-पुत्र महेन्द्र और लाडली पुत्री संघमित्रा

को जब उसने एक जल-पोत पर बिठाकर सिंहल में धर्म-प्रचार के लिए भेजा। और वहां का प्रथम शासक विजय भारत से ही तो गया था। सिंहली आज भी उसी को तो अपना पुर्व पुरुष मानकर फूले नहीं समाते। सो, कालांतर से अशोक के जमाने में सिंहल बौद्ध हो गया, फिर भी सिंहली भाषा की जननी वे संस्कृत को ही मानते हैं और अपने को आर्य मानकर खुश होते हैं; वहीं वहां के तमिल हिन्दू शैव या वैष्णव हैं—फिर उनमें फर्क क्या, दीवार क्या ? दीवार पहले क्यों नहीं थी? दो ढाई हजार वर्ष से दोनों भाई-भाई की तरह वहां रहते आये—जब से अंग्रेज वहां गये, दोनों में फूट डाल दी गई। अलगाव आ गया परस्पर। यही विष-बीज अंग्रेज भारत में बो गये। फलतः समय-समय पर श्रीलंका में दंगे होने लगे। सन् १९८३ में ३० हजार तमिल वहां से भारत भाग आये। हिन्दू को और कहां ठिकाना है ? कोई स्वयं को 'बौद्ध' बताकर हिन्दू को काटने पर तुला है तो कोई 'सिख' कहकर टूट पड़ता है। परन्तु क्या यही सच है ? बुद्ध और नानक को ही क्या हम नहीं मार रहे ?

आज १० हजार तमिल श्रीलंका में अपनी नागरिकता खो बैठे हैं, राज-भाषा है सिंहली, तमिल भाषा निर्वासिता है। राज-काज से भेद की दीवारें ऊंची होती गई हैं और भारत पहले तो कुछ सजग-सक्रिय भ था, नया नेतृत्व उधर से आंखें फेरकर बैठ गया है। सन् १९७१ में श्रीलंका में सशस्त्र विद्रोह उभरा तो भारतीय वायु-सेना ने उसे नियंत्रित किया। ठंढा किया, आज तो भारतीय सागर-तट पर ठीक रामेश्वरम् के पास भी भारतीय मछुवारे श्रीलंकाई सैनिकों द्वारा गोली से मारे जाते हैं और नई दिल्ली सिर्फ बयानबाजी करती है। नतीजा यह है कि आज श्रीलंका के नेता विश्व की बड़ी शक्तियों के बगल बच्चे बनने पर आमादा हो रहे हैं; कोई इजरायल-अमेरिका-ब्रिटेन को बांग दे रहा है तो कोई चीन-रूस-पाकिस्तान को। पाकिस्तान के दस्तरखान पर हाल ही एक श्रीलंकाई नेता ने खूब जर्दा-पुलाव उड़ाया ही—वैसी बकवास भी की है भारत-विरोधी। और हमारे शासकों का हाल यह है कि 'टुकुर-टुकुर दीदम ! दम न कशीदम !' फलतः न सिर्फ श्रीलंका का नेतृत्व भारत-विरोधी पेंग भरता जा रहा है वरन् वहां अन्य बड़े देश भी डोरे डाल रहे हैं, यदि श्रीलंका किसी महाशक्ति की जेब में चला गया या उसकी गोद में जा बैठा तो भारत की सुरक्षा और स्वतंत्रता खतरे में पड़े बिना न रहेगी। हिन्दू कहीं भी हों—उनकी किस्मत में मार खाना और बरबादी ही लिखी है। वही श्रीलंका में हो रहा है। वे कैसे 'आर्य'—वंशी सिंहली हैं जो अपने ही रक्त-मांस के तमिलों का संहार करते

हैं ? फलतः तमिल भी 'पृथक् तमिल इलम्' का नारा दे रहे हैं जो विघटनवादी है, विपथगामी। वामपंथ विपथगामी तो होगा ही क़िन्तु उसका दायित्व किस पर ? इतना बड़ा भारत देश, वह सिर्फ तमाशाई है और जयवर्धने सरकार तमिलों को उजाड़ने पर लगी है, ऐसे में कोई तीसरी शक्ति वहां जड़ जमाकर बैठ जाय तो भारत के हक में बुरे नतीजे होंगे। अफगानिस्तान में रूस का क्या था लेकिन आज उसकी दो लाख फौज वहां डेरा डालकर पड़ी है, पोलैंड–पूर्वी जर्मनी, हंगरी में रूस का क्या था लेकिन वे सब आज रूसी लगाम से बंधे हैं और एक हम हैं कि बंगलादेश तो हमने बनवाया लेकिन कभी फरक्का बांध के नाम पर तो कभी सीमा पर कांटों की दीवार बनाने के समय वह हमें आंखें दिखाता है, आज भी हम उसके तेवरों के कारण सीमा पर दीवार बना नहीं पा रहे। ऐसी तेजस्वी है हमारी विदेश-नीति !

कहना यह है कि सिंहली भी भारत से गये, तमिल भी भारत से गये। सांस्कृतिक-धार्मिक सभी रिश्तों से श्रीलंका भारत के निकट है लेकिन न हम वहां तमिल-सिंहली को जोड़ने में कुछ कर सके–न श्रीलंका को अपने दामनगीर-बगलगीर बना सके। कितनी विफल है हमारी विदेश-नीति ! न केवल श्रीलंका, वरन दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्रायः सभी छोटे-छोटे देश बड़ी शक्तियों के जबड़ों में समा जाने को हैं, हम वहां भी शुरू से तमाशाई हैं, बेगाने। थाई देश कहने को 'लघु भारत' है लेकिन भारत उसे कितना अपना बना पाया, यह एक दुर्भाग्य–कथा ही है। वही हाल श्रीलंका का है, जितना कभी उसे अशोक अपना सका था–हम उतना भी तो न कर सके उसे अपने से जोड़ने के प्रयास में।

जहां तक पंजाब में केन्द्र की नीति की सफलता-असफलता की बात है, उपरोक्त अंश लिखे जाने के बाद समाचार आये हैं कि विघटनवादियों ने नये सिरे से हत्याओं का सिलसिला जारी रखा ही है–निरीह-निर्दोष लोगों की हत्या का ढंग भी बड़ा ही जालियाना और नया खोजा है। दिल्ली-हरियाणा उत्तरप्रदेश जैसे प्रदेशों में बसों, बस- अड्डों पर छोटे-छोटे संदूकों में बम रखे गये जिनके अचानक विस्फोट से जाने कितने लोग मारे गये, इनमें स्त्रियां-बच्चे सभी हो सकते हैं। इसकी प्रतिक्रिया अन्य प्रदेशों में क्या होगी अन्दाज किया जा सकता ह और यह स्थिति सिद्ध करती है कि नया नेतृत्व गाल चाहे जितना बजाये, पंजाब-समस्या हल कर पाने में नितान्त निकम्मा, असफल और घुटनाटेकू साबित हुआ है। गुजरात से पंजाब तक हत्याओं, आगजनी और कर्फ्यू का जो क्रम अटूट रूप से जारी है, वह देश को किसी भी खतरे में झोंक सकता है।००

राष्ट्रीय अस्मिता का

हिन्दी के मूर्धन्य कवि–साहित्यकार डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' से भेंट-वार्ता एक हृदय-लोक, एक भावलोक की यात्रा है––ऐसी यात्रा जो उत्तुंग शिखर कैलाश के उत्संग में स्थित मानसरोवर के नयनाभिराम, नीलाभ उदक, उसके विस्तीर्ण तट और उसमें तैरती नीर-क्षीर-विवेकी हंसावलि के बीच लाकर खड़ा कर देती है। उन्नत ललाट व चांदी-सी चमचमाती केशराशिधारी साठोत्तरी डॉ० 'सुमन' के अंतस् की अतल गहराई से उठी ज्ञान की हिलोरें जब भावोर्मियां बनकर तट पर खड़े यात्री को सराबोर करती हैं, तो उसे मानस-सर में ज्ञान के स्वर्ण कमल से खिलते दिखाई पड़ते हैं और इसकी पृष्ठभूमि में श्वेत-पद्मासना सरस्वती की वरद-हस्ती छाया भी साफ झलकने लगती है।

सम्प्रति उत्तर प्रदेश–हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष डॉ० 'सुमन' से जब संस्थान के लखनऊ स्थित 'राजर्षि टण्डन भवन' में भेंट हुई, और लेखक ने उनके पुराने गीत 'पथ भूल न जाना, पथिक कहीं' के माध्यम से उनकी हृद्-तन्त्री को छेड़ा, तो छायावाद के अन्तिम छोर से अपनी काव्ययात्रा प्रारम्भ करने वाले कवि ने अपना हृदय उंडेलकर रख दिया और सारा वातावरण भावनाओं के ठाठें मारते पारावार में डूबता-उतराता नजर आया।

'खालसा पंथ' के कतिपय दिग्भ्रान्त अनुयायियों की कारगुजारियों की तरफ संकेत करते व्यथा-बोझिल 'सुमन' जी कहते हैं–'हाय हमारा भाग्य किहम अस्त्र लाए खुद कटने को'। लेकिन तुरन्त ही संकल्प-स्वर गूंजता है–हम भाई भाई में दरार नहीं पड़ने देंगे; क्योंकि इससे बदनामी तो आखिर देश की होती है। 'यह' जांघ खुल जाए, तो अपनी बदनामी; 'वह' जांघ खुल जाए, तो भी अपनी! जांघ तो भारत मां की है न! उसको हम नग्न कैसे होने देंगे? सपूत के नाते हम भारत मां की साड़ी किसी भी कीमत पर नहीं उघड़ने देंगे। यही हमारा राष्ट्रधर्म है। इसका पालन करने हेतु नई पीढ़ी को साफ-साफ बताना-समझाना होगा, कि 'सिख' 'हिन्दू' से अलग नहीं; उसी का अंग है। अर्थात् 'कल के राष्ट्र निर्माताओं' को राष्ट्र की सच्ची अस्मिता का साक्षात्कार कराना होगा–तभी इस राष्ट्र की एकता-अखण्डता सुरक्षित रखी जा सकेगी।

विविध मनोहारी भावभंगिमाओं से जटित और सुमन-सी झरती प्राञ्जल शब्दावली से छलकते डॉ 'सुमन' के साथ सम्पन्न साक्षात्कार इस प्रकार है :

डॉ० 'सुमन' : अपनी अस्मिता जगाएँ

बोध कराना होगा

राष्ट्रधर्म-कई दशक पूर्व आपने बड़ा प्रसिद्ध गीत लिखा था–'पथ भूल न जाना पथिक कहीं'। चेतावनी भरे उस आह्वान का भावी पीढ़ी के पथिकों पर क्या कोई परिणाम हुआ है ?

डा०'सुमन'-हमको तो यही लगता है, कि आज भी पथिक पथ भूला हुआ है, उसको पथ मिला नहीं है। जिस पथ के लिए हमने संघर्ष किया, त्याग किया, तपस्या की, उत्सर्ग किया–कुछ तो पथ प्रशस्त होना चाहिए था। अभी तो हमारी कल्पना का रास्ता कहीं दिखाई नहीं देता। इसलिए हमको अपनी कविता पर उज़ू होता है, क्योंकि स्वयं उस कविता पर नहीं चल पाए और जिनके लिए लिखी थी, वे भी नहीं। मालूम पड़ता है कि वह हवा में उड़कर रह गई। कविता का प्रभाव पड़ना चाहिए, जन-जीवन को स्पर्श करना चाहिए–वह नहीं हुआ।

राष्ट्रधर्म-इस विपथगामिता का कारण स्वातन्त्र्य-पूर्व व पश्चात् की पीढ़ियों की मानसिकता में अन्तर है या कुछ और ?

डा०'सुमन'-स्वातन्त्र्य-पूर्व की पीढ़ी के

सामने तो स्वातन्त्र्य का उद्देश्य था। इसी में ज्यादा शान समझते थे कि मौका आएगा, तो दो दिन भूखे रह लेंगे--चने खाकर जाएँगे गांव-गांव। उस कष्ट में अपने आपको सुख मिलता था। अब उसके सामने है, कुर्सी मिल जाय, पद मिल जाय--युवा के लिए यह बड़ी खतरनाक स्थिति है। युवा के सामने ऐसी चीज होनी चाहिए, जिसके लिए अपने आपको बलिदान करने का उत्साह हो।

भगतसिंह को ऐसी शहादत सवार हो गई थी। उन्होंने शिववर्मा से कहा था कि सुनते हैं कि गांधीजी ने कहा है कि मुझे फांसी न हो। अगर मुझे फांसी न हुई, तो मैं तो इन्सान हूं-कल मेरी कमजोरियां दिखने लगेंगी। आज तो मां के लिए अगर लुट गया, तो हजारों युवकों को प्रेरणा मिलेगी। देखिए न भगतसिंह का पत्र कितना प्रेरणादायक है! (पढ़कर सुनाते हैं)--

'मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्कलाब का निशान बन चुका है और इन्कलाब-पसन्द पार्टी के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊँचा कर दिया है--इतना ऊँचा कि जिन्दा रहने की सूरत में इससे ऊँचा मैं हरगिज नहीं हो पाऊँगा। आज मेरी कमजोरियां लोगों के सामने नहीं हैं, अगर मैं फांसी से बच गया, तो वे जाहिर हो जाएँगी और इन्कलाब का प्रतीक मद्धिम पड़ जाएगा, या शायद मिट ही जाएगा। लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हंसते-हंसते फांसी पाने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएं अपने बच्चों को भगतसिंह बनाने की आरजू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए बलि होने वालों की तादात इतनी बढ़ जाएगी, कि इन्कलाब को रोकना साम्राज्यवाद की तमाम दर-शैतानी कूबतों की बात न होगी।'

यह भावना स्वतन्त्रता-पूर्व के युवकों में हुआ करती थी। बाद के युवकों में अपनी कुर्बानी देकर कुछ गढ़ने का, निर्माण करने का वह उत्साह नहीं रहा--बलिदान याने जान देकर नहीं, अपितु परिश्रम, त्याग, तपस्या करके। ये सब बातें हमरे सामने से गायब हो गई हैं।

राष्ट्रधर्म-तब फिर प्रेरणा के लिए युवक किसकी ओर निहारें?

डा० 'सुमन'-नवयुवक को अपनी ओर निहारना चाहिए। कुछ वर्ष पूर्व श्रीमती महादेवी वर्मा ने उज्जैन के विक्रम विश्व विद्यालय में जो दीक्षांत भाषण दिया था--वह याद आ रहा है। उन्होंने सब विषयों पर, सब वर्गों पर कुछ न कुछ कहा, जो मननीय है। राष्ट्रभाषा के लिए उन्होंने कहा था 'राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रश्न सांस्कृतिक ही नहीं, संवैधानिक भी है। एक बार मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा करने देने के पश्चात् मूर्ति को खण्डित कर देना, समस्त राष्ट्र की आस्था को खण्डित कर देना है।' सारे विद्यार्थी साहित्य के नहीं थे, पर क्या तपस्या बोलती है कि लोग 'ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा'

डेढ़ घण्टे तक सुनते रहे। राष्ट्रीय-एकता का दिग्दर्शन कैसे कराया है, देखिए:-

'माला में चाहे फूल गूंथा जाए, चाहे मोती-दोनों का आधार सूत्र ही रहता है। उसके टूट जाने पर बहुमूल्य और सुन्दर सब धूल में मिल जाता है।'

वहीं उन्होंने प्रेरणा के बारे में भी कहा--सबको साफ-साफ सुनाई। अब स्वतन्त्रता-संग्राम-सेनानी भी सुविधा की ओर दौड़ेंगे!

'बन्दीगृह से मुक्त हो जाने पर बहुत दिनों तक पैरों में बेड़ियों के निशान तो नहीं मिट पाते। पुरानी पीढ़ी ने वे निशान दिखला-दिखलाकर अपने त्याग और तपस्या का मूल्य वसूल करना चाहा, नयी पीढ़ी ने पहले उसे जिज्ञासा से देखा, फिर कौतूहल से देखा और फिर विद्रोह कर दिया।'

यह है असली चीज। अब प्रेरणा किससे ले युवक? बौद्ध भिक्षुओं का सिद्धान्त है कि पुराने कपड़े को थेंगली लगाकर 'चीवर' पहनो। वैसा तो अब रहा नहीं। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जैसे व्यक्ति भी नहीं रहे। इसलिए या तो युवक स्वयं सामने आकर अपना उत्तरदायित्व ग्रहण करे या फिर जिन्हें पहले आदर्श मानते थे उन्हें देखें। वैसे 'वीर विहीन मही' नहीं है--महादेवी जैसा एकाध नाम तो मिल ही जाएगा। लेकिन ताइम ऐसे लोग खोजना मुश्किल हो जाएगा।

राष्ट्रधर्म-ऐसा पाथेय आज का साहित्य किस सीमा तक दे पा रहा है?

डा० 'सुमन'-असल में साहित्य भी भ्रमित हो गया--कुछ तो स्वयं के कारण और कुछ वातावरण के कारण। वातावरण का तात्पर्य यह कि इतनी जल्दी तीन युग आए कि आज तक कभी नहीं आए। पहले जो काम १० साल में होता था, वह अब एक साल में हो रहा है। संसार की गति बड़ी तेजी से बढ़ गई है। हम न जाने कितने साल बाद हवाई जहाज में बैठे--पर हमारा लड़का, नाती तो अभी से बैठने लगा--उसके बारे में सब जानने लगा।

विश्व-युद्ध खत्म होते ही 'अणु युग' आ गया। पदार्थ के सबसे छोटे कण को अगर तोड़ लिया जाय, तो उसमें इतनी शक्ति निहित है कि एक अणुबम की मारक-क्षमता हजार हवाई जहाजों की बमबारी से अधिक होगी। साधारण

सबसे छोटा तार

संसार में सबसे छोटा तार फ्रांस के विख्यात लेखक विक्टर ह्यूगो ने अपने प्रकाशक को दिया था। उत्तर में उतना ही छोटा तार प्रकाशक ने उन्हें भेजा था।

अपने उपन्यास 'ला मिजरेबल' के बारे में यह जानने के लिए कि वह कैसे बिक रहा है, ह्यूगो ने तार में लिखा था--'?'

प्रकाशक ने उत्तर दिया था--'!'

बम से तो केवल आदमी मरेंगे, लेकिन अणुबम से तो कीड़े-मकोड़े वनस्पति सब। वायु प्रदूषित हो जाएगी; पानी विषैला हो जाएगा।

अणु-युग की बहस पूरी होते-२ नाभिकीय युग (न्यूक्लियर एज) आ गया। कितना बड़ा परिवर्तन विज्ञान का हुआ है! जिस दिन आइंस्टीन ने यह सिद्धान्त सामने रखा कि मैटर (पदार्थ) इनर्जी (ऊर्जा) बनाया जा सकता है, तो गजब हो गया!

जब तक हम सोचें कि नाभिकीय युग क्या होता है, तब तक तीसरा युग–स्पेस (अन्तरिक्ष) युग आ गया। जलप्लावन के बाद मनुष्य का सदेह चांद पर उतर जाना, विश्व की सबसे बड़ी उपलब्धि है! इसने हमारी पुराण, बाइबिल, गीता, कुरान सब खत्म कर दिए। मुसलमान कहता है अरे! अरे! इंसान कैसे नापाक कदम चांद पर रखेगा–वह कोई दूसरा चांद होगा। काशी के पण्डित भी बोले कि यह कोई नकली चन्द्रमा होगा। और अब तो उसके भी आगे वहां स्टेशन कायम हो रहे हैं।

कितनी तेजी से परिवर्तन हुआ यह सब! इसके साथ हमारी मानसिकता तो बढ़ नहीं पाई। पुराने अन्धविश्वास, पुराने चिन्तन का थक्का, मानसिक काई –इसे तोड़ने वाला कोई शंकराचार्य या बुद्ध आया? या कबीर जैसा कोई आकर कहे–'जो कबिरा काशी मरै, तो रामहि कौन हवाल'–तब कोई नहीं बोलेगा।

मानसिकता बदली नहीं और साहित्य पड़ गया सस्तेपन में–यौन साहित्य, लैंगिकता। विश्व में औरत-मर्द के सिवाय साहित्य को कुछ दिख ही नहीं रहा। गंगा-यमुना नहीं दिख रहीं। इस राष्ट्र में साहित्य को 'राष्ट्र' कहीं दिख ही नहीं रहा! आपने अपनी पत्रिका का नाम अच्छा 'राष्ट्रधर्म' रखा। अच्छी से अच्छी मैगजीन में भी राष्ट्र नहीं दिखता। यह कैसी स्थिति है! एक और खतरा आ गया है–धर्म को राजनीति से जोड़ने का। नवयुवक को यह सब बताने की जरूरत है कि यह कल्पना सपने में भी नहीं की जा सकती कि 'सिख' 'हिन्दू' नहीं है। बौद्ध, जैन, सिख–यह लाइन ही गलत है–बिल्कुल गलत। रवीन्द्रनाथ लिख गए–हिन्दू, बौद्ध, सिख, जैन, पारसी, मुसलमान, क्रिस्तानी–बिल्कुल गलत है।

यह क्यों आता है कि ये बौद्ध हैं जैन हैं? जैसे हिन्दू धर्म में ही शैव, वैष्णव, शाक्त हैं, ऐसे ही बौद्ध, जैन व सिख हैं–ये एक ही वस्तु के अंग हैं। अब तो कहते हैं कि बौद्ध माने हिन्दू है ही नहीं। कायदे से तो हिन्दुस्थान में जो भी रहे–मुसलमान, क्रिस्तान–सबको अपने को हिन्दू कहना चाहिए। शर्म क्यों आती है हिन्दू कहने में। 'हिन्दू' साम्प्रदायिकता का नहीं, राष्ट्रीयता का

धक है। हिन्द का रहने वाला सब
न्दू। हम कोई जाति नहीं बदलते हैं
मुसलमान न रहो—पर हो तो तुम
न्दू।

नई पीढ़ी को बताने की जरूरत है
क ये जो भेद किए गए हैं, ये पंथ है—
लग-२ चिन्तन की राहें हैं, जिसमें
लग-२ साधना करने का सबको अधि-
ार है। विवेकानन्द ने शिकागो में

पर हैं। पानी टेढ़ा-मेढ़ा कैसे भी बहे, अन्त में जाकर समुद्र में ही गिरेगा।

अर्थात् यह समझाना चाहिए कि ये पंथ हैं—अलग-२ धर्म नहीं। और यह बात समझाने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। हां, हमें किसी को साम्प्रदायिक नहीं बनाना है। दूरी नहीं बढ़ाना चाहिए। हमारा काम मिलाना है। जो दो को मिलाता है वह बड़ा, जो दो में

बंदीगृह से मुक्त हो जाने पर बहुत दिनों तक पैरों से बेड़ियों के निशान तो नहीं मिट पाते। पुरानी पीढ़ी ने निशान दिखला-दिखला कर अपने त्याग और तपस्या का मूल्य वसूल करना चाहा। नयी पीढ़ी ने पहले उसे जिज्ञासा से देखा, फिर कोतूहल से देखा और फिर विद्रोह कर दिया।

हिम्न स्तोत्र' को उद्धृत करते हुए
हा था :—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपति-
मतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः
पथ्यमिति च
रुचीनां वैचित्र्या ऋजकुटिल
नानापथ जुषाम्
नृणामेकोऽगम्यस्त्वमसि पयसा-
मर्णव इव

हमारे यहां क्या है? कोई त्रयी
ीनों वेदों) को मानता है, कोई नास्तिक
ख्य को, कोई योगमत, पाशुपतिमत,
णव आदि को। प्रस्थान अलग-२ हैं,
अन्त में सब पहुंचते एक ही जगह

भेदभाव कराता है, वह छोटा। धर्म के नाम पर 'खालिस्तान' की मांगने से तो हमारा धर्मनिरपेक्षता का सपना ही खतम कर दिया (जिसके लिए हमें बहुत गालियां खानी पड़ीं) धर्म का अर्थ होता है—जो हमें धारण करता है। चाहे हमारे अस्तित्व को, चाहे संस्कृति को। भगवान बुद्ध ने बहुत अच्छा समझाया है। अगर जीवन में लम्बी मंजिल तय करनी है, तो हल्के होकर चलो। धर्म बेड़े की तरह से है, जो नदी पार करने के लिए है, सिर पर लादकर चलने के लिए नहीं।

जहां पर धर्म-संकट आए, अपने धर्मग्रन्थ खोलो, मार्गदर्शन प्राप्त करो

और फिर अपने कर्म में जुट जाओ। धर्म-संकट माने जहां कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, और उचित-अनुचित का भेद समझ में न आए। 'गीता' वाला कर्म क्या, अकर्म क्या, विकर्म क्या यह निश्चित करने के लिए अपना धर्म टटोलो। क्या आप चौबीसों घण्टे हिन्दू और मुसलमान बने रहेंगे ?

तो, एक ओर तो ऐसा तकनीकी युग है, जब मनुष्य अपने पौरुष से चांद पर नई बस्तियां बनाने की बात कर रहा है। दूसरी ओर धर्म का संकट है। इस कठिन काल में कोई ऐसा हिन्दू मिशनरी आए, जो इस राष्ट्र को दोनों की अति से बचाए।

रामसीय पद अंक पराये
लखन चलहिं मग दाहिन बाएँ

युवक संकीर्णता व धर्मांधता से बचे; किन्तु नजर यहां रहे कि इस राष्ट्र को बिखरने नहीं देना है, खण्ड-खण्ड नहीं होने देना है। राष्ट्र माने विश्व। याने अगर राष्ट्र को बचा लेंगे, तो विश्व भी बच जाएगा।

अच्छी से अच्छी चीज का प्रयोग भी पलट-क्रिया तो करता ही है। गांधीजी का सत्याग्रह, जो विदेशियों की खिलाफत के लिए ईजाद हुआ, आज का विद्यार्थी अपने कुलपति के घेराव में प्रयोग करता है। आज के नवयुवक को बताने की जरूरत है कि देश को एक साथ लेकर कैसे चलना है, धर्म का रूप क्या है ? हम चीजों का सकारात्मक पक्ष देखते हैं।

हम चाहते हैं कि आज के युव को अपना राष्ट्र बहुत साफ-सा दिखना चाहिए। लेकिन अपने सीमित; छोटा बनाकर नहीं, तो विराट् बनाकर।

राष्ट्रधर्म–अन्तर-राष्ट्रीय युवा में राष्ट्रीय अस्मिता के सही साक्षात्क के लिए राष्ट्र, युवा, समाज व साहि कारों की क्या भूमिका होनी चाहिए।

डॉ० 'सुमन'–पहला काम तो य है कि राष्ट्र से परिचित कराना चाहि कि राष्ट्र की संस्कृति क्या है ? लचील पन और व्यापकता चाहिए। संस्कृ से भाषा जुड़ी रहती है। वह ए संस्कार हमारे मन में बनाती है नेशनल के नाम पर नए विद्यार्थी भावना को संकुचित नहीं होने दे चाहिए। किसी को केवल एक जा या सम्प्रदाय का बताना बहुत ब खतरा है। वह अपने विचार से–'वसु धैव कुटुम्बकम्' को ओझल कर देता है वह कोरा नारा रह जाता है। वैसे मै उर्दू का हिमायती हूं, लेकिन प्रतिक्रिया तब होती है, जब सुनते हैं कि उर्दू के इतने तत्सम शब्द बोले जाते हैं कि समझ में ही नहीं आते। अब किसी ने कहा कि ऐसा कर दो कि व हिन्दी को शैली भी नहीं कहलाये। तो क्या आप उसका व्याकरण बदल देंगे ? किताब का बहुवचन 'किताबें' कहने में शर्म लगती है–'किताबात' कहते हैं। तो

जितनी कोई चीज संकुचित होगी, उसमें उतना खतरा है। जितनी फैलेगी; हितकर होगी।

युवा का दृष्टिपथ विस्तृत कीजिए। उसे राष्ट्रीयता का अर्थ समझाइए; वह भूल गया है—पर अन्तरराष्ट्रीयता की कीमत पर नहीं। वह संकुचित होकर कुँए का पानी न बन जाए। कबीर ने कहा था—संस्कीरत है कूपजल, भाषा बहता नीर। यह संस्कृत को गाली नहीं थी, फकीर ने अपने ढंग से बात कही थी। जो कोई लेख लिखे; इतना सोचे कि अपने लेख से किसी में घृणा न फैलने दे। क्योंकि 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना'। तो इतनी मारकाट मजहब के नाम पर क्यों हुई थी? अन्धयुग में तो माफ था, लेकिन साइंस के युग में यह सब! लखनऊ में हिन्दू-मुसलमान नहीं; शिया-सुन्नी लड़ेंगे? भारतदेशम् के स्थान पर तेलुगूदेशम्'? यह क्या है भाई? चुनाव जीतने के लिए यह प्यारा नारा हो सकता है, पर नयी पीढ़ी के दिमाग में तो आप जहर डाल रहे हैं।

गांधीजी ने कहा था—वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे। बाप रे! हम तो स्तम्भित हो गए। हम तो वैष्णव जन समझते थे कि रामानन्दी या रामानुज सम्प्रदाय का है। इसके यहाँ चक्र लगता है, इसका ऐसा तिलक वगैरह-२। अगर वैष्णव जन की परिभाषा यह है; तो फिर तो मुसलमान; यहूदी, ईसाई सब वैष्णव हो सकते हैं! यह तो संत ही कह सकता है भइया! पंथ, सम्प्रदाय वाला नहीं कह सकता। नवयुवक को इस पक्ष से भी थोड़ा परिचित कराना होगा।

हमारा राष्ट्र बड़ी तपस्या का राष्ट्र है; मिटेगा तो नहीं। लेकिन इसी कारण हम उस के प्रति खतरों से आंख मूंद लें, यह भी गलत है। हजार साल गुलामी भुगत चुके हैं। अब दोबारा यह गल्ती नहीं करेंगे। प्रमाद की माफी कहीं नहीं है। नवयुवक यह प्रमाद करेगा, तब तो वह भाग्यवादी बन जाएगा! उसे भाग्यवाद, अन्धविश्वास पर प्रहार सिखाएँ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कितने पहले कह गए, अरे भाई छोड़ दो लड़के-लड़कियों की कुण्डली मिलाना। अन्तरजातीय विवाह करो, विधवा विवाह करो। उन्हें राष्ट्र दिख रहा था न! १० साल की लड़की विधवा हो गई, तो क्या पाप किया उसने? इसी प्रकार विदेशों से लौटे व्यक्तियों को क्रिश्टान माने जाने का भी उन्होंने विरोध किया। हटाओ यह सब अन्धकार। यह दृष्टि युवक को मिलनी चाहिए। अन्यथा इतने पोंगापंथी भरे हैं कि समाज को फिर डुबा देंगे।

इकबाल कश्मीरी ब्राह्मण थे—एक पीढ़ी पहले तक। ये सब हिन्दू बनने को तैयार हो गए थे। महाराजा कश्मीर ने पण्डितों को सभा में बुलाकर कहा—निर्णय दीजिए। पण्डित बोले—नहीं

अब जो हो गए, हो गए। अब हम क्या कर सकते हैं?—तो दादा धर्माधिकारी ठीक ही कहते हैं—हिन्दू धर्म की विशेषता यही है कि इसमें बाहर जाने के रास्ते हैं, लौटकर आने का रास्ता बन्द कर दिया गया है। हमने बड़ी मेहनत से खून पसीना देकर हिन्दुस्थान बनाया है, इसे मिटने नहीं देंगे। लेकिन वे सपने पूरे नहीं हुए (पथ भूल न जाना···)

राष्ट्रधर्म—लेकिन, निराशा का तो कोई कारण नहीं?

डा० 'सुमन'—निराश तो मैं होता ही नहीं। मैं तो मानता हूं कि धुआं, गर्द, अस्तव्यस्ता, आंधी, तूफान के भीतर से कुछ मंगलमय, कुछ ज्योतिर्मय ले रहा है। हम तो शिव के भक्त मेरा नाम तो 'शिवमंगल' है ही। में से जो जीवन के तत्व निकालता जो गरल पीकर बाकी को अमृत बां है, हम तो वह हैं। अगर देश गरल को तैयार नहीं है, तो अमृत बांट नहीं सकता।

अतः मेहरबानी करके नवयुवक अन्धविश्वासों की ओर मत ले जाओ उसको चुनौतियों का सामना करने एक बार असफल होने दो—इस असफलता से ही सफलता का पथ प्रशस्त होगा।०

('सुमन'जी की कविताएँ पृष्ठ ८१पर)

।। श्रीशः ।।

देववाणी संस्कृत सीखने तथा अभ्यास बढ़ाने को भारती के ग्राहक बने।

भारती' संस्कृति मासिक पत्रिका'

देश में एकमेव सर्वाधिक संख्या में प्रकाशित संस्कृत की मासिक पत्रिका 'भारती' की विशेषताएं:—

१. सरल संस्कृत में विगत ३५ वर्षों से नियमित प्रकाशन।
२. विद्वानों के जनोपयोगी सारगर्भित लेख।
३. अन्तिम पृष्ठों में बालोपयोगी लेख सामग्री (हिन्दी अनुवाद सहित)
४. मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक लेख सामग्री का प्रकाशन।
५. आयुर्वेद स्तम्भ, विश्ववार्ता-नारी स्तम्भ-सूक्तिसुधा-तथा लघु कथा (सचित्र) व्याकरण स्तम्भ का नियमित प्रकाशन।

संकेतः—केवल २०/- रुपये निम्न पते पर वार्षिक शुल्क धनादेश द्वारा भेजकर 'भारती' पत्रिका के ग्राहक बने।

पताः—व्यवस्थापक, भारती पत्रिका, भारती-भवन

बी-१५, न्यू कालोनी जयपुर-३०२००१

प्रतिरक्षा—चुनौतियाँ व युवा

● डा० परशुराम गुप्त

युवा पीढ़ी एक आशा, एक विश्वास, एक आधार व एक मंजूषा [जिसके अन्दर राष्ट्र के भविष्य का इतिहास बन्द है] के रूप में जहाँ बासन्ती बयार की भांति जन-मानस में एक अटूट आस्था का संचार करती है, वहीं उसकी पलायनवादिता, अनुशासन-हीनता एवं दिशा-हीनता व्यक्ति को सोच की कटीली झाड़ियों के झुरमुट में भी उलझा देती है । आइये ! हम बासन्ती-बयार की सुखद अनुभूति और कटीली चुभन के बीच यह परीक्षण करें कि क्या वर्तमान युवा पीढ़ी प्रतिरक्षा की चुनौतियां स्वीकार करने में सक्षम है ?

प्रतिरक्षा की चर्चा होते ही मस्तिष्क में एक मूर्ति कौंध उठती है—उत्साह से भरपूर एवं धरतीमां के लिए बलिदान देने को प्रस्तुत एक जीवन्त सैनिक की; जिसके जीवन का एक-एक पल अनुशासन की डोर से बंधा होता है । वर्तमान युवा पीढ़ी में यही अनुशासन एवं सैनिकोचित गुण विकसित करने का प्रयास 'राष्ट्रीय कैडेट कोर (एन०सी० सी०) जैसे संगठन के माध्यम से किया जा रहा है, जिसका आदर्श वाक्य है—'एकता और अनुशासन' तथा उद्देश्य है:-

(१) युवक और युवतियों में नेतृत्व, चरित्र, भातृत्व, खेल-भावना तथा सेवा से आदर्शों का विकास करना ।

(२) एक अनुशासित जन शक्ति का निर्माण करना, जो आपात्काल के समय देश की सहायता कर सके तथा

(३) विद्यार्थियों में अफसरोचित गुणों के विकास को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण देना तथा साथ ही उन्हें सशस्त्र सेनाओं में कमीशन प्राप्त करने योग्य बनाना ।

'राष्ट्रीय कैडेट कोर' देश का एक प्रमुख युवा संगठन है । दिल्ली-स्थित राष्ट्रीय कैडेट कोर महानिदेशालय देश भर में राष्ट्रीय कैडेट कोर के कार्यों के प्रति उत्तरदायी है । राज्य स्तर पर देश को १६ राष्ट्रीय कैडेट कोर निदेशालयों में विभाजित किया गया है । प्रत्येक निदेशालय के अधीन कई ग्रुप मुख्यालय हैं । इस समय देश में कुल ९१ मुख्यालय काम कर रहे हैं ।

प्रत्येक ग्रुप मुख्यालय की कमान में कम से कम एक विश्वविद्यालय और ६ से १० तक राष्ट्रीय कैडेट कोर इकाइयां

[यूनिटें] हैं। इस समय समस्त देश में कुल ७५६ राष्ट्रीय कैडेट कोर यूनिट काम कर रही हैं। प्रत्येक यूनिट कई शिक्षा संस्थाओं में राष्ट्रीय केडेट कोर का प्रशिक्षण देती हैं। आज देश के ११० विश्वविद्यालयों के अधीन ६०८५ विद्यालयों तथा ३७४३ महाविद्यालयों में एन०सी० सी० का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

'राष्ट्रीय केडेट कोर' को तीन डिवीजनों में बाटा गया है अर्थात् जूनियर डिवीजन, सीनियर डिवीजन और गर्ल्स डिवीजन। मोटे तौर पर स्कूलों में पढ़ रहे लड़के जूनियर डिवीजन और कालेजों में पढ़ रहे लड़के सीनियर डिवीजन में प्रवेश पाते हैं। गर्ल्स डिवीजन में स्कूल और कालेज जाने वाली बालिकायें क्रमशः जूनियर और सीनियर विंग में प्रवेश पाती हैं। बालकों की जूनियर और सीनियर डिवीजन तीन अंगों थल सेना, नौ सेना और वायुसेना में विभाजित की जाती है।

सीनियर डिवीजन की स्वीकृत संख्या लगभग चार लाख और जूनियर डिवीजन की स्वीकृत संख्या सात लाख कैडेट है। इस प्रकार देश में एक समय में कुल ११ लाख कैडेट कोर के माध्यम से सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त पैराशूट प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, पर्वतारोहण पाठ्यक्रम, जलक्रीड़ा और सम्बद्ध पाठ्यक्रम, नेतृत्व पाठ्यक्रम ट्रेकिंग (पदयात्रा अभियान) स्कूबा गोताखोरी, ग्लाइडिंग, आकाश विचरण हैंग ग्लाइडिंग आदि का भी गहन प्रशिक्षण कैडेट प्राप्त करते हैं।

राष्ट्रीय कैडेट कोर द्वारा चलाये गये समाजसेवा कार्यक्रमों के परिणाम संतोषजनक निकले है और उन्होंने समाज के गरीब और पिछड़े वर्ग के लोगों के सामाजिक उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान किया है। चालू प्रशिक्षण वर्ष के दौरान ६६ हजार ६ सौ ८४ कैडेटों लड़के तथा लड़किया दोनों, ने बड़े उत्साह से इन कार्यक्रमों में भाग लिया और ८ लाख ८० हजार ५ सौ ३५ घंटे समाजसेवा का काम किया, जिसमें वन रोपण, सामाजिक वन-विद्या, पर्यावरण और परिस्थितकी सुधार, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास परियोजनाओं में अनाथ मन्दबुद्धि बच्चों; वृद्ध और अपंग लोगों की सहायता, नेत्र शिविर; स्वास्थ्य शिविर, स्वास्थ्य सर्वेक्षण; यातायात-नियन्त्रण ड्यूटी में सहायता तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पर्क मार्गों की मरम्मत सम्मिलित है। १९८४-८५ में कैडेटों ने १३,२१७ रक्त की यूनिटें दान कीं।

राष्ट्रीय एकता शिविर

१९८३ में कनिष्ठ प्रभाग कैडेटों के लिए राष्ट्रीय एकता शिविर चलाने वाली अगली योजना प्रारम्भ की गयी। परियोजना का उद्देश्य एन०सी०सी० कैडेटों में और इनके माध्यम से पूरे देश में राष्ट्रीय एकता का विकास करना है। इस योजना के अधीन १६ एन०सी०

सी० निदेशालय एकता के प्रयोजन में लगे हुए हैं। एक राज्य (निदेशालय) के कैडेट १०–१२ दिन की अवधि के लिए मेजबान निदेशालय में जाते हैं। इसके उपरान्त मेजबान राज्य के कैडेट उनके यहां आने वालों के राज्यों में जाते हैं। इस प्रकार दो भिन्न राज्यों के कैडेट, जिनमें भाषा और रहन-सहन की भिन्नता है, एक दूसरे के रीति रिवाज परम्परा तथा वंशानुगत संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त करते है और इस प्रकार से राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करते हैं।

अंतर-राष्ट्रीय सूझबूझ, समाज-सेवा तथा उदारवादी दृष्टिकोण के एक भाग के रूप में एम०सी०सी० में युवा आदान-प्रदान कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। अब तक एन०सी०सी० का झंडा तीन देशों अर्थात् इंगलैण्ड, कनाडा और सिंगापुर में जा चुका है और २५ देशों के साथ नियमित युवा आदान-प्रदान कार्यक्रम चलाने के प्रयास विचाराधीन हैं। कनाडा विश्व युवा संगठन के कार्यक्रम ने १९८४-८५ में व्यापक रूप ले लिया है। कनाडा के ४० कैडेटों और इतने ही भारतीय कैडेटों ने पहले भारतवर्ष में साथ-साथ काम किया और इसके बाद ऐसी ही प्रक्रिया कनाडा में निभाई गई। १९८० से अब तक कनाडा विश्वयुवा कार्यक्रम के अंतर्गत १२९ भारतीय कैडेटों का आदान-प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में विद्यार्थियों तथा नवयुवकों का प्रमुख हाथ होता है तथा उन्हीं के कन्धों पर भावी राष्ट्रीय जीवन का भार भी होता है। आज देश के अन्दर जगह-जगह पर राष्ट्रीय अखण्डता को चुनौती देने वाली आत्मघाती प्रवृत्तियां सिर उठा रही है ऐसी नाजुक परिस्थिति में नवयुवकों की शक्ति को सर्जनात्मक दिशा देनेकीआवश्यकता है। इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि युवा-शक्ति राष्ट्र विरोधी तत्वों के हाथ का खिलौना न बनने पाये। इसके लिए उनके भीतर प्रबल राष्ट्र-भक्ति, राष्ट्रीय चरित्र, अटूट मनोबल तथा राष्ट्रीय हित के पोषण में अपना सर्वस्व समर्पण करने का भाव जगाया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए आत्मिक अनुशासन की आवश्यकता होगी, क्योंकि ऊपर से लादा गया अनुशासन कभी भी स्थायी नहीं हो सकता।

वास्तव में शत्रु का सशस्त्र प्रतिकार ही प्रतिरक्षा है, फिर चाहे वह आंतरिक शत्रु हो अथवा बाह्य शत्रु या बाढ़, तूफान, सूखा, महामारी जैसी दैवी आपदा। बाह्य शत्रु को मुंहतोड़ उत्तर देने के लिए जहां युवा शक्ति राष्ट्रीय कैडेट कोर जैसी द्वितीय रक्षा पंक्ति के माध्यम से तत्पर है, वहीं वह राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने, दैवी आपना का बहादुरी के साथ सामना करने, नागरिक सुरक्षा तथा सामाजिक सेवा के क्षेत्र में भी पीछे नहीं है। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' जैसे

सामाजिक एवं स्वयंसेवी संगठन भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

इतना कुछ होते हुए भी स्थिति पूर्ण सन्तोषजनक नहीं है। प्रतिरक्षा की दृष्टि से युवकों एवं युवतियों में जागरुकता पैदा करने के लिए एन०सी०सी० के अधिकाधिक विस्तार की आवश्यकता है। सरकार यदि अतिरिक्त व्यय भार वहन करने में अक्षम है, तो विद्यार्थियों के स्वयं गणवेश (यूनीफार्म) की व्यवस्था करने के लिए कहा जा सकता है। सैन्य प्रशिक्षण को एक विषय के रूप में सम्पूर्ण विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कार्यों में लगे युवाओं के सैन्य प्रशिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए। राष्ट्रीय कैडेट कोर' के विस्तार की धारा में अतिरिक्त खुली इकाइयों के निर्माण की व्यवस्था हैं। ऐसी व्यवस्था होने पर ही समाज की युवा पीढ़ी को स्वस्थ्य, अनुशासित, राष्ट्रीय चरित्र से युक्त और प्रतिरक्षा की चुनौतियों को स्वीकार करने की दृष्टि से समक्ष बनाया जा सकता है। तभी साकार होगी अधोलिखित यह कल्पना—

जिस देश के सैनिक घर-घर हों
जिसके वंशज बलिदानी हों।
वह देश स्वर्ग है, जिसे देख,
अरि के मस्तक झुक जाते हों

—प्रभारी सैन्य-विज्ञान विभाग
जवाहर लाल नेहरू स्मारक पो० ग्रेजुएट कालेज, महराजगंज; गोरखपुर

ग्राम : जगत
फोन निवास : ८३८६६
वार्षिकांक पर हमारी हार्दिक शुभ कामनायें ८२६६७
फैक्ट्री : ८२६८४

जे० के० जर्दा

जे० के० जाफरानी पत्ती नं० ३२, ८० एवं १५१
तथा
सात तारा जाफरानी पत्ती नम्बर ३२१
सदैव प्रयोग करें
जे० के० हिना दरबार अगरबत्ती
निर्माता:—जे० के० सुगन्धी वर्क्स
टिकैत राय तालाब रोड, लखनऊ

अनुरोध

● डॉ० शत्रुघ्न

ओ इतिहास पुरुष !
अपने पर बीते हुए
ग्रीष्म - पावस और शरत-शीत को
कैसे भूल जाते हो !
लगता है कि
सुदूर समन्दर की हवा लग गयी है
पिछले दरवाजे से घुसपैठ करती
किसी कनफुसकी की बात लग गयी है ।
ओ इतिहास-पुरुष !
राजनीति के पुरोहित के हाथ अपनी नीलामी मत कराओ
अलग पहचान के सुनहरे जाल में
पर-कटे पंछी-सा मत फड़फड़ाओ ।
पांच नदियों के दुलार में पली
अपनी माटी से पूछ लो
अमृत-सरोवर की तरंगों को सुनो
तुम्हारी छटपट जिज्ञासा को बनायेंगे वदिक युग के सप्तर्षि
योग परंपरा के नवनाथ
निर्गुण भक्ति के दशगुरु
इस धरती के मानक हैं
ओंकार अकालपुरुष के साधक हैं ।
तुम्हारी कसक - कथा को
वे संस्मरण कथा सुनायेंगे
पोर-पोर के दर्द को सहलायेंगे नामदेव, कबीर और नानकदेव के सबद
सूर, तुलसी और मीरा के पद एक ही आत्मा के स्वर हैं ।
सतलज, यमुना और गंगा की लहर-लहर में
एक ही हृदय के सुमन हैं ।
गुरु, गुरुपुत्रों औ भगत सिंह के बलिदान एक ही वेदी के दीप हैं
गुरुवाणी और मानस की चौपाइयां अल्पना के मध्य खड़ी
अर्चना के मंगल क्वणन हैं ।
ओ इतिहास पुरुष !
इस सत्यं शिवम् को
संभाल कर रखा है,
प्रमाद में
खो नहीं देना ।

—सोहसराय [नालंदा]

आँसू में कलम डुबोय!

देश के प्रमुख राष्ट्रवादी व प्रथम स्थान की ओर अग्रसर श्रम संगठन 'भारतीय मजदूर संघ' के राष्ट्रीय महामन्त्री श्री रामनरेश सिंह ('बड़े भाई') के रूप में यहाँ के श्रम-आन्दोलन को अपनी धरती से उपजे जीवन-मूल्यों व आदर्शों के अनुरूप गढ़ने में पूरी एक चौथाई शताब्दी तक समर्पित भाव से खटने खपने वाला एक अखण्ड कर्मयोगी २ मई का सूरज देखने के पहले ही अपनी कर्मभूमि कानपुर में दुनियां को अलविदा कह गया। बज्रदेही व विशालकाय 'बड़े भाई' कर्क-रोग (कैंसर) के रूप में आए काल बली से कोई ६ माह तक ताल ठोंककर लड़ते रहे। किन्तु जग-रीति की मर्यादा-उल्लंघन का अपयश न लग जाए, इसलिए यशःकाया में प्रविष्ट हो, अनंत-पथ के राही बन गए।

उनके महा प्रयाण से प्रगति मंदिर के कलश की ओर डग भरते 'भारतीय मजदूर संघ' का नायक तथा सम्पूर्ण श्रम जगत का एक पुरोधा तो छिना ही है; देश के हजारों-लाखों व्यक्ति भी अपने 'बड़े भाई' से वंचित हो गए हैं। वस्तुतः उनकी यह 'बड़े भाई' की छबि ही है, जो सुधियों के आंगन में बार-बार उतर कर सावन-भादों की झड़ी लगा रही है। चमकते जामुनी रंग वाले मृदु, सरल व दीर्घकाय 'बड़े भाई' जब किसी की मीठी चुटकी लेते या ठठाकर हंसते, तो चारों ओर जीवंतता के मोती बिखर जाते और रुदन भी किलकारियां भरने को मचल पड़ता। उनके सखा-सहयोगी ठीक ही कहते थे कि 'बड़े भाई' के हृदय की सम्पूर्ण कालिमा निकलकर बाहर आ गई है (और उनका हृदय निष्कलुष हो गया है)। इन पंक्तियों के अंकन का प्रयास भी कलम को आँसुओं में डुबोकर लिखने जैसा ही है। हो भी क्यों न! लेखक के सामाजिक दीक्षाशिशु ने अपनी कुलाचें कोई पचीस वर्ष पूर्व 'बड़ेभाई' की ममता की गोदी में ही तो भरी थीं। और उनकी कुंभकारी हथेलियों ने चोट और ओट के न जाने कितने लंबे क्रम के

बाद 'कच्ची माटी' को एक 'पात्र' का आकार दिया था। एक प्रकार से अपने 'विधाता' के विसर्जन के साक्षी होने की विडम्बना है यह।

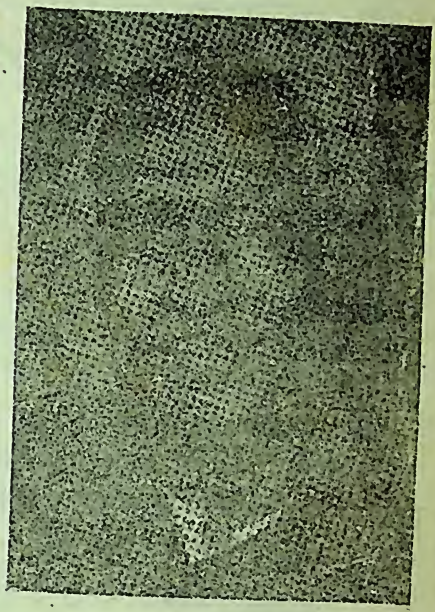

एड़ी-दर्द के बहाने शरीर में प्रविष्ट बीमारी ब्रेन कैंसर के रूप में फूट निकली। बम्बई में शल्य-क्रिया की सफलता और पश्चात् पुणे में स्वास्थ्य लाभ के राहतदायी समाचार अल्पकालीन सिद्ध हुए। हालत बिगड़ी और दिल्ली-पुणे-बम्बई का एक और चक्कर पूरा कर कर्म-स्थली कानपुर में ही लाना उचित समझा गया। प्रसिद्ध लाला लाजपत राय (हैलट) अस्पताल का 'निगम वार्ड' तीर्थ-स्थल सा बन गया था। रात-दिन लोगों का तांता। चिकित्सालय कर्मचारियों ने ऐसा हर-दिल-अजीज इंसान अपनी याद में कभी नहीं देखा।

अप्रैल के पूर्वोत्तरार्द्ध में उनकी चेतना-शून्यता का समाचार मिलते ही कानपुर पहुंचा। मेरा सौभाग्य रहा कि चन्द मिनट ही क्यों न सही, उनसे बात कर सका। कमरे में घुसते ही मेरे द्वारा हाथ जोड़कर नमस्कार के उत्तर में मद्धिम किन्तु एक-एक अक्षर पर जोर देते हुए सदैव का सहज स्वाभाविक 'नमस्कार' फिर अपनेपन की दुनियाँ से दूर कहीं शून्य में अपलक दृष्टि। 'पहचाना नहीं बड़े भाई'?

'किसे नहीं पहचाना?'

'मुझे और किसे?'

'इतने अल्प समय में न पहचानने का क्या कारण हो सकता है?'

मेरी नादानी पर व्यंग्य सा करता यह उत्तर बहुत गहरे छू गया। अब धरती कुरेदने व शून्य में निहारने की बारी मेरी थी। उनकी आँखों में डबडबाहट

के चिन्ह और शुश्रूषा में लगे लोगों का संकेत पाकर मेरा मौन ; मर्माहत निष्क्रमण। कमरे के बाहर निकलते ही उनके आयुष्य में विश्वास को जड़ से हिलाता–झकझोरता एक भारी निःश्वास। अनिष्ट की आशंका से लड़खड़ाते कदम - - - - ।

मीरजापुर जिले की चुनार तहसील के अन्तर्गत बगहीं गाँव के सामान्य किसान के बेटे के रूप में जन्मे रामनरेश हाई स्कूल की शिक्षा के बाद तहसील में एक वितान्त ईमानदार अर्जी–नवीस के रू में १९४४ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आते हैं। लंबे शरीर; अनुभवी व्यवहार तथा स्नेहिल स्वभाव के कारण मित्र मण्डली उन्हें 'बड़े भाई' कहना प्रारंभ करती है और फिर तीन भाइयों में सबसे छोटे रामनरेश सिंह देश भर में 'बड़े भाई' के रूप में ही प्रसिद्ध होते है।

स्वातंत्र्य-पूर्व व पश्चात् की दहशत-भरी चुनौतियों को स्वीकार कर 'बड़े भाई' अपनी नौकरी व घरबार छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से निःस्वार्थ समाजसेवा के प्रति समर्पित होते हैं। फिर तहसील प्रचारक, जिला प्रचारक व प्रांतीय भण्डार विभाग की जिम्मेवारी निभाने के बाद १९६० में 'भारतीय मजदूर संघ' उत्तर प्रदेश के महामन्त्री बनाए जाते हैं। 'शून्य से ब्रह्माण्ड' खड़ा करने की कहावत चरितार्थ करते हुए प्रदेश में मजदूर संघ की धाक जमाते हैं। बाद में उनकी कर्मठता, कुशलता व योग्यता से बिहार भी लाभान्वित होता है। इसी बीच दो बार उत्तर प्रदेश विधान परिषद के लिए निर्वाचित होकर सदन में अपनी अप्रतिम छाप छोड़ते हैं। आपात्काल के दौरान संस्थापक महामन्त्री श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी के भूमिगत आन्दोलन में व्यस्त हो जाने के बाद राष्ट्रीय महामन्त्री का गुरुतम दायित्व वहन करते हैं और श्रमिक आंदोलन के वामपंथी दिग्गजों को पछाड़कर 'भारतीय मजदूर संघ' को उत्तर प्रदेश में प्रथम तथा राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय स्थान दिलाते हैं।

यह प्रगति यात्रा जारी रखते हुए वे 'भारतीय मजदूर संघ' की पताका सबसे ऊंची फहरा पाते, इसके पहले ही क्रूर नियति ने उस बेजोड़ शिल्पी की जीवन-यवनिका का पटाक्षेप कर दिया और मजदूर संघ के प्रभा-मण्डल का एक अन्यतम द्युतिमान वलय खण्डित होकर बिखर गया। उन बिखरे कणों की आभा झोली में भरकर उनके अनुगामी व सहयात्री अपना दुर्गम पथ आलोकित कर सकें, जगन्नियंता से यही प्रार्थना करते हुए गतात्मा की पुनीत स्मृति में 'राष्ट्रधर्म' की प्रणति–श्रद्धाञ्जलि !

भावसिंह हिरवानी

कहानी

आँधी के बाद

बलजीत ने जब गजाधर के घर का दरवाजा खटखटाया, तो शाम हो गई थी और आसमान से अंधेरा धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा था। कर्फ्यू हटा लिया गया था, फिर भी सारा शहर आतंक के साये में लिपटा हुआ था। दहशत के कारण लोगों में घर से निकलने की हिम्मत न थी और बेहद जरूरतमंद लोग ही इक्का दुक्का सड़क पर चल रहे थे। दरवाजा खोला, तो उसे बलजीत को पहचानते देर नहीं लगी, पर उसका हुलिया देख आश्चर्य में डूब गया। लंबे केश गायब थे और मूंछ की जगह मैदान साफ था।

'मैं बलजीत हूं, अंकल, आप इस तरह हैरान क्यों है ?' उसने कहा और अधिकारपूर्वक भीतर आ गया। दरवाजा बन्द करके दोनों बैठक में आ गये। बलजीत ने आगे बढ़कर खिड़की खोल दी। सामने खंडहर-सा उजड़ा मकान अपनी तकदीर को रो रहा था। यह मकान बलजीत के पिता का है और --- 'बलजीत—भवन' के नाम से प्रसिद्ध है। तीन दिन पहले इस खूबसूरत भवन का कोना रोशनी से जगमगा रहा था और जिंदगी की मादकता रची—बसी थी; पर अब इसकी सुन्दरता को जैसे ग्रहण लग गया। प्रधानमंत्री की हत्या के प्रति शोध में नवम्बर में जन्मा उन्मादी झंझावात उग्रवादी सिखों के साथ-साथ अनेक निर्दोष राष्ट्रभक्त सिखों को भी उजाड़ता पछाड़ता चला गया। न जाने कितने लोग प्राणरक्षा के लिए अपने घर लौटने के बजाय घर छोड़कर भाग गये। लाखों की संपत्ति देखते ही देखते जलकर राख हो गई।

बलजीत खिड़की की सलाखों को पकड़े अपने उजड़े—वीरान भवन को एकटक निहार रहा था। घर से बेघर होने की त्रासदी कितनी हृदय विदारक हो सकती हैं, आज कोई बलजीत से पूछे। उसकी दशा उस पंछी की भांति हो रही थी, जिसका घोसला जलजला के सैलाब में अचानक बह गया और उस घोसले में आश्रित उसका परिवार, जिंदगी भर की कमाई, सब कुछ खत्म हो गया हो। उस भवन की दुर्दशा देख बलजीत का

गला भर आया और उसकी आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा। खिड़की की सलाखों को मजबूती से पकड़ते हुए लड़खड़ाती आवाज में वह बुदबुदा उठा; 'नहीं,... नहीं,... नहीं,... यह नहीं होना था।

शाम का अंधेरा क्रमशः घनीभूत होता जा रहा था। गजाधर ने उठकर रोशनी जला दी और इसके साथ ही पूरा कमरा बिजली के प्रकाश में नहा उठा। बलजीत उसी तरह सलाखों को पकड़े बोल उठा, 'नहीं, अंकल प्लीज रोशनी बुझा दीजिए अब तो जिंदगी में अंधकार ही अंधकार है कुछ देर इसी में रहने दीजिए।' उसकी आवाज में दुःख ही दुःख था। गजाधर ने उसके कंधे पर हाथ रख उसे धीरज बंधाते हुए कहा 'नहीं बलजीत! जो बीत गया उसे भूलने की कोशिश करो, उसे हम वापस नहीं ला सकते, परन्तु वर्तमान तो हमारे सामने है।' बलजीत बिफर पड़ा, 'कैसे भूल जाऊं अंकल, कैसे? मेरे मां–बाप; मेरा भाई, मेरा परिवार कहां है ? हमारी संपत्ति, हमारा घर, वह 'बलजीत भवन'; जिसमें हम लोग बड़े सुख चैन से रहते थे, वह कहां है ? यह सामने जो उजड़ा हुआ खंडहर दिखाई दे रहा है, यहीं पर तो 'बलजीत भवन' था न ?'

गजाधर ने उसे खिड़की से हटाते हुए कहा, 'बलजीत तुम बहुत थके हुए और परेशान लग रहे हो, जाओ हाथ मुंह धोकर आराम कर लो, फिर शांति पूर्वक विचार करेंगे'। 'गजाधर, बलजीत को बाथरूम जाते हुए देखता रहा। फिर दरवाजा बन्द होने, नल खुलने और टोंटी से पानी गिरने की आवाज आने लगी।

आज बलजीत के मन में बदले की भावना की अपेक्षा दुःख का परिमाण ज्यादा है। जब अपना घर, परिवार तबाह होता है, तब कितना दुःख होता है; लोग दूसरों का घर उजाड़ते समय यह क्यों नहीं सोच पाते ? जब 'स्वर्ण मंदिर' में सैनिकों ने प्रवेश किया था; तब बलजीत अपना संतुलन ही खो बैठा था और 'आपरेशन ब्लू स्टार' के पश्चात तो वह जैसे पागल ही हो गया था। घटना ने उसे भीतर तक झकझोर कर रख दिया था। कहीं भी, कुछ भी कर गुजरने की सनक भूत की तरह उसके सिर पर सवार रहती थी। उसके दिलो दिमाग पर चौबीसों घंटे उन्माद का एक जुनून तूफान की तरह घुमड़ता रहता। अत्यंत शांत और संयमी बलजीत इस तरह उखड़ जायेगा; अनुमान लगाना सहज नहीं है। 'धर्मांध' किसे कहते हैं, बलजीत उस वक्त इसका सटीक नमूना था।

बलजीत के मन-मस्तिष्क में यह बात कील की तरह धंस गई थी कि सैनिक प्रवेश से स्वर्ण मन्दिर अपवित्र हो गया है। वह यत्र तत्र हरदम कहता फिरता

(शेष पृष्ठ १३३ पर)

जवानी

● माखनलाल चतुर्वेदी

प्राण अन्तर में लिये, पागल जवानी !
कौन कहता है कि तू
विधवा हुई, खो आज पानी ?
चल रहीं घड़ियां, चले नभ के सितारे,
चल रहीं नदियां, चले हिम-खण्ड प्यारे;
चल रही है सांस, फिर तू ठहर जाये ?
दो सदी पीछे कि तेरी लहर जाये ?
पहन ले नर-मुंड-माला, उठ, स्वमुंड सुमेरु कर ले,
भूमि-सा तू पहन बाना आज धानी प्राण तेरे साथ हैं, उठरी जवानी !
द्वार बलि का खोल चल भूडोल कर दे
एक हिम-गिरि एक सिर का मोल कर दे,
मसल कर, अपने इरादों-सी, उठा कर,
दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दें ?
रक्त है ? या है नसो में क्षुद्र पानी !
जाँच कर, तू सीस दे-देकर जवानी ?
वह कली के गर्भ से फल-रूप में, अरमान आया!
देख तो मीठा इरादा, किस तरह सिर तान आया !
डालियों ने भूमि रुख लटका दिये फल, देख आली !
मस्तकों को दे रही संकेत कैसे, वृक्ष डाली !
फल दिये ? या सिर दिये ? तरु की कहानी-
गूंथकर युग में, बताती चल जवानी !
श्वान के सिर हो-चरण तो चाटता है !
भोंक ले-क्या सिंह को वह डांटता है ?

रोटियां खायी कि साहस खा चुका है,
प्राणि हो, पर प्राण से वह जा चुका है।
तुम न खेलो ग्राम-सिंहों में भवानी!
विश्व की अभिमान मस्तानी जवानी!
ये न मग है, तव चरण की रेखियां हैं,
बलि दिशा की अमर देखा-देखियां हैं।
विश्व पर; पद से लिखे कृति लेख हैं ये;
धरा तीर्थों की दिशा की मेख हैं ये!
प्राण-रेखा खींच दे, उठ बोल रानी,
री मरण के मोल की चढ़ती जवानी!

टूटता-जुड़ता समय—'भूगोल' आया,
गोद में मणियाँ समेट 'खगोल' आया;
क्या जले बारूद?—हिम के प्राण पाये!
क्या मिला? जो प्रलय के सपने न आये।
धरा;—यह तरबूज है, दो फाँक कर दे;
चढ़ा दे स्वातन्त्र्य-प्रभु पर अमर पानी!
विश्व माने—तू जवानी है, जवानी!
लाल चेहरा है नहीं—फिर लाल किसके?
लाल खून नहीं अरे कंकाल किसके?
प्रेरणा सोयी कि आटा-दाल किसके?
सिर न चढ़ पाया कि छापा-माल किसके?
वेद की वाणी कि हो आकाशवाणी;
धूल है जो जग नहीं पायी जवानी।
विश्व है असि का?—नहीं संकल्प का है;
हर प्रलय का कोण काया-कल्प का है;
फूल गिरते, शूल शिर ऊँचा लिये हैं;
रसों के अभिमान को नीरस किये हैं!
खून हो जाये न तेरा देख, पानी;
मरण का त्योहार, जीवन की जवानी।

('हिमकिरोटिनी' से)

राष्ट्रधर्म

संदेश स्वामी विवेकानन्द का

● ले०—चं० प० भिशीकर ● रूपान्तर : ओंकार भावे

कुछ दिन पूर्व सम्पन्न प्रवास में एक स्थान पर कुछ नवयुवक अपनी पुरानी पीढ़ी पर यह कठोर टीका टिप्पणी कर रहे थे कि मातृभूमि का विभाजन स्वीकार कर एवं इस खण्डित देश की शासनसत्ता को पूर्णतः भ्रष्ट कर पुरानी पीढ़ी ने देश को चौपट कर रखा है। उनका कहना था कि नई पीढ़ी जिनसे प्रेरणा प्राप्त करे; ऐसे आदर्श जीवन आज कहीं दिखाई ही नहीं देते।

इन आरोपों का पुरानी पीढ़ी की ओर से क्या उत्तर दिया जा सकता है? उनके आरोप के सत्यांश को हमें स्वीकारना ही होगा। परन्तु दूसरों पर आरोप करने मात्र से अपनी निष्क्रियता का बचाव सम्भव नहीं है। इस कारण इन नवयुवकों के सामने पुरानी पीढ़ी की वकालत करना भी मुझे उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा, 'हम यह मानकर चलें कि आप लोगों ने अभी जैसा आरोप लगाया, यह पाप पुरानी पीढ़ी से हुआ। आज चारो ओर कोई आदर्श जीवन नहीं दिखाई देते, यह बात भी ठीक है। पर इतना कहने मात्र से अपने देश के भविष्य का प्रश्न नहीं सुलझेगा। इतना ही नहीं; तो इस कारण नई पीढ़ी पर अधिक जिम्मेवारी आती है। क्योंकि उध्वस्त जीवन संवारने-सुधारने और सुखमय भविष्य निर्माण करने की चुनौती नई पीढ़ी के सामने मुंह बाये खड़ी है। आज अगर जीवन आदर्श नहीं दिखाई देते है, तो हमें ऐसे आदर्श इतिहास के पृष्ठ पलट कर खोजने होंगे। उनके प्रकाश में अपने जीवन को योग्य दिशा देनी होगी। क्या आप यह कह सकेंगे कि इतिहास के पृष्ठों में भी हमें ऐसे उदाहरण नहीं मिलते!'

तरुणों के स्फूर्तिदाता

तरुणों से उपर्युक्त प्रश्न करते समय मेरे सामने प्रधानतः तरुणों के स्फूर्तिदाता स्वामी विवेकानन्द की छवि थी। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में अपने देश के नवयुवकों में राष्ट्रीय स्वाभिमान की ज्योति प्रज्ज्वलित की। वे एक मानसिक क्रान्ति के दिव्यस्रोत थे? वे राजनीतिक नेता नहीं थे, परन्तु प्रखर राष्ट्रभक्ति का महामंत्र देने वाले एक महान द्रष्टा अथवा एक आधुनिक ऋषि अवश्य थे।

अपना सिर हथेली पर लेकर विदेशी साम्राज्य-सत्ता से जूझने के लिये सिद्ध सशस्त्र क्रान्तिकारियों के अड्डों पर भी स्वामी विवेकानन्द का चित्र और उनका प्रेरक साहित्य मिलता था। उनका स्फूर्तिदायी संदेश वीर युवकों के अन्तःकरण पर अंकित होता था।

'आगामी ५० वर्ष तक हम लोगों को 'स्वर्गादपि गरीयसी' अपनी मातृभूमि की ही आराधना करनी चाहिये। अगर हम और सब देवी-देवताओं को भूल भी जायें, तो भी कोई हानि नहीं। बाकी देवी-देवता इस समय निद्रावस्था में हैं। अब हमारे लिए एक ही देवता है, और वह याने हमारा—'राष्ट्र-देवता'! राष्ट्र का जो विराट् स्वरूप हमारे सामने प्रत्यक्ष है, उसकी उपासना न कर दूसरे निष्फल देवताओं को खोजने से क्या लाभ है? निश्चय ही हमारे स्वदेश बांधव ही हमारे उपास्य देव हैं?'

आज नवयुवक अगर अपने देश की दुरवस्था का अनुभव करते हैं, तो उन्हें इसी मन्त्र का जाप करना सर्वथा उचित नहीं होगा क्या? राष्ट्र देवता की श्रद्धा-भक्ति, निस्वार्थभाव से एकाग्रचित्त से उपासना किये बिना प्रसन्न होने वाला नहीं है—यह स्वामी विवेकानन्द के जीवन-चरित्र से ही प्रकाशित होता है। उसकी उपासना के लिये किस प्रकार की गुण-सम्पदा आवश्यक है और उसकी प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है, इसको उन्होंने प्रत्यक्ष अपने जीवन द्वारा प्रकट किया है। इसी कारण इस वर्ष महान नाम के 'युवा वर्ष;' में भारत सरकार को स्मरण हुआ तो, स्वामी विवेकानन्द का ही! अतः आदर्श के लिये; या

स्वामी जी को 'कठोपनिषद्' का युवक नचिकेता अत्यंत प्रिय था। वे कहा करते थे कि यदि मुझे दस बारह नचिकेता मिल जायें, तो मैं इस देश का काया-पलट कर दूंगा। जिस नचिकेता की अपेक्षा वे समाज से कर रहे थे; उसकी जानकारी भी आज कितने युवकों को होगी?

दर्शन के लिये रोने का कोई कार नहीं। आधुनिक शिक्षाप्राप्त एक बुद्धिमान युवक के जीवन में कि प्रकार परिवर्तन होता गया और उ अपने जीवनोद्देश्य को पहचान कर को उस मार्ग पर किस प्रकार लगा इसका अध्ययन करना आवश्यक है।

जो नवयुवक कुछ करना चाहते उन्हें अपनी मनोभूमिका की सि स्वामी विवेकानन्द के जीवन चरित्र प्रकाश में करनी चाहिये। पुरानी पी के जो अनेक पाप-कर्म हैं, उनमें स्व

स्वामी विवेकानंद

की गाड़ी चलाने में स्वामी विवेकानन्द के प्रखर ध्येयवाद का विस्मरण भी एक है। यदि हमें स्वामी विवेकानन्द का सतत स्मरण बना रहता; तो हमारे राष्ट्रजीवन का स्वरूप ही कुछ भिन्न दिखाई देता। राष्ट्रजीवन चैतन्यमय; शुद्ध और गौरवशाली बनाने के लिये स्वामी विवेकानन्द ने जो दो बातें छट-पटाहट भरे अन्तःकरण से प्रतिपादित की थीं, हमने उनकी केवल उपेक्षा ही नहीं की, अपितु उसके विपरीत भी कार्य किये। अपने हिन्दू होने का यथार्थ-गौरव, भारतीय विविधता में एकता देखने की राष्ट्रीय दृष्टि, गहन ईश्वर निष्ठा; त्याग, सेवा, वैराग्य, अखण्ड कर्मशीलता और हिन्दू राष्ट्र की भूमिका पर अटल निष्ठा आदि कितने ही गुणों की अपेक्षा स्वामीजी ने अपने तरुणों; देश बांधवों से की थी।

प्रथम विदेश-यात्रा से वापस आने पर उन्होंने कोलम्बो से अल्मोड़ा की यात्रा में स्थान-स्थान पर जो ओजस्वी भाषण किये हैं; उनमें यह अपेक्षा अनेक बार प्रकट होती है। हमें किन बातों को स्वीकार करना है और किन बातों को छोड़ना है; ताकि हमारे राष्ट्र का देदीप्यमान स्वरूप प्रकट हो; इसका वर्णन उन्होंने विस्तारपूर्वक किया है। प्रगति के मार्ग में रुकावट डालने वाली कालबाह्य रूढ़ियों पर उन्होंने कठोर प्रहार किया है। परन्तु हमारे देश ने उन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। भारत के पुनरुत्थान के तेजस्वी मंत्रद्रष्टा के स्थान पर हमने उन्हें मात्र एक सेवाभावी संस्था के प्रणेता के रूप में प्रकट किया है। पाश्चात्य शिक्षा

ग्रहण करने वाले आधुनिक तरुणों को स्वामी विवेकानन्द से उनका आन्तरिक सम्बन्ध किसी ने नहीं बताया।

नचिकेता आदर्श

तरुणों की शक्ति पर विवेकानन्द का दृढ़ विश्वास था। उनकी आंखों में हिन्दू तरुण का एक अत्यन्त आकर्षक चित्र विद्यमान था। उनकी अपेक्षा थी कि हिन्दू नवयुवक शरीर से सुदृढ़ एवं फौलादी स्नायुओं से निर्मित हो। वह

विवेकानन्द–निर्माता: रामकृष्ण परमहंस

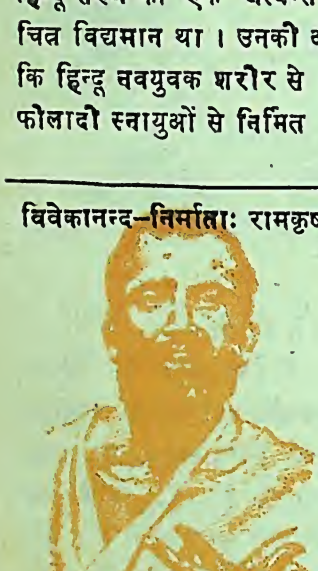

निर्भय व साहसी; आत्मविश्वास व विजिगीषा का आगार एवं प्रखर ध्येय-वाद से युक्त हो और उसके मन में संकटों को धूल चटाकर आगे बढ़ने का उत्साह हो। स्वामीजी को 'कठोपनिषद्' का युवक नचिकेता अत्यन्त प्रिय था। वे कहा करते थे कि यदि मुझे दस बारह नचिकेता मिल जायें, तो मैं देश का काया-पलट कर दूंगा। नचिकेता की अपेक्षा वे समाज में रहे थे; उसकी जानकारी भी कितने युवकों को होगी? पिता क्रोध में कहा, 'मैंने तुम्हें यमराज दान दे दिया है,' तो यमराज के भी जाने वाला नचिकेता; यमराज घर नहीं मिले, तो भूखे प्यासे तीन तक उनकी राह देखने वाला नचिकेता गुह्यतम आत्मज्ञान की यमराज मांग करने वाला नचिकेता, 'वह मत मांगो' उसके बदले जो मांगोगे भौतिक वैभव तुम्हें दूंगा' यमराज इस आश्वासन को भी ठुकरा अपनी ज्ञान प्राप्ति की मांग पर तेजस्वी नचिकेता—यह सब जानने-झने वाले और उससे प्रेरणा ग्रहण वाले नवयुवक कितने हैं? जीवन साहस, निर्भयता, पौरुष एवं ध्येयसि के मार्ग में प्रलोभनों को ठुकराने सामर्थ्य से अन्तर्बाह्य ओतप्रोत कि युवक हैं? विवेकानन्द को व्यर्थ कष्ट नहीं झेलने पड़े। स्वामी विवेक नन्द काल के ध्येयवाद की धार भोथरी पड़ गई है। आज की तरु पीढ़ी भोगवाद की लालसा के पंक फंसी पड़ी है। पूर्व और पश्चिम समन्वय का विवेकानन्द द्वारा प्रदर्शि विवेक आज आंखों से ओझल हो केवल दिखाऊ बातों का अन्धानुकर करने की प्रवृत्ति बलवती हुई है। आ

यता के बंधन और एकात्मता के रज्जु शिथिल हो गये हैं। ऐसे युवक स्वामी विवेकानन्द की आकांक्षा-पूर्ति में समर्थ हो सकेंगे क्या ?

रामकृष्ण की प्रेरणा

विवेकानन्द के केवल विचार ही प्रेरणा देने वाले नहीं; तो उनका जीवन ध्येयोन्मुख कैसे बना; यह भी अध्ययन का विषय है। नरेन्द्र एक सुखी सुशिक्षित परिवार का बालक था। वह आप लोगों के समान सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता था; परन्तु महाविद्यालय में विद्यार्जन करने वाला नरेन्द्र मानसिक दृष्टि से एक अशांत युवक बना। ईश्वर के सम्बन्ध में उसके मन में विचार अवश्य आते; सामाजिक आचार-विचारों का वह सब पहलुओं से अध्ययन करता; प्रश्न और सन्देह उसके मन में अनेक उठते। उसकी जिज्ञासा प्रबल हुई। वह अच्छे-२ विद्वानों से प्रश्न करता; परन्तु उसका समाधान न होता। आखिर उसे सन्तोष मिला दक्षिणेश्वर में ! रामकृष्ण परमहंस से वही प्रश्न पूछने पर उसे जो उत्तर मिले; जो असीम स्नेह प्राप्त हुआ; उनके जीवन की पारदर्शकता, चित्तनिष्ठ करुणा, सेवाभाव और उनके द्वारा कराई गई दिव्य अनुभूति के कारण वह अशान्त शिक्षित युवक लौकिक दृष्टि से एक अशिक्षित (?) पुजारी के साथ बंध गया। उसने अनन्य भाव से उसकी शरण जाकर अपना सारा अहंकार सद्गुरु चरणों में बहा दिया। रामकृष्ण परमहंस ने एक श्रेष्ठ जीवनकार्य का दायित्व इस तरुण को सौंपा और उसके मन में यह प्रतीति करायी कि व्यक्तिगत-मोक्ष की आकांक्षा; उसको प्राप्त भव्यजीवन की प्रेरणा की तुलना में कितनी क्षुद्र है। उससे कठोर साधना भी करायी।

> विवेकानंद ने युवकों का जो दिशादर्शन किया है, उसका सार-सर्वस्व यही है कि हम केवल अपने लौकिक सुख के लिए न जियें, अपितु दूसरों के सुख-दुःख में समरस होकर उनका जीवन सुखी बनाने के लिये जियें।

जिसकी छाया में कोई भी विश्रान्ति प्राप्त कर सके ऐसे विशाल बट वृक्ष का स्वरूप विवेकानन्द धारणा करे, यह श्री रामकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में विवेकानन्द को बताया था। विवेकानन्द को रामकृष्ण के आकर्षण, पारिवारिक कर्त्तव्य और बुद्धिवादी संशयात्मकता के एक रोमहर्षक संघर्ष से गुजरना पड़ा। संघर्ष की यह अवस्था पूर्ण रूप से शांत

[शेष पृष्ठ ८५ पर]

आग की भीख

● रामधारीसिंह 'दिनकर'

धुंधली हुई दिशाएँ, छाने लगा कुहासा;
कुचली हुई शिखा से आने लगा धुआँ-सा
कोई मुझे बता दे; क्या आज हो रहा है;
मुंह को छिपा तिमिर में क्यों तेज रो रहा है ?

दाता, पुकार मेरी; संदीप्ति को जिला दे;
बुझती हुई शिखा को संजीवनी पिला दे।
प्यारे स्वदेश के हित अँगार मांगता हूं।
चढ़ती जवानियों का श्रृंगार मांगता हूं।

बेचैन हैं हवाएँ, सब ओर बेकली है,
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है ?
मझधार है, भँवर है या पास है किनारा ?
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा ?

आकाश पर अनल से लिख दे अदृष्ट मेरा,
भगवान इस तरी को भरमा न दे अँधेरा
तम-बेधिनी किरण का संधान मांगता हूं।
ध्रुव की कठिन घड़ी में पहचान मांगता हूं।

आगे पहाड़ को पा धारा रुकी हुई है,
बल-पुंज केसरी की ग्रीवा झुकी हुई है;
अग्निस्फुलिंग रज का, बुझ, ढेर हो रहा है,
है रो रही जवानी, अन्धेर हो रहा है।

निर्वाक है हिमालय, गंगा डरी हुई है।
निस्तब्धता निशा की दिन में भरी हुई है।

पंचास्य-नाद भीषण, विकराल मांगता हूं।
जड़ता-विनाश को फिर भूचाल मांगता हूं।

मनकी बँधी उमंगें असहाय जल रही हैं,
अरमान-आरजू की लाशें निकल रही हैं।
भोगी खुली पलों में रातें गुजारते हैं।
सोती वसुन्धरा जब तुमको पुकारते हैं।

इनके लिए कहीं से निर्भीक तेज ला दे,
पिघले हुए अनल का इनको अमृत पिला दे,
उन्माद, बेकली का उत्थान मांगता हूं,
विस्फोट मांगता हूं, तूफान माँगता हूं!

आँसू भरे दृगों में चिनगारियाँ जला दे,
मेरे श्मशान में आ श्रृंगी जरा बजा दे;
फिर एक तीर सीने के आर-पार कर दे,
हिमशीत प्राण में फिर अंगार स्वच्छ भर दे।

आमर्ष को जगाने वाली शिखा नयी दे,
अनुभूतियाँ हृदय में दाता, अनलमयी दे।
विष का सदा लहू में संचार मांगता हूं,
बेचैन जिन्दगी का मैं प्यार मांगता हूं।

ठहरी हुई तरी को ठोकर लगा चला दे,
जो राह हो हमारी उस पर दिया जला दे।
गति में प्रभंजनों का आवेग फिर सबल दे।
इस जाँच की घड़ी में निष्ठा कड़ी अचल दे।

हम दे चुके लहू हैं, तू देवता विभा दे;
अपने अनल-विशिख से आकाश जगमगा दे।
प्यारे स्वदेश के हित वरदान मांगता हूं,
तेरी दया विपद में भगवान मांगता हूं।

('सामधेनी' से)

सम्पूर्ण क्रान्ति का सपना कहाँ खो गया?

के० एन० गोविन्दन

'क्या करें? शरीर गवाही नहीं देता, नहीं तो मैं इन निकम्मों को चुप नहीं बैठने देता।' ये उद्गार हैं, जो जयप्रकाशजी ने ७८-७९ के दिनों में 'चरखा समिति' में अस्वस्थता की स्थिति में मेरे सामने प्रकट किये थे। बात उस समय की है, जब शैक्षिक परिवर्तन, रेडियो आदि को स्वायत्त बनाने, दल बदल पर रोक लगाने, चुनाव प्रणाली में सुधार के बारें में चर्चा तो थी, पर क्रियान्वयन की प्रक्रिया में गतिरोध था तथा उसका प्रमुख कारण जड़ता और आपस की खींचतान थी।

इस बार पटना में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय अधिवेशन ८, ९, १० फरवरी की समाप्ति के बाद १२ ता० को जब तमिलनाडु के कुछ प्रतिनिधियों के साथ जे० पी० के निवास स्थान 'चरखा समिति' गया; तो मन भर आया। कितनी उपेक्षा हो रही थी उस स्थान की! एक ट्रस्ट बना तो है, पर लगा कि वह पूर्णरूपेण निष्क्रिय है। शायद यथास्थिति, जड़ता, आलस्य के तले सदिच्छा पूरी तौर पर दब गई है। वहां की देखभाल कर रहे श्री नवलकिशोर से बातें हुईं। उनकी प्रतिबद्धता जे० पी० के प्रति यथावत है, इसीलिए वहां टिके हुए लगे। पर, आखिर वे अकेले जे० पी० के उस स्मारक-स्थल की जरूरतों को कैसे पूरा कर सकेंगे?

जे० पी० की यादगार के दुर्लभ चित्रादि धूल खा रहे हैं, चित्रों के नीचे सन्दर्भ भी ठीक ढंग से नहीं लिखा है, वस्तुओं की साज-सभाल के लिए न्यूनतम आवश्यक कीटनाशक दवाई, छिड़काव आदि की व्यवस्था नहीं।

'चरखा समिति' के कमरे-कमरे में घूमते हुए अपने मित्रों को विवरण बताते समय पुरानी स्मृतियां घुमड़ रही थीं। वह स्थान जहां जे० पी० आरक्षण-समर्थक एवं विरोधी दोनों प्रकार के जनता विधायक-गुटों से बात कर रहे थे, जहाँ जे० पी० ने १७ फरवरी १९७९ को शैक्षिक 'जागरण ज्योति' जलाई थी (जो उत्तर भारत के अनेक जिलों का भ्रमण करती हुई विद्यार्थी परिषद् के 'दिल्ली मार्च' हेतु ९ मार्च १९७९ को दिल्ली पहुंची थी); जहां उनकी डायलिसिस होती थी, जहां राजनैतिक दलों के नेताओं से अनौपचारिक चर्चा होती थी, जहाँ प्रातःकाल जे० पी० से टहलते समय बात होती थी, जहां से अस्वस्थता की स्थिति में

उन्होंने संघर्षशील छात्रनेताओं को सम्बोधित किया था, जहाँ श्री अब्दुल अहद फातमी अखबार सुनाकर चर्चा करते थे, जहाँ १९७९ के आन्दोलन के दिनों में नीचे के कमरे-दालान आदि खचाखच भर जाते थे और लोग खड़े-खड़े ही आपस में बहस किया करते थे।

मन बार-बार १९७४ के उन दिनों और १२ फरवरी १९८५ के बीच झूल-झुल जाता था। १७ फरवरी १९७४ को पटना में हुआ छात्रनेता-सम्मेलन, उसमें 'छात्रसंघर्ष समिति' का गठन, बिहार आन्दोलन की शुरुआत, बाद में आन्दोलन के सम्बन्ध में २० मार्च को जे० पी० से प्रथम भेंट, २३ मार्च के बाद आन्दोलन में उनके सहयोग की सहमति, अप्रैल ८ व ९ को शान्ति जुलूस और अति विशाल जनसभा आदि वे दिन, अक्टूबर १, २, ३ 'बिहार बन्द' की सरगर्मी, ४ नवम्बर को जे० पी० पर लाठी प्रहार, उड़ते हेलिकाप्टरों की गड़गड़ाहट आदि सभी याद आ रहे थे। बागियों का आत्म-समर्पण, कई बदनाम छात्र नेताओं का 'छात्र संघर्ष समिति' में सक्रिय सहभाग, जे० पी० के अत्यन्त नजदीक रहने में होड़ आदि सभी यादें भी उभर रही थीं। ११ वर्ष बाद १२ फरवरी १९८५ को उन्हीं में से कई छात्रनेताओं की कांग्रेस पार्टी में शामिल होने, विधान-सभा का टिकट पाने के लिये लांगूल

जयप्रकाश नारायण

चालन करने की भी भरपूर चर्चा सुनाई पड़ रही थी।

१२ फरवरी १९८५ को 'चरखा समिति' में छाई मायूसी और १९७४ के दिनों के कोलाहल में कितना विरोधाभास लगा! 'सम्पूर्ण क्रान्ति' का नारा लगाने वाले कई छात्रनेता लति-हाव, लांगूल चालन, चमचागीरी की क्षुद्रनीति के परिणामस्वरूप आज बिहार विधानसभा में सदस्य बने दिखते हैं, तो मन में प्रश्न अवश्य उठता है कि यह सच है या वह सच था! 'राज नहीं, समाज बदलना है' महज नारा था या संकल्प? आज 'छात्रसंघर्ष समिति' की संचालन समिति के सदस्यों का लेखा-जोखा किया जाय, तो 'अभाविप' कुछ छात्रनेताओं को छोड़कर 'अन्य छात्रनेताओं में से अधि-

कांश '७७ के विधानसभा चुनावों में टिकट पाने की घुड़दौड़ में शामिल हुए, कुछ पर कृपा हो भी गई। कुछ भटकते अपने नसीब को कोसते रहे। कुछ अन्ततः पुनर्मूषको भव की स्थिति में कांग्रेस पार्टी के साये में शीतलता का अनुभव करते नजर आ रहे हैं। जाति-वाद के आधार पर छात्रसंघों में विजयी हुए छात्रनेता; सम्पूर्ण क्रान्ति का समाज बदलना है' नारा नहीं; निष्ठा का विषय है। और साथ ही बचे रहे उस 'छात्रयुवा संघर्ष वाहिनी' के मुट्ठी भर लोग, जिस संगठन की नींव जे० पी० ने १ जनवरी १९७५ को डाली थी। पुरानी 'तरुणशान्ति सेना' के लोगों और बिहार आन्दोलन की आंच, में पले नौजवानों के बीच मन की बनावट का अन्तर छात्र युवा-संघर्ष वाहिनी के

आज 'छात्र संघर्ष समिति' की संचालन-समिति के सदस्यों का लेखा-जोखा लिया जाय, तो अ०भा०वि०प० के कुछ छात्रनेताओं को छोड़कर अन्य छात्रनेताओं में से अधिकांश विधानसभा चुनावों में टिकट पाने की घुड़दौड़ में शामिल हुए, कुछ पर कृपा हो भी गई। कुछ भटकते अपने नसीब को कोसते रहे। कुछ अंततः 'पुनर्मूषको भव' की स्थिति में कांग्रेस पार्टी के साये में शीतलता का अनुभव करते नजर आ रहे हैं।

लबादा ओढ़े रहे होंगे (१९७४ के आन्दोलन दिनों में), पर '७९ के बाद वे लबादा फेंक-फेंककर पार्टियों के आंचल में फिर सिमट गये। और तो और, कुछ ने तो यह भी देखने की तकलीफ नहीं की कि यह आंचल किस दल का है। कहीं उस दल का तो नहीं जिसके नेताओं ने जे० पी० को; सी० आई० ए० या पूंजीपतियों का दलाल कहा था, जिसके शासन ने जे० पी० पर लाठियाँ बरसाई थीं!

बस बचे रहे विद्यार्थी परिषद के संगठन के लोग, जिनके लिये 'राज नहीं, सोच एवं कार्यक्रमों पर आज भी असर डालता दीखता है।

इन सब बातों को सोचने से लगता है कि 'सम्पूर्णक्रान्ति' का सपना कहां खो गया? क्या वह महज सपना ही था! उस आन्दोलन के चरम दिनों में भी ध्यान में आता था कि यह एक उफान है। उसमें भावुकता तो है; पर स्थैर्य नहीं। स्थायी बदलाव का माद्दा उसमें नहीं। हां उससे एक हद तक जागरण एवं जन इच्छा जरूर पैदा हो जायेगी। राष्ट्र की जीवन-यात्रा में जो एक ठह-

[शेष पृष्ठ १३२ पर)

पथ की पहचान

● डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान कर ले !
अनगिनत राही गये इस
राह से, उनका पता क्या
पर गये कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी,
यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ पंथी
पंथ का अनुमान कर ले ! पूर्व···
यह बुरा है या कि अच्छा
व्यर्थ दिन इस पर बिताना
अब असम्भव छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना
तू इसे अच्छा समझ
यात्रा सफल इससे बनेगी
सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना
हर सफल पंथी, यही
विश्वास ले इस पर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान कर ले ! पूर्व···
है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि; गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित, किस जगह पर
बाग; वन, सुन्दर मिलेंगे !
किस जगह यात्रा खतम हो
जायगी, यह भी अनिश्चित,
है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,
कौन सहसा छूट जायेंगे-
मिलेंगे कौन सहसा।
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न; ऐसी आन कर ले !
पूर्व चलने के बटोही;
बाट की पहचान कर ले !

पथिक से

● डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'

पथ भूल न जाना पथिक कहीं !
जीवन के कुसुमित उपवन में, गुंजित मधुमय कण-कण होगा।
शैशव के कुछ सपने होंगे, मदमाता-सा यौवन होगा।
इस यौवन की उच्छृंखलता में; पथ भूल न जना पथिक कहीं।
पथ में कांटे तो होंगे ही, दूर्वादल, सरिता सर होंगे,
सुन्दर गिरि, सर, वापी होंगी, सुन्दर-२ निर्झर होंगे।
सुन्दरता की मृगतृष्णा में; पथ भूल न जाना पथिक कहीं।
यौवन के अल्हड़ वेगों में, बनता मिटता छिन-२ होगा,
माधुर्य सरसता देख-देख भूखा प्यासा तन-मन होगा।
क्षण भर की क्षुधा-पिपासा में पथ भूल न जाना पथिक कहीं।
जब कठिन कर्म-पगडंडी पर, राही का मन उन्मुख होगा,
जब सब सपने मिट जायेंगे, कर्तव्य-मार्ग सम्मुख होगा।
तब अपनी प्रथम विफलता में पथ भूल न जावा पथिक कहीं।
अपने भी विमुख पराए बन, आंखो के सम्मुख आयेंगे,
पग-२ पर घोर निराशा के, काले बादल छा जायेंगे।
तब अपने एकाकीपन में, पथ भूल न जाना पथिक कहीं।
जब चिर-सिंचित आकांक्षायें, पल भर में ही ढह जायेंगी,
जब कहने-सुनने को केवल स्मृतियाँ बाकी रह जायेंगी।
विचलित हो उन आघातों में, पथ भूल न जाना पथिक कहीं॥
हाहाकरों से आवेष्ठित तेरा मेरा जीवन होगा,
होंगे विलीन यह मादक स्वर मानवता का क्रन्दन होगा।
विस्मित हो उन चीत्कारों में, पथ भूल न जाना पथिक कहीं।
रणभेरी सुन कह, 'विदा' 'बिदा' जब सैनिक पुलक रहे होंगे,
हाथों में कुंकुम थाल लिये कुछ जल-कण ढुलक रहे होंगे।
कर्त्तव्य-प्रणय की उलझन में, पथ भूल न जावा पथिक कहीं।
वेदी पर बैठा महाकाल जब नर-बलि चढ़ा रहा होगा,
बलिदानी अपने ही कर से, निज मस्तक बढ़ा रहा होगा,
तब उस बलिदान-प्रतिष्ठा में, पथ भूल न जावा पथिक कहीं।

युगवाणी

● डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'

जिस दिन सपनों के मोल भाव पर उतरेंगा
जिस दिन संघर्षों पर जाली चढ़ जायेगी;
जिस दिन लाचारी मुख पर तरस दिखायेगी
उस दिन जीवन से मौत कहीं बढ़ जायेगी !

इन सबसे बढ़कर भूख बिलखती मिट्टी की
पथ पर पथराई आँखें पास बुलाती हैं;
भगवान् भूल में रचकर जिनको भूल गया
जिनकी हड्डी पर धर्म-ध्वजा फहराती है !

इनको भूलूं तो मेरी मिट्टी मिट्टी है
मेरी आँखों का पानी केवल पानी है;
इनको भूलूं तो मेरा जन्म अकारथ है
मेरा जीना मरने की मूक कहानी है।

इसलिए समय के सैलाबों को मत रोको
खुशहाल हवाओं में न खिड़कियां बन्द करो,
हर किरण जिन्दगी की आँगन तक आने दो
नव-निर्माणों की लपटों को मत मन्द करो !

इस नये सबेरे की लाली को देखो तो
इसकी अपनी कितनी पहचान पुरानी है,
भू, भुवः; स्वर्ग को एक बनाने आयी जो
युग की गायत्री, सब छन्दों की रानी है !

('विंध्य हिमालय' से)

[संकलन : मीनाक्षी, 'राम निवास' राजेन्द्र नगर, लखनऊ]

हरगोविन्द ने आदेश दिया कि भविष्य में जो भी भेंट दी जाए, उसके साथ अस्त्र तथा घोड़ा अवश्य प्रदान किया जायं। लोगों ने आज्ञा सिर-माथे ली और उनके यहां अस्त्रों और घोड़ों का ढेर लग गया।

गुरु हरगोविन्द का आचरण भी वीरोचित था। भक्ति का वरदान तो उन्हें अनायास ही मिला हुआ था वीरता का गुण अपने अन्दर स्वयं पैदा कर लिया था। उन्होंने सिर्फ सेली और माला जैसे पारम्परिक गुरु-चिह्न का ही परित्याग नहीं किया, बल्कि पूर्व गुरुओं का फकीरी लिबास भी उतार फेंका। इसकी जगह उनके शरीर पर विभूषित होने लगे राजसी वस्त्र,

जिन्होंने सेली व माला छोड़

आषाढ़ कृष्ण ६; संवत १६५२ तदनुसार १४ जून १५९५ को अमृतसर जिले के वडाली गांव में गुरु अर्जुनदेव की पत्नी श्रीमती गंगादेवी की कोख से जन्मे हरगोविन्द राय ने आषाढ़ ५, संवत् १६६५ के दिन अपने नये आसन तख्त अकाल बुंगा का निर्माण करवाया। इस तख्त पर बैठकर गुरु हरगोविन्द उपस्थित जन-समुदाय को भक्ति और शक्ति का पाठ पढ़ाया करते थे। इससे पूर्व श्रद्धालु-जन गुरुओं को नाना प्रकार की भेंट दिया करते थे। लेकिन गुरु अस्त्रों से लैस थे। ऐसा लगता है, उन्हें इस बात का पहले ही अनुमान गया था कि भविष्य में विधर्मियों अन्याइयों से टकराने के लिए अस्त्र शस्त्र का सहारा लेना पड़ेगा। नियम से घुड़सवारी करते थे अस्त्रों-शस्त्रों से लड़ने की विद्या विधिपूर्वक सीखते थे। घोड़े पर सव उनका ओजस्वी व्यक्तित्व भक्ति शक्ति का अपूर्व संगम जैसा प्रती होता था।

इधर गुरु हरगोविन्द सिख-म

को एक नया तेवर, एक नया नेतृत्व प्रदान कर रहे थे, दूसरी ओर एक ऐसा आदमी उनके खिलाफ षडयन्त्र का ताना बाना बुन रहा था, जो गुरु अर्जुनदेव का खून पीकर भी प्यासा था। यह कोई और नहीं वही, चन्दूमल शाह था, जो बादशाह जहांगीर का दीवान था। चन्दूमल चाहता था कि गुरु अर्जुनदेव अपने बेटे श्री हरगोविन्द का विवाह उसकी पुत्री से कर दें, लेकिन यह रिश्ता अर्जुनदेव को पसन्द नहीं आया। चन्दूमल यह इन्कार आसानी से नहीं पचा सका, और इसका बदला गुरु अर्जुनदेव को मौत की सजा दिलवाकर चुकाया। ये गुरु हरगोविन्द ही थे, जिनके साथ उसने अपनी बेटी का

तलवारें धारण कीं

ब्याह रचाना चाहा था। अतः वह अब अपनी असफलता और बदनामी का बदला गुरु हरगोविन्द से भी चुकाना चाहता था।

चन्दूमल शाह ने देखा कि गुरु हरगोविन्द तो घुड़सवारी करते हैं; अस्त्र-शस्त्र सीखते हैं, फकीरी लिबास त्यागकर राजसी वस्त्र पहनते हैं, गद्दी पर न बैठकर तख्त पर बैठते हैं तथा वीरता और युद्ध की बात करते हैं। उसने नमक-मिर्च लगाकर बादशाह को पत्र लिखा—

आपने न्याय की रक्षा करते हुए गुरु अर्जुनदेव को मौत की सजा दे दी, लेकिन अब उनकी जगह उनका बेटा गुरु बन बैठा है, जो पिता की मौत का बदला लेना चाहता है।

वह गुरुओं की परम्परा के विपरीत गद्दी की जगह तख्त पर बैठता है, प्रवचनों की जगह आपके विरुद्ध जहर उगलता है, फकीरी वस्त्र की जगह राजसी वस्त्र पहनता है औरसेली माला की जगह तलवार खोंस ली है। जाहिर है कि यह राजद्रोह में संलग्न है।

ये शिकायतें किसी भी राजा को भड़काने के लिये काफी थीं। उसने दो सिपाही अमृतसर हरगोविन्द को लाने भेजे। अमृतसर पहुंचकर उन्होंने शीश नवाया और सारी बात बतायी।

जब गुरुजी का काफिला दिल्ली पहुंचा, तो उन्हें मजनू के टीला नामक स्थान पर टिका दिया गया।

जहांगीर ने उनके सामने आरोपों का ढेर लगा दिया। गुरुजी ने विनम्रता तथा विश्वास के साथ आरोपों का खंडन किया। बादशाह को उनकी हर बात में न सिर्फ सच्चाई के दर्शन हुए, बल्कि गुरुजी का व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावशाली प्रतीत हुआ। उसने गुरु से कुछ नहीं कहा। गुरुजी ने बादशाह से

जन-कल्याण और धर्म की चर्चा की। बादशाह गुरुजी की बातों से बड़े प्रसन्न हुआ और तो आरोप वापस ले लिये।

चन्दूमलशाह के तन-बदन में आग लग गयी। उसका यह तीर निशाने पर नहीं बैठा। पर अगला तीर चलाने का मौका जल्दी मिल गया।

गुरुजी को गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में कैद कर दिया गया। गुरु हरगोविन्द ने मोके की नजाकत देखते हुए विरोध नहीं किया।

मुस्लिम सुल्तान के गुरु साईं मियां मीर ने बादशाह को सारी दास्तान सुना दी। किस प्रकार चन्दूमल शाह रिश्ते के इंकार किये जाने से अर्जुनदेव का जानी दुश्मन हो गया था और किस प्रकार गुरु अर्जुनदेव की शहादत के बाद अब वह गुरुजी को भी समाप्त करना चाहता है।

मीर ने बताया कि गुरु हरगोविन्द तो अपने सिखों को भक्ति के साथ शक्ति का पाठ पढ़ाना चाहते हैं। फिर १६-१७ साल के छोटे युद्धक से डरने की क्या बात है ?

'तो अब मैं क्या करूं।'

'गुरुजी निर्दोष हैं। चन्दूमल के बहकावे में आकर उन्हें गिरफ्तार कर लेना अन्याय है।'

बादशाह जानता था कि साईं मियां कभी झूठ नहीं बोलते, उनकी बात को टालना कठिन है। अतः गुरुजी रिहा कर दिए गए। मगर मन फिर भी शंकित था ! बादशाह खुले रूप से ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे, जिससे गुरु के अनुयायी भड़क जाएं। अतः उसने कूटनीति से काम लेना उचित समझा। वह गुरुजी को हमेशा अपनी निगाहों के सामने रखना चाहता था। ताकि गुरुजी को 'विद्रोह' करने का मौका न मिले।

गुरुजी को दिल्ली में रहते एक अरसा बीत गया, तब उन्हें अमृतसर की याद ने आ घेरा। गुरुजी ने बादशाह से कहा, मैं वापस जाना चाहता हूं। पर, बादशाह उन्हें अमृतसर भेजने को राजी नहीं हुआ। उसने बहाना बनाया कि मैंने कश्मीर जाने का कार्यक्रम बनाया है, उसके बाद अमृतसर जाएँ। गुरुजी ने यह बात स्वीकार कर ली। वे बादशाह की चालों से भली प्रकार परिचित थे। एक दिन बादशाह का काफिला कश्मीर के लिये रवाना हुआ। गुरुजी से भी साथ चलने को कहा गया, पर गुरुजी ने बादशाह की चालों को मिट्टी में मिला दिया। उन्होंने साफ-२ शब्दों में कह दिया 'आप यहां से कश्मीर जाइये, मैं अमृतसर जाना चाहता हूं।'

बादशाह चौंक गया। वह उन्हें हाथ से निकलने नहीं देना चाहता था। उसे डर था, कि कहीं गुरु बगावत न कर दें। वह बोला। मैं भी अमृतसर चलूंगा और वहां मन्दिरों के दर्शन करूंगा। फिर लाहौर चला जाऊँगा। भला गुरुजी को क्या आपत्ति हो सकती थी। गुरु को अपने बीच पुनः पाकर सिखों में हर्ष की लहर दौड़ गयी।

बाद में जहांगीर के पुत्र शाहजहां, चन्दू शाह के लड़के कर्मचन्द व एक गुमराह चौधरी के लड़के रत्नचन्द तथा नमकहराम पठान पैंदे खां से युद्ध करने व जीतने के बाद चैत्र सुदी पंचमी (३-३-१६६४) को अपने पौत्र हरराय को गद्दी देकर गुरु गोविन्दसिंह ब्रह्मलीन हो गये।००

(प्रस्तुति : अंशु अग्रवाल, कक्षा ८
राजेन्द्रनगर, लखनऊ)

(पृष्ठ ७३ का शेष)

होने में न जाने कितने वर्षों की काला-वधि बीती होगी?

परमेश्वर की कर्मरूप सेवा

इस प्रकार का तपस्वी-जीवन बिताने की सामान्यतः तरुण मन की तयारी नहीं होती। परतन्त्रता के काल में एवं स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के बाद भी केवल अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने से हम आगे नहीं बढ़ सके हैं। यदि कोई नवयुवक इससे भिन्न मार्ग अपनाता है; तो उसके संगी-साथी उसको अव्यावहारिक समझते हैं। कोई उत्कट, भव्य-दिव्य व ध्येयवादी जीवन अंगीकार कर उसके लिये अपने सर्वस्व को न्यौछावर करने की भावना किसी तरुण के लिये विलोभनीय गुण है। परन्तु हमारे यहां विचार-प्रवाह प्रबल हो रहा है अधिकाधिक देह-सुख प्राप्त करने वाली भोगी प्रवृत्ति का। मनुष्य जन्म के हेतु और उसकी सार्थकता के बारे में जो कालभूत धारणायें भारतीय विचारवंतों ने प्रत्यक्ष अनुभूति से बताई हैं; यह प्रवाह उनसे सुसंगत नहीं है। विवेकानन्द ने युवकों को जो दिशादर्शन किया है, उसका सारसर्वस्व यही है कि हम केवल अपने भौतिक सुख के लिये न जियें, अपितु दूसरों के सुखदुःख में समरस होकर उनका जीवन सुखी बनाने के लिये जियें।

अपनी अन्तिम बीमारी में एक दिन स्वामीजी ने अपने तरुण शिष्यों को कहा, 'तुम सब नवयुवक समझदार हो और तुम अपने को मेरे शिष्य कहते हो; तो बताओ, आज तक तुमने क्या किया है? दूसरों की सेवा के लिये तुम अपना एक जीवन भी नहीं देना चाहते! यह शरीर दूसरों की सेवा में काम आया; तो मैं कहूंगा कि तुम्हारा मेरे पास आना व्यर्थ नहीं गया। इतनी सारी तप-साधना करने पर मुझे एक सत्य प्रकाशित हुआ है; कि परमेश्वर सभी प्राणियों में है। उनके अतिरिक्त ईश्वर कोई हो ही नहीं सकता। जो प्राणिमात्र की सेवा करता है, वही वास्तविक ईश्वर-सेवा करता है।'

कार्यकर्ता चाहिये

अपने देश का यह दीनहीन चित्र बदलकर मातृभूमि का गौरव बढ़े और भारतवर्ष का 'एक कुत्ता भी' अभावग्रस्त न रहे; इस प्रकार की छटपटाहट स्वामीजी के जीवन में व्याप्त थी।

कुर्सी महिमा

एक महिला सर्मन के बाद पादरी जी से मिली, तो बड़े स्नेह भरे शब्दों में कहने लगी कि 'जिस दिन आपका सर्मन होता है मैं जरूर सुनने आती हूं।' पादरी ने बड़े कृतज्ञता-भरे शब्दों में पूछा; 'कहिए मेरे सर्मन में ऐसी कौन सी विशेषता होती है?'

'जी, उस दिन कुर्सी बड़ी आसानी से मिल जाती है।'

—डा० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

उनकी अपेक्षा थी कि वह कार्य नव-युवकों द्वारा हो। वे जो कार्य कर रहे थे, उससे उपलब्धि की उनकी क्या कल्पना थी—

जिनके अन्तःकरणों में पवित्र धर्म-प्रेम से अदम्य उत्साह उमड़ पड़ा है; जिनके चित्त के चारों ओर परमेश्वर पर अविचल श्रद्धारूपी वज्र कवच है और दीन-दलितों के लिए अन्तःकरण की पीड़ा से जिनमें सिंह सदृश साहस उत्पन्न हुआ है; ऐसे लक्षावधि स्त्री पुरुष देश के एक कोने से दूसरे कोने तक संचरण करेंगे। ये ही व्यक्ति मुक्ति; परस्पर-सहायता-भावना, सामाजिक प्रगति और समता का संदेश सर्वत्र पहुंचायेंगे।'

अपने अन्तःकरण में ऐसी दृढ़ श्रद्धा रखो कि तुम्ही उस भगवंत के सेवक हो, उसकी कार्यसिद्धि में सहायक उसकी सन्तान हो। ऐसी दृढ़ श्रद्धा से कार्यक्षेत्र में प्रवेश करो।'

ऐसे गुणवंत युवक कार्यकर्ता स्वामी जी लाखों की संख्या में चाहते थे। कार्य पूर्ण करने के लिये ऐसी श्रद्धा, अन्तःकरण की तड़पन; ईश्वरीय कार्य के लिये अपने को साधनमात्र समझने वाले हठी कार्यकर्ता स्वामीजी बड़े प्रमाण में चाहते थे। इन कार्यकर्ताओं को वैफल्य, निराशा अथवा समाज से शिकायत का स्पर्श भी न हो।'

स्वामी जी ने युवकों के सामने उदाहरण रखा था; गुरु गोविन्दसिंह का। जिनके लिये गुरुगोविन्दसिंह ने अपना रक्त बहाया, अपने दो कोमल बच्चों को दीवारों में चुनवाया और पराकाष्ठा का प्रतिरोध किया; उनके ही द्वारा तिरस्कृत होने पर गुरु गोविन्दसिंह शांतिपूर्वक दक्षिण के नादेड़ चले गये। वहीं उन्होंने अपनी देह छोड़ी; परन्तु समाज के विरुद्ध शिकायत का एक शब्द भी नहीं कहा। सब कुछ सहन किया, परन्तु समाज को दोष नहीं दिया। उनके व्यक्तिगत जीवन में राष्ट्रकार्य व समाज-संघटन के किये कैसी तड़पन थी! वह श्रेष्ठ व्यक्तित्व था। ऐसे अनेक उदाहरण अपने इतिहास में मिलेंगे; संतों की मालिका में भी मिलेंगे और धर्म के लिये संघर्ष करने वाले योद्धाओं में भी मिलेंगे।

आह्वान स्वीकारने में ही पुरुषार्थ

नवयुवकों ने पुरानी पीढ़ी को-स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की कर्ता पीढ़ी को दोष दिया, तो वह भी सुन लेना होगा; उसमें बुरा मानने का कारण नहीं। मुख्य प्रश्न यह है कि भावी पीढ़ी हिन्दू समाज व हिन्दू-राष्ट्र का नवनिर्माण किस प्रकार करती है? इस आह्वान से नई पीढ़ी मुंह नहीं मोड़ सकती।

स्वामी विवेकानन्द ने एकदम भरी तरुणाई में समय के आह्वान को स्वीकार किया और अपने महान् सद्गुरु की इच्छानुसार अपने जीवन को उसमें झोंक दिया। उनका एक-एक शब्द

स्फूर्ति से परिप्लावित हो गया। अनेक तरुण सहकारियों को उन्होंने सेवामूर्ति बना दिया और शिवभाव से जीवसेवा के लिये प्रेरित किया। आत्मश्रद्धा जागृत की; देखने की दृष्टि दी, परन्तु फिर भी देश में उनकी इच्छानुरूप परिवर्तन नहीं आ पाया। स्वामी जी ने तरुणाई में ही महासमाधि ली। कामिनी, काँचन के मोह से दूर, मातृभूमि के और परिणामस्वरूप सम्पूर्ण मानवता के उत्थान, कल्याण के लिए, सर्वसंग परित्याग के लिये सिद्ध विरागी तरुण अपेक्षित संख्या में आवश्यकतानुसार उन्हें उपलब्ध नहीं हो सके। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक संचरण करने वाले व स्वकर्म-कुसमों से सर्वेश्वर का पूजन करने वाले युवक लाखों की संख्या में उन्हें प्राप्त नहीं हो सके।

परन्तु यह क्षमता अभी अपनी भारतमाता ने खोई नहीं है, हम 'युवा - वर्ष' मनाने का प्रारम्भ स्वामी विवेकानन्दजी के पुण्य स्मरण से कर रहे हैं; अतः स्वामीजी के स्वप्न का सुखी, सामंजस्यपूर्ण, परमार्थी संसार निर्माण करने का दायित्व भी आज के पुरुषार्थी युवकों पर आता है। पूर्वजों की विरासत में प्राप्त संपति के समान उनके द्वारा पड़े ऋण का भी हमें भुगतान करना होता है। परिस्थिति सभी के समक्ष स्पष्ट है। उसके नाम पर मनस्ताप न करते हुए उसे पैरों से कुचल कर संसार को अपनी इच्छानुसार आकार देने की विजिगीषु आकांक्षा विवेकानन्द के स्मरण मात्र से ही अन्तःकरण में ऊंची-ऊंची हिलोरें लावे और उनकी आकांक्षा की पूर्ति करने में सफल हो, इसी में भारत के युवकों के लिये युवा वर्ष की सार्थकता है।

—मेघना, पत्रकारनगर, पुण
['एकता' मराठी मासिक से साभार]

जब लोग दरिद्र हो जाते हैं, तब बाहर की ओर गौरव की खोज में भटकते हैं, तब वे केवल बातें कहकर गौरव का माल-मसाला भग्नस्तूप से संचय करते रहते हैं। इस प्रकार सत्य को व्यवहार से दूर रखकर यदि केवल बातों के जोर से प्राचीन गौरव की प्रशंसा करने लगें; तो हमारे लिये यह लज्जा की बात है। अहंकार करने के लिये सत्य का उपयोग; सत्य का अपमान है। सत्य की वाणी को ढोल के समान कन्धे पर लटकाकर उसे बजाते हुये न घूमें। बाहर के लोगों को चकित करने के लिये सत्य वाणी को अलंकार-मात्र न बनायें; बल्कि अपनी ही एकमात्र आन्तरिक आवश्यकता के लिये ही सत्य की खोज तथा साधना करें।

● कवीन्द्र रवीन्द्र

डॉ० विद्यानिवास मिश्र से सुरेन्द्र द्विवेदी की बातचीत

युवक नहीं, राजनेता दोषी

"युवा-वर्ष के संदर्भ में, युवा नेतृत्व, युवा शक्ति एवं युवा आक्रोश की चर्चा सर्वत्र हो रही है। कहीं युवकों के सिर पर विध्वंस और अराजकता का दोष मढ़ा जाता है, तो कहीं उन्हें राष्ट्र-निर्माण के लिए भविष्य का कर्णधार कह कर संबोधित किया जाता है।

आज का युवा वर्ग यथास्थितिवादी बनता जा रहा है, उसमें दृढ़ संकल्प की क्षमता खत्म होती जा रही है। उसे कहीं बेरोजगारी और आरक्षण का संत्रास भुगतना पड़ रहा है, तो कहीं राजनैतिक सौदेबाजी। यदि युवा शक्ति उदासीन हो गई, तो देश का भविष्य क्या होगा?" आदि अनेक विंदुओं पर हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार एवं आगरा वि० वि० स्थित कहैयालाल माणिकलाल मुंशी हिंदी विद्यापीठ के निदेशक डॉ०विद्या निवास मिश्र के विचार जानने का प्रयास किया गया है सुरेन्द्र द्विवेदी द्वारा :-

प्र०–'युवा-वर्ष' का औचित्य क्या है ?

डॉ०मिश्र–(माथे पर चिंतन की रेखायें) वास्तव में; युवा-वर्ष भी बाल वर्ष; विकलांग वर्ष और महिला वर्ष की श्रृंखला की अगली कड़ी है। यह एक परिपाटी सी बन गई है। इससे कोई क्रांतिकारी परिवर्तन होगा– ऐसा मैं नहीं मानता और न ही यह सम्भव है।

प्र०–युवकों में भारतीय संस्कृति का लोप क्यों हो रहा है ?

डॉ०मिश्र–युवाकों के मन-मस्तिष्क से भारतीय संस्कृति हटने का सारा दोष अभिभावक को जाता है, युवावर्ग को नहीं। अभिभावकों ने अपने बच्चों को भारतीय राष्ट्रीयता और महापुरुषों के त्याग बलिदान के बारे में अवगत नहीं कराया। ऐसी प्रवृत्ति नहीं पैदा होने दी कि प्रकृति ही देवत्व का रूप है। यह भावना तो बिल्कुल लुप्त हो चुकी है—नदी, पेड़ और पहाड़ के प्रति श्रद्धाभाव समाप्त हो गया है। युवकों को दूसरों के बारे में सोचने का अवसर न देकर, दूसरे को धकेलकर आगे बढ़ने का पाठ पढ़ाया जाता है, जो घातक है।

नकली वैज्ञानिकता के कारण हमारे यहां पश्चिमी संस्कृति प्रचलित हुई, किन्तु, भारतीय दृष्टिकोण कम हुआ है । ऐसा नहीं है, विनाश के समय हमारे पूर्वजों द्वारा दिया मूल मंत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही काम आयेगा ।

ललित निबंधकार डॉ० मिश्र

प्र०– युवा वर्ग राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग-थलग क्यों होता जा रहा है?

डॉ०मिश्र– भारतीय संस्कृति अनुभव की वस्तु होने के साथ-साथ आत्मा के तादात्म्य को भी दृढ़ करती है । परस्पर तादात्म्य का अभाव ही राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग कर रहा है । अधिक से अधिक तादात्म्य ही हितकर है; उपलब्धि और प्रगति नहीं ।

प्र०– क्या युवक वर्ग दिग्भ्रमित हो रहा है?

डॉ०मिश्र–युवक दिग्भ्रमित नहीं हैं । क्योंकि अभी तक सही दिशा न तो उसे दी गई है और न दी जा रही है । आदर्श और व्यवहार के बीच में गहरी खाई पड़ती जा रही है । आदर्श खोखला होता जा रहा है, जिससे युवकों का आकर्षण भी सैद्धांतिक रूप से समाप्त हो रहा है । युवकों को सही दिशा प्रदान करने के लिए स्वयं भी कुछ न कुछ बलिदान करना होता है, अन्यथा विषमता बढ़ती जायेगी; जैसे दिल्ली बसती जायेगी और गांव उजड़ेंगे । करोड़पति के अनुपात में गरीबों की संख्या ज्यादा बढ़ेगी और युवा उद्वेलित हो उठेगा ।

प्र०– राष्ट्र के विध्वंस एवं अराजकता का दोष युवकों के सिर क्यों मढ़ा जाता है ?

डॉ०मिश्र– अराजकता एवं विध्वंस के लिए मूलतः युवक नहीं, राजनेता दोषी है । ये राजनेता युवकों को आंदोलन जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और झंडा वरदार तैयार करते हैं अर्थात राजनेताओं ने कालेज और वि०वि० को आंदोलन का प्रशिक्षण केन्द्र बना रखा है । आंदोलन करते-करते जब

युवकों की ऊर्जा समाप्त होने लगती है, तब उन्हें राजनीतिज्ञों का झोला ढोना पड़ता हैं ।

प्र०–क्या युवकों का राजनीतिकरण उचित है ?

डॉ०मिश्र–(तिलमिलाइट भरे स्वर में) राजनीतिकरण नहीं होना चाहिए। फिरभी राजनीति लोकतांत्रिक जीवन का अंग बन चुकी है। अध्ययन के समय युवकों में राजनीति की जागरूकता व जानकारी अवश्य होनी चाहिए। किन्तु वि०वि० छात्रसंघ के चुनाव विधानसभा और लोकसभा के चुनाव की तरह होना अव्यावहारिक है ।

प्र०– बेरोजगारी और आरक्षण के प्रश्न पर युवकों का उद्वेलित होना कहां तक उचित हैं ?

डॉ०मिश्र–प्रारम्भ में ऐसा मत था कि शिक्षित होगा, तो सफेदपोश काम करेगा अर्थात हाथ का काम नहीं करेगा । किन्तु आजकल शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहाहै, तिकड़मबाजी से डिग्री-डिप्लोमा धड़ाधड़ मिल रहे हैं, मेहनत से कुछ भी प्राप्य नहीं । शिक्षा के प्रति समर्पणभाव खत्म हो गया हैं । पढ़ाई उद्देश्यहीन हो गई । इसीलिए बेरोजगार युवकों की भीड़ रोजगार की रेलगाड़ी की तलाश प्रतीक्षालय में बैठकर नहीं, अपितु प्लेटफार्म पर खड़े होकर कर रही हैं । उच्च शिक्षा का महत्व तभी हैं, जब युवा वर्ग स्वयं के लिए सोच-समझकर निर्णय कर सके । दुर्भाग्य है कि आज का शिक्षक भी युवकों को कक्षा में न पढ़ाकर घर पर ट्यूशन पढ़ाने में ज्यादा रुचि लेता है, जिससे पास होने वालों की संख्या में अनावश्यक वृद्धि हुई हैं और फलतः बेरोजगारी बढ़ी हैं ।

बेरोजगारी दूर करने के लिए पहले आई०टी०आई० जैसे केन्द्र खोले गए, किन्तु निरर्थक । अब रोजगार-परक शिक्षा की बात हो रही है, जो वि०वि० की शिक्षा से सर्वथा भिन्न है । रोजगार से ज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं हैं ।

आरक्षण के सन्दर्भ में मेरा कहना यह है कि दलितों के विकास के लिए (आर्थिक, सामाजिक और मानसिक) यह योजना कुछ वर्षों के लिए लागू की गई थी, किन्तु इसे अब तक चलाये रखना नीतिसंगत नहीं । आरक्षण का आधार आर्थिक होना चाहिए; जातिगत नहीं ।

किन्तु दुर्भाग्य यह है कि वोट की राजनीति ने, जो जातिगत हो गई है,

आरक्षण का अर्थ वोट प्राप्त करना मान लिया हैं। इससे विकास के स्थान पर कटूता पैदा हो रही हैं। आरक्षण की व्यवस्था तत्काल समाप्त कर दी जानी चाहिए, जिससे समूचे राष्ट्र में सौहार्द का वातावरण बन सके।

प्र०– शासन व्यवस्था-विरोधी युवा यथास्थितिवादी क्यों हो रहा है ?

डॉ०मिश्र– स्वाधीनता-प्राप्ति तक युवकों को एक बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आंदोलित किया जाता रहा, जिसका सुपरिणाम मिला। किन्तु उसके बाद युवकों ने जितने भी आंदोलन किए, सभी यथार्थ से अलग रहे। इससे उनमें शिथिलता आ गई और शासन का रवैया भी उपेक्षापूर्ण रहा। सही नेतृत्व के अभाव में युवक यथास्थितिवादी अर्थात् समझौतावादी होता जा रहा है।

इतिहास

'सम्पूर्ण जीवन की एकता की अनुभूति तथा इस अनुभूति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के रचनात्मक प्रयत्न का नाम ही इतिहास है।

–पं० दीनदयाल उपाध्याय

प्र०– असम आंदोलन को क्या कहें ?

डॉ०मिश्र– असम आंदोलन विदेशी नागरिकता के मसले पर आरम्भ किया गया; जिसका सूत्रपात युवकों ने किया और पिछले कई वर्षों से उसको चला भी रहे हैं। किन्तु शासन का नकारात्मक रुख युवकों की दृढ़ संकल्पशक्ति को क्षीण करने वाला हो रहा हैं।

प्र०– युवा शक्ति की उदासीनता का परिणाम क्या होगा ?

डॉ०मिश्र– यदि युवकों को सही मार्गदर्शन नहीं दिया गया, तो उदासीनता का परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण होगा। अतः युवको को सही नेतृत्व प्रदान किया जाना आवश्यक है। वे जीवन की आवश्यक चीजों के लिए आंदोलित हों, न कि विलासिता की चीजों के लिए; जो उनकी शक्ति का ह्रास करती हैं। यदि उदासीनता चरम सीमा पर पहुंच गई, तो सत्ता और समाज पर अंकुश रख पाना असम्भव हो जायगा। इसके लिए युवा शक्ति उदासीन या असंतुष्ट होकर बैठ न जाए, यह ध्यान रहे। उसे क्रियाशील रहना होगा। राष्ट्रहित में भी यही लाभप्रद हैं।०

शहीदों के शैदाई चतुर्वेदी जी नहीं रहे

● वचनेश त्रिपाठी

बुजुर्ग सम्पदकाचार्य पं० बनारसीदास चतुर्वेदी नहीं रहे, लेकिन वे अपने पीछे वह लीक छोड़ गये, जिस पर आगत और अनागत पीढ़ी चलती रहेगी, न चले तो देश का दुर्भाग्य। वह लीक है, देश के महान शहीदों की प्रेरक स्मृति संरक्षित रखने की, उन्हें भरपूर श्रद्धा-समादर देने की। प्रवासी भारतीयों का काम हाथ में लेने के बाद चतुर्वेदीजी शहीदों और जीवित क्रान्तिकारियों के सन्दर्भ में जी-जान से जुटे रहे। कितने ही विपन्न क्रान्तिकारी-परिवारों को उन्होंने कभी सरकार से, तो कभी अन्य साधनों से सहारा दिलाया, पेन्शनें बंधाईं।

मैंने समय-समय पर 'पांचजन्य' व 'राष्ट्रधर्म' के जब कभी 'क्रान्ति-विशेषांक' या 'बलिदान-विशेषांक' निकाले, तो उन्हें देखकर चतुर्वेदी बड़े खुश होते थे, मुझे तत्काल पत्र लिखते थे। एक विशेषांक में जब उन्होंने पांडिचेरी में रह रहे क्रान्तिकारी भाई काशीराम का लेख देखा, तो मुझे लिखा कि आप भाग्यशाली हैं कि आपको तो काशीरामजी का लेख मिल गया, लेकिन मुझे उनका सिर्फ खाली लिफाफा ही मिला। चतुर्वेदीजी को तब पता नहीं था कि 'काशी भाई से मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है।'

वे बड़े स्पष्टवादी थे। एक बलिदान विशेषांक में दीनदयालजी का बड़ा और आर्ट पेपर पर रंगीन चित्र व उनका जीवन-वृत्त, पत्रादि छप गये, तो यह चतुर्वेदीजी को अच्छा नहीं लगा। मुझे तो न लिखा, लेकिन अन्यत्र उन्होंने उस विशेषांक की आलोचना की कि 'शहीदों के बीच पार्टीप्रचार ठीक नहीं।' क्या शब्द थे, अब मुझे याद नहीं। चतुर्वेदीजी के अवश्य कई पत्र मेरे पास हैं। उनका बड़ा स्नेह-ममत्व रहा मेरे प्रति।

एक दिन दिल्ली के 'विट्ठल भवन' में उन्हें अनेक क्रान्तिकारियों के बीच फर्श पर बिछी दरी पर बैठे हुए कुछ लिखते देखा, पं० सुन्दरलाल भी अपनी सफेद कुच्ची दाढ़ी सहित उनके साथ कुछ लिखने में तन्मय थे।

पूछा तो पता चला किसी मसविदे का अंग्रेजी से हिन्दी में रूपान्तर कर रहे हैं। उस दिन दिल्ली में बंगाल, मद्रास, केरल, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि से अनेक क्रान्तिकारी इकट्ठे हुए थे। उस दिन के बाद फिर कभी चतुर्वेदीजी से मिलने का मौका न आया। एक बार भाई सोहनलाल द्विवेदी पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ निकालने की बात आई, तो द्विवेदीजी ने बताया कि 'चतुर्वेदीजी ने आपका नाम सुझाया है उसके प्रकाशकों को।' वह साध्य तो न हो पाया, परन्तु उससे पता चला कि चतुर्वेदीजी का कितना स्नेह और विश्वास मुझे अनायास प्राप्त है।

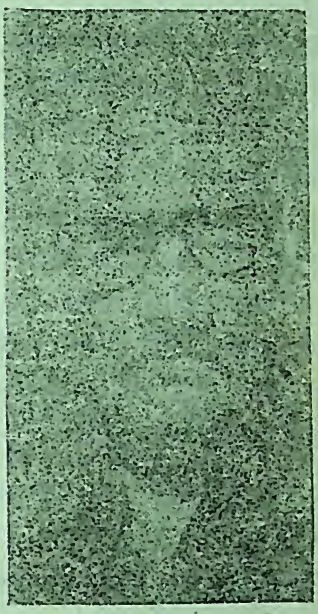

मतभेद या विचार-भिन्नता उनके स्नेह-सम्बन्धों में कभी बाधक नहीं बनती थी। मुझे उनका यह साहस बहुत प्रभावित करता था, जब वे कहते थे 'मैं तो भाई अराजकतावादी (एनार्किस्ट) हूं।' गांधीजी के विश्वास-भाजन और निकटवर्ती होकर भी गांधीवादी कभी बन नहीं सके, क्योंकि तब वह कोरा ढोंग होता। सच में चतुर्वेदीजी को बजाय गांधीजी के अहिंसावाद के रूस के प्रिंस क्रोपाटकिन आदि के क्रान्ति-वादी विचार-दर्शन ने अधिक प्रभावित किया था—परन्तु उन्हें ठीक आज की परिभाषा में 'मार्क्सवादी' कहना गलत होगा।

एक लम्बे समय तक उन्होंने जिस स्तर पर कलकत्ते के, 'विशाल भारत' का सम्पादन किया—उससे हिन्दी जगत की प्रभूत सेवा हुई और उसमें भूले-बिसरे शहीद क्रान्तिकारियों की जीवन-कथाएं जिस प्रमुखता से उजागर हुईं—वह पत्रकारिता-जगत को चतुर्वेदीजी की अपनी देन है—उसी प्रकार प्रवासी भारतीयों के लिए उन्होंने जिस तरह जीवन के २० से अधिक

वर्ष खपाये, वे भी उस क्षेत्र में अपना महत्व रखते हैं, कारण उस जमाने में भवानीदयाल संन्यासी, तोताराम, विष्णुदयाल जैसे कुछ इने-गिने नाम ही प्रवासी भारतीयों के सेवा-क्षेत्र में सुनाई पड़ते थे। वह तो गनीमत हुई तो जो चतुर्वेदीजी सांसद हो गये, दाल-रोटी का कुछ जुगाड़ हो गया वर्ना सम्पादकीय जीवन के बाद स्वतंत्र लेखन करते हुए उन्होंने अर्थाभाव की जो झंझा झेली, वह कम ही लोग जानते हैं। इसी उत्तर प्रदेश के एक बड़े और प्रसिद्ध दैनिक पत्र के सम्पादक से जब कभी चतुर्वेदीजी के लेखन की चर्चा चलती, तो वे अक्सर अपने मुंह में पान के बीड़े भरे हुए कह उठते थे, 'अरे! क्या बताएं, चतुर्वेदीजी बिना मांगे ही लेख पर लेख भेजते रहते हैं। जबकि मैं उनके एक लेख पर कभी १५ रु० तो कभी-कभी १० रु० ही देता हूं और कभी वह भी नहीं भेजता—फिर भी वे लेख भेजते रहते हैं।'

यह रवैया है आज हिन्दी-सेवियों के प्रति उन लोगों का, जो हिन्दी की ही कमाई खाते हैं और सुख-सुविधा का जीवन बसर करते हैं, सरकार-दरबार में मान-प्रतिष्ठा अर्जित करते हैं। दिखावे के तौर पर हम जो घड़ियाली आंसू बहाते हैं या चतुर्वेदीजी सरीखे महान कलम-जीवियों के प्रति श्रद्धा-सम्मान युक्त वक्तव्य प्रकाशित करते हैं—वे कितने खोखले और मात्र मौखिक हैं—यह उक्त वार्ता से स्पष्ट हो जाता है।

एक-दो ऐसे महानुभाव जिनके लेख मैं नहीं छाप सका—उन्होंने चतुर्वेदी जी को 'जनसंघ-संघ' के नाम पर काफी भड़काया, उकसाया, चतुर्वेदीजी उनके उकसाने पर दो-चार पंक्तियां कहीं लिख भी गये—परन्तु फिर आगे जब कभी उन्होंने स्वेच्छया मेरे द्वारा प्रकाशित 'क्रान्ति-विशेषांकों' को सराहा, तो उसका हवाला वे स्वयं ही अपने लिखे पत्र में मुझे देना नहीं भूलते थे। ऐसे उदारमना मनीषी थे वे। उन्हें 'राष्ट्रधर्म-परिवार' अपनी विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता है। ००

किसका हेयरपिन

'सुरेश बेटा, कल तुम मेरी कार लेकर गए थे?'

'जी पिताजी, हम तीन चार लड़कों ने घूमने का प्रोग्राम बनाया था।'

पिता हेयरपिन आगे करते हुए, 'यह उन में से किसी लड़के का छूट गया होगा।'

—डा० गोपाल प्रसाद 'बंशी'

सामाजिक परिवर्तन की चुनौती

● सुशील कुमार मोदी

गंगोत्री से प्रारम्भ होकर गंगा भारत के अनेक राज्यों को अपनी कल-कल, छल-छल आवाज से हिलोरें देती सागर में समाविष्ट हो जाती है। जल का इतना अथाह प्रवाह ! फिर भी बगल के खेत सूखे है ! तटवर्ती शहरों के लोग पानी के लिये त्राहि त्राहि कर रहे हैं ! दूसरी ओर वर्षा में कभी कभी हुंकार भरती हुई अपने किनारों को तोड़ कर सृष्टि को जलमग्न कर देती है। परन्तु यह विनाश भी पृथ्वी की उर्वरता का कारण बन जाता है। बेचारी गंगा प्यासों की प्यास बुझाये बिना ही समुद्र में मिल जाती है ! परन्तु इसमें गंगा का क्या दोष ?

भारत की की १२ करोड़ छात्र-युवा शक्ति का हाल भी बेचारी गंगा जैसा ही है। अदम्य उत्साह, उमंग से परिपूर्ण सवेदनशील, परिवर्तनकारी अक्षय ऊर्जा का यह स्रोत या तो बेकार पड़ा है या फिर कभी गंगा के समान सारी मर्यादाओं को तोड़कर विध्वंस का ताण्डव नृत्य करता दिखता है। शक्ति का प्रवाह है; परन्तु समाज के लिये अनुपयोगी है ! इस शक्ति के रहते देश में निरक्षरता, अस्पृश्यता, गरीबी, बेकारी दहेज, जातिवाद, धर्मान्तरण जैसी समस्याएं कैसे ? 'युवा शक्ति' और 'समस्या' ये दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते ! जाग्रत युवा शक्ति है, तो समस्या नहीं हो सकती। और यदि समस्या है, तो समझना चाहिए कि शक्ति का प्रवाह सूख गया है। परन्तु इसके लिये क्या केवल छात्र-युवा शक्ति ही जिम्मेवार हैं ?

जिस भी व्यक्ति या संस्था ने इस ऊर्जा की शक्ति को पहचाना और उसका उपयोग समस्या-समाधान के लिये किया उसे सफलता अवश्य मिली है। दुनियां के अधिकांश देशों की आजादी का इतिहास इसका गवाह है। गांधी, सुभाष, सावरकर जिस किसी ने आहवान किया, 'युवा शक्ति' ने उसका प्रत्युत्तर संघर्ष, व बलिदान से दिया। परन्तु आजादी के पश्चात् इस शक्ति का उपयोग समस्याओं के रचनात्मक समाधान हेतु नहीं हुआ। परिणामतः यह शक्ति, निराश, हताश होकर समय-समय पर अपनी संचित असीम ऊर्जा को विध्वंस की अग्नि में निःसृत करती रहती है।

आजादी के पश्चात् सरकारी स्तर पर इस ऊर्जा को 'राष्ट्रीय कैडेट कोर' (एन०सी०सी०) 'राष्ट्रीय सेवा योजना' (एन०एस०एस०) व 'नेहरू युवकेन्द्र' जैसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं

द्वारा दिशा देने का असफल प्रयास हुआ है। 'राष्ट्रीय कैडेट कोर' द्वारा युवकों में कठोर जीवन, साहस, शौर्य, सन्य-प्रशिक्षण आदि दिया जाता रहा। सामाजिक बुराइयों व प्राकृतिक विपदाओं के विरुद्ध छात्रों युवकों को तैयार करने हेतु 'राष्ट्रीय सेवा योजना' एवं 'नेहरू युवक केन्द्र' प्रारम्भ किये गये। परन्तु सरकार की अन्य योजनाओं के समान ये कार्य-क्रम भी असफल रहे। संवेदनहीन नौकरशाही द्वारा सरकारी पैसे से संचालित ये अभियान छात्रों-युवकों को सामाजिक कार्य हेतु प्रेरित नहीं कर पाये। ये योजनाएँ समाज-सेवा के नाम पर सर्टिफिकेट, वर्दी, पैसा जलपान और प्रवेश में सुविधा पाने आदि का माध्यम बन कर रह गयीं। आज ये संस्थाएं हर महाविद्यालय व हर जिले में है; परन्तु संचालकों में निःस्वार्थता व सेवा-भाव के अभाव में ये छात्रों में सामाजिक दायित्व बोध पैदा नहीं कर पा रहीं।

गैर-सरकारी स्तर पर युवकों में बीसियों संगठन कार्यरत हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल ने अपने -अपने छात्र-युवा संगठन बनाये हैं। अधिकांश छात्र-युवा संगठन राजनीतिक दलों के अंग के रूप में कार्य करते हैं। 'युवा जनता' कोई 'जनता युवा मोर्चा' 'युवा कांग्रेस' 'राष्ट्रीय छात्र संगठन', 'छात्र क्रान्ति दल' आदि भिन्न-भिन्न नाम हैं। इनका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। ये दल के पुछल्ले के रूप में काम करते हैं। ये मूल राजनीतिक संगठन में छात्र-युवकों की भर्ती के उपकरण-मात्र हैं? हर दल छात्रों-युवकों की फौज चाहता है परन्तु सीमित उपयोग हेतु! अर्थात् सामाजिक परिवर्तन की अगुवाई हेतु नहीं, बल्कि नेताओं की जय-जयकार सभाओं की व्यवस्था तथा जुलूस प्रदर्शन में शरीक होकर शासन से टकराने आदि के लिए। जब कभी इन संगठनों के छात्र-युवा अपनी सीमा का अतिक्रमण करते दिखते हैं और सत्ता में हिस्सेदारी की मांग करते हैं; तो उनकी ओर कुछ टुकड़े फेंककर उनकी धार भोथरी कर दी जाती है। जब इन संगठनों का उद्देश्य ही इतना क्षुद्र स्वार्थ है; तो इनसे सामाजिक परिवर्तन में सहभाग की अपेक्षा ही बेकार है।

इन संगठनों की अपेक्षा वामपंथी छात्र-युवा-संगठन अधिक संगठित एवं उद्देश्यपूर्ण है। एस०एफ०आई०; ए० आई०एस०एफ०, ए०आई०डी०एस०ओ० एवं नक्सलवाद से जुड़े छात्र संगठन, बंगाल, केरल व त्रिपुरा में अधिक सशक्त एवं प्रभावी हैं। ये अपने दल के लिए छात्रों, युवकों की भर्ती कर उनके सैद्धान्तिक प्रशिक्षण का प्रयास करते हैं। कभी-कभार शैक्षणिक एवं आर्थिक मुद्दों पर संघर्ष भी करते हैं। सामाजिक परिवर्तन में छात्रों की भूमिका के बारे में उनका सोच अत्यन्त भिन्न है! उनकी मान्यता है कि आर्थिक संरचना

है तथा अन्य सभी प्रकार की रचनाएं (सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि) आर्थिक रचना की उपज हैं। उनकेविचारमेंअस्पृश्यता,जाति वाद, दहेज, अश्लीलता आदि सामाजिक समस्याएँ पूंजीवादी आर्थिक -ढाँचे की उपज हैं। अतः जब तक सत्ता प्राप्त कर आर्थिक ढाँचे को परिवर्तित नहीं किया जायेगा; समस्या-समाधान नहीं होगा। उनकी दूसरी मान्यता है कि परिवर्तन या क्रान्ति की अगुवाई सर्वहारा या मजदूर करेगा तथा छात्र या अन्य वर्ग उसके सहायक होंगे। इस सोच के कारण वामपंथी छात्र-युवा संगठन भारतीय सन्दर्भ में अर्थहीन हो गये हैं। भारतीय समस्याओं को मार्क्सवादी चश्मे से विश्लेषण करने के कारण ये संगठन असंगत व औचित्यहीन बन गए हैं। स्पष्ट है, ये संगठन भी सामाजिक परिवर्तन में छात्रों की शक्ति का इस्तेमाल नहीं कर पाये।

आज तक युवा शक्ति का उपयोग केवल राजनीतिक परिवर्तन के लिये हुआ है। चाहे वह थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया चेकोस्लोवाकिया, हँगरी हो या भारत में १९६७ का गैर-कांग्रेसवाद या १९७४ का छात्र आन्दोलन, जो १९७७ में सत्ता परिवर्तन में परिणत हुआ। इस शक्ति ने निरकुंश, भ्रष्ट, स्वेच्छाचारी सत्ताधारियों को सताच्युत किया है। परन्तु सत्ता-परिवर्तन के बाद हर बार यह शक्ति बिखरी है, बंटी है। या सत्ता के गलियारे में भटकी है। सत्ता-परिवर्तन को ही इसने अपना गन्तव्य मान लिया। सत्ता-परिवर्तन के पश्चात् समाज-परिवर्तन में इस शक्ति को अपनी पहचान बनाना शेष है।

लीक से हटकर

परन्तु इन सबसे परे एक संगठन ऐसा भी है; जो सत्ता एवं दलीय राजनीति से अलिप्त रहते हुए, 'शैक्षिक परिवार' की कल्पना में विश्वास रखते हुए, संघर्ष एवं रचनात्मकता की दोहरी प्रक्रिया द्वारा देश के छात्रों को सामाजिक परिवर्तन के हथियार के रूप में परिणत कर रहा है। यह संगठन है 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद'। यह एक ओर समस्या समाधान हेतु रचनात्मक संघर्ष करता है; वहीं दूसरी ओर समाधान का रचनात्मक विकल्प भी प्रस्तुत करता है। 'बेरोजगारी' के विरुद्ध 'काम के अधिकार' के लिये एक ओर सरकार से जूझता है; वहीं 'अवकाशकालीन रोजगार योजना' 'औद्योगिक प्रशिक्षण शिविर' व 'औद्योगिक भ्रमणों' के माध्यम से रोजगार का मार्ग भी प्रशस्त करता है। शैक्षिक परिवर्तन हेतु धरना, प्रदर्शन व हस्ताक्षर अभियान आयोजित करता है; तो विचार गोष्ठी, चर्चा व परिसंवाद के माध्यम से शिक्षा की वैकल्पिक योजना भी तैयार करता है।

विद्यार्थी परिषद पिछले २० वर्षों से छात्रों के पुस्तकदान द्वारा बुक बैंक, रक्त दान अधिकोष, विद्यादान द्वारा

निःशुल्क शिक्षण व प्रौढ़ शिक्षा, श्रमदान द्वारा श्रमानुभव, महापुरुषों की जयन्ती, प्रतिभा विकास हेतु स्पर्धाएं छात्रसंघ के चुनाव, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष आदि के माध्यम से छात्रों युवकों में सामाजिक कार्य करने की प्रेरणा; दायित्वबोध, परिश्रमशीलता व अनुशासन का संस्कार पैदा कर रही है।

इन कार्यक्रमों से गुजरने वाले छात्र के मन में जातिवाद, अस्पृश्यता, तिलक दहेज व पाश्चात्यकरण के प्रति अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। वह सोचता है कि ऊंच-नीच पर आधारित जाति व्यवस्था क्या उचित है ? विवाह में दहेज, फिजूलखर्ची, दिखावा औचित्यपूर्ण है ? नारी को समानता का अधिकार क्यों नहीं ? यह गरीबी, बेकारी, भुखमरी क्यों ? क्या इनके समाधान में मेरी कोई भूमिका नहीं है ? ऐसे सैकडों सवाल उसे समाधान में योगदान हेतु प्रेरित करते है और समय-समय पर परिषद उनके प्रश्नों को मंच प्रदान कर देती है।

परिषद एक ऐसा आन्दोलन है, जो पूरे देश में हजारों ऐसे युवकों में ध्येयवाद आदर्शवाद उत्पन्न करने में सफल हुआ है; जिनकी जिन्दगी को एक नया अर्थ मिल गया है। जिनके लिये देशभक्ति, स्वदेशी; स्वभाषा, स्व संस्कृति व भारतीय मूल्यों की जीवन में प्रस्थापना है; सामाजिक न्याय जिनके लिये अस्पृश्यता तिलक दहेज, जातिवाद जैसी कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष का प्रेरक है तो आर्थिक समता जिन्हें शोषण, भ्रष्टाचार' अन्याय के विरुद्ध लड़ने की चुनौती स्वीकार कराती है।

और इस सामाजिक बदलाव को लाने का अनोखा तरीका भी ईजाद किया है विद्यार्थी परिषद ने। परिवर्तन की शुरुआत 'स्व'से। इस स्व परिवर्तन के माध्यम द्वारा समाज में परिवर्तन का वातावरण उत्पन्न करना; जिससे समाज के सामान्य लोग भी परिवर्तित होने के लिये प्रेरित हो सकें।

परन्तु क्या यह छात्र-युवा शक्ति अकेले सभी सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है ? क्या निरक्षरता, अस्पृश्यता, बेकारी जैसी विकराल समस्याओं को केवल छात्र-युवा दूर कर सकेंगे ? कदापि नहीं। ये सम्पूर्ण समाज की समस्याएँ हैं। अतः सम्पूर्ण समाज को इस परिवर्तन-प्रक्रिया में सम्मिलित होना होगा। हां, अपनी आस्था एवं अन्तर्निहित क्षमता के कारण युवा अगुवाई कर सकता है, व्यवस्था को जड़े हिला सकता है। परन्तु सम्पूर्ण व्यवस्था को धराशायी करके सुव्यवस्था का नया पौधा रोपने के लिए सब समाज को आगे आना होगा।०

—महामंत्री, अ०भा०वि०प०

'विद्यार्थी निवास,' कदम कुँआ, पटना

युग चेतना

● आरसीप्रसाद सिंह

नाव को मझधार से हमने संवारा है !
दूर मंजिल पर, अभी ओझल किनारा है !

बिजलियां अब भी हमें तेवर दिखाती हैं !
नाचती भंवरें अभी आंखें मिलाती हैं !
घाटियां प्यासी, निगलने को मचलती हैं !
ताड़का-सी चीखती लहरें उछलती हैं !

रंग का मौसम का न बदला, तम न हारा है !
दूर मंजिल है अभी, ओझल किनारा है !

मंत्रणाएं सांपिनी-सी सिर उठाती हैं !
चिर-समस्याएं, भुजाएं आजमाती हैं !
मुट्ठियां फिर तन गयीं, आतंक भ्रामक की;
घण्टियां बजती चली हैं, अग्नि-शामक की !

फिर हमें तूफान ने पापी पुकारा है।
दूर मंजिल है अभी, ओझल किनारा है।

बोध के पुतले जलाये जा रहे पथ पर !
लाश ढोई जा रही ईमान की, रथ पर !
आरती से आग के शोले निकलते हैं !
तैरते आक्रोश के घन, बम उगलते हैं !

वह नहीं जाओ-समय की तेज धारा है।
साथियो, आगे बढ़ो ! ओझल किनारा है !

भूख के आगे, इसी पल का परोसा है !
वंचना के शब्द में, कल का भरोसा है !
पंक से उठते नहीं हैं, प्राण पंकज-से !
मांगते हैं रोशनी, जन्मान्ध सूरज से !

आज अपना ही दिया, हमने संवारा है !
साथियो, आगे बढ़ो ! ओझल किनारा है।

ऊबकर अस्तित्व से जो, हाथ धो बैठे;
जिन्दगी के प्रति, सहज सद्भाव खो बैठे;
जानते कितना कठिन, हर सांस जीना है !
धैर्य के घर में, अतिथि बन अश्रु पीना है !

आज उनके पांव को, देना सहारा है!
साथियो आगे बढ़ो! ओझल किनारा है!

कब भला जादूगरी से, महल बनता है?
हर चुनौती पर यहाँ, विद्रोह ठनता है,
चेतना का बीज हम, हर खेत में देंगे!
मूर्तियों में हम, नया देवत्व गढ़ लेंगे!
स्वर्ग से हमने फरिश्तों को उतारा है!
साथियो, आगे बढ़ो! ओझल किनारा है!

पेट में दाना नहीं, मुँह पर जुगाली है!
देवता नेपथ्य में हैं, मंच खाली है!
सान्त्वना के सेठ का, निकला दिवाला है!
कोष सूना, घर में सोना उछाला है!
प्रगति के बदले, गड़ा मुर्दा उखाड़ा है।
दूर मंजिल है, अभी ओझल किनारा है!

व्यक्ति का स्वातन्त्र्य जब अज्ञान-मूर्च्छित है;
ढोंग है गणतंत्र, मानवता अरक्षित है;
भेड़ हो या भेड़िया, क्या फर्क पड़ता है?
भीड़ के उन्माद का ही नाम, जनता है!
स्वार्थ के नेतृत्व ने, जनमत उभाड़ा है!
साथियो आगे बढ़ो! ओझल किनारा है!

मोतियों को यों बिखरने दो; न माला से!
जब खड़े हो स्वर्ण, भागो तब न ज्वाला से!
कह रहा है क्या हवा का रुख; इसे जानो!
सामने चट्टान है या घाट, पहचानो!
है दिशा जब तक सही उद्भव हमारा है।
साथियो, आगे बढ़ो! ओझल किनारा है।

सूत्र यह उसके लिए है, जो इसे जीले?
इस अमृत के बिन्दु को, जो छानकर पीले?
खिड़कियां जिसकी खुली हैं, मुक्त आंगन है!
भूतपूर्वाग्रह-ग्रसित; जिसका न चिन्तन है!
बुद्धिमानों के लिए काफी इशारा है!
साथियो, आग बढ़ो! ओझल किनारा है।

'भारतीय विद्या भवन' का वह अनन्य सेवी

'भारतीय विद्या भवन' की स्थापना भारतीय संस्कृति के प्रचार - प्रसार के लिए हुई थी। इस पावन उद्देश्य के लिए समर्पित इस संस्थान की स्थापना व विकास का मार्ग प्रशस्त करने में जिन इनी-गिनी विभूतियों ने अपना योगदान दिया था, उनमें सेठ मूंगालाल का स्थान अन्यतम था। मोटे लट्ठे की धोती पुरानी मैली बण्डी तथा चन्दन का तिलक व तुलसी की मालाधारी कौन थे सेठ मूंगालाल —

श्री कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशी की गिनती उन दिनों बम्बई के सर्वाधिक यशस्वी और व्यस्त वकीलों में होती थी। उनके दफ्तर में सदा नगर के धनी और प्रतिष्ठित लोग ही आया करते थे, इस लिए उस दिन उन्होंने जब अपने दफ्तर में एक साधारण से दीखने वाले व्यक्ति को, जो मोटे लट्ठे की धोती, और पुरानी मैली बण्डी पहने था, देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये। और, उनका आश्चर्य तब और भी अधिक बढ़ गया, जब उन्होंने इस मामूली आदमी की गैर-मामूली बातें सुनीं।

वह आदमी उनसे कह रहा था, देखिये वकील साहब, मै इस आशा से आपके पास आया हूं कि आप मुझे गलत सलाह नहीं देंगे। अपने काम में व्यस्त होने के कारण, मुंशीजी ने अपने मेहमान पर एक सरसरी नजर ही डाली थी। अब भरपूर नजर डालने पर उन्हें पता लगा कि ये तो सेठ मूंगालाल थे; उनके पुराने मुवक्किल। उन्होंने मुस्कराकर उनसे कहा, मैंने कभी आपको कोई गलत सलाह नहीं दी, और आज भी नहीं दूंगा। पूछिये, क्या पूछना है ?

"मेरी समस्या यह है, वकीलसाहब कि मैंने हाल ही में छः लाख कमाये हैं। अब मैं यह सारी रकम दान में देना चाहता हूं।

'बड़ा नेक विचार है, सेठजी। मगर यह तो बताइये कि आप पहले इससे भी अधिक राशि कमा चुके हैं, मगर कभी उसे या उसके किसी भाग को दान करने का विचार आपके मन में नहीं आया। आज क्या नयी बात हो गयी ?

"मैं नहीं जानता, वकील साहब कि इस पूरी राशि को दान करने का विचार मेरे मन में क्यों आया? मगर जब आ ही गया हैं तो मैंने फैसला किया है कि मैं उसे उपयुक्त पात्र या संस्था को दान

दूं। आप कृपया सोचकर मुझे सलाह दें कि मैं उसे किसे दान करूं ?

सेठ को टालने के उद्देश्य से श्री मुंशी ने उनसे कह दिया "ठीक है, मेरी सलाह आपको तब मिल जायेगी, जब आप देने को तैयार होगें।' सच तो यह है कि वे सेठजी की बात गंभीरता से नहीं ले रहे थे। श्री मुंशी अपने काम में लग गये। बात आयी-गयी हो गयी।

कुछ दिन बाद, जब मूंगालाल ने श्रीमुंशी के दफ्तर में पुनः प्रवेश किया, तो उन्हें सेठ की उस दिन की बात फिर याद आ गयी। उन्होंने सेठ की ओर प्रश्न-वाचक नेत्रों से देखा। सेठजी गिड़गिड़ाते हुए उनसे कहने लगे, वकील साहब, मैं एक बड़े धर्म संकट में फंस गया हूं, और आपसे सलाह चाहता हूं कि उससे कैसे निकलूं ?

'कैसे धर्म-संकट में पड़ गये है आप ?'

'धर्म संकट यह है कि जब मैं पिछली बार आपसे मिला था, तब मेरे टाटा डैफर्ड के शेयरों की कीमतों में अचानक वृद्धि हो जाने से मुझे छः लाख का लाभ हुआ था। मगर, तब से शेयरों की कीमतें और ज्यादा बढ़ी है, और मेरा लाभ बढ़कर आठ लाख हो गया है। मैं अब आपसे यह सलाह लेने आया हूं कि इस दो लाख की अतिरिक्त राशि का मैं क्या करूं ? ठीक सलाह देकर, मुझे मेरे धर्म-संकट से उबारिये; वकील साब।'

मुंशीजी सेठ की बात सुनकर चकित, स्तब्ध रह गये। सेठ की अक्ल सलाम है या नहीं, उन्हें इस बारे में सन्देह लगा। वे कुछ सोच ही रहे थे उन्होंने सेठ को कहते सुना—

'वकील साहब, मेरी बातें बुरा खफा न हों। आप जैसे नामी और मंद आदमी के सामने, मेरे जैसे मा आदमी की अक्ल क्या हस्ती ! आ सोचने का समय न मिला हो, तो मे बानी करके इतना ही बताने की कृपा कि यदि आठ लाख की राशि सं भाषा के विकास, गोमाता की से संवर्धन तथा भारतीय संस्कृति के रुत्थान के लिए खर्च करूं, तो आप पागल तो नहीं मानेंगे ?'

इस राशि का इससे बेहतर और क्या होगा, सेठ जी ! मुझे यह निश्चय बहुत पसन्द आया। मुं ने कहा।

'आपकी बात सुनकर मन को तसल्ली मिली, वकील साहब। अब मैं चलूं। फिर कभी आपके करूंगा।

मुंशीजी यह सोचकर अपने का लग गये कि सेठ पागल नहीं, आदमी है और छः-आठ लाख के की बात सोचकर अपनी मौज पूरी लेते है।

तीन सप्ताह बाद। सुबह हुई कि मुंशीजी ने पाया कि सेठ मूंगा उनके घर के दरवाजे पर खड़े हैं इल्तिजा कर रहे है, "वकील सा

यह तो आप जानते ही होंगे कि आज सोमवती अमावस्या है। मेरे ज्योतिषी ने मुझे बताया है कि आज बारह बजे से पहले मैं जो भी दान करूंगा, उसका हजार गुना कल मुझे उस दान के परिणाम स्वरूप मिलेगा। इसलिए मैंने संकल्प किया है कि मैं इस शुभ मुहूर्त में छः लाख रुपये गोमाता की सेवा के लिए और दो लाख रुपये संस्कृत भाषा के विकास के लिए दान करता हूं।

मुंशीजी समझे कि सेठ यह बात अपनी मौज में कहरहे हैं। उन्हें गुस्सा आ गया कि वे बराबर लम्बी चौड़ी बातें करके अपना दिल तो बहला लेते हैं, लेकिन उनका समय बर्बाद कर देते है। उन्होंने कहा, सेठजी। दान करने के लिए नगद राशि चाहिए। आठ लाख की नगद राशि है आपके पास ?'

'आप हुक्म करें, वकील साब! रुपया तैयार है। बस। दलाल को फोन भर करने की देर है। रुपया आपके हाथ में सौंपकर मैं मुक्ति पाना चाहता हूं।

मुंशीजी यह सुनकर चौंक गये। उन्होंने सेठ को अन्दर बुलाकर, फोन करने की इजाजत दे दी। सेठ ने अपने दलाल से कहा, टाटा के मेरे सारे शेयर बेचकर इसी वक्त सारी रकम लेकर वकील साहब के घर चले आओ; मैं दान का संकल्प करके ही वकील साहब के घर से जाऊंगा।

जब तक दस बजे के करीब दलाल नोटों की पोटली लिये, उनके घर नहीं आया, मुंशीजी यही समझते रहे कि सेठ कल्पना-तरंगों में बह रहे हैं। पर अपने सामने आठ लाख के नोटों को देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि सेठ का दान-संकल्प कितना प्रामाणिक और सच्चा था। आठ लाख का दान करते समय, सेठ खुशी से फूले नहीं समा रहे थे।

सेठ मूंगालाल के दान की इस राशि से ही 'भारतीय विद्या भवन' की मुंशीजी की कल्पना को मूर्त्तरूप देने की शुरूआत हुई। तभी, उन्होंने भारतीय विद्या भवन का लक्ष्य निर्धारित किया, जो इस वेद उक्ति पर आधारित था, 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' (हमें प्रत्येक दिशा से शुभ विचार प्राप्त हों)

सेठ मूंगालाल एक धनी मारवाड़ी व्यापारी थे, लेकिन अन्य धनी मारवाड़ी व्यापारियों से बहुत सी बातों में भिन्न थे। पहली उनकी वेशभूषा बड़ी सीधी सादी थी। मोटे लट्ठे की धोती और पुरानी मैली बण्डी, भाल पर लगे चन्दन का एक तिलक और गले में तुलसी की माला देखकर कोई भी यह कह सकता था कि वे धार्मिक व्यक्ति है। लेकिन उनकी धार्मिक भावना सच्ची थी; दिखावटी नहीं -वे कितने ईमानदार और सत्यवादी थे, इसका पता पाठकों को यह सच्ची तथा सुनकर लग गया होगा।

सेठ मूंगालाल एक लोटा और डोर लेकर राजस्थान से बम्बई आये थे, और अपने पुरुषार्थ तथा अपनी ईमानदारी के बल पर इतने धनी बने कि उस काल में भी आठ लाख की राशि (जो आजकल करोड़ों में बैठेगी) शुभ कार्यों के लिए दान कर सकते थे।००

अश्क के फूल

● सुरेन्द्र कुमार मि

मैंने अपनी डाक्टरी की इस अल्प अवधि में ही बहुत सारे रोगियों को देखा है। किन्तु यह रोगी सबसे भिन्न और विचित्र है। यह विदेशी है और पड़ोसी देश से अपना उपचार कराने के लिए ही इस देश में आया है। हृदय के रोग का यह मरीज– सुनता हूं– एक विख्यात चित्रकार है। इसने अपनी युवावस्था में अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए विदेशी साम्राज्यशाही के खिलाफ आजादी की लड़ाई लड़ी थी, किन्तु आजादी के बाद इसका देश पुनः तानाशाही की गिरफ्त में आ गया और सैनिक शासन के हथकंडों में पड़कर लोकतंत्र के पथ से विमुख हो गया। फलतः सभी बुद्धिजीवियों, कलाकारों के साथ फिर इसको जेल की संकीर्ण भूमि में अपनी प्रतिभा की समाधि लगानी पड़ी। थोड़े दिनों के लिए जेल से बाहर निकलने पर इस चित्रकार ने भूमिगत होने के लिए भरसक कोशिश की, किन्तु उस देश के हुक्मरानों को बड़ा भय लगा। क्योंकि देश की छाती पर तोप लगाये मार्शल प्रशासकों का इसके चित्र से लहू सूख जाता था। करोड़ों इसके प्रदर्शित चित्र से दरक ए और करोड़ों रगों में खून की खौफनाक धार बहने लगती करोड़ों दिल अंगारों से जल थे और देश का प्रबुद्ध वर्ग इन की रेखाओं द्वारा देश की ही ज्यशाही के प्रति विद्वेष से भर था। तब हुकूमत ने इसे एक बा इसे अंधेरी कोठरी में डाल दिया

सूने आसमान और सूर चमकीली रोशनी से दूर यह साल तक अंधेरे में सड़ता फिर कुछ दिनों के लिए इसे छोड़ दिया गया। तब इसको स्वच्छ हवा, आंखों के सामने मिल चांदनी, सवेरे का उगता और उड़ती चिड़िया नसीब हो किन्तु हाय! फिर इसको एक उसी कालेघर में ठूंस दिया गया तनहाई में इसका दिल अकेले झगड़ाते, धड़कते बीमार हो कलाकार की जीर्ण दशा और सुनकर सारा देश क्षुब्ध हो उठा देश की धरती आक्रोश से भर फलतः चीख-पुकार सुनकर

प्रशासन को विवशतः इसे छोड़ देना पड़ा।

लम्बी कैद और बीमारी ने इसे असमय में ही बिल्कुल बूढ़ा बना दिया। इसे इलाज, सुविधा और आराम की अत्यंत आवश्यकता थी; किन्तु उस देश में यह कहां मुमकिन, जहां मानसिक परिपक्वता ही संघर्ष का मूल समझा जाता हो और प्रतिभा हथियारों के नीचे चुपचाप सिसकने को विवश हो।

मैंने अबतक हृदय का ऐसा रोग नहीं देखा था। इस दिल की धड़कनों पर आश्चर्य होता है। हैरत होती है कि यह इतनी तेजी से चल कैसे रहा है! यह रोगी विचित्र-विचित्र बात करता है—"डाक्टर! तुम मेरे दिल का इलाज नहीं कर सकते। वह तो मेरे मुल्क में बिखरा रो रहा है। वह तो अपने वतन के हमजोलियों के सीने में सिसकता तड़प रहा है। वह तो मेरे रंगों की दुनिया में दम तोड़ रहा है—कूची झाड़ बन गयी है, रंग लहू बन गया है, कैनवास सुफेद हो गया है और चित्रकार मुजरिम बन गया हैं। मेरा दिल तस्वीरों के नगीने में, वतन की वादियों में, अपने मनहूस लमहे लेकर बेमुरौव्वतों की संगीनों के तले पिस रहा है। इस धड़कते दिल में बीवी

के अरमान धड़क रहे हैं, बच्चों के आंसू छलक रहे हैं, उन औरतों की सूरतें धड़क रही हैं— जिन्हें अपने शौहरों से दूर रखकर इसीलिए बेगुनाह तड़पाया जा रहा है कि उनके मर्द अपने दिमाग से काम लेना जानते हैं, अंधेरगर्दी व जुल्म के खिलाफ जेहाद छेड़ना जानते हैं और सीने में एक दिल रखकर जजबाती ख्यालों का इजहार करना जानते हैं।"

मैं चुपचाप इस मरीज का खून का दबाव देखता रहता हूं, इसके

दिल की धड़कनों का चार्ट बनाता रहता हूं और इसे सांत्वना देता रहता हूं–" आपका दिल तो बीमार नहीं है " किन्तु मेरी बातों पर कलाकार का विश्वास नहीं टिकता; और टिके भी तो कैसे–जब टिकिया और इंजेक्शन उसे घंटे-घंटे तबाह करते।

रोगी को चलने–फिरने ज्यादा उठने बैठने और दौड़ने-की मनाही कर दी गयी थी, क्योंकि रोग के बढ़ जाने की आशंका थी। किन्तु सीमा पार से जब कोई उसका दोस्त उससे मिलने आ जाता, तो वह दौड़कर उससे लिपट जाता। पहली मंजिल के अपने कमरे में रखी अपनी चीजों को वह उन दोस्तों को अवश्य दिखलाता; जिसमें दुनिया भर के खिलौने, दस्तकारियों के नमूने और अपने बने-अधबने चित्र, कूंची, रंग व कैनवास के टुकड़े थे। उन दोस्तों को वह अपने उस दिल को भी दिखलाने का यत्न करता, जो पूर्णतः खोखला हो गया था और जहां से तानाशाही हुकूमत से जले विक्षुब्ध जजबात–तस्वीरों की आकृति में कैनवास के उस छोटे से टुकड़े पर यथार्थ बनकर उतरते थे।

कल मैं यूकेलिप्टस के लम्बे-लम्बे पेड़ों से घिरे अस्पताल के उसके कमरे में उससे मिलने गया, तो जाड़े का मौसम शबाब पर था। सूरज की उगती लाल किरणों से ओस की बूंदें सोने के समान चमक उठी थीं कलाकार ने खिड़की के बन्दशीशों ओर संकेत कर कहा–"ये झिल मिलाते शबनम मेरे वतन के जमीं के झरते अश्क हैं–जहां सतरियों वूटों के नीचे पिस कर जमीं सुर्ख उठी हैं और हरीहरी घास उगनीक हो गयी हैं। सुबह से शाम तक अजीज मुल्क हिफाजत की डोर वंधा खामोश दम तोड़ रहा है आइनेजजबात जहां गर्द–गुब्बार सतह दर सतह ढंक गया हैं; न तो आजाद हवा चलती हैं और परिंदे गाते हैं। वहां आसमां सा कर सांस लेता हैं और वतन जंवामर्दी बूढ़ी होती जा रही हैं।"

कलाकार के चित्रों और प्रकृति के साहचर्य से बने उसके अन्तर खूबसूरत मंजरों से मैं अवाक् उठा। अपने इन जजबातों को उ लते वह हांफने लगा; तो मुझे रोकना पड़ा; क्योंकि आवेश आना उसके लिए खतरनाक था।

इस देश के बारे में सुनकर कल कार की आंखों में आंसू आ गये। खुशी से खिल उठा, फिर ठहाका मारकर हंसने लगा। तभी अप

मुल्क को याद कर गुस्से से उसका चेहरा तमतमा उठा—"इस मुल्क के हुक्मरानों पर लात मारकर और इसके लोथड़ों को बेजा काटकर जिन गुनहगारों ने अवाम के अरमानों, मनुहारों को अपने हुकूमत की चक्की के नीचे पीस दिया—खुदा कयामत तक उन्हें माफ नहीं करेगा। आह ठंढी हवा! ओह इस देश की आजाद फिजा! अवाम के अरमानों का यह लहलहाता चमन! इस मुल्क की बंजर जमीं भी जन्नत की क्यारियों से बेहतर हैं।"

वह आवेश में आ गया। यह उसके लिए खतरनाक था। मैने उसे रोका तो उसने मौन साध ली। किन्तु मैं जानता हूं कि कलाकार का हृदय कभी मौन नहीं रह सकता और कोई भी जंजीर उसके दिल को बांध नहीं सकती। वह तो पहरों से परे, निर्बन्ध, भय से मुक्त और आजाद तबियत का होता है।

यह बात मैं अच्छी तरह जानता था, किन्तु कलाकार की भलाई के लिए मैं उसको हमेशा बातों में भुलवाये रखता, क्योंकि अकेले में उसको और दम घुटता महसूस होता था और दिल की धड़कन बढ़ जाती थी।

अंततः एक दिन चित्रकार का हृदय थक गया। संघर्ष से जूझता उसका भावुक दिल इस बर्बर दुनिया से दूर जाने को उद्यत हो उठा। हृदय विशेषज्ञों की पूरी जमात ने स्पष्ट कह दिया—"अब चित्रकार की अंतिम सांसे ही चल रही हैं।"

'अब तो कोई उम्मीद नहीं'-यह सोचकर मेरा दिल तड़प उठा। तभी एक बूढ़े डाक्टर ने कहा—"वैसे तो अब आशा क्षीण हो ही चुकी है, किन्तु यदि रोगी के शरीर में रोग से लड़ने के लिए कुछ शक्ति अवशेष हो, तो टिकने की उम्मीद की जा सकती है।"

दिल मायूसी से भर उठा—'हां, अंतिम क्षण तक अंतिम प्रयत्न के लिए बची हुई संपूर्ण शक्ति कभी-२ लौट आती हैं।" किन्तु मैं समझ रहा था कि मैं स्वयं को भटकाने की कोशिश कर रहा हूं!

डाक्टरों के जाने के बाद मैं खोया-खोया सा उस मनहूस अस्पताल में घूमता रहा। मरीज की हालत देखी, तो उसकी सांसें धीरे-धीरे चल रही थीं। बड़ा वीरान सा लगने लगा और मन उदासी से भर गया। यूंही टहलते-टहलते कलाकार के कमरे में पहुंच गया, जहां उसके हाथ से बनी हुई तस्वीरें और सजी हुई उसकी अनगिनत चीजें उसकी मौत से बेखबर और दर्दों की दुनियाँ

से दूर मन को उल्लसित कर रही थीं। मैंने आलमारी खोलकर उन चित्रों को निकाला जो कलाकार के दिल के दर्पण थे। एक चित्र का शीर्षक था–"कत्ले–आम'। उस वीभत्स और रोंगटे खड़े कर देने वाली तस्वीर में औरतों और बच्चों की छाती पर चढ़े, गर्दन में संगीन चुभाते कुछ बर्बरों को दिखलाया गया था। दूसरा चित्र था, 'मैं जिंदा हूं'। इस चित्र में एक चित्रकार को अपने ही रंगों से सनी अपनी कूंची से हथियारों से लैस बर्बर सैनिकों से जूझता हुआ दिखलाया गया था।

तभी उसकी डायरी मिल गयी। डायरी के खोलते ही सामने वाले पृष्ठ पर लिखा मिला— मैं मौत से जूझ रहा हूं, क्योंकि मैं मौत के सामने हारना नहीं चाहता। अपनी मौत से मेरे सभी अरमान मैयत हो जायेंगे। मैं जीना चाहता हूं। यदि खुदा मुझे संगीनों के कत्ल करवा देगे, तो मैं अवाम के दिलों में आरामगाह बनाऊंगा, उनके दिलों में जिंदा रहूंगा। मैं सिंध की घाटियों में जिंदा रहूंगा। मैं मुल्क की बंजर जमीं के जर्रे-जर्रे में जिंदा रहूंगा। मैं अपनी तस्वीरों में जिंदा रहूंगा। मैं जम्हरियत के अरमानों में जिंदा रहूंगा। मैं जुल्म से जूझते अपने नाकामयाब साथियों के टूटते कहकहों के बीच जिंदा रहूंगा।

पढ़ते ही मेरा रोम-रोम दहक उठा। खून की गर्मी से बदन की रंगें जल उठीं। बीमार दिल का यह चित्रकार क्या कभी मर सकता है? यह निर्बन्ध आजाद तबीयत का दिल कभी सीखचों में बंध सकता है? नहीं, कदापि नहीं!

मैं निर्णय नहीं ले पा रहा था कि ये चित्र और चित्रकार की डायरी में लिखी ये जज्बातें उसकी मौत के संकेत हैं या जीवन के। मै उन चीजों को आलमारी में यथावत् रखकर आगे बढ़ गया। खिड़कियों में सजे गुलदस्ते और गमले बड़े सुन्दर लग रहे थे। बाहर धूप सुनहली थी और ठंठी हवा चल रही थी।

तभी मेरी नजर गुलदस्तों के पीछे छिपे कैनवास के एक टुकड़े पर पड़ी। मैं आश्चर्य से भर उठा और अपने को जब्त न कर सका। आगे बढ़कर देखा तो उसपर एक अजीब तस्वीर बनायी हुई थी। उस चित्र में एक गमले में पौधे की जगह एक ठूंठ खड़ा दिखलाया गया था। गमले में पानी तनिक भी नहीं था। गमले को चारो ओर घेरकर दो स्त्रियों और दो पुरुषों को उसपर झुका दिखलाया गया था। जिनकी आंखों से आंसुओं की बूंदें टप–टप गिरकर ठूंठ पौधे के इर्द गिर्द गमले में पड़ रही थीं और ठूंठ के कोपल में से निकल कर एक नन्ही कली विहंस रही थी। तस्वीर के नीचे लिखा था–'अश्क के फूल'।

मैं चित्र देखकर अभिभूत हो गया।

(शेष पृष्ठ १३१ पर)

हमारे विशिष्ट उत्पादन

स्पेशल
पानछाप
जाफरानी पत्ती

स्पेशल
भोलाछाप
जाफरानी पत्ती

चाँदनी पत्ती

चाँदनीछाप
जाफरानी पत्ती

भोलाछाप
जाफरानी पत्ती

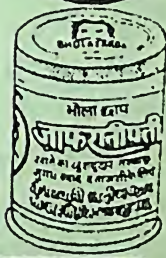

तेरा है न मेरा है, यह नम्बर ३१३ है।

निर्माता केसरवानी जर्दा भण्डार, सहसौं, इलाहाबाद
वितरक: केसरवानी एण्ड कं., सहसौं, इलाहाबाद

डाक्टर महेश नारायण

वे थे प्रथम राष्ट्रपति

एक बार 'भारत कोकिला' श्रीमती सरोजनी नायडू ने कहा था कि राजेन्द्र बाबू के बारे में कुछ भी लिखने के निमित्त हीरे की कलम को मधु में डुबाना पड़ेगा। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है 'देश में बहुत से नेताओं को मैंने आदर सम्मान पाते देखा, पर जनता से जो प्रेम राजेन्द्र बाबू को प्राप्त है, वह शायद ही किसी को नसीब है।' यही कारण है कि वे 'अजातशत्रु' कहे जाते थे और सरलता की ही नहीं, महानता की भी प्रतिमूर्ति समझे जाते थे। देश का काम करते हुये उनका सम्पर्क बहुतों से हुआ, पर शायद ही कोई उनके पास से असंतुष्ट हो आया हो। राष्ट्रपति-भवन में विदेश से भेंट की गई एक कीमती कलम अर्दली तुलसी से गिर कर टूट गई। पहले उस पर बहुत रंज हुये, पर पीछे उससे माफी मांगी। राष्ट्रपति के इस व्यवहार से तुलसी दंग हो मूक रह गया।

सन् १९४२ में इलाहाबादमें कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक हुई। गांधीजी उसमें नहीं आये। युद्ध में असहयोग करने और 'करो या मरो' के नाम पर सत्याग्रह करने के आशय का प्रस्ताव लिख मीरा बहिन से 'स्वराज्य-भवन' भिजवा दिया—इस निर्देश के साथ कि जरूरत पड़ने पर आवश्यक संशोधन राजेन्द्र बाबू करेंगे। नेहरूजी को प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। उन्होंने अपना प्रस्ताव पेश किया। बहस के बाद मत-विभाजन हुआ, तो राजेन्द्र बाबू द्वारा संशोधित बापू के प्रस्ताव पर सात, नेहरूजी के प्रस्ताव पर चार वोट आये। लोगों के चेहरों पर विषाद की रेखा थी, कि ऐसा न हो कि कांग्रेस विभाजित हो जाय। समाधान राजेन्द्र बाबू ने निकाला। कहा, सूचिका में पारित प्रस्ताव के रूप में बापू द्वारा प्रेषित प्रस्ताव ही रहेगा और प्रेस में पंडितजी का प्रस्ताव जायेगा। यही हुआ। कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद ने लिखा है कि ऐसा होने से कांग्रेस विभाजित होने से बच गई।

बहुतों की धारणा है कि राजेन्द्र बाबू प्रधानमन्त्री जवाहर लालजी के हर काम को आंख मूंद कर समर्थन करते थे। ऐसी बात नहीं है। राष्ट्रपति की

क्या देश की तरुणाई भारत माँ के इस सपूत द्वारा दिखाई गई राह पर चलने का संकल्प लेगी ?

हैसियत से प्रधानमन्त्री की राय के विरुद्ध पुनर्निर्मित सोमनाथ के मन्दिर का उद्घाटन और 'हिन्दू कोड बिल' का विरोध इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। हां, वे इस बात का जरूर ख्याल रखते थे कि स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री में साधारण बातों में ऐसा मतभेद न हो कि खराब परिपाटी का प्रचलन हो जाए।

राष्ट्रपति-भवन में रहकर भी अपना खाना-पीना, वेषभूषा व व्यवहार सरल रखा। उनके हर क्रिया-कलाप में भारतीयता की छाप थी। एक बार एक वरिष्ठ अधिकारी के अनुरोध से राष्ट्रपति भवन में एक स्वामी का प्रवचन हुआ। आयोजकों ने प्रसाद के लिए अच्छी मिठाइयों का प्रबन्ध किया था, पर राष्ट्रपतिजी ने अपनी ओर से बताशा ही मंगवाया। उनके बारह वर्षों के राष्ट्रपति काल में वैभवपूर्ण राज-

कीय निवास में (जहां 'बाल डान्स' होता और शराब का दरिया बहता था,) अब साहित्य की सरिता बहने लगी।

राजेन्द्र बाबू जब संविधान-निर्मात्री परिषद के अध्यक्ष थे, तो अपने किसी निकटस्थ सहयोगी की कटु आलोचना से दुःखी हो पदत्याग करने का निश्चय किया। त्यागपत्र लिख बापू के पास आये। बापू ने इनकी सारी बातें सुनकर कहा, ऐसी परिस्थिति में कोई भी व्यक्ति वही करता, जो आप कर रहे हैं, पर मेरी राय है कि आप उस विष को पी जायें और नीलकंठ बनें। राजेन्द्र बाबू ने अपना त्यागपत्र फाड़कर फेंक दिया।

कुछ लोग ऐसा अनुमान करते हैं कि राजेन्द्र बाबू का १९५७ में तृतीय बार राष्ट्रपति चुना जाना उप-राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन ने अपनी उपेक्षा मानी थी और वे दुःखी रहते थे। १९६१ में राष्ट्रपति जी संघातिक रूप से बीमार हो दिल्ली के सेन नर्सिंग होम में दाखिल हुये; तो स्थानापन्न राष्ट्रपति की हैसियत से डाक्टर राधाकृष्णन ने देश-वासियों के नाम मर्मस्पर्शी अपील निकाली थी; जिसमें निवेदन किया था कि अपने प्रिय राष्ट्रपति जी के आरोग्य लाभ के लिये हम मंदिर, मस्जिद और चर्च में सामूहिक प्रार्थना करें।

उनके कांग्रेस अध्यक्ष होने के बाद की बात है। इलाहाबाद में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थायी समिति की बैठक में सम्मिलित होने का टंडन जी का आमंत्रण आया। अपने निजी सचिव मथुरा बाबू के साथ पटना से तृतीय श्रेणी के डिब्बे में चढ़ प्रयाग आये। स्टेशन पर ही एक पवित्र भोजनालय में ठहर स्नान, भोजन किया। तांगे पर भीगे कपड़ों का बंडल लिये 'साहित्य सम्मेलन' भवन पहुंचे। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन इन्हें देख अवाक् रह गये। कहने लगे, फोन कर दिया होता, तो स्टेशन मोटर भेज देता। राजेन्द्र बाबू मुस्करा कर रह गये और बैठक में सम्मिलित हुये। वे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जन्म काल से उस सम्बन्धित रहे। आप सरस्वती के पुराने लेखकों में भी थे।

डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद 'भारतीय इतिहास परिषद' के जन्मदाता तथा अध्यक्ष रहे। आपकी प्रेरणा से प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने भारतीय इतिहास को दस खण्ड में लिखने की योजना बनाई; जिसके दो खण्डों का प्रकाशन 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' नाम से हुआ। इसमें जय मेजय से नागयज्ञ तक का इतिहास आया है

जेल-जीवन में आपने दो महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की। एक अपनी 'आत्मकथा' (हिन्दी) और दूसरी 'इण्डिया डिवाइंड' (खण्डित भारत) अंग्रेजी में। 'चम्पारण में महात्मा गांधी' भी आपकी प्रसिद्ध पुस्तक है। आगे चल तीन अन्य

पुस्तकें और हिन्दी में प्रकाशित हुई। 'बापू के कदमों में' 'संस्कृत का अध्ययन' और, 'योरुप यात्रा'। १९३०में नमक सत्याग्रह के पूर्व आपके सम्पादन में 'दैनिक देश' नामक हिन्दी पत्र का प्रकाशन होता रहा। १९६२ में अवकाश ग्रहण के पश्चात् अपनी 'आत्मकथा' को अद्यतन करने की आपकी प्रबल इच्छा थी, किन्तु नौ मास के भीतर २८ फरवरी १९६३ को आपका देहान्त हो गया और स्वराज्य के बाद का महत्वपूर्ण संस्मरण आपके साथ ही चला गया।

राष्ट्रपति पद पर आसीन होने के पश्चात् जब पटना आये; तो प्रथम कार्य यह किया कि रुग्णशय्या पर पड़े भारतीय संविधान-निर्मात्री परिषद के अन्तरिम अध्यक्ष, प्रसिद्ध विद्वान, शिक्षा शास्त्री, वयोवृद्ध एवं पत्रकार डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा की कोठी पर जाकर उनके पैर छूकर आशीर्वाद प्राप्त किया। काशी विश्वनाथ मंदिर में गये, तो प्राचीन पद्धति के अनुसार एक सौ एक ब्राह्मणों के पैर धोकर उन्हें धोती-रुपया दान किया। वे जन्माष्टमी के दिन दिल्ली

दक्षिण के लोगों का तर्क यह भी था कि भगवान ने भी पक्षपात किया। सारे अवतार उत्तर भारत में ही हुये। राजेन्द्र बाबू ने कहा, यह ठीक है कि अवतार उत्तर भारत में ही हुये, पर आचार्य तो सारे दक्षिण से ही आये अन्यथा भगवान की सूक्तियों की व्याख्या कौन करता! जबतक एक भी हिन्दू जीवित है, सारा भारत दक्षिण के अधीन रहेगा। इस कथन से भद्रासियों का सारा रोष समाप्त हो गया। सभा राजेन्द्र बाबू के जयघोष से समाप्त हुई।

आप राष्ट्रपति भवन में बराबर पूजा-पाठ तथा कथा करवाते रहते। आपके पुरोहित संस्कृत हिन्दी के विद्वान पंडित गणेशदत्त शर्मा इन्द्र तथा पंडित विष्णुकांत झा (पटना) थे। रात में तुलसीकृत रामायण पाठ कर ही आप शयन करते। आपकी विदाई के समय रामलीला मैदान में ११ मई १९६२ को राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन ने कहा था कि बारह वर्ष राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति भवन में भरत की नाईं बापू को जपते रहे।

स्थित राधाकृष्ण मंदिर में बारह बज रात को जाकर प्रसाद ग्रहण करते थे।

तीसरे दशक में डुमरांवराज के प्रसिद्ध मुकदमे में दीवान हरिजी की ओर से वकील के रूप में आप प्रिवी कौंसिल इंग्लैण्ड गये। सीनियर के रूप में आपके साथ बैरिस्टर हसन इमाम थे नियमतः बहस उन्हीं को करनी थी, पर जज उनके तर्कों से प्रभावित नहीं हुये। उन्होंने जूनियर होते हुये भी राजेन्द्र बाबू से केस समझाने को कहा और इन्हीं की बहस को आधार मान मुकदमे

का फैसला हुआ।

मद्रास गये। किसी राजकीय समारोह में भाग लेना था। उस समय दक्षिण-उत्तर का बहुत विवाद चल रहा था। ऐसी स्थिति में राज्यपाल श्री-प्रकाशजी ने राष्ट्रपतिजी को सभा में नहीं जाने की सलाह दी। राजेन्द्र बाबू नहीं माने। सभा में गये। दक्षिण के लोगों का तर्क यह भी था कि भगवान ने भी पक्षपात किया। सारे अवतार उत्तर भारत में ही हुये। राजेन्द्र बाबू ने कहा, यह ठीक है, अवतार उत्तर भारत में ही हुये; पर आचार्य तो सारे दक्षिण से ही आये, अन्यथा भगवान की सूक्तियों की व्याख्या कौन करता! जब तक एक भी हिन्दू जीवित है, सारा भारत दक्षिण के अधीन रहेगा। इस कथन से मद्रासियों का सारा रोष समाप्त हो गया। सभा राजेन्द्र बाबू के जयघोष से समाप्त हुई।

राष्ट्रपति के रूप में मिले वेतन से केवल अढ़ाई हजार स्वयं लेकर बाकी साढ़े सात हजार कल्याण-कार्यों के निमित्त भारत सरकार को लौटा देते थे। निजी अतिथियों को राष्ट्रपति भवन में अपने खर्च से खिलाते, उनका टेलीफोन बिल स्वयं भुगतान करते। देश में हवाई जहाज से यात्रा कम कर एक सैलून किसी ऐक्सप्रेस या मेल में जोड़ रेल से ही भ्रमण करते। ६४ वर्ष की उम्र में राष्ट्रपति-पद पर आसीन हुये। पूर्व इसके दो वर्ष खाद्य मन्त्री तथा विधान निर्मात्री परिषद के अध्यक्ष रहे। पढ़ाई के बाद का जीवन जेल और सत्याग्रह का रहा। परन्तु सब अवस्था में अपने को स्थितप्रज्ञ रखा। कहते थे देश के लोग जब जो मुझसे चाहेंगे, सदैव सहर्ष करूंगा।

३ दिसम्बर १८८४ को हिन्दुस्तान के पूर्वी छोर, गौतम बुद्ध की पवित्र भूमि बिहार के एक गांव जीरादेई में एक साधारण जमीन्दार-परिवार में जन्मे राजेन्द्र प्रसाद ने एम० ए० तक की परीक्षा में सदैव प्रथम स्थान पाया। इतने कुशाग्रबुद्धि, कि वे शब्द नहीं पंक्ति पढ़ते थे। स्मरण शक्ति ऐसी तेज कि एक बार पढ़ी चीज सदा स्मरण रखते—कामा, फुल स्टाप के साथ। अच्छे से अच्छे पद पर पहुंच कर भी स्वयं कातो खादी के वस्त्र ही पहनते रहे, राष्ट्रपति पद की शपथ उन्होंने हिन्दी में ली थी, संसद में उद्घाटन भाषण हिन्दी में देते। सरकार ने उन्हें 'भारत-रत्न' की उपाधि दी, देश ने उन्हें 'देशरत्न' कहा और समाज ने साधु माना।

—मधुबनी, पूर्णियां (बिहार)

हो अग्निद्वार में प्रवेश !

● अनुरोध मिश्र

अग्निद्वार में प्रवेश करो शीघ्र साथियो !
देश की अखण्डता लगी हुई है दाँव पर।

कौन है जो देश के लिए सहर्ष मर रहा ?
कौन है जो कालिका-करस्थ-पात्र भर रहा ?
कौन है जो देश के विरुद्ध द्वेष झर रहा ?

खोज के निकाल लो, जो पातकी कुभाव से,
छिड़क रहा है नमक आज जले हुए घाव पर।

अंग-भंग से अपंग बन गया स्वदेश है
पाक, लंक, बंग, ब्रह्मदेश से जो शेष है
जो अशेष क्लेश में भी दीखता विशेष है

तुम उसे संभाल लो हे वैवतेय-बांकुरो !
हिचकना न शत्रुओं के कांव-कांव-दाँव पर।

सावधान ! देश के गद्दार हैं लुके-छिपे
जो विदेशियों के हाथ तुच्छ दाम पर बिके
ढूँढ़ लो, तलाश लो, जो हैं रुके-झुके, टिके

भारतीय देह में बसे जो मन विदेश के
डपट दो कि भाग जायें सीस रख पांव पर।

बाह्य शत्रुओं से भीत हम नहीं हैं हो रहे
हम सभीत देश में, जो फूट बीज बो रहे
राष्ट्र का रहस्य खोल, जो सुरा में खो रहे

पामरों को खोज लो, जो देश को ही बेचकर
बैठ मौज कर रहे, तूफान-ग्रस्त नाव पर।

—११५, कॉटनस्ट्रीट, कलकत्ता—७

कहानी

प्रतापनारायण मिश्र

ऐसे लौटे बिछुड़े भाई

वर्षा रुक रुक कर चल रही थी । चाँदनी का उजाला चारो ओर छिटका था । दो लम्बे चौड़े अश्वारोही सरपट-सरपट अपने घोड़ों को दौड़ाते कहीं अनजानी दिशा की ओर बढ़ते चले जा रहे थे । सभी ओर सन्नाटा। उनकी वेषभूषा भाव भंगिमा से लगता था कि वे बहुत बड़े मुस्लिम सरदार या सिपहसालार होंगे । सभी प्रकार के अस्त्रों शस्त्रों से सुसज्जित ।

मार्ग झाड़-झंखाड़ और चट्टानों से भरा था । घोड़े फुर्तीले और सधे हुए थे । उनकी चाल ऐसी कि देखते ही बने । क्या मजाल है कि वे किसी भी पत्थर से टकरा जाएं ? सरदार और घोड़े पसीने में सराबोर । उन्हें गंतव्य पर पहुंचने की शीघ्रता थी । चौकन्ने होकर देखते भी जा रहे थे कि कोई उनका पीछा तो नहीं कर रहा है ? यह यात्रा ही रहस्यमयी थी ।

प्रातः पौ फटते-फटते वे एक मठ के पास जा पहुंचे । मठ संकेश्वर पीठ के शंकराचार्य माधवाचार्य का था । मठ का कर्मचारी शम्भू बाहर झाड़ू लगा रहा था । उसे टप...टप...टप...टप घोड़ों की टापों की दूर से आती आवाज सुनाई दी । उसका माथा ठनका । दो घुड़सवार उसी ओर आते दिखाई दिये । हाथ से झाड़ू छूट कर धरती पर गिर पड़े ।

समय ही ऐसा था । मदान्ध विदेशी मुसलमान आततायियों द्वारा गावों का जलना , लूटना और मां बहनों की अस्मत के साथ खिलवाड़ करना रोज मर्रा की बातें बन गई थीं । नौकर सोचने लगा कि कहीं इन दोनों के पीछे फौज तो नहीं आ रही है । शायद मठ पर आक्रमण होगा, वह तोड़ा जायेगा। शंकराचार्य का जीवन संकट में है, इस कल्पना मात्र से ही वह सिहर उठा। वह समाचार देने अन्दर भागा ।

माधवाचार्य नित्यकर्म से निवृत्त हो पूजा पर बैठने जा ही रहे थे कि शम्भू ने घबराये, लड़खड़ाते, सम्भावित खतरे की सूचना दी । माधवाचार्य

के मुख पर उद्विग्नता के कोई चिन्ह नहीं। समुद्र के समान अति गम्भीर और शान्त। उन्होंने भृत्य से कहा 'शम्भू घबराता क्यों है ? फिर से तो देख कर आ, वे कही दूसरी ओर चले गये होंगे -'

शम्भू साहस बटोर बाहर आया। तब तक वे दोनों मठ के अहाते में घुस आये थे। भीमकाय, काले से बज्र शरीर। चबूतरे के पास एक पेड़ में वे घोड़ों को बांध रहे है। उन्हें चबूतरे की सीढ़ियों पर चढ़ते देख जैसे धक से उसके प्राण निकल गये हों। मुहं से एक भी शब्द नहीं निकल पा रहा था। हाथों परों में एक कंपन सा महसूस किया। शीघ्र ही मन को संयत कर कुछ दृढ़ निश्चय कर सोचा कि पूरी शक्ति के साथ उन पर टूट पड़े और आचार्य के प्राण बचाए, 'मेरा क्या होगा। इसकी रचमात्र भी चिन्ता नहीं। अनाथ अनजान मां-बाप के बेटे को उन्होंने अपने पुत्र के समान पाला था। उपकार की कीमत चुकाने का आजही तो स्वर्ण अवसर मिला है। इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि उसके कानों में भनक पड़ी - 'हम पूज्य शंकराचार्य माधवाचार्य से मिलने आये है, जाकर फौरन उन्हें मेरे आने की इतला करों।'

केवल आचार्य से मिलने का ही तो निवेदन कर रहे है - उसकी
में आई, भागता हुआ अन्दर गया। शंकराचार्य कुटी के द्वार पर ही प्रतीक्षा
खड़े थे कि देखें आगन्तुक कौन है ? उनका मन्तव्य क्या है ? माधवाचार्य
स्मरण हो आया कि तीन माह पूर्व ही किन्हीं दो मुसलमान युवकों का एक
गुप्त रूप से उनके पास पहुंचा था। उन्होंने अपने को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षि
करने का उनसे निवेदन किया था। उन्हें लगा कि हो न हो कहीं वे ही तो दी
कर मिलने नहीं आये ?

'उन्हें अन्दर ही बुला लो' उन्होंने कहा। युवकों ने शस्त्र चबूतरे पर
दिये और जूते बाहर उतार दिये। शम्भू उन्हें अन्दर ले गया। उन्होंने आच
को देखते ही साष्टांग प्रणाम किया। नेत्रों से अश्रुधारा उमड़ पड़ी। वे हि
झुका कर बोले 'अचारिया हुजूर ! नाचीज हम आपकी खिदमत में आदाब
कर रहे हैं। हमने आपको एक खत भी भेजा था, पर कोई जवाब नहीं आया
हमसे क्या खता हुई है ? क्या हमें हिन्दू धरम में शरीक नहीं किया जायेगा।

संदेशा तो मिला था। पत्र का उत्तर यदि शत्रु के हाथों में पड़ जा
तो तुम्हारे ऊपर मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़ते। इसीलिये चाहने पर भी उत्तर
दे सका। वैसे तुमसे संपर्क स्थापित करने का मेरा प्रयास चल रहा
माधवाचार्य ने उत्तर दिया।

उन्होंने वात्सल्य-भाव से युवकों की पीठ पर हाथ सहलाया और बोले
दोनों तो हृदय से आज भी हिन्दू ही हो मेरे बच्चो ! तुम्हारी आत्मा, तुम्
मन आज भी हिन्दू है। जहाँ तक शरीर का प्रश्न है, वह शुद्ध और संस्कारि
कर तुम्हें मैं नया नाम दूंगा। चिन्ता न करो, तुम्हारा यह धर्म परिवर्तन नहीं
परावर्तन होगा—पुनरागमन होगा।

शंकराचार्यजी की स्नेहसिक्त मधुर वाणी सुन उनकी प्रसन्नता का ठिकाना
न रहा। वे चरणों पर गिर पड़े। उनके नेत्रों से विधर्म का कल्मष बह निकला
आचार्य ने उन्हें अपने अंक में समेट लिया। कैसा अदभुत दृश्य था। मान
विश्वामित्र और राम लक्ष्मण वर्षों बाद मिले हों। युवकों का मन मस्ति
अति निर्मल था। हृदय पर से जैसे कोई बहुत बड़ा बोझ हट गया हो। दो
ने शंकराचार्य से अपनी सम्पूर्ण आत्म-कहानी कह सुनाई।

पन्द्रहवीं शताब्दी की बात है। सारा उत्तर भारत विदेशी मुस्लि
राष्ट्र

आक्रांताओं से पादाक्रान्त था। मुहम्मद तुगलक बिन कासिम अब दक्षिण भारत को भी अपने क्रूर पंजों में जकड़ने का प्रयास कर रहा था। उस बहशी ने अपनी सनक में राजधानी के दिल्ली से दौलताबाद बदलने में दिल्ली की पूरी आबादी को ही बहा ले जाने में लाखों लोगों को मरवा दिया था, देवगिरि का नाम बदल कर दौलताबाद रख दिया गया था। ग्रामों, नगरों को जलाता; उजाड़ता तुगलक एक विशाल सेना ले दक्षिण पर भी इस्लाम का झंडा फहराने निकल पड़ा था।

किष्किन्धा के क्षेत्र में एक छोटा सा राज्य था—अनागोदी। वहां का राजा संग्रामदेव अत्यन्त पराक्रमी और स्वाभिमानी था, निःसंतान था। अपने दो छोटे-छोटे भतीजों पर ही अपना समस्त प्यार उड़ेल दिया था। वे अबोध

माधवाचार्य को स्मरण हो आया कि तीन माह पूर्व ही किन्हीं दो मुसलमान युवकों का एक पत्र गुप्त रूप से उनके पास पहुंचा था। उन्होंने अपने को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित करने का उनसे निवेदन किया था। उन्हें लगा कि हो न हो, कहीं वे ही तो छिप कर मिलने नहीं आये हैं!

और अनजान थे। संग्रामदेव की सेना बहुत छोटी थी। तुगलक की सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। छोटी सी सेना विशाल फ़ौज के सामने कब तक टिकती! संग्रामदेव ने अड़ोस-पड़ोस से सहायता मांगी। सबको चेतावनी दी 'सभी मिलकर इन विदेशी शत्रुओं का सामना करो, नहीं तो ये एक एककर सभी को समाप्त कर देंगे, देश पराधीन हो जायेगा -

किसी को भी उसका साथ देने का साहस न हुआ। पर वाह रे शौर्य! जब तक उसके पांच हजार सैनिक जीवित रहे, शत्रु किले में प्रवेश न कर सका संग्रामदेव लड़ते-लड़ते स्वाधीनता की बलिवेदी पर चढ़ गया। दोनों बालक आज भी उस भयानक दृश्य को भूल न सके थे, जब मुहम्मद बिन कासिम की तलवार से उनके माता-पिता का सिर धड़ से अलग हो पृथ्वी पर पड़ा था; रुधिर से धरती लाल हो उठी थी। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्यों हो रहा है? उस समय उनकी आयु ही कितनी थी? कोई आठ-दस-साल की। वे एक कोने में सिसकते चिल्लाते सहम में से खड़े थे!

तुगलक उन अबोधों को उठाकर दिल्ली ले गया था । उन्हें मुसलमान बनाया गया । लोगों ने समझा कि वे भी मार दिये गये । माधवाचार्य को भी इसका समाचार मिला था । उन्होंने बालकों को ढूंढ़ने का प्रयास भी करवाया था, किन्तु सब व्यर्थ । मुसलमानी ढंग से बालकों का पालन पोषण किया गया। उनसे नाम भी बदल दिये गये । अब वे मोहम्मद और अली थे । अपने को असहाय अनुभव करते दोनों भाई जब एकान्त में बैठते, तो परस्पर बात करते 'इन दुष्टों ने हमारे माता-पिता को, चाचा को तथा सारे परिवार को मार डाला हमारा राज्य छीना, हमें विधर्मी किया । हमें भी इनके वंश का समूल विनाश करना है । वे इस बात को कभी न भूले । अब वह हृदयाग्नि अन्दर ही अन्दर धधकती ज्वाला का रूप ले चुकी थी ।

दिन पर दिन, बरस पर बरस बीतते गये । बालकोंको मुस्लिम संस्कारों से पू वायु मण्डल में सैन्य शिक्षा दी गई । पर सिंह की संतान सिंह ही होती है । जब हो वे कुशल रणनीतिज्ञ और योद्धा बन गये - उन्होंने विवेक और बुद्धि से काम लेना प्रारम्भ कर दिया । धीरे-२ उन्होंने तुगलक का विश्वास संपादन क लिया, उसके अति निकटस्थ बन गये । पर मन में प्रतिशोध की बात घुमड़ रहीं । एक दिन उन्हें पता चला कि मुसलमान सेना दक्षिण विजय पर जा रही है । और वे दोनों इस दल के मुख्य सेनापति बना कर भेजे जा हैं ।

वे बड़े प्रसन्न हुए । अब वे विदेशी सत्ता को उखाड़ फेकने का मार्ग निकाल सकेंगे । इस बात का दुख भी था कि क्या अपने पूर्वज हिन्दुओं के ग्रामों, मन्दिरो को ध्वस्त करना होगा ? ऐसा तो हमसे कदापि न हो सकेगा। दोनों भाइयों ने माधवाचार्य से संपर्क करने की सोची । शंकराचार्य हिन्दू जागरण का शंख फूंक रहे है, इसका उन्हें पता था । उन्होंने माधवाचार्य जी को उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में सम्मिलित करने को पत्र लिखा था और एक अति विश्वस्त व्यक्ति द्वारा अपसा संदेश शंकराचार्य के पास भेजा था ।

संयोग से उन्हें अब एक विशाल सेना का अधिकारी बनकर दक्षिण जाने का सुअवसर मिला था । मुसलमान-सेना शंकराचार्य के मठ से कोई बीस कोस की दूरी तक पहुंच चुकी थी । युवकों ने सेना को पड़ाव डालने का आदेश दिया । एक रात्रि जब सभी सो गये 'मोहम्मद' और 'अली' दोनों भाई अस्त्र शस्त्रों से लैस हो डेरे से बाहर निकले । पहरे पर सिपाही और नायक अदब से एक ओर खड़े हो गये ।

नायक ने आश्चर्य स पूछा 'आला हुजूर ! किधर तशरीफ ले जा रहे है ? अकेले ही ! 'हम शत्रु की टोह लेने निकल रहे है' उत्तर मिला। फौरन हमला बोलना है न ? किन-किन गावों और मन्दिरों को बिस्मार करना और आग लगाना है यह भी तो देखना है। देखों चौकस रहना।' फहरेदारों ने झुक कर सलाम किया। उनके घोड़े हवा में उड़ चले। अब वे आचार्य शंकराचार्य के समक्ष थे।

दोनों युवकों ने आचार्य से कहा 'शुद्धि से पहले हमें एक काम और भी करना है—मुहम्मद तुगलक से प्रतिशोध लेना। उसके क्रूर कृत्य का सूद-दर-सूद हिसाब करना है - हम उस विदेशी राज्य को धूल में मिलाकर ऐसा राज्य बनायेंगे जिसे हम 'अपना' कह सके, जिसमें हिन्दू का वर्चस्व हो, हिन्दू संस्कृति और मान बिन्दुओं का बोल बाला हो उनका मुख मण्डल अलौकिक आभा से प्रदीप्त हो उठा। माधवाचार्य उन्हें एकटक देखते रह गये। उनमें वीर पिता की आत्मा की तेजस्वी झलक स्पष्ट थी।

सभी के शस्त्र योजनाबद्ध रूप से जमा कराये जाने लगे। मुसलमान सेना अति प्रसन्न थी कि पुराने घिसे-पिटे शस्त्रों के स्थान पर उन्हें नये शस्त्र मिलेंगे। जिस समय शस्त्रों का अदला-बदली का नाटक चल रहा था, तभी यकायक हिन्दु सेना निशस्त्र शत्रु-वाहिनी पर टूट पड़ी। मुस्लिम सिपह सालार वे दोनों युवक उल्टा अब हिन्दू सेना की कमान का नेतृत्व कर रहे थे। शत्रु सेना के हौसले पस्त हो गये। उसमें भगदड़ मच गई।

"यह कार्य बड़ा कठिन है कैसे करोंगे ? घबराहट अथवा जल्दबाजी में कोई कदम उठाना अच्छा न रहेगा। पहले शत्रु की शक्ति को तोलो, फिर मुकाबले की ऐसी योजना बनाओ जो निष्फल न हो 'आचार्य ने परामर्श दिया। गुप्त मंत्रणा हुई। आज जैसे किसान हाथों में लाठी लेकर चलते है, उस समय वैसे ही लोग ढाल-तलवार और भाला लेकर चलते थे। सभी के पास कामचलाऊ शस्त्र रहते थे। आवश्यकता थी उनमें देश व धर्म के प्रति अभिमान जगाने और संगठित करने की। माधवाचार्य और उनके शिष्यों ने सम्पूर्ण क्षेत्र में घूम-घूम कर देशभक्ति की ज्वाला सुलगाई थी। जन-जीवन में नये प्राण फूंके थे।

ग्राम-ग्राम में संदेशवाहक दौड़ाए गए। सहस्त्रों किसान एकत्रित होने लगे।

यथासमय शंकराचार्य ने तेजस्वी युवकों की बीती कहानी सुनाई। इतने लम्बे अन्तराल के पश्चात् अपने युवराज के दर्शन और और उनके नेतृत्व में शत्रु से दो-दो हाथ करने को लोग लालायित हो उठे। कहीं उनके उत्साह का बांध टूट न जाये, अतः शंकराचार्य ने उन्हें संयत किया।

कुछ समय पश्चात् योजना-क्रियान्वयन का निश्चय हुआ। अल्पावधि में ही उनको प्रशिक्षित कर दिया गया। सबको छोटी-छोटी टुकड़ियों में बांटा गया। नायक नियुक्त हुए। सबको उनका काम समझाया गया। शस्त्र तो सभी के पास थे ही। कुछ जो कम थे वे माधवाचार्य तथा उन युवकों के प्रयास से शीघ्र ही पूर्ण कर दिये गये। अब विशाल हिन्दू सेना प्रत्याक्रमण के लिये सन्नद्ध खड़ी थी। योग्य समय पर पूरे वेग से प्रहार करने के संकेत की प्रतीक्षा थी।

इधर युवक पहले ही अपने पड़ाव में लौट आये थे। उन्होंने अपनी सेना को हुक्म दिया 'जब शत्रु गाफिल होगा, तब हमला बोला जायेगा। दुश्मन बड़ा मजबूत है सभी के शस्त्रों में को नये शस्त्रों में बदलना है।"

सभी के शस्त्र योजनाबद्ध रूप से जमा कराये जाने लगे। मुसलमान सेना अति प्रसन्न थी कि पुराने घिसे-पिटे शस्त्रों के स्थान पर उन्हें नये शस्त्र मिलेंगे। जिस समय शस्त्रों की अदला बदली की नाटक चल रहा था, तभी यकायक निर्धारित समय पर हिन्दु सेना निश्शस्त्र शत्रु-वाहिनी पर टूट पड़ी। मुस्लिम सिपहसालार वे दोनों युवक उल्टा अब हिन्दू सेना की कमान का नेतृत्व कर रहे थे। शत्रुसेना के हौसले पस्त हो गये। उनमें भगदड़ मच गई। सारी शत्रुसेना गाजरमूली के समान काट डाली गई। फटे चिथड़ों में कुछ ही मुसलमान सैनिक बचकर अपनी करुण गाथा सुनाने तुगलक के पास पहुंच सके थे।

युवकों ने दगाबाजी नहीं, पुरानी भूलों का परिमार्जन किया था। दोनों विजयी वीर हिन्दु सेना के साथ शंकराचार्य के मठ वापस लौटे। धूम-धाम से उनकी शुद्धि-समारोह और विजयोत्सव मनाया गया। सहस्त्रों मुसलमान परावर्तित हुए। शंकराचार्य ने स्वयं अपने हाथों से सबको संस्कारित किया और उनके हिन्दू नाम रखे। माधवाचार्य द्वारा उन युवकों का राज्याभिषेक किया गया। तुंगभद्रा और गोदावरी के महासंगम पर विजयनगर की राजधानी की नींव डाली गई। दोनों भाई शंकराचार्य माधवाचार्य के चरणकमलों को पकड़ बैठ गये। वे बोले "आचार्य जैसे चाणक्य के बिना चन्द्रगुप्त की और सूर्य के बिना प्रकाश की कल्पना सम्भव नहीं, वैसे ही आपके बिना 'स्वराज्य' की, विजयनगर हिन्दू साम्राज्य का सपना भी साकार होना कठिन होगा। आवश्यकता है आप

(शेष पृष्ठ १३० पर)

राजमल डांगी

दो हाथ, दो बात

इन दो हाथों की महिमा अपरम्पार है। आये हुये कष्ट कंधों को झेलने पड़ते है, किन्तु इन कष्टों से तो हाथों द्वारा ही निपटा जा सकता है । हाथों का महत्व बातों से अधिक है। जब प्यार से दो हाथ जुड़ जाते हैं, तब शहनाई बज उठती है। परम स्नेह से जुड़े हुये ये हाथ अग्नि के सामने पवित्र जीवन जीने की शपथ लेते हैं। इस प्रकार दो हाथ मिलकर नये संसार का निर्माण करते है।

जब-जब व्यक्ति के दो हाथ किसी का अभिनन्दन करने के लिये जुड़ जाते हैं, तब सड़क के दो किनारे पर खड़े दोनों व्यक्तियों के दृश्य की स्निग्धता आंखों की कोरों से चमक उठती है। ऐसा लगता है मानों सड़क के दोनों किनारे मिलकर एक नई पगडंडी बनाना चाहते हैं।

जब-जब व्यक्ति के दो हाथ किसी जरूरत मंद की सहायता के लिये लालायित हो जाते हैं, तब-तब मानवता का कुंड अमृत से भर जाता है। किसी की सहायता के लिये उठे दोनों हाथ, उसके जीवनक्रम को बदल देते हैं। प्यार से दी गई सहायता नई पगडंडी पर चलना सिखा देती है। अद्भुत है।इन दो हाथों का रहस्य ! किन्तु सोचिये, व्यक्ति के ये दो हाथ जो इतने चमत्कारी कार्य करते है, उनमें एक बांया हाथ भी होता है।बायां हाथ दाहिने हाथ की तुलना में पिछड़े वर्ग का द्योतक है। नित्य शौचकर्म के पश्चात् इसे शरीर की सफाई करनी पड़ती है। इस महत्व पूर्ण कार्य को करने वाला बांया हाथ अनेक बार तिरस्कृत किया जाता है। रुपयों पैसों के लेन देन के ठेके से वंचित किया जाताहै। खाने-पीनेमें इसका प्रतिनिधित्व नहीं होता। स्वागत सत्कार में पूजा पाठ में और तिलक चन्दन लगाने के लिये बेचारा बांया हाथ अनधिकृत है।

पर वाह रे उदार दिल बांए हाथ! तुझे लाख-लाख शुक्रिया जो तू इन कामों से वंचित होने का गम नहीं पालता। तेरे हुक्म से ही सारी सड़क चलती है। जो बांये हाथ का हुक्म नहीं मानता, उसे जीवन भर के लिये पछताना पड़ता है। मोटर, ट्रक हो अथवा सायकिल स्कूटर, सब तेरे कहने में चलते है। धन्य भाग्य है तेरा, ! तेरे गीत गाते गाते ट्रेफिक पुलिस मार्च-पास्ट करती है, तेरे पुनीतकर्तव्य से ही इस विभाग की शान है। तुझे भूलकर सड़क पर कोई ठीक से

जा नहीं सकता और जी नहीं सकता। तेरी महिमा अपरम्पार हैं।

तेरी उदारता और सहायता का कहां तक बखान किया जाए। किसी के तिलक लगाने से भले ही तुझे वंचित किया जाय, किन्तु जब आगन्तुक के गले में पुष्पहार डालने का मौका आता है, तो शीघ्र दांये हाथ से गठजोड़ कर पुष्पहार पहना देता है। तेरा बड़प्पन तो तब और भी अधिक उल्लेखनीय है, जब दायें हाथ से तत्काल जुड़कर अतिथि का अभिवादन करता है।

शुचिता और अशुचिता का चिन्तन तेरे ज्ञानकोष में नहीं है। प्रिय बांए हाथ! तेरा प्यार-भरा ममत्व समस्त कार्यों के लिये जुट जाता है। तू दाहिने हाथ से जुड़कर (मिलकर) जीवन ज्योति में गुणात्मक शक्ति पैदा करत है। धन्य है तेरी उदारता को! किस को समायोजन का गुण सिखाना हो, तो तुझसे सीखें। जीवन के महत्वपू कार्य करने में तुझे तनिक भी संको नहीं। पवित्र और अपवित्र देखने ह दृष्टि दुनियां की कैसी भी तीखी रहे किन्तु तू तो अपने कर्तव्यपथ पर सदै ही अडिग रूप में खड़ा हैं।

अतः हम इनके महत्व को समझ कर आदश्यक सम्मान दें, सत्कार क सहायता दे, इसी में हमारा और उनक आनन्द जुड़ा हुआ है। देश की समृद्धि और प्रतिष्ठा का भावी इतिहास इ पृष्ठभूमि पर बनने वाला है।

—१३/२ राम टेकरी, मन्दसोर

भगवान् बचाए ऐसे मित्र से !

किसी राजा के राजमहल में सेवक के रूप में एक बन्दर रहता था। वह राजा का बहुत विश्वासपात्र और भक्त था तथा राजा के शयनकक्ष में भी बेरोकटोक जा सकता था।

एक दिन जब राजा सो रहा था और बन्दर पंखा झल रहा था, तो बन्दर ने देखा कि एक मक्खी बार-बार राजा की छाती पर बैठ जाती है। पंखे से बार-बार हटाने पर भी वह नहीं मानी और फिर-फिर वहीं बैठती रही।

तब बन्दर को क्रोध आ गया। उसने पंखा छोड़कर हाथ में तलवार ली। अगली बार जब मक्खी रा राजा की छाती पर बैठी, तो उस गुस्से में पूरे जोर से मक्खी पर तलवा चला दी। मक्खी तो उड़ गई, कि राजा की छाती के दो टुकड़े हो और वह शीघ्र मर गया।

ठीक ही कहा गया है, कि मू मित्र से तो बिना मित्र के रहना अच्छ है।

(संकलन : शालिनी अग्रवाल, राजेन नगर, लखनऊ)

चौलादेवी

[६६ वीं किस्त]

● वचनेश त्रिपाठी

'देश पर विदेशी आक्रमण' के सम्वाद ने मुझे विचलित कर दिया—थोड़ी देर के लिए मैं लोक-लोकान्तर की शेष सभी बातें भूल गया, बस, सोचने लग गया—गजनी के सुलतान के कूच का प्रसंग! मैंने सोचा, ऐसा तो कदापि सम्भव नहीं कि उस दुर्दान्त लुटेरे को हमारे देशवासी बिना चुनौती दिये सोमनाथ पर चढ़ आने दें! भीषण संगर-साका होगा, अवश्य होगा और न हो तो समझना होगा कि यह देश निर्वीर्य हो गया है, नितान्त निरीह और पलायनवादी हो गया है। हमारे सबके देखते कैसे कोई आक्रमणकारी इस देश को पद-दलित, अपमानित करता हुआ वापस जा सकता है! यह कभी हुआ नहीं, न होगा। लक्षाधिक लोग बलि-वेदी का शृंगार अपने प्राण-पुष्पों से करने दौड़ पड़ेंगे। यह वाणावलि भीमदेव, इसका यह सहचर रैनसी सभी सत्वर शस्त्र-पाणि हो समरांगण में शत्रु-संहार करते दृष्टिगत होंगे। मेरा तो यही विश्वास है कि भले त्रुटियां और दोष आ समाये हों इस समाज में किन्तु आक्रमणकारी से जूझना इस देश की नियति है; युद्ध में अपने जीवन का मोह न करते हुए देह का अन्तिम रक्त-बिन्दु तक वसु-धारा में बहाना यहां की सांस्कृतिक परम्परा है, राष्ट्र-जीवन की गौरवमयी कर्म-शृंखला है। साधु हो, गृही हो, विरक्त वैरागी हो, या अनुरक्त अनुरागी, सर्व-हारा संन्यासी ही क्यों न हो—सभी देश के इस ऋण से बंधे हैं, देश की माटी का रिश्ता उनके रक्त-कणों में ओतप्रोत है। अपने देशवासी के प्रति उनकी करुणा-वरुणा कोई अवरोध मानकर कभी रुद्ध नहीं रही। वन-वासी वाल्मीकि को इसी करुणा ने, पर-दुःख-कातरता ने उनकी लेखनी को प्रेरित किया और वे 'रामायण' लिखने बैठ गये। लिखते रहे और उनका वह एकान्त आश्रम वैदेही की वैखरी वाणी से, उस वीणा-विनिन्दित स्वर से वर्षानुवर्ष गुंजित होता रहा था। कौन जानता है, यदि आर्या जानकी निर्वासिता, पति-परित्यक्ता होकर वाल्मीकि के आश्रम में न रह रही होतीं और वहीं उनके पुत्र-द्वै लव-कुश का जन्म न होता तो वाल्मीकि ने रामायण की रचना की होती या नहीं!

'कोई एक विलक्षण क्षण ऐसा होता है कि लगता है, समग्र सृष्टि उससे आबद्ध-निबद्ध और आलोड़ित-विलोड़ित हो उठी है, सामान्यजन के जीवन से वह क्षण बिना

किसी नवीनता के ही गुजर जाया करता है परन्तु जिन्हें भगवान ने दोनों हाथों, उन्मुक्त भाव से प्रतिभा का, विद्या-बुद्धि का वरदान प्रदान किया है—वे जैसे उस अनोखे क्षण को अपनी, शब्द-शक्ति से, स्वानुभूति-रस से समग्र समाज-जीवन को आप्यायित, सरस और सुवासित कर देना चाहते हैं—वह दिव्य क्षण मानो उनके लिए सुदीर्घ-काल के लिए काल-पटल पर अचलता से ठहरा प्रतीत होता है और वह उनसे ऐसा बहुत कुछ कहने लगता है जो सत्यं शिवं सुन्दरम् का पर्याय है, प्रेरणा का पूंजीभूत समुच्चय। अरण्य-वासी होकर भी वाल्मीकि के स्वतः के जीवन में एक दिन कभी ऐसा ही विलक्षण-क्षण उथल-पुथल मचा गया था कि वे अपनी उस परम महिमामयी, गरिमा-मयी धर्म-पुत्री (सीता) का मुंह निविड़ ममत्व से, जीवन के समग्र स्नेह से निहारते-निहारते उद्दाम भाव-धारा में डूबने-उतराने लगे थे। कह उठे थे वे जानकी से, 'पुत्री ! मैं आज से तेरे लिए रामायण लिखना प्रारम्भ कर रहा हूं।' और फिर जैसे वह क्षण उनके तापस जीवन में एक लम्बे समय के लिए विरम गया था, अचल हो रहा था—वह अनुदिन बहुत कुछ उस मनीषी से बोलता—बतियाता रहा था और संसार ने साश्चर्य देखा कि रामायण के पृष्ठ-पृष्ठ पर, पंक्ति-पंक्ति में, अक्षर-अक्षर में अव्यय ऊर्जामय वही क्षण मुखरित हो उठा है, परम दिव्यता से रूपायित हो उठा है। वाल्मीकि रामायण में राम का वह तेजोमय रूप उसी दिव्य क्षण ने वाल्मीकि की प्रतिभा रूपिणी तूलिका से चित्रित किया है। यह वही परमा शक्ति है जिसे 'दुर्गा सप्तशती' में 'या देवी सर्व भूतेषु शब्द रूपेण संस्थिता-' बताया है। कहीं शब्द रूप, कहीं विद्यारूप तो कहीं शक्ति-शान्ति-कान्ति-श्रद्धा-चेतना रूप में वही क्षण महिमान्वित है, इस सचराचर सृष्टि में वही एकात्म, अद्वैत क्षण कहीं सारा (साराभूता) तो कहीं दुर्गपारा रूप में और कहीं चिति रूप में अधिष्ठित है। सर्व लोक-महेश्वरी, वागधीश्वरी विष्णु-माया वही है, अति सौम्या भी वह है और अति रुद्रा भी। कहीं वह नैर्ऋती रूपेण है तो कहीं शर्वाणी शिवानी रूप में शिव-सहचरी स्वरूपा। निखिल विश्व के आधार-तल में कार्य-कारणरूपा वही सर्वकारिणी शक्ति है। चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी चामुण्डा भी वही है। किसी ने त्रिपुर-सुन्दरी त्रिपुरेश्वरी कहकर उसकी वन्दना की तो किसी ने उसे भुवनेश्वरी, विश्वेश्वरी जगदम्बा मानकर नमन-स्तवन किया और किसी ने संसार की कारण-भूता माया मानकर उसकी साधना की, क्योंकि वही शक्तिभूता; सनातनी नारायणी है, वही अनन्त वीर्या विश्व-बीज वैष्णवी और जगत की आधार-भूता कात्यायिनी भी वही है। उसे

भौतिक रूपेण कहीं देखना हो तो जगत की नारीमात्र में वही दृष्टव्य है, मूर्त्तिमान सचेतन। सप्राण प्रतिष्ठित।

'अथर्ववेद में देवगण जिज्ञासा करते हैं, विनत-विनम्र हो पूछते हैं उसी महाशक्ति सुन्दरी से कि 'कासि त्वं···?' तुम कौन हो?

वे उत्तर देती हैं—'अहं ब्रह्म स्वरूपिणी।' मैं ब्रह्म स्वरूप हूं। प्रकृति-पुरुषात्मक इस विश्व में और इसके शून्य-अशून्य सभी रूपों में मैं ही परिव्याप्त हूं। रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वदेव, मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, सोम, त्वष्टा, पूषा सब मेरे ही रूप हैं और क्या ब्रह्मा, क्या विष्णु या प्रजापति सब मुझसे ही हैं।

'वही परमा शक्ति आज देशवासी में, मनुष्य-मनुष्य में फिर से जागृत हो, स्फुरित-स्फूर्त्त हो, भारतवासी की शिरा-शिरा में ऊर्जामय स्फुलिंग दहका दे, नवजागरण के वेग से जन-मानस पर छाया सब गर्द-गुबार; संचित राख की तहें तार-तार हो वायु में छितर जायें तो देवता को तब कोई बाहर खोजता नहीं फिरेगा। अरे, अपना देवता तो अपनी ही आत्मा में छिपा बैठा है। वीर-व्रत धारण करके, देश के लिए सर्वत्यागी-संन्यासी बनकर हम उस देवता का प्रकटीकरण, उसका बहिर्जगत में प्रादुर्भाव साध्य बना सकते हैं। शुंभ-निशुंभ-मर्दिनी वह महाशक्ति अपने नवीनरूप में क्या आज विदेशी आक्रान्ता का मान-मर्दन नहीं कर सकती? क्यों महात्मन्! मेरा यह कथन क्या भ्रान्त है, मात्र कल्पना या जल्पना?'

'बाबा! पर्याप्त देश-वार्ता चलाकर मैंने सहसा उस अवधूत से पूछा तो वह गम्भीर मुद्रा से कहने लगा—देख! जिस महत्तत्व किंवा परमाशक्ति की तू बात कह रहा है वह क्या कहीं किसी देश-काल-परिस्थिति-सापेक्ष है या उससे बंधी है, सीमित है? वह तो जगद्व्यापिनी है, जो भी देश, समाज या जाति चाहे अपनी कठिन साधना से उसे अपने में, अपने लोगों में, गोष्ठ-जाति-समुदाय-समाज में प्रतिष्ठित और प्रत्यक्ष कर सकता है। भले उसका स्वरूप हमारी कल्पना या धारणा से नितान्त भिन्न हो। हम उससे अति क्रूर कर्म भी सम्पन्न कर सकते हैं और लोककल्याण रूप में भी उसका प्रादुर्भाव साध्य बना सकते हैं, किन्तु तू अब इस ऊहापोह में क्यों आ पड़ा—तुझे तो लोकान्तर की चिन्ता सता रही थी! देह छूट जाने के बाद आज तुझे इस देश पर विदेशी आक्रमणकारी का प्रसंग एकाएक क्यों मथने लगा? आखिर तू चाहता क्या है? यह तो स्पष्ट हो गया तेरी इन बातों से कि परिवार के मोह-बन्धन अब तुझे यहां रोकने को विवश नहीं कर रहे और माया-पाश भी तुझे मुक्त कर बैठा है, इसी से तू मरणोत्तर अवस्था में भी देश-समाज की समस्या से स्वयं को जोड़

सका परन्तु तू कर क्या सकता है ?'

'मैंने कहा, आपका आशीर्वाद रहे तो क्या नहीं कर सकता ? मेरा यह जीवात्मा जब तक कोई देह न पा जाये, इस संसार में कुछ भी करने योग्य नहीं—यह सत्य है किन्तु आप जैसे समर्थ सन्तों के लिए कुछ भी कठिन नहीं। मेरी उत्कट अभिलाषा जानकर क्या आप इसका कोई उपाय नहीं कर सकते कि आज देश में धर्म और स्वतंत्रता की रक्षार्थ जो समूह एकत्र हो रहे हैं—मैं भी उनकी किसी पंक्ति में सम्मिलित हो कंधे से कंधा मिलाकर मैं भी सशरीर आसन्न संग्राम में अपना दायित्व निभाता या कोई भी सेवा-कार्य उस महायज्ञ में करता हुआ देह-त्याग करता।' मेरी इच्छा सुनकर वह अवधूत एक बार ठठाकर हंसा, हंसता रहा कुछ क्षण। फिर कहने लगा—'तेरी अभिलाषा तो श्रेयस्कर है, प्रिय लगती है और सुनने में श्लाघनीय भी किन्तु तेरी देह में तो वह हठी कापालिक विचर रहा है और उसे पता भी नहीं कदाचित् कि उसने अपना जो शरीर एक गुफा में रख छोड़ा था—उसे वन्य-जन्तु नोच-फाड़कर खा गये। वहां वापस जाने पर वह देह अघोरी पायेगा नहीं—तब तेरा शरीर वह कैसे सहज ही छोड़ देगा ? हां, यह सम्भव हो सकता है कि वह तेरी काया त्यागकर किसी अन्य शरीर में प्रविष्ट हो जाय तो तेरी इच्छा पूर्ण हो सकती है। मेरी भेंट हो सके उससे तो मैं तेरे लिए उससे यह बात कह भी सकता हूं—क्योंकि वह यत्किंचित जानता—पहचानता है मुझे।'

'मुझे आशा की किरण दिखी कि अवधूत चाहे तो मुझे फिर से मेरी मानव-देह प्राप्त हो सकती है अघोरी उसे मेरे लिए त्याग भी सकता है, और जबकि अवधूत की शक्ति से परिचित-प्रभावित है वह भी तो यह कार्य कठिन नहीं प्रतीत होता अब।'

'तभी अवधूत कहने लगा, देह तेरी इच्छा तो ठीक ही है किन्तु देह का मोह मत कर। वह एक बार छूटा तो छूटा। पुनरपि प्राप्त भी हो जाय तो जीवात्मा को, तो भी उसमें अनुरक्ति रखना उचित नहीं होगा। हां—उस गुरु हिमालय में उत्तरकाशी के क्षेत्र रहता है, तू उसे खोज सके तो तेरा कार्य सिद्ध हो सकता है। वे वहीं से शक्ति-पात-प्रक्रिया से तेरा मृत शरीर तुझे उसे अघोरी से सत्वर प्राप्त करा सकते हैं—उनका नाम है अघोरेश्वर सिद्धनाथ। तुझसे हो सके यह, तो वह हिमालय में, खोज उन्हें। मिल जायें तो मेरा प्रणाम निवेदन करके अपना स्वार्थ बताना। वे बड़े दयालु और परोपकारी महात्मा हैं। निर्मल-चित्त साधक हैं। सिद्ध होकर भी उन्हें अहंकार छू नहीं गया। उनमें दुर्लभ वार आकर्षण-शक्ति है; उसके सभी

पहुंचकर कहीं तू भी अघोर कर्मों में आसक्त न हो जाय, यह शंका मुझे अवश्य हो रही है।'

'अवधूत को प्रणाम कर मैं वहीं से उत्तर दिशा में देवात्मा नगाधिराज हिमालय के हिम-श्वेत-भवनों की ओर क्षिप्रता से उड़ चला। जीवात्मा रूप में मेरा भार कुछ भी न था—जहां चाहूं सहज रूप में पहुंच सकता था। श्रांति-क्लान्ति का कहीं नाम नहीं, न कोई पथावरोध का प्रश्न सामने आता। सोचा, शरीरी से यह अशरीरी रूप कहीं सुविधाजनक है; कमी है तो यही कि किसी से कुछ कहूं—बोलूं। तो वह सुन नहीं पाता। देह न होने से भौतिकरूप में कुछ करना चाहूं तो वह भी साध्य नहीं वरन् इस स्थिति में तो मेरी तुलना में एक शिशु कहीं समर्थ है जो हाथ-पांव हिलाकर, रुदन करके किसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित तो कर सकता है—मैं वह भी नहीं कर सकता। न मुझे कोई देहधारी देख पाने में ही सक्षम है—अवधूत की बात तो एक अपवाद है इतने बड़े संसार में—सम्भव है, उसके जैसे कुछ इनेगिने देहधारी और भी पृथिवी पर हों, उनकी बात भिन्न है। उन्होंने मानवदेह धारण करके भी मानसिक, आत्मिक शक्ति को पहचाना—उसका विकास किया तो उन्होंने पाया कि सर्दी-गर्मी, क्षुधा-पिपासा, कर्म-अकर्म, शांति-अशांति आदि सभी स्थितियां जैसे मनुष्य के अधीन हैं। वह जैसी स्थिति की इच्छा करे, आत्म-शक्ति से, उसे अपने अनुकूल बना सकता है। अर्थात् यदि काया-सिद्ध हो, उसका कच्चापन दूर हो गया हो तो भीषण शीत या भयंकर ताप उसकी देह को प्रभावित नहीं कर सकते, न वायु या वर्षा उसे विचलित कर सकती है। वह चाहे तो शोक-संताप-देह-पीड़ा और आधि-व्याधि के दुःख-द्वन्द्वादि उसे नहीं व्याप सकते। ऐसे जीवन-मुक्त-निर्द्वन्द्व=निरासक्त-निष्काम पुरुष इस भुवन में विरले ही हैं, इस देश की प्राचीन आध्यात्मिक सम्पदा यदा-कदा उनके द्वारा महिमान्वित-गौरवान्वित होती है।

"इस नश्वर संसार में कुछ ऐसा भी है, जिसका नाश नहीं है—जो अविनाशी और सनातन है, शाश्वत है—इस सत्य को और आर्य संस्कृति की इस प्राचीन दायाद को वे निष्काञ्चन अपरिग्रही और अनिकेतन किन्तु समर्थ योगीजन घोर अंध तमिस्रा में भी नन्दादीपवत उजागर करते हैं। सुतरां—जिस पर्वतीय क्षेत्रवासी पुरुष का पता मुझे उस अवधूत ने बताया—मैं सोच रहा था कि वे सम्भवतः उसी श्रेणी में आते हैं। मेरा भाग्य यदि वे मुझे विराट हिमालय में खोज मिल जायें और उस अवधूत का आशीर्वाद साथ रहा तो वे मुझे मिलेंगे अवश्य।

'यही ऊहापोह करता मैं प्रथम बार और वह भी मरणोत्तर

स्थिति में अन्तर्वेद पार करता हुआ हिमालय के हिम-श्वेत-भवनों में प्रविष्ट हुआ। सूर्योदय का अति मनोहारी दृश्य वहां देखा; नील-देही हिमालय के हिम-शिखर राशि-राशि स्वर्ण से जगमगा रहे थे। सूर्य-रश्मियों से मंडित वह हिमावृत्त उत्तुंग शैल-माला स्वर्ण-कलेवरा दिख रही थी और सर्व दूर जहां तक दृष्टि पहुंचती थी, कोसों तक हिम ही हिम पृथ्वीतल को आच्छादित किये था। उस दिव्य दृश्य में कुछ ऐसा सम्मोहन था, दुर्निवार आकर्षण कि मेरा जीवात्मा जैसे उसी में रम गया था—लगता था यह धवल धाम छोड़कर कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं है। वासनाएं-कामनाएं जसे उस ऊंचाई पर पहुंचने में स्वयं ही असमर्थ हैं। निर्जन-निस्तब्ध और अखण्ड शांति में समाहित वहां का पवित्र वातावरण जैसे योगीजनों का मौन आह्वानकर रहा हो और आभास होता था, हिमाद्रि जैसे स्वयं उस नीरवता में, महाशून्य समाधिस्थ है, आत्म-लीन। मैं उस शून्य में आत्म-हारा हो खो-सा गया।

'सहसा स्मरण आया, अरे! तो सिद्ध पुरुष सिद्धबाथ को खोजना चलूं, देखूं किस गिरि-गह्वर-गुहा कान्तार में उनके दर्शन होते हैं। पवन से मेरा जीवात्मा उन्हें सर्वत्र खोज चला। देवदारु से आकीर्ण कितने वन हिमालय के वे हिम-धवल-भवन, उन गिरि-गुहाएं मैंने छानीं परन्तु, कहीं किसी सचेतन पुरुष की झलक तक मिली।' यत्र-तत्र श्वेत रीछ मिले, गह्वरों में विशालकाय अजगर वृहत वृक्षवत लम्बायमान पड़े जैसे उनके समान वहां कोई संतुष्ट और निरपद न हो। (क्रमश

पृष्ठ १२२ का शेष

जैसे कुशल, दूरदर्शी, सत्तानिर्लिप्त कूटनीतिज्ञ के मार्ग-दर्शन की। देश परिस्थितियां ही ऐसी थी। वे उन युवकों के आग्रह को टाल न सके।

वही शंकराचार्य माधवाचार्य विजयनगर हिन्दू साम्राज्य के विद्यारण्य स्वामी नाम से प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में विख्यात हुए। युवकों ने उनके मार्ग दर्शन में दक्षिण भारत को मुस्लिम-सत्ता से मुक्त कर हिन्दू साम्राज्य की संस्थापना की। राज और समाज की जाग्रत-शक्ति ने मिलकर उड़ीसा बम्बई और नर्मदा से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण प्रदेश से विदेशी दासता का मूलोच्छेदन कर देश में स्वतंत्र व सार्वभौम हिन्दू सत्ता पुनः खड़ी कर दी। तुगलक वंश का दक्षिण से नामोनिशान मिटा दिया गया।

वे दोनों युवक थे हरिहर और बुक्क! बड़े का नाम हरिहर और छोटे का नाम बुक्क। इन्हीं बुक्क-बन्धुओं का नाम भारत के इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ में अंकित हुआ। 'विजयनगर हिन्दू साम्राज्य' के खण्डहर का कण-कण आज भी गुंजित कर रहा है उनकी यशगाथा को।

—केशव भवन, माडेल हाउसेज लख

(पृष्ठ १०८ का शेष)

यह चित्र है या जीवन शक्ति का अदम्य संकल्प ? यह ठूंठ कोपल निकल रहा है या मृत्यु के आक्रमण से आहत अस्थिपंजर का दृढ़ व दुर्दम्य हृदय ?

मैं अपना विचलित हृदय लिए रोगी के पास आया, जहां उस बीमार चित्रकार की सांस धीरे धीरे चल रही थी, नब्जें डूबी हुई थीं और दुर्बलता के कारण उसकी आंखें मुंदी हुई थीं। समझ में नहीं आ रहा था कि वह सोया हुआ है या चेतनाहीन है।

सप्ताह बीत गया, किन्तु कलाकार की दशा ज्यों की त्यों बनी रही। दोनों वक्त उम्मीद बंधती थी, टूटती थी। उपचार चलता रहा और मैं 'अश्क के फूल' को देखता रहा। विशेषज्ञों की जूरी दबे पांव आती और सिर हिलाते लौट जाती। मैं सोचता कोपल निकलने में अभी देर है—अभी अवशेष शक्ति बीमारी से जूझ रही है।'

एक दिन मेरे मन में न जाने क्या आया कि 'अश्क के फूल' को लेकर मैं कलाकार के निकट गया। उसकी सांस बहुत धीमे चल रही थी और आंखें बंद थीं। मैंने डाक्टरी सिद्धान्त के विरुद्ध उस को धीरे से आवाज दी, फिर उसका चेहरा हिलाकर कहा "अश्क के फूल" को देखिए न, कितना सुन्दर कोपल निकला है!"

कलाकार ने बड़ी कठिनाई से आंखें खोलकर तस्वीर पकड़ी, किन्तु उसका शरीर जोर से कांपा और चित्र छाती पर गिर पड़ा। मैंने और वहां मौजूद अन्य डाक्टरों ने नब्ज टटोली, तो वह और भी डूब चली थी। हमने एक दूसरे को देखकर दृष्टि नीचे कर ली। एक बूढ़े डाक्टर ने मुझसे कहा "तुमको ऐसा नहीं करना चाहिये था। डाक्टर को संभल-संभल कर कदम रखना चाहिए। भावुकता के साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहिए।"

"मैंने खिलवाड़ नहीं किया, सर! मैं तो समझा कि इस तस्वीर से इस चित्रकार मरीज को रोग से लड़ने की प्रेरणा मिलेगी और जीने को बल मिलेगा। इनका न बचना हम सभी डाक्टरों की पराजय है।'

वे चुप लगा गये। न जाने क्यों-मेरे अंतर में यह विश्वास जमकर समा चुका था कि वह अब बच जायेगा और ठूंठ की कली से उसके भावुक हृदय को जीने की प्रेरणा मिलेगी। लोग तब आश्चर्य से दंग रह जायेंगे—जब उस तस्वीर के ठूंठ पौधे से एक नन्ही सी कली मुस्करा उठेगी। मुझे पागलों की तरह अचानक भीतर से खुशी उठने लगी और यह समझते हुए भी कि-रोगी की दशा अत्यन्त नाजुक है, मैं दौड़ता हुआ चित्रकार के पास आया और उसके सिर को थपथपाने लगा, 'आप स्वस्थ हो जायेंगे, आप तस्वीर बनायेंगे, ठूंठ में से कली अवश्य निकलेगी।' मैं अचानक बचपना में खो गया। बूढ़े डाक्टर ने मुझे वहां से हटवा दिया- 'यह तो खुद बड़ा भावुक है।'

उसकी नब्ज अगले दिन सुबह तक डूबी रही, फिर उभरने लगी। कुछ दिन बाद कलाकार ने आँखें खोलकर पूछा-'डाक्टर! तुम उस दिन मेरा सिर क्यों थपथपा रहे थे ?'

'डाक्टर! तुमने 'अश्क के फूल' खिलाकर मुझे नयी जिंदगी दी'—कलाकार ने स्वस्थ होने के बाद कहा—'फनकार का दिल तो खुद चमन होता है, । किन्तु वह मौत को भी चुनौती दे सकता है—यह मै नहीं जानता था। मैं तो दंग हूं यह जानकर कि-मेरे दिल में, मेरे मैं तस्वीर में कुदरत ने इतनी ताकत बख्शी है।'

और उस दिन सवेरे वह डायरी पर लिख रहा था—मैं जिंदा रहूंगा, मैं मौत नहीं चाहता, मैं मरूंगा नहीं, सरहद पर की अवाम की चीख-पुकार मुझे जुल्म के खिलाफ जेहाद छेड़ने को बेकरार कर रही है। मेरा मुल्क मेरा इंतजार कर रहा है - - - - - -

—टंडवा गढ़वा, पलामू (बिहार)

[पृष्ठ ७८ का शेष)

राव पैदा हो गया है, उसमें एक हलका धक्का लगाने का सामर्थ्य इसमें अवश्य है। खोखलेपन का अन्दाज तभी लग जाता था, जब मालूम पड़ता था कि विख्यात सर्वोदय नेता आचार्य राममूर्ति के प्रयास के पश्चात बनी राजेन्द्रनगर मोहल्ला जन संघर्ष समिति की बठक ठीक चल नहीं पाती, लोग नियमित नहीं आते या तब जब मालूम होता था कि हालांकि 'बिहार बन्द' और सचिवालय-घेराव तो बहुत सफल रहा, मगर कालेज-बहिष्कार का आह्वान असफल रहा या सतत सत्याग्रह के लिये आने वाले ज़त्थों में संख्या अपेक्षा से बहुत कम रही।

इससे अन्दाज आता था कि आन्दोलन में प्रवाह है, जोश है, उत्साह है, पर संगठनात्मक ढाँचे के बगैर आवश्यक स्थैर्य, सातत्य रहना सम्भव नहीं है। आन्दोलन के रचनात्मक आह्वा के प्रति मन का प्रतिसाद अत्यन्त रहता था।

इन सबसे बार-बार स्मरण था कि संघ की कार्य पद्धति-रोज आने, हर एक को एक-एक कदम उठाने की प्रक्रिया कितनी शास्त्र है। इससे यह धारणा और पुष्ट हो थी कि अंततः समाज-परिवर्तन रास्ता या क्रम सत्ता परिवर्तन, व्यव परिवर्तन, मानस परिवर्तन नहीं, उल्टा है। अर्थात् मानस परिव व्यवस्था परिवर्तन, सत्ता परिवर्तन इस क्रम से ही समाज परिवर्तन।

—दक्षिणांचल संगठन मंत्री, अ०भा०वि

[आज के श्री 'गोविन्दन' वही न्दाचार्य हैं, जो उन गिने-चुने लोगों हैं, जिनकी उंगली पकड़कर वि आंदोलन चला था और जिनके ही जे०पी इस आंदोलन से जुड़ सके

(पृष्ठ ६६ का शेष)

मैडम ने यह ठीक नहीं किया और
न्हें इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा।'
लोग प्रायः सुनकर खामोश ही रहते;
पर कहीं बहस भी हो जाती और बात
तू-तू, मैं-मैं तक पहुच जाती। वह
सैनिक कार्यवाही के विरोध में प्रदर्शन,
ोकसभा तथा ऐसे ही अन्य प्रदर्शनों में
चढ़चढ़ कर हिस्सा लेता रहा। फलस्व-
रूप लोग उसे खालिस्तान-समर्थक के रूप
में जानने लगे। उसके मन में खालसा-
राज और 'खालिस्तान' का नशा चढ़ा हुआ
था। अतः एक दिन वह अपने साथियों
के साथ चोरी की कार से एक पेट्रोल
पंप लूटकर अमृतसर भाग गया। लोगों
ने समझा वह भी उग्रवादियों के गिरोह
में शामिल हो गया है। तब से बलजीत
और 'बलजीत-भवन' लोगों की आंखों
की किरकिरी बन गये।

बलजीत जब बाथरूम से निकला,
तो काफी तरोताजा दिखाई दे रहा था;
परन्तु गहरा विषाद अब भी उसके चेहरे
पर छाया हुआ था। गजाधर ने चाय
का प्याला उसकी तरफ सरकाते हुए
कहा, 'लो, चाय पियो और अब बताओ
कि तुम कहां से आ रहे हो?' वह चाय
का प्याला हाथ में लेकर कुछ क्षण
सोचता रहा, फिर चुस्कियां लेते हुए
बोला, 'अंकल जिस दिन मैडम की हत्या
की गई थी, मैं भी दिल्ली में था। उस
दिन तक मन में बदले की आग धधक
रही थी। पर उसके बाद जो कत्लेआम
हुआ, उसे देखकर लगा कि हमने अपने
ही पैरों कुल्हाड़ी मार ली है और तब
से मैं लगातार भाग रहा हूं। लगता है
मौत निरंतर मेरा पीछा कर रही है।
तब मैं भागते-भागते सोच रहा था धर्म
मनुष्य के लिए है या मनुष्य धर्म के लिए
और, वह कैसा धर्म है, जो अपनी रक्षा
हेतु निर्दोष प्राणियों की हत्या की इजाजत
देता है? 'अंकल' मौत के डर से भागते
हुए मैंने जिस घर में छिपकर अपने प्राण
बचाये, वह उसी समुदाय के लोगों का था,
जिनकी हत्यायें करके हम आतंक फैलाया

'उस घर में बितायी हुई वह रात मैं कभी नहीं भूल सकता। उस दम्पत्ति ने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा था-'बेटा, निश्चित रहो, जब तक हम जीवित हैं, इस घर में कोई तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता।' बलजीत बिना रुके बोले जा रहा था-'अंकल सच कहता हूं उस वक्त मैं शर्म से पानी-पानी हुआ जा रहा था। उस वक्त मैं अपने आप को कितना घृणित, कितना छोटा महसूस कर था...कह नहीं सकता।'

करते थे। और उसका निर्दोष जवान बेटा उग्रवादियों का शिकार हो गया था।'

'उस घर में बितायी हुई वह रात मैं कभी नहीं भूल सकता। उस दम्पत्ति ने मुझे आवश्वत करते हुए कहा था— 'बेटा' निश्चिंत रहो, जब तक हम जीवित हैं, इस घर में कोई तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता।' बलजीत बिना रुके बोले जा रहा था--- 'अंकल सच कहता हूं उस वक्त मैं शर्म से पानी-पानी हुआ जा रहा था। उस वक्त मैं अपने आप को कितना घृणित, कितना छोटा महसूस कर रहा था...कह नहीं सकता।'

'दूसरे दिन जब मैं वहां से चलने को उद्यत हुआ, तब उन्होंने बड़े स्नेह से कहा 'बेटा हम तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहते, चाहो तो स्थिति सामान्य होने तक यहीं रुक जाओ अन्यथा इस वेश में बाहर मत जाओ।' कपड़े तो मिल गये, पर बाल और दाढ़ी मूंछ को छिपाना संभव न था। मैंने कैंची लेकर स्वयं बाल काटना शुरू कर दिया। इस पर उन्होंने सहायता की और मेरा हुलिया बदल गया। सच अंकल, उस घर को छोड़ते वक्त मैं खूब रोया था। उन्होंने मुझे छाती से लगाकर बिदा किया था।

'परिवार वालों की चाह मुझे यहां तक खींच लायी, बताइये अंकल, वे सब कहां है? गजाधर ने दबी जबान से कहा' तुम शायद सुन नहीं सकोगे बलजीत! मैं निश्चित तौर पर तो नहीं कह सकता, पर जैसी खबर मिली तुम्हारा भाई उन्मादियों का शिकार गया। तुम्हारे पिता लापता हैं, तु माता हमारे एक रिश्तेदार के यां क्षित है और तुम्हारी पत्नी का नहीं, शायद आग लगने से पहले भवन से निकल नहीं सकी और के लिए तुम स्वयं जिम्मेदार हो बलजीत का चेहरा अत्यंत क गया। वह बिलख पड़ा, 'नहीं नहीं ---- ऐसा मत कहिए, गुना मैं था, पर दण्ड इन्हें क्यों मिला

गजाधर उपदेशक की मुद्रा जा रहा था,'यही तो विडम्बना जीत! कसूरवार बच जाते निर्दोष मारे जाते हैं। तुमने बलजीत! पवित्र मन्दिर में रखे गये थे? क्या तुम सब और गुरु गोविन्दसिंह के मार्ग पर चल रहे थे! क्या तु मैडम की हत्या करके अपने ही के लोगों को मौत के मुंह में नहीं दिया! एक दूसरे का खून कर क्या मिला! बलजीत, तुम्हारे मेरे मित्र और भाई दोनों थे। दोनों साथ साथ गुरुद्वारा जाते कितना आनन्द आता था और घर में सन्तों के आगमन पर बैठकर संत्संग करते थे, तब अच्छा लगता था! पर आज दूसरे के करीब आते क्यों झिझ क्य तुम और तुम्हारे जैसे लो

नए जिम्मेदार नहीं हैं ?'

'बस कीजिए, अंकल बस कीजिए-- ब और मैं नहीं सुन सकता ----- मुझे पने किये का फल मिल चुका है ।' लजीत के चेहरे से पश्चाताप छलक हा था । तभी बाहर कोई दरवाजा टखटाने लगा । गजाधर और बलजीत नों लपककर पहुंच गये । सामने राय-ल लिए सिपाही खड़ा था । उनके कुछ छने के पहले ही वह बोल उठा, 'क्या प ही गजाधर हैं ।' 'जी, हां, क्या त है ।' गजाधर ने विस्मय से पूछा । या आप 'बलजीत भवन' के मालिक ी जसबीर सिंह को जानते हैं ।' 'हां ानता हूं ----- पर क्यों ।' गजाधर का धैर्य छूटा जा रहा था । सिपाही उसी तरह निर्विकार भाव से बोलने लगा --- 'उनकी हालत बहुत नाजुक है; उन्होंने आपको तथा अपने परिवार के सदस्यों को सूचित करने लिए कहा है । कृपया मेरे साथ जल्दी चलें ---।' सुनते ही बलजीत घबराकर वहीं गिर पड़ा ।

दोनों ने बलजीत को संभाला । उसके चेहरे पर पानी के छींटे दिये और गाड़ी में बिठाकर तेजी से अस्पताल की ओर चल पड़े । रास्ते में गजाधर सोच रहा था --- शुक्र है मेरा भाई, मेरा मित्र जीवित है और अब बलजीत कितना बदल गया है ।

Made out of the Finest Materials

MANGALOR GANESH BEEDIES

Smokers can not afford to miss them

DAILY SALES EXCEED 8CRORE BEEDIES

Head Office :

Mangalore Ganesh Beedi Works

VINOBA ROAD MYSORE-570 005

Telephone : 20241 Telegrams : 'AROMA'

२१वीं सदी के युवा के नाम

● तमिलन्बन्

('साहित्य चिन्तन' के वार्षिकोत्सव में पढ़ी गयी कविता)

— मेरे लाड़ले
इक्कीसवीं सदी के
तमिल...
मेरे उत्तराधिकारी बनकर
तुम मत आना।
एक नवीन पीढ़ी के
मूल–बीज से
अंकुरित हो उठना।
—हमारे पद-चिन्हों में
अपनी गतिशीलता का
आधार मत ढूंढ़ना...
एक
स्वतः गति में -अपनी
चरण गरिमा की
रक्षा करना...
— बीसवीं सदी के
मृण्भांड को
खुरचते मत रहना।
उसमें से –
हमें कुछ भी मिला नहीं...
— जीवन
तुमको
संगीतमय झंकृत करे
दिशाएं
तुम्हारा
पुष्पों से वर्णन करें!
—अपने पूर्वजों के चलाये
जनतंत्र को
भली भाँति स्मृति में रखना...
सच्चे जनतंत्र को
इसके साथ
तुलनाकर परखने का
संदर्भ आते समय
यह उपयोगी रहेगा!
— विधि-नियम सभी की
ठीक से हमने रक्षा की
सिर्फ जन-जीवन की ही
रक्षा करना हम भूल गये।
तुम...
जन-जीवन को सुरक्षित कर-इस
जनतंत्र से भी
लोगों को बचाना!
— नेता जब जेल में–
तो आत्मदाह किया हमने...
नेता बीमार–
तो आत्महत्या की हमने...
इस प्रकार
एक व्यक्ति के लिए प्राण दिये

तत्व के लिए जीवन दिया नहीं ।
हमको जीना ही नहीं मालूम
ऐसा मत सोचना ।
हमें
मरना मात्र भी तो नहीं आता...!
– इस निवृति-मरण से-तुम
प्राणों को तुच्छ मत समझना ।
मृत्यु को भी-एक
आदर्श से
अलंकृत कर लेना !
– जन्मदिन को लेकर
सिर्फ एक आदमी की जीवन-कुण्डली
बना करती है !
तुम्हारे
मरण-दिन को लेकर
देश का भविष्यकाल
गिना जाया करेगा !
– विषय मिला तो
हम बोले नहीं ...!
भाषण ही–
हमारे लिए
विषय बन गया !
– यदि शब्दों की शक्ति से
विद्युत पैदा हो सकती तो
यहाँ–
एक एक मनुष्य ही
एक-एक 'अणु शक्ति केन्द्र'
बन जाय !
– आगे आने वाले तमिल...
झाड़ू से इन सबको
बुहार, अलग फेंककर चलना –
भाषा...
ध्वनि नहीं–ज्योति है !
अपने होठों को
हिला-हिलाकर
उसको बुझा मत देना !
–सत्य के प्रति तुम्हारी
निष्ठा–
उसके विषय में कुछ कहना नहीं है
सत्य को ही बोलना है ।
हृदय के साये में
ज्योति जलाकर रखना...
होंठ
सत्य की
सेवा कर सकें ।
– हमारे जीवन से-तुम
अपना भाग्य
सृजन मत करना...
खाँसी-कफ से
स्वास्थ्य को
बनाया नहीं जा सकता
घावों के द्वार से
मुस्कराहट की याचना मत करना !
– भविष्य के दिनों में
रहने वाले तमिल !
सत्य की प्रतिष्ठा
तुमको
सुख-वंचित कर सकती है ।
किन्तु,
असत्य की विजय इस
धरती के लिए शुभ नहीं...
– धनिक की
मंजिल पर मंजिलों की संख्या
निर्धन के

छाजन-छिद्रों की संख्या
बढ़ती ही जा रही है
'क्या यह न्याय है?'
मैंने न्याय-देवता से
एक दिन पूछा।
वह
'सरकार से
पूछकर बतलाऊंगा'
कह कर चला गया
जानेवाले ने फिर
सत्तारूढ़ दल से
मिल जाने की
सूचना भिजवा दी।
—ओ विपक्षी दलो!
आप क्या कहते हैं? मैंने पूछा
हम—
सत्तारूढ़ दल को गिराकर
स्वयं शासन करने के इच्छुक हैं
विपक्षी दल नहीं
वे बोले...
— इक्कीसवीं शती के
तमिल! अन्त में
एक बात।
लंका की किसी कन्या से
विवाह कर लेना
तुम्हारे
'शेर' पुत्र उत्पन्न हो जायें!

[अनुवादः केशवप्रसाद चतुर्वेदी
'कल्कि' साप्ता० (तमिल) से साभार]

युवा-अधिकार और राष्ट्रीय युवा-नीति

प्रो० बाल आपटे

संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा ने १७ दिसम्बर १९७९ को एक प्रस्ताव (क्र० ३४/१५१) द्वारा वर्ष १९८५ को 'अन्तर-राष्ट्रीय युवा वर्ष' घोषित किया था। इसका विषय रखा गया था सहभागिता, विकास व शांति। 'युवा वर्ष' के कार्यक्रम लागू करने सम्बन्धी आधारभूत दृष्टिकोण इस प्रकार बताये गए हैं—

(अ) निर्णयकर्त्ताओं एवं जनता में युवकों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और परिस्थितियों सम्बन्धी जागरूकता बढ़ाना।

[ब] प्रत्येक देश द्वारा अपने अनुभव, परिस्थितियों और वरीयताक्रमानुसार युवकों से सम्बन्धित नीतियों एवं कार्यक्रमों को सामाजिक एवं आर्थिक विकास के अभिट अंग के रूप में प्रोत्साहित करना।

[स] विविध सामाजिक कार्यक्रमों, विशेषकर विकास व शांति से संबंधित कार्यक्रमों में युवकों का सहभाग बढ़ाना।

[द] युवाओं में विभिन्न राष्ट्रों के मध्य शांति, परस्पर सम्मान और समझदारी संबंधी भाव सुदृढ़ करना।

[य] युवा-मसले निपटाते समय सभी स्तरों पर उनके सहयोग को प्रोत्साहित करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सोचे गए दीर्घकालीन स्थायी प्रयास, एक 'राष्ट्रीय युवा-नीति' के निर्धारण की मांग करते हैं।

वस्तुतः राष्ट्रीय युवा-नीति के निर्धारण की आवश्यकता इधर के वर्षों में विशेषकर १९६० के बाद उठ खड़े हुए उस छात्र विद्रोह के बाद महसूस की गई, जिसके प्रतीक शब्द संघर्ष व टकराव बन गए थे। किन्तु युवा-समस्या अथवा युवा संकट के रूप में लोगों को सोचने के लिए बाध्य करने वाली इन समस्याओं के अलावा भी 'राष्ट्रीय युवा नीति' की आवश्यकता स्वतः स्पष्ट है ही।

संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक व सामाजिक मामलों के विभाग द्वारा १९७५ में 'युवाओं द्वारा सेवा' नामक एक अन्तर-राष्ट्रीय सर्वेक्षण में संकेत दिया गया था, कि 'युवानीति' शब्द के अन्तर्गत वह व्यापक नीति शामिल है, जिसमें युवाओं से सम्बन्धित कार्यक्रमों में 'युवा द्वारा सेवा' तथा 'युवा के

लिये सेवा' दोनों ही पहलू समाहित हैं। 'युवक द्वारा सेवा' शब्द का तात्पर्य उन प्रयासों से है, जो आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये राष्ट्रीय अथवा स्थानीय स्तर पर समाज सेवा के लिये अभिप्रेत हैं। 'युवा के लिये सेवा' में सरकारी और गैर-सरकारी वे सभी कार्यक्रम आते हैं, जो युवाओं की सहायतार्थ होते हैं। अतः इन अभिलेखों के अनुसार 'युवानीति' का तात्पर्य अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रकार है—

(अ) राष्ट्रीय विकास के प्रमुख उद्देश्यों के प्रति युवाओं की उन्मुखता, सम्पूर्ण योजना के अन्तर्गत युवकों की भूमिका, दायित्व, अधिकार और लाभ का विशिष्ट व सुनिश्चित उल्लेख

(ब) सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में युवाओं के लिये किये गए प्रावधानों के छिद्रों (दोषों) और अति व्याप्ति [Overlap] की खोज करते हुए योजना के उद्देश्यों और युवाओं की भूमिका व आवश्यकताओं के संदर्भ में निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों के मध्य समुचित सम्पर्क निर्धारण।

[स] अवधि विशेष के अन्तर्गत पूरे किये जाने वाले युवा कार्यक्रमों का सुनिश्चित निर्धारण।

(द) युवाओं की सहभागिता केवल क्रियान्वयन स्तर पर ही नहीं, बल्कि विभिन्न स्तरों पर लिये जाने वाले निर्णयों में भी सुनिश्चित करना।

'संयुक्त राष्ट्र संघ' द्वारा १९७० में बैंकाक में आयोजित 'राष्ट्रीय विकास में युवाओं की भूमिका' नामक क्षेत्रीय परिसंवाद की रिपोर्ट में ऐसी युवानीति के निर्धारण की कल्पना की गई है, जिसमें विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा राष्ट्रीय विकास की योजना, निर्णय और क्रियान्वयन सम्बन्धी सभी स्तरों पर युवाओं को शामिल कर उन्हें राष्ट्र-निर्माण के भागीदार के रूप में मान्यता दी जानी चाहिये। इस नीति के अन्तर्गत एक ऐसे विधिविहित व उच्च-स्तरीय 'राष्ट्रीय युवा बोर्ड' की स्थापना की भी कल्पना की गई है, जिसका मुख्य उद्देश्य सरकार और युवा संगठनों के बीच संवाद व परामर्श प्रणाली स्थापित करना हो। रिपोर्ट में यह सिफारिश भी की गई है कि युवा-कार्यक्रमों की योजना व क्रियान्वयन में गैर-सरकारी संगठनों द्वारा युवकों की भागीदारी को प्रोत्साहित और समाहित करना चाहिये। उन्हें सृजनात्मक, गतिशील व कार्योन्मुखी ऐसी 'युवा परिषदें' विकसित करनी चाहिये, जो राष्ट्रीय युवानीति, निर्धारण तथा युवा-कार्यक्रमों की योजना व क्रियान्वयन में सरकार के साथ कार्य कर सकें।

पाकिस्तान के ब्रिगेडियर जनरल गुलजार अहमद ने 'राष्ट्रीय विकास योजना के अंग के रूप में युवा-नीतियों व कार्यक्रमों के निर्धारण व क्रियान्वयन सम्बन्धी रणनीति' नामक लेख में इस बात पर जोर दिया है कि किसी समुदाय

राष्ट्रीय

विशेष के जीवन प्रवाह में युथकों के प्रस्फुटन के लिये युवानीति अथवा तंत्र की बात मानव समाज के लिये नई नहीं हैं। तो भी वर्तमान विश्व के उथल पुथल से उत्पन्न जटिलताओं के कारण युवा समस्यायें भी जटिल हो गई हैं। ऐसी परिस्थिति में युवानीति के निर्धारण का उद्देश्य 'राष्ट्र की युवा आबादी के सम्पूर्ण विकास, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के आध्यात्मिक, मानसिक शारीरिक और सांस्कृतिक पहलू शामिल है' के अलावा और क्या हो सकता है? जर्मन जनवादी गणतंत्र ने १९७४ में ऐसी युवानीति अपनाई थी, जिसके अन्तर्गत युवाओं को प्रगत समाजवादी समाज के युवा संगठनों में भाग लेना तथा चतुर्मुखी विकास में उनकी भागीदारी कानूनी रूप से अनिवार्य कर दी गई थी। 'इसका उद्देश्य समाजवाद की भावना के अन्तर्गत युवाओं को अपनी जीवन-दृष्टि बनाने में सहायता करना, उनकी अन्तर-राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को सशक्त करना, उनके अन्दर स्वयं पहल की भावना विकसित करना तथा इससे भी अधिक अपने सम्पूर्ण जीवन को सुखी, सोद्देश्य और आशावादी बनाने के लिये राज्य को निर्देशित करने में भी भागीदार होना है।'

हमारे देश में राष्ट्रीय युवानीति के बारे में पांचवी योजना के अन्तर्गत इस प्रकार वर्णन किया गया है :-

योगसाधना व डेढ़ पैसा

श्री रामकृष्ण परमहंस ने एक बार एक किस्सा सुनाया।

एक योगी अपने गुरु के पास गया और कहने लगा–'मैंने चौदह वर्ष जंगल में रहकर योगाभ्यास किया। फलस्वरूप मैंने पानी के ऊपर चलने की दैवी शक्ति पा ली है–मेरी योग-साधना सफल हुई।'

गुरु ने उत्तर दिया—'तुमने क्यों चौदह वर्ष का व्यर्थ कष्ट झेला? डेढ़ पैसे में माझी तुम्हें पार पहुंचा सकता है। तुमने जो सिद्धि पाई है, वह तो सिर्फ डेढ़ पैसे की है।'

भारत

'युवानीति का आधार युवा को महत्व देने की जागरुकता होना चाहिये, यह डर नहीं कि पुराने नियमों और मान्य व्यवहारों का उल्लंघन कर युवा-वर्ग समाज के लिये 'समस्या' या 'खतरा' बन जायेगा। युवाओं के प्रति हमारी चिन्ता युवाओं का ध्यान विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों से मोड़ कर उन्हें अधिक अनुशासित करने की इच्छा से भी नहीं जन्मनी चाहिये। दूसरे शब्दों में 'युवाओं के लिये सकारात्मक नीति की आवश्यकता इस तथ्य से उदित हुई कि वे सच्चे अर्थों में हमारे भाग्य के निर्माता हैं और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना उनकी प्रभावी

भागीदारी के बिना आगे नहीं बढ़ सकती।

अतः राष्ट्रीय युवानीति समय की त्वरित मांग है। ९वें दशक में ऐसी नीति को जीवन की कुछ वास्तविकताओं का सामना करना पड़ेगा। 'यूनेस्को' (Unesco) द्वारा प्रकाशित 'नवें दशक में युवा' नामक पुस्तिका में कहा गया है कि इस दशक में युवाओं के लिये मुख्य शब्द होने जा रहे हैं—'अभाव, बेरोजगारी, कम-रोजगारी, दोषपूर्ण रोजगार और अस्तित्व-सुरक्षा-भाव। यदि १९६० के बाद वाले दशक में विश्व के कुछ भागों में युवाओं ने संस्था; विचार और संस्कृति के संकट की चुनौती उपस्थित की थी; तो ९ वें दशक के युवक को लाइलाज आर्थिक अनिश्चितता और कंगाली तक का सामना करना पड़ेगा।

अपने देश में आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा नौजवान है। विगत जनगणना के अनुसार देश में १३ करोड़ युवक हैं, जो सन् २००० तक १६ करोड़ हो जायेंगे। अनुमान है कि हमारी आबादी का ७८% ३५ वर्ष से कम आयु का है। इस प्रकार यह प्राचीन राष्ट्र युवाओं का राष्ट्र है। सामान्य रूप से युवा के रूप में ५० लाख से अधिक वे व्यक्ति माने जाते हैं, जो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करते है। विचार भी उन्हीं की समस्याओं का होता है। वस्तुतः ये युवक युवा समुदाय की बड़ी आबादी का एक छोटा सा हिस्सा हैं, जिनका विचार युवा-सेवा सम्बन्धी किसी कार्यक्रम में किया ही नहीं जाता। विविध संवैधानिक समादेशों और नीति निर्देशक सिद्धान्तों के बावजूद इस दिशा में उपलब्धि निराशा के अलावा कुछ नहीं है। इन प्रावधानों के अन्तर्गत युवाओं की राज्य के शोषण तथा नैतिक व भौतिक उपेक्षा से सुरक्षा [अनुच्छेद ३९ फ] शिक्षा; जन सहायता; काम के अधिकार का प्रावधान [अनुच्छेद ४१] तथा १४ वर्ष तक के सभी बच्चों को मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा [अनुच्छेद ४५] शामिल हैं।

मौलिक अधिकार

देश की युवानीति में तीन मूलभूत अधिकारों पर ध्यान देना चाहिये। (१) शिक्षा का अधिकार [२] काम का अधिकार [३] सहभागिता का अधिकार। यह कहने की आवश्यकता नहीं है; कि इन तीन अधिकारों से ३ आवश्यक कर्तव्य भीजुड़े हैं। ये कर्तव्य हैं राष्ट्रीय पुनर्रचना और विकास के प्रयासमें परिश्रम व दायित्व निर्वाह की हिस्सेदारी।

शिक्षा का अधिकार

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ४५ में विहित इस अधिकार का महत्वपूर्ण अंग अनौपचारिक शिक्षा है। अनौपचारिक ढंग से समर्पित औपचारिक शिक्षा को कामके पैमाने पर वरीयता दी जानी चाहिये, क्योंकि ऐसी बुनियादी शिक्षा युवा-प्रगति का प्रारम्भ है। इस शिक्षा का उद्देश्य अनिवार्यतः साक्षरता के

आगे की शिक्षा और व्यक्तित्व का विकास होना चाहिये अर्थात ऐसी शिक्षा में 'शिक्षा के लिये विकास' और 'विकास के लिये शिक्षा', दोनों ही पक्ष समाहित होने चाहिये। यदि विकास एक राजनैतिक सामाजिक प्रक्रिया है, जैसा संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने परिभाषित किया है; और अपने उच्च रूप में व्यक्ति और मानव समुदाय के विकास की परिस्थितियां पैदा करती है, तो स्पष्ट रूप से यह ऐसा विकास हैं; जो आर्थिक विकास से अधिक है। इस संदर्भ में 'शिक्षा के लिये विकास' और 'विकास के लिये शिक्षा' एक समन्वित दृष्टिकोण के आवश्यक अंग बन जाते है। 'शिक्षा के लिये विकास' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है —

'विकास से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में जनमत जागरूक करना और औद्योगिक व विकासशील दोनों प्रकार के देशों में परिवर्तन के उपकरण बनने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं की सहायता करना, ताकि एक समूह द्वारा दूसरे का शोषण समाप्त किया जा सके और सभी लोगों के लिये महत्तर न्याय उपलब्ध कराया जा सके।'

विकास शिक्षा में राष्ट्रीय उन्मुखता वाला ऐसा ज्ञान निहित है, जिसमें राजनीतिक, आर्थिक सांस्कृतिक और वैचारिक ऐच्छिकता से समाहित विकास शिक्षा युवक को जीवन संघर्ष के लिये तैयार करती है।

लहरों से खेले जो

● सुधाकान्त दास

भूल को सुधार कर
कंटक बुहार कर
बढ़ता जो रहता है,
अनवरत राह पर
पहनता सफलता का;
हार वही साथी।
लहरों को गिन-गिन
तट पर ही बैठ खिन्न
झखता ही रहता है,
निरुपाय रात-दिन
पहुंच कभी पाता वह,
पार नहीं साथी।
तम से कतराये जो
गम से घबराये जो
रहता है उसका जीना,
तो दूभर ही
मिलता भी रोशनी का,
प्यार नहीं साथी।
लहरों से खेले जो
झेले, झमेले जो
कूद पड़े सागर में;
एक ही अकेले जो
करता भी पार है,
मझधार वही साथी।

—२६/८१८, डी० डी० ए० फ्लैट्स,
कालकाजी, नई दिल्ली-१९

सीधे शब्दों में शिक्षा के अधिकार में सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा, व्यापक

पैमाने पर व्यवसायीकरण, उच्च शिक्षा के विपुल अवसर और राष्ट्रीय नियोजन और शैक्षिक नियोजन में सीधा सम्बन्ध शामिल है। इस अधिकार में प्रशिक्षित करने का अधिकार भी शामिल है, जो सोद्देश्य है।

इसके द्वारा देश की समृद्ध और उज्ज्वल परम्परा में संस्कारित सुसम्पन्न कर प्रत्येक युवक को राष्ट्रवादी नागरिक व समर्पित देशभक्त के रूप में गढ़ा जायेगा।

काम का अधिकार

प्रत्येक युवक को काम करने का अधिकार है, अतः वह ऐसी विकास-योजना पाने का अधिकारी है, जिसमें रोजगार के साथ उत्पादन और शिक्षा के साथ विकास शामिल होगा। यह विकास योजना प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को काम देने की आवश्यकता-पूर्ति करेगी। काम के अधिकार का सीधा सम्बन्ध गरीबी व अभाव की समस्याओं से है। यदि देश को उन्नत और समृद्ध होना है, तो राष्ट्रीय विकास के किसी भी प्रयास में काम के माध्यम से युवा की भागीदारी मूलभूत है।

सहभागिता का अधिकार

'यूनेस्को' (Unesco) द्वारा अगस्त १९६४ में युवाओं पर आयोजित अन्तर-राष्ट्रीय सम्मेलन में कहा गया था 'युवजनों को सामुदायिक जीवन और विकास में अतीतः की अपेक्षा आज कहीं अधिक सक्रिय भाग स्वतः लेना चाहिये।' कभी यह धारणा रही होगी कि नौजवान लोगों को भावी जीवन की तैयारी के अलावा कोई दूसरा कार्य नहीं है। परन्तु अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि देश के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में हिस्सा लेकर उन्हें अपने समुदाय में अपना स्थान शीघ्रातिशीघ्र बना लेना चाहिये। अब युवक भी ऐसा चाहते है। युवाओं को समाज के साथ एकात्म किया जाना चाहिये और उन्हें 'युवाप्रौढ़' समझना चाहिये, न कि 'बढ़ते हुए बच्चे।' उन्हें अपने दायित्व का भान करना चाहिये और इसमें उनकी सहायता की जानी चाहिये।

युवानीति से सम्बन्धित उपर्युक्त दृष्टिकोण इस आवश्यकता को रेखांकित करते हैं, कि युवाओं को राष्ट्र जीवन के सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक सांस्कृतिक और शैक्षिक क्षेत्रों में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जावा चाहिये। इस पर भी बल दिया गया है कि युवजनों की सहभागिता केवल क्रियान्वयन स्तर पर ही नहीं, अपितु विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने में भी आवश्यक है।

ठोस बात यह है कि युवक को १८ वर्ष की अवस्था में मताधिकार दिया जाना चाहिये, क्योंकि यदि सामाजिक प्रौढ़ता की अवस्था १८ वर्ष है, तो राजनीतिक परिपक्वता की उम्र भी १८ वर्ष ही होनी चाहिये। अमेरिका, रूस तथा चिली, मिस्र और कुछ पूर्व एशियायी

देशों ने यह अधिकार दे रखा है।

विश्व विद्यालय प्रशासन में छात्रों की सहभागिता समय की मांग हैं और यह सबके द्वारा समर्थित हैं। तो भी यह केवल प्रतीकात्मक बनकर रह गई है। इस दिशा में पहला कदम प्रत्येक विश्व विद्यालय में छात्रसंघों का प्रावधान होना चाहिये।

सामाजिक क्षेत्र में सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये युवकों को सामाजिक परिवर्तन के प्रयासों में लिप्त करना चाहिये। ये कार्यक्रम सरकारी व गैर-सरकारी विभिन्न अभिकरणों द्वारा किये जाने चाहिये। आर्थिक क्षेत्र में युवाभागीदारी का सीधा सम्बन्ध काम के अधिकार से हैं, और यह दोहराना जरूरी नहीं हैं कि आर्थिक धरातल पर विकास का कोई भी प्रयास तभी सफल हो सकता हैं, जब उसमें युवकों की महत्वपूर्ण सहभागिता हो। सांस्कृतिक स्तर पर ऐसा सामाजिक परिवेश पैदा करने की आवश्यकता हैं, जिसमें समाज के विभिन्न अंगों में परस्पर सक्रिय वैचारिक आदान-प्रदान हो और वहां युवक की सृजनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति के सभी मार्ग खुले हों। क्रीड़ा, कला और अन्य सृजनात्मक क्षेत्रों में तो बहुत कम अवसर हैं। राष्ट्रीय युवानीति के अन्तर्गत इन अवसरों की विपुलता होनी चाहिये।

राष्ट्रीय नीति निर्धारित करते समय कुछ ऐसी मूलभूत बातों की ओर भी ध्यान देना चाहिये, जो आम तौर पर उपेक्षित कर दी जाती हैं।

(१) युवानीति और उसपर आधारित कार्यक्रमों में उन समूहों के विभिन्न चरित्रों (स्वरूपों) को मान्यता दी जानी चाहिये, जो युवा कार्यक्रमों के क्षेत्र हैं अर्थात सामान्य युवा, विद्यार्थी, विश्वविद्यालय समूह और स्वयंसेवी संगठनों के सदस्य। स्वयंसेवी संगठनों द्वारा कार्यक्रमों के आयोजन को विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये, क्योंकि इनके द्वारा विद्यार्थी युवक और गैर-विद्यार्थी युवक को परस्पर मिलने-जुलने और जानने समझने का अच्छा अवसर मिलता है। सामाजिक परिवर्तन में आसानी से भागीदार बनाये जा सकने वाले और संगठित किये जा सकने वाले युवाओं के विशेष कार्यक्रम आयोजित होने चाहिये। गैर-विद्यार्थी युवाओं तक शिक्षा ले जाने के लिये विविध प्रकार (स्वरूप) अपनाये

कथा रहस्य

वर्चस्वी कथाकार जैनेन्द्र कुमार की एक कहानी पढ़कर एक सज्जन ने उनसे कहा 'आखिर है क्या आप की इस कहानी में ? मैं तो इसे कई बार पढ़ चुका, पर समझ न सका कि आप कहना क्या चाहते हैं ?'

जैनेन्द्र जी ने चुटकी लेते हुए कहा 'आपके भीतर इतनी गहरी जिज्ञासा जगा देना क्या कहानी की सफलता नहीं है ?'

—डा० गोपाल प्रसाद 'बंशी'

पुष्प की अभिलाषा

● माखनलाल चतुर्वेदी

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं;
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं;
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊं,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूं, भाग्य पर इठलाऊं
मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक !
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक।

('युगचरण' से)

जाने चाहिये। शिक्षण संस्थाओं को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाना चाहिये, इससे सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न होगा।

(२) आमतौर पर नौकरशाही दृष्टिकोण, गैर-सरकारी अभिकरणों और संगठनों की अवहेलना कर देता है राष्ट्रीय युवानीति को सफल बनाने के लिये सामाजिक गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत गैर-सरकारी स्वयंसेवी और स्वायत जनसेवी संगठनों को पुनर्गठित किया जाना चाहिये। यदि ऐसे संगठनों की उपेक्षा की जाएगी, तो 'युवा नीति' का भविष्य भी आम सरकारी योजनाओं जैसा ही होगा।

(३) राष्ट्रीय युवानीति के क्रियान्वयन को भी नीति का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिये और एतदर्थ एक उपयुक्त तंत्र का निर्माण भी किया जाना चाहिये। इस हेतु संसद के एक अधिनियम द्वारा एक विधायी निकाय 'राष्ट्रीय युवा आयोग' गठित किया जाना चाहिये। इस आयोग, में स्वयंसेवी संगठनों और विद्यार्थी संगठनों के भी प्रतिनिधि हों। और यह आयोग ऐसा आधारभूत ढांचा तैयार करे, जिसके द्वारा 'युवाओं की सेवा' और 'युवाओं के लिये सेवा' को राष्ट्रीय कल्याण के उपयोग में लाया जा सके।

इस प्राचीन कथन में युवानीति का ठीक स्वरूप मूर्तिमान हुआ लगता है- प्राप्ते तु षोडषे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्। (अर्थात् १६ वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर पुत्र के साथ मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिये।)००

—अधिवक्ता, बंबई उच्च न्यायालय

...ग समस्या के हल के लिए

नये कदम

- उत्तर प्रदेश शासन ने प्रदेश में आवासों की कमी दूर करने के लिए नये ठोस कदम उठाये हैं। इनमें निम्नांकित का विशेष महत्व है।
- राज्य के विभिन्न अंचलों में चलायी जा रही आवास निर्माण परियोजनाओं के लिये जो जमीनें अधिगृहीत की गयी हैं उनके मुआवजों के शीघ्र भुगतान के आदेश।
- विवादास्पद मुआवजों की रकमों के बारे में भी फैसला शीघ्र करने के निर्देश।
- भूमि क्रय करने की प्रक्रिया को और अधिक सरल बनाने के प्रयास।
- सीमेंट आदि विभिन्न निर्माण सामग्री तत्परता से सुलभ कराने के प्रयास। सीमेंट उत्पादन जो १९८०-८१ में ५·२५ लाख मी० टन था १९८२-८३ में ९·३२ लाख टन हो गया।
- भवन निर्माण ऋण प्राप्त करने की अधिक सुविधाएं।
- निर्बल वर्ग आवास योजना के अन्तर्गत १५० रुपये प्रति आवास-भूमि के विकास हेतु तथा एक कमरा व बरामदा बनाने के लिए २००० रुपये प्रति लाभार्थी अनुदान के रूप में सहायता की व्यवस्था।

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

पंजी क्र०एल० डब्लू/एन०पी०-२०

षा

OBEROI HO खनलाल चतुर्वेदी

1 INDIA
Hotel Oberoi Towers, Bombay
Oberoi Intercontinental, New Delhi
Oberoi Grand, Calcutta
Oberoi Maidens, Delhi
Oberoi Cecil Simla
Oberoi Mount Everest, Darjeeling
Oberoi Palm Beach, Gopalpur-On-Sea
Oberoi Palace, Srinagar
Oberoi Clarkes, Simla
Oberoi Bagmalo Beach, Goa,
Jass Oberoi Khajuraho,

2 AUSTRALIA
Oberoi Adelaide, Adelaide
Windsor Hotel, Melbourne

3 EGYPT
Aswan Oberoi, Aswan
Mena House Oberoi, Cairo

4 IRAQ
Al Rasheed, Bagdad

5 INDONESIA
Bali Oberoi, Bali

6 NEPAL
Soaltee Oberoi, Kathmandu

7 SRI LANKA
Lanka Oberoi, Colombo
Queens Oberoi, Kandy

8 SINGAPORE
Oberoi Imperial, Singapore

9 SAUDI ARABIA
Dammam Hotel, Dammam
Oberoi Dammam, Dammam

THE BEST HOTEL IN THE BEST PLACES.

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए मनसाराम गुप्त द्वारा प्रकाशित
एवं कौशल प्रेस, लखनऊ से मुद्रित परामर्शदाता : वचनेश त्रिपाठी
सम्पादक : वीरेश्वर द्विवेदी

राष्ट्रधर्म का

अगला अंक

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

'विजयदशमी-अंक'

जिसमें आप पढ़ेंगे :–

१. अरब में हिन्दू (जमनादास अख्तर); २. 'विष-बीज' जो अंग्रेजों ने बोया (सुदर्शन जी), ३. वैदिक वाङ्मय में प्रतीक (श्यामसुन्दर मिश्र), ४. ५० देशों के हिन्दू (प्रो० हरिवंशलाल ओबराय), ५. आत्म-हीन (केशव दुबे), ६. भविष्य-कथा (विनयकुमार श्रीवास्तव) ७. निवटारा (माधुरी शाह), ८. महारानी विक्टोरिया से, शादी का प्रस्ताव (राजेन्द्र परदेशी); ९. शिकारी (हरिकृष्ण तेलन), १९. उपमन्यु की कुर्सी (शङ्करपुण ताम्बेकर), १०. जब राम ने दानव नन्दिनी को आशीर्वाद दिया।, १२. कुत्ते की दुम, 'बाल कथा' (नरेन्द्र कोहली), १३. अदन के किले का वह भारतीय शहीद, १४. दण्डी का नाम सिकन्दर (डा० कुमारी भारती), १५. वैश्वानर रुपा वागेश्वरी (अघोरेश्वर राम), १६. अजीज खां की गद्दारी, १७. क्या अमेरिका में एक ग्रहवासी कैद हैं। १८. और उनका नाम पड़ा कृष्ण १९. खजाना किसाना (इतिहास कथा), २०. सुप्रभातम् सुनने वाली गउवें। २१. अलौकिक योगी से अन्तरंग वार्ता २२. विचित्र किन्तु सत्य, बात बात में बाल तथा चोला देवी सहित सभी स्थायी स्तम्भों सहित एक महत्वपूर्ण और रोचक सामग्री से समन्वित अङ्क। मांग भेजने में शीघ्रता करें।

मूल्य रु० ३.२५

सम्पर्क : व्यवस्थापक, 'राष्ट्रधर्म' (मासिक) राजेन्द्रनगर, (पूर्व) लखनऊ (उ०प्र०)

अनुक्रमणिका

सम्पादक :
वचनेश त्रिपाठी

लेख

६. प्रधानमंत्री सच बोलती हैं ?	सम्पादकीय
१०. १८ अगस्त ४५ के बाद भी सुभाष जीवित थे	भंवर सुराणा
१२. 'हिन्दुत्व, एकता का आधार	सुभाषचन्द्र बोस
१६. परम विप्लव-पुरुष श्रीकृष्ण	योगिराज अरविन्द घोष
१६. १५ अगस्त नये संकल्प का दिन	अटल बिहारी वाजपेई
३५. ३० लाख अमरीकी सेना	रूस का आकलन
४०. जीवन के अग्नि प्रश्न ?	दादाराव परमार्थ
४४. विश्व-रूप: रोमांचक विजय	कन्हैयालाल चतुर्वेदी
५०. बालाजी का मन्दिर	डा० आरिगपूडि
६४. पाठ्य-पुस्तकों में घातक साजिश	डा० संतोष मित्तल
७४. हवन: एक चमत्कारिक चिकित्सा	
८८. अमर शहीद बाघा जतीन	नलिनी किशोर गुह
९२. मुसलमान 'मुस्लिम होम लैण्ड' में	मन्मथनाथ गुप्त
९४. लोकमत का नियामक कौन ?	पं० दीनदयाल उपाध्याय
१०१. लिच्छवि गणराज्य	डा० देवीदत्त शुक्ल
१०४. जब भारतीय नौसेना ने तोपों के मुंह बम्बई की तरफ कर दिये	सुधीर विद्यार्थी

कथा, संस्मरण तथा घटना

१४. महादेवी वर्मा को ज्ञान पीठ पुरस्कार	
३६. सिद्धराज जयसिंह का न्याय	वृन्दावन लाल वर्मा

वर्ष–२० अंक–४
सितम्बर १९८३

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर पूर्व
(पो० बा० २०७), लखनऊ
दूरभाष : ४२९०१

५४. एक प्रेरणा दायक व्यक्तित्व — बालासाहब देवरस
५८. शहीदों की मां से भेंट — शचीन्द्रनाथ बख्शी
६३. त्यागी बनाम नेहरू जी — रघुनाथप्रसाद पाठक
७७. मंगल पाण्डेय शहीद-दिवस — सुरेन्द्र शर्मा
८४. मांग का सिन्दूर — चलम
८६. मगध की मंगलामुखी — प्रेमशीला गुप्ता
९०. यादें, समय और साथियों की — जयदेव कपूर
९६. दासता का दर्द — डा० वीरसेन
११५. महर्षि दयानन्द के संस्मरण
१३२. मुहम्मद बिनकासिम के बाद — 'नागरिक'
१३९. रीछों के साथ एक रात — डॉम डिसी

कविताएं

६२. तूफानी ऊधम इसी धरा पर सोता है — नरेश कात्यायन
८३. सरफरोश मतवाले — उमाशंकर वर्मा 'साहिल'
१४१. वर्षा: दो बिम्ब — प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय

अन्य

७६. 'रक्षा-बन्धन' पर एक मार्मिक अपील
७८. सिख कहते अब शर्म आने लगी है — तवलीनसिंह
७९. राष्ट्रपति भवन में फिल्म प्रदर्शन — विनय वेलिंग

आजादी की लड़ाई सिर्फ

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम से संबंधित तीन डाक-टिकट जारी करते समय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने विगत ९ अगस्त को दिल्ली-स्थित 'नेहरू-स्मारक-पुस्तकालय-सभागार' में कहा, "सन् १९४२ में मेरे दादा (पं० मोतीलाल नेहरू) और पिता सहित अनेक स्वतंत्रता-सेनानियों की बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियों के बीच कांग्रेस द्वारा 'भारत छोड़ो प्रस्ताव' का पारित किया जाना हमारी आजादी की लड़ाई के अन्तिम चरण की शुरूवात का था; यद्यपि स्वतंत्रता-संघर्ष की शुरूवात सन् १९२९ में लाहौर-कांग्रेस के प्रस्ताव से हुई थी।"

जहां तक भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की बात है, प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के इस कथन की क्या वास्तविकता है? क्या प्रधानमन्त्री सच कह रही हैं? यदि वे कहतीं कि कांग्रेस द्वारा स्वतंत्रता-संघर्ष की शुरुवात सन् १९२९ में लाहौर-कांग्रेस के प्रस्ताव से हुई तो इसमें दो मत नहीं हो सकते थे परन्तु वे जब देश के सम्पूर्ण स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास का जिक्र करती हैं तो उसे सिर्फ सन् १९२९ से शुरू हुआ मान लेना किस तरह सम्भव है? सन् १८८५ में इटावा जिले के भूतपूर्व अंग्रेज कलेक्टर मि० एलन ओक्टेवियन ह्यूम ने कांग्रेस (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) की स्थापना की थी और सर विलियम वेडरवर्न को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया था।

ध्यान देने की बात यह है कि स्वयं वेडरवर्न महाशय ही अपनी पुस्तक में सन् १८७९ के बम्बई प्रदेश में 'किसान-विद्रोह' अथवा 'दक्षिण के विप्लव' का हवाला देते हैं और उस समय की अशांति की ओर इंगित करते हुए कहते हैं, 'कहीं सन् ५७-५८ का गदर दुहरा न जाये।' वह युग था देश के प्रथम विप्लवी दल के प्रथम शहीद क्रांन्तिकारी नेता वासुदेव बलवन्त फड़के का। वह महान देशभक्त कांग्रेस-स्थापना के २ वर्ष पहले १७ फरवरी सन् १८८३ को सुदूर विदेश-स्थित अदन के किले में जन्म कैदी के रूप में शहीद हुआ। क्या प्रधान-मन्त्री उस बलिदानी के महान प्रयासों को भारत के स्वतंत्रता-संग्राम का ही

क्या प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा

सन् ९९ से शुरू हुई ?

सम्पादकीय

हिस्सा नहीं मानतीं ? तदनन्तर सन् १८९७ में लोकमान्य तिलक को अंग्रेजों ने राज-द्रोह में कैद की सजा दी, १८ अप्रैल सन् १८९८ को क्रान्तिकारी चाफेकर को यरवदा जेल में फांसी दी गई, फिर उनके बाकी दो भाइयों को भी फांसी हुई। आगे १९ अप्रैल सन् १९१० में महाराष्ट्र के थाना जेल में क्रान्तिकारी अनन्त कान्हेरे, कर्वे और देशपाण्डे ने फांसी पाई—इन्होंने नासिक के जिला कलेक्टर मि० जैक्सन को गोली मारकर खत्म कर दिया था। उधर बंगाल में ११ अगस्त को खुदीराम बोस 'वन्दे मातरम्' पुकार कर फांसी झूल गया। उसका साथी प्रफुल्ल चाकी मोकामा स्टेशन पर स्वयं को गोली मारकर पुलिस घेरे में शहीद हुआ। पुलिस उसका सिर काटकर, शिनाख्त के लिए मुजफ्फरपुर ले गई कि यही क्रांतिकारी प्रफुल्ल चाकी था या नहीं ? सन् १९०८ के ही ११ नवंबर को कन्हाईलालदत्त ने फांसी पाई। उनके साथी सत्येन्द्रनाथ बोस को २३ नवंबर (सन् १९०८) को फांसी दी गई। इसके अगले साल सन् १९०९ के १८ अगस्त को मदनलाल धींगरा को लन्दन में फांसी का पुरस्कार मिला। ये सब महान बलिदानी कड़ियां क्या भारत के स्वतंत्रता-संग्राम का ही हिस्सा नहीं हैं ? क्या प्रधानमंत्री इन्दिराजी इन शहीदों के नाम नहीं जानतीं याकि जान-बूझकर उनको आजादी की लड़ाई के इतिहास से मिटा डालना चाहती हैं ?

सन् १९०८ में ५० वर्षीय लोकमान्य तिलक को दूसरी बार अंग्रेजों ने ६ वर्ष कैद की लम्बी सजा दी, वह किसलिए ? क्या तब तक स्वतंत्रता-संघर्ष शुरू नहीं हुआ था ? फिर ये फांसियाँ और लंबी-लंबी कैद किसलिए ?

गांधी सच बोलती हैं ?

जिस साल कांग्रेस कायम हुई—उसी साल (१८८५ ई० में) कूका-क्रांति के प्रसिद्ध नेता गुरु रामसिंह निर्वासित अवस्था में बर्मा की जेल में शहीद हुए—यह निर्वासन किस अपराध में था ? उनके ५० अनुयायी सन् १८७२ में मालेर कोटला में अंग्रेजों ने तोपों से बाँधकर उड़ा दिये—इनमें एक १३ वर्ष का बच्चा भी था। क्या वे सब हमारे स्वतंत्रता-संघर्ष के इतिहास के ही गौरवास्पद पृष्ठ नहीं हैं ? इन्हीं कूका वीरों के १६ साथी उसके दूसरे दिन मलौंद्र में फांसी से लटका कर मार दिये गये। क्या इंदिरा जी उन सब के नाम स्वतंत्रता के इतिहास से समाप्त कर देने पर तुली हैं ? देश की आजादी के ही लिए क्या वे सब नहीं जूझे ? सन् १९०९ में वीर सावरकर को ५० वर्ष कालेपानी की सजा दी गई, वह किस जुर्म में ? उनके भाई भी कालेपानी भेजे गये, किसलिए ?

सन् १९१५ के १० सितंबर को यतीन्द्रनाथ मुकर्जी (बाघा जतीन) अंग्रेज टुकड़ी से खाई युद्ध करते हुए शहीद हुए, उनके साथी चित्तप्रियराय भी होत रहे। विप्लवी ज्योतिष्चंद्र बहरामपुर जेल में पागल हो गया—उसी अवस्था में शहीद हुआ। 'अलीपुर बम केस' में बारीन्द्र घोष, उल्लासकरदत्त, उपेन्द्रनाथ, हेमचंद्रदास आदि अनेक क्रांतिकारियों को जन्म-कैदी बनाकर अण्डमान भेजा गया। सन् १९१५ के १७ नवंबर को भगतसिंह के प्रेरणास्रोत करतारसिंह सराबा को फांसी दी गई तथा उनके दर्जनों साथी शहीद हुए—वह कौन-सी लड़ाई थी ? और संघर्ष की यह सब श्रंखला सन् १९२९ के काफी पहले की हैं; जिसे स्वतंत्रता-

लंदन की भरी सभा में कर्जन वाइली को गोली मारने वाले शहीद मदनलाल धींगरा

सेनानियों पर डाक टिकट जारी करते समय प्रधानमंत्री ने न केवल भुला देने की प्रचेष्टा की वरन स्वतंत्रता-संग्राम के वास्तविक सेनानियों के प्रति घोर उपेक्षा नीति बरती। महादेव देसाई तथा मीरा बेन पर एक नहीं शताधिक डाक-टिकट जारी हों—खुशी की बात है किन्तु चंद्रशेखर आजाद सरीखे महान शहीद पर अभी तक बहुत आग्रह—अनुरोध करने के बावजूद कोई डाक-टिकट संचार मंत्रालय ने जारी करना गवारा न किया, यह किस दुर्नीति का परिणाम है और शासन में कौन इसके लिए

जिम्मेवार यानि गुनहगार है ? क्या प्रधानमंत्री और उनका शासक-गिरोह जवाब देगा ?

गत वर्ष मुझे फैजाबाद बुलाया गया, वहां के सिन्धी समाज ने सन् ४२ के ही सिन्ध के एक शहीद हेमू कालाणी पर डाक-टिकट जारी करने की मांग की हेमू कालाणी छात्र थे तथा उन्हें अंग्रेजों ने फांसी दी थी। मैंने सिन्धी समाज को सचेत किया कि केन्द्रीय सरकार उस शहीद पर डाक-टिकट इतनी आसानी से नहीं निकालेगी, ऐसे संदर्भों में तो वह जान-बूझकर गूंगी-बहरी बनती है—उन्हें मैंने पिछला अनुभव बताया कि किस तरह पुराने-पुराने तपे हुए क्रांतिकारी प्रधानमंत्री से जाकर मिले, तत्कालीन संचार मंत्री स्टीफोन से मिले कि चन्द्र शेखर आजाद पर डाक-टिकट निकाला जाय, उनके बलिदान के ५० वर्ष पूरे हुए थे परन्तु कुछ न हुआ वरन संचार-मंत्रालय ने टका-सा लिखित जवाब दे दिया कि "कोटा पूरा हो चुका है तथा सलाहकार समिति ने आजाद पर डाक-टिकट निकाले जाने की सिफारिश नहीं की है।" यह कौनसी सलाहकार समिति ? उसे तो तत्काल भंग कर देना चाहिए। परन्तु प्रधानमंत्री तथा उनके शासक गिरोह की शहीद क्रांतिकारियों के प्रति शायद ऐसी ही नीति है। तभी तो भावरा में जहां आजाद का जन्म हुआ, वहां जो उस महान क्रांति-सेनापति की प्रतिमा लगी थी—उसे तोड़ डाला गया तथा अभी तक दूसरी प्रतिमा न तो बनी, न प्रतिष्ठित हो सकी—अलबत्ता एक और करिश्मा हुआ कि उसी खंडित प्रतिमा के नजदीक सरकार ने जो शिला-लेख लगवाया—उसमें संविधान की कुछ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं और शिला-लेख के दूसरी ओर लिखा है—"इस क्षेत्र के स्वतंत्रता-संग्राम के शहीदों और सेनानियों के नाम, विकास-खण्ड-भावरा।" बिल्कुल नीचे जगह छोड़ दी गई है तथा जानबूझकर आजाद का नामोल्लेख तक उसमें नहीं किया गया। यह किसके संकेत पर ? क्या नौकरशाही यानि अफसरशाही को जनता अब आजाद का महत्व तथा गौरव

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

आजाद : संचार मंत्रालय की 'सलाहकार समिति' ने जिनका डाक-टिकट निकालने की सिफारिश नहीं की

१८ अगस्त ४५ के बाद भी सुभाष

आज भी कुछ लोग ऐसे है कि जो यह विश्वास नहीं करते कि नेताजी १८ अगस्त १९४५ को विमान दुर्घटना में हताहत हुए।

अंग्रजो सरकार के अधिकारियों के बीच उस समय हुए पत्र-व्यवहार से पता चलता है कि नेताजी १८ अगस्त १९४५ को हुई तथा कथित विमान दुर्घटना में हताहत नहीं हुए और २३ अगस्त १९४५ को वे जीवित थे तथा अंग्रेज अधिकारी करने का आरोप लगाकर वर्मा या मलाया के किसी न्यायालय में मुकदमा चलाया जाए। तीसरा विकल्प मुडी ने यह सुझाया था कि नेताजी पर भारत में मुकदमा चलाकर उन पर भारत से बाहर सैनिक न्यायालय में मुकदमा चलाया जाए और उन्हें क्रूरतम सजा दी जाए। चौथा विकल्प नेताजी को भारत लाकर नजर-बन्द कैद करने का था। पांचवांविकल्प यह था कि उनको किसी अन्य

अंग्रेज सुभाष बोस को फांसी

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को फांसी लगाने का षड्यंत्र कर रहे थे।

अंग्रेज सरकार के गृह सदस्य सर फ्रांसिस मुडी ने २३ अगस्त १९४५ को तत्काल्लीन वायसराय लार्ड वेवल के सचिव जेनकिन्स को एक पत्र लिखा था जिसमें नेताजी के साथ क्या व्यवहार किया जाए, वह योजना थी। इस पत्र के अनुसार नेताजी को पकड़ कर भारत लाया जाए तथा उन पर युद्ध करने या शत्रुओं के एजेन्ट होने के आरोप लगाकर मुकदमा चलाया जाना था। दूसरा विकल्प उस पत्र में यह था कि नेताजी के खिलाफ अंग्रेज राजा के विरुद्ध युद्ध अंग्रेज उपनिवेश में, सेशिल्स में, बन्दी बनाकर घुट-घुट कर मरने दिया जाए। छठा और अंतिम विकल्प यह था कि नेताजी जहां भी हो, उनको वहीं रहने दिया जाए तथा उनसे छेड़छाड़ नहीं की जाए।

वायसराय वेवल का सुझाव यह था कि नेताजी तथा उनके सहयोगियों को भारत से बाहर युद्ध अपराधियों के रूप में मानकर उनके खिलाफ दूसरे देश में मुकदमा चलाया जाए।

इस अंग्रेज मुडी ने अपने पत्र में लिखा था, 'मैं नहीं समझता कि यदि इन पर भारत में मुकदमा चलाया जाएगा तो

बोस के जीवित रहने के प्रमाण

उनको, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को, फांसी पर चढ़ाने का कोई अवसर मिल पाएगा। उनकी मुक्ति के लिए बहुत भारी दबाव पड़ेगा। यही नहीं बोस तथा उनके साथियों के कार्यों, कार्यों के कारण आदिको भी खूब प्रचार मिलेगा। भारत में सीधा उन पर मुकदमा चलाने की आलोचना नहीं की जा सकेगी और यदि यह सुझाव स्वीकार हो तो उनको फांसी चढ़ाना अन्ततः असम्भव होगा, अतः सजा सुनाने के बाद उनको क्षमादान कर देने से आंदो-

देना चाहते थे

● भंवर सुराणा

लन रोकना ठीक रहेगा।

आगे उसने यह भी लिखा है—

'वर्मा की सरकार भी नेताजी पर मुकदमा चलाने व उनको फांसी पर लटकाने के लिए सहमत नहीं होगी क्योंकि वह भी वर्मी राष्ट्रीय सेना का समर्थन पाने में जुटी हुई है।'

मुडी के अनुसार-'मलाया की सरकार को सम्भवतः बोस को इस प्रकार फांसी चढ़ाने से कोई ऐतराज नहीं होगा। बशर्ते कि ब्रिटिश सरकार भारत और ब्रिटिश संसद में होने वाले कितने ही तगड़े विरोध व आंदोलन को ठुकराने का निश्चय कर ले।'

मुडी का यह भी कहना था—'सिंगापुर में मुकदमा बन्द कमरे में ही चलाया जाना चाहिए और तब तक कोई समाचार किसी को नहीं दिया जाना चाहिए जब तक बोस को फांसी नहीं दे दी जाए क्योंकि सिंगापुर में भी उनकी रिहाई के लिए भारत जितना ही तेज आन्दोलन हो सकता है। गुप्त रूप से बन्द कमरे में मुकदमा चलाने पर हमको 'न्यायिक मौत' का अपराधी करार दिया जाएगा पर यह हमारे लिए आवश्यक है, जिससे बोस के मित्र व समर्थक उनके जीवन को बचाने के लिए कुछ भी नहीं

(शेष पृष्ठ २८ पर)

'हिन्दुत्व, सांस्कृतिक व राष्ट्रीय

भारत को समझने के लिए प्रारम्भ से ही दो महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रथम, भारतीय इतिहास को शताब्दियों अथवा दशाब्दियों में नहीं मापा जा सकता बल्कि सहस्त्रों वर्षों में मापना पड़ेगा। द्वितीय, केवल ब्रिटिश शासन के पश्चात् ही भारत ने अपने इतिहास में प्रथम बार यह अनुभव किया है कि उसे वास्तव में जीता गया है।

भौगोलिक दृष्टि से, भारत एक स्वयं पूर्ण इकाई के रूप में शेष विश्व से अलग कटा हुआ लगता है। उत्तर में शक्तिशाली हिमालय एवं शेष दो ओर अनन्त समुद्र से घिरा हुआ भारत एक भौगोलिक इकाई का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। भारत में दिखाई पड़ने वाली बाह्य विविधता कभी भी समस्या नहीं रही—क्योंकि वह अपने सम्पूर्ण इतिहास में अनेक जातियों को आत्मसात करने एवं उनको एक समान संस्कृति और परम्परा के रंग में रंगने में समर्थ हुआ है। हिन्दू धर्म ने सबसे महत्त्वपूर्ण जोड़ने वाले सूत्र के रूप में कार्य किया है। उत्तर या दक्षिण, पूर्व या पश्चिम, तुम चाहे जहां यात्रा करो, तुम्हें सर्वत्र एक धर्म, एक ही संस्कृति और एक ही परम्परा के दर्शन होंगे। समस्त हिन्दू भारत को पुण्य भूमि मानते हैं। उनकी पवित्र नदियां पवित्र नगरों के समान सम्पूर्ण भारत में बिखरी हैं। यदि एक शुद्ध हिन्दू के नाते तुम तीर्थ यात्रा को पूर्ण करना चाहो तो तुम्हें एक ओर सुदूर दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर तक जाना पड़ेगा, दूसरी ओर उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय की चोटी में स्थित बद्रीनाथ के दर्शन करने होंगे। जिन महान आचार्यों ने इस देश को अपने विचारों के अनुसार परिवर्तित करना चाहा उन्हें सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करना पड़ा। श्री शंकराचार्य ने, जिनका इन आचार्यों में सर्वोच्च स्थान है, और जो आठवीं शताब्दी में हुये थे; भारत के चारो कोनों पर चार आश्रमों (मठों) की स्थापना की जो आज भी फल-फूल रहे हैं। प्रत्येक जगह उन्हीं धर्म ग्रन्थों का पारायण एवं अनुगमन किया जाता है। तुम चाहे जहां यात्रा करो, महाभारत और रामायण दोनों महाकाव्यों की समान लोक प्रियता पाओगे।

जहां तक राजनीतिक साहित्य का

देश के स्वतंत्रता-संग्राम में अपना सर्वस्व समर्पित कर समस्त भारत में एक नई चेतना का संचार करने वाले सुभाष बाबू के राष्ट्रीयता और संस्कृति के सम्बन्ध में कितने स्पष्ट एवं सुलझे हुए विचार थे, इसका दर्शन इस लेख में हो सकेगा।—सं०

एकता का आधार'

● नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

प्रश्न है, प्राचीन भारत के पास गर्व करने योग्य पर्याप्त सामग्री है। राजनीति शास्त्र के किसी भी विद्यार्थी के लिए महाभारत में ज्ञान और जानकारी का विशेष खजाना भरा हुआ है। धर्मशास्त्र एवं उनका सहायक साहित्य भी इस दृष्टि से बहुत मूल्यवान है। किन्तु सबसे अधिक आनन्ददायक कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र है जो सम्भवतः ईसा पूर्व चौथी शताब्दी की रचना है।...भारत में अति प्राचीन काल में ही शासन का जनतांत्रिक एवं गणतन्त्रात्मक स्वरूप विद्यमान था। उनका आधार एक समान जाति थी। महाभारत में ये जातीय जनतन्त्र गणों के नाम से उल्लिखित हैं। इन पूर्ण-विकसित गणों के साथ-साथ, राजतन्त्रात्मक राज्यों में भी जनता को पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त था, क्योंकि राजा एक औपचारिक संवैधानिक शासकमात्र होता था। इस तथ्य की ब्रिटिश इतिहासकारों ने दृढ़तापूर्वक उपेक्षा की है। राजनैतिक मामलों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में जनता को बहुत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। जाति के अस्तित्व के कारण लोग सामाजिक मामलों में 'पंचायत द्वारा नियन्त्रित 'जाति-जनतन्त्र' के माध्यम से स्वयं शासित थे।' अति प्राचीन काल से भारत में लोकप्रिय पंचायतें थीं। ये पंचायतें न केवल ग्राम का प्रशासन चलाती थी बल्कि जाति के नियमों का पालन भी करवाती थी और जातियों के आन्तरिक अनुशासन की रक्षा करती थीं।

० ० ०

ब्रिटिश शासन के साथ-साथ एक नया धर्म, एक नयी संस्कृति और एक नयी सभ्यता का आगमन हुआ जो प्राचीन के साथ मिलना नहीं चाहती थी बल्कि हमारे देश पर अपनी पूर्ण प्रभुता स्थापित करना चाहती थी। ब्रिटिश लोगों ने अन्य पुराने आक्रमणकारियों के समान भारत को अपना घर नहीं बनाया। ...इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता को अपने इतिहास में पहली बार यह अनुभव हुआ कि उस पर ऐसे लोगों

(शेष पृष्ठ १४३ पर)

महादेवी वर्मा को ज्ञानपीठ पुरस्कार

हाल ही हिन्दी-साहित्य की गौरव-मणि महादेवी वर्मा को ज्ञानपीठ-पुरस्कार प्रदान करके सम्मानित किया गया है, हम समझते हैं कि महादेवी को सम्मान देकर ज्ञानपीठ की ही परम्परा सम्मानित हुई। परन्तु बहुत विलम्ब से।

लखनऊ में आयोजित उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान के एक विशेष समारोह में हिन्दी की महाकवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा को प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 'भारत-भारती' के सर्वोत्तम पुरस्कार से अलंकृत किया था। यह सम्मान किसी देवी का नहीं, छायावादी कवियों में अग्रणी महादेवी जी का नहीं, अपितु हिन्दी का, साक्षात् सरस्वती का, हिन्दी साहित्य का और भारती का है।

महादेवीजी प्रथम पंक्ति के उन साहित्य सृष्टाओं में हैं जिन्होंने हिन्दी वाङ्मय को विश्व साहित्य के स्तर पर लाकर प्रतिष्ठित किया है - उन्होंने मात्र कवि-कर्म ही नहीं किया वरन् आजीवन सही-अर्थों में मां सरस्वती की अविराम साधना की है। उनका जीवन काव्य, समाज और नारी-उत्थान के लिए समर्पित है। साहित्य के माध्यम से उन्होंने नारी विशेषकर भारतीय नारी उसके विवाद पूर्ण जीवन के प्रति गहरी संवेदना, अनुभूति के प्रवाह और गहन अन्तर्मन को वाणी दी है। समाज की अनेक वर्जनाओं के बावजूद उस युग में जब किसी युवती का घर से बाहर झांकना तक वर्जित था; महादेवी जी आईं, और समाज में नारी-संसार के लिए दीपशिखा-सी जल उठीं।

'उत्तर रामचरित' कार ने सिर्फ इतना ही लिखा था कि 'एको रसः करुण एव' लेकिन उसमें डूबी तो महादेवी ही जब उन्होंने लिखा—

मैं नीर भरी दुःख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली···
इससे भी बढ़कर नयनों में
दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली!

महादेवीजी के गीतों में भावों की इन्द्रधनुषी रंगीनी मिलती है जिसकी रेखाएं स्पष्ट हैं पर रंग हल्के और संकेतात्मक है। इनकी रचना समर्पण से ओत-प्रोत है। प्रकृति के कण-कण में इनका तादात्मय और गीतों में कल-कल निनादिनी पीड़ा विराट् व व्यापक है। उनके काव्यसंग्रह 'निहार', 'रश्मि'; 'नीरजा'; 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' और अन्त

में सभी का समाकलन 'यामा' और यामा के स्वयं रेखांकित चित्र, गद्य का कैलाश शिखर 'अतीत के चलचित्र' प्रकृति और पुरुष के बहुविध आयामों की चरम-परिणति है।

विरह और वेदना उनकी अनुभूतियो का केन्द्र बिन्दु है ही। अभी कलकत्ते में भारतीय भाषा परिषद् के एक समारोह में नारी मुक्ति आन्दोलन की लक्ष्यहीनता के प्रति उनका आक्रोश इन शब्दों में फूट पड़ा—"नारी स्वयं में एक संस्कृति है। जो स्त्री पढ़ी-लिखी नहीं हैं, बिलकुल ग्राम्य हैं, वही आदमी के अधिक निकट हैं। स्त्रियां यदि पुरुषों के साथ नहीं रहना चाहतीं तो न रहें। पहले भी ब्रह्म-वादिनी हुआ करती थीं जो पुरुषों से अलग रहतीं थीं, लेकिन वे पुरुषों को अपना शत्रु कैसे कह सकती हैं। डेली टेलीग्राफ को भेंट वार्ता के दौरान उन्होंने कहा—पश्चिमी देशों का नारी मुक्ति आन्दोलन एक बड़ा स्वांग बनकर रह गया है। आज नारी मां, बहिन व पुत्री नहीं बल्कि पशुजगत की मात्रोपजाति बनकर रह गई है।

महादेवीजी का जन्म सन् १९०७ में फर्रुखाबाद में हुआ था। इनके पिता बाबू गोविन्द प्रसाद वर्मा भागलपुर कालेज के प्राचार्य थे तथा इनके नाना वृजभाषा में कविता करते थे। १३-१४ वर्ष की छोटी-सी आयु में ही महादेवीजी में कविता और गीत के संस्कार पड़े। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा इन्दौर में हुई

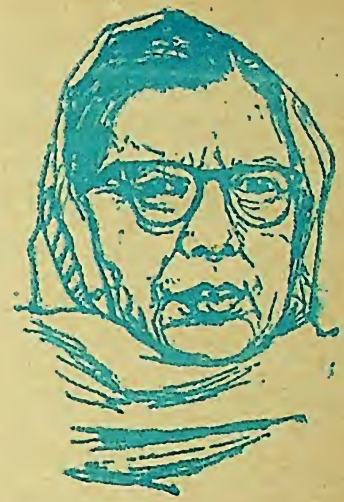

और संस्कृत में एम० ए० करने के बाद वह प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधाना-चार्या बनीं जिस पद पर आज भी आसीन हैं। इनके आदर्शों एवं भावनाओं का महात्मा गांधी के स्वाधीनता आन्दोलन से बल मिला। छायावादिनी बनकर उन्होंने मीरा की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए जो कुछ लिखा वह इस शताब्दी के दूसरे व तीसरे दशक में ही अमर साहित्य की कोटि में अपना स्थान बना चुका था।

वह केवल कवयित्री ही नहीं, समाज सेविका, नारी जागरण की कर्णधार; शिक्षा शास्त्रिणी और गहन दार्शनिका भी हैं। और अन्त में—

आज जिस पर प्रलय विस्मित
मैं लगाती चल रही नित
मोतियों की हाट जो
चिनगारियों का एक मेला।
पंथ रहने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला। ०००

दानवत्व की पुंजीभूत शक्ति के विरुद्ध देवत्व के दुर्द्धर्ष विद्रोह की अग्नि-कोख से ही श्री कृष्ण का जन्म हुआ था। वे तो जन्म-जात विप्लव-पुरुष थे। बालपन से ही, जीवन के हर क्षेत्र में वे जड़ रूढ़ पुरातन मर्यादाओं को तोड़ कर, नवीन मर्यादाएँ स्थापित करते दिखायी पड़ते हैं। परम धर्म-पुरुष तो वे थे ही, पर 'धर्मसंस्थापनार्थाय' वे परा कोटि के राजपुरुष भी थे। तत्कालीन भारत की छिन्न-भिन्न राजशक्ति को केन्द्रित कर, समूची जाति को एक राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँधने के लिए उन्होंने एक प्रचण्ड प्रयत्न किया था।

१५ अगस्त योगी अरविन्द का जन्म-दिन है इस अवसर पर उन्हीं की लेखनी से प्रसूत श्रीकृष्ण-चरित्र यहां प्रस्तुत है। —सम्पादक

परम विप्लव-पुरुष श्रीकृष्ण

कुल और जाति मानव समाज के क्रमिक विकास में भिन्न होते हैं। प्राचीन काल में यह भिन्नता भारत-वर्ष तथा अन्य देशों में इतने स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हुई थी। कई बड़े-बड़े कुलों में एक पूरी जाति का समावेश हो जाता था। ये भिन्न-भिन्न कुल एक-पूर्वपुरुष के ही वंशधर थे, अथवा भिन्न वंशज होते हुए भी, वे प्रेम-सम्बन्धों के कारण एक वंशज कहलाते थे। समस्त भारत एक बड़ी जाति नहीं हुई थी, किन्तु जो बड़ी-बड़ी जातियां सारे देश में फैली हुई थीं, उनके बीच एक सभ्यता, एक धर्म, एक संस्कृति भाषा एवं विवाह इत्यादि सम्बन्ध प्रचलित थे। तथापि प्राचीन काल से ही एकत्व की चेष्टा होती आ रही थी, कभी कुरु, कभी पांचाल, कभी कोशल, कभी मगध जाति देश की नेता अथवा सार्वभौम राजा होकर साम्राज्य करती; किन्तु प्राचीन कुलधर्म और कुल की स्वाधीनताप्रियता एकत्व का ऐसा प्रबल अन्तराय उत्पन्न करती कि वह चेष्टा कभी चिरकाल तक टिक नहीं सकती थी। भारत में एकत्व की यह चेष्टा, असपत्न साम्राज्य की चेष्टा, पुण्यकर्म एवं राजा के कर्तव्यकर्मों से गिनी जाती थी। यह एकत्व का स्रोत इतना प्रबल हो गया था कि चेदिराज शिशुपाल के न्याय तेजस्वी और दुष्ट क्षत्रिय भी युधिष्ठिर के साम्राज्य को पुण्यकर्म कहकर योगदान करने को सहमत हो गये थे। इसी प्रकार का एकत्व, साम्राज्य अथवा धर्मराज संस्था:

पर श्रीकृष्ण का राजनीतिक उद्देश्य था।

मगध राज जरासंध ने इससे पहले चेष्टा की थी, किन्तु उनकी शक्ति अधर्म और अत्याचार पर अविलम्बित होने के कारण क्षणस्थायी थी, इसीलिए श्रीकृष्ण ने भीम द्वारा द्वारा उनका वध कराकर उस चेष्टा को विफल किया था। श्रीकृष्ण के कार्य में प्रमुख बाधा थी, गर्वित और तेजस्वी कुरवंश। कुरुजाति कई वर्षों से भारत की नेतृस्थानीय जाति थी, अंग्रेजी में जिसको Hegemony कहते हैं, अर्थात् अनेक समान स्वाधीन जातियों में प्रधानत्व और नेतृत्व पर कुरुजाति का पुरुष परम्परागत अधिकार था। श्रीकृष्ण ने यह समझ लिया था कि जब तक इस जाति का बल और गर्व अक्षुण्ण रहेगा, तब तक भारत में कभी एकत्व स्थापित नहीं हो सकेगा। इसीलिए कुरुजाति का ध्वंश करने वे कृतसंकल्प हो उठे थे। किन्तु भारतीय साम्राज्य में कुरुजाति का पुरुष परम्परागत अधिकार है, यह बात श्रीकृष्ण भूले नहीं थे, इसीलिए धर्मतः जिसको जो प्राप्त हो, उससे उसको वंचित करना अधर्म है, यही समझकर कुरुजाति के जो न्यायतः राजा और प्रधान थे, उन्हीं युधिष्ठिर को साम्राज्य पर नियुक्त करने जो का उन्होंने निश्चय किया।

श्रीकृष्ण थे परम धार्मिक। समर्थ होने पर भी स्नेहवश अपने प्रिय यादव कुल को उन्होंने कुरुजाति के स्थान पर आसीन करने की चेष्ठा नहीं की, पांडवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर की अवहेलना कर अपने प्रियतम सखा अर्जुन

योगी अरविन्द

को उस पद पद नियुक्त नहीं किया। किन्तु केवल वय अथवा पूर्व अधिकार देखने से अनिष्ट की सम्भावना होती है, गुण और सामर्थ्य को भी देखना पड़ता है। राजा युधिष्ठिर यदि अधार्मिक अत्याचारी अथवा अशक्त होते तो श्रीकृष्ण अन्य पात्र के अन्वेषण को बाध्य होते। युधिष्ठिर जिस प्रकार वंशक्रम, न्याय, अधिकार तथा देश के पूर्व प्रचलित विधय के अनुसार सम्राट होने को उपयुक्त थे, उसी प्रकार गुणों से भी वें उस पद के प्रवृत्त अधिकारी थे। उनकी अपेक्षा तेजस्वी और प्रतिभावान अनेक बड़े-बड़े वीर नृपति थे; किन्तु केवल बल अथवा प्रतिभा से कोई राज्य का अधिकारी नहीं होता। राजा धर्मरक्षा करेंगे, प्रकृति-रंजन करेंगे; देशरक्षा करेंगे। प्रथम दो गुणों में युधिष्ठिर अतुलनीय थे। वें धर्मपुत्र थे, दयावान थे, न्यायपरायण, सत्यवादी; सत्यप्रतिज्ञ, सत्यकर्मा थे और प्रजा के अत्यन्त प्रिय भी। शेषोक्त आवश्यक गुणों से जो न्यूनता उनमें थी; उसे पूर्ण करने में उनके वीर भ्रातृद्वय भीम और अर्जुन समर्थ थे। पंच पांडवों के समान पराक्रमी राजा और वीरपुरुष समकालीन भारत में नहीं था। अतएव जरासन्ध वध से कंटक दूर कर श्रीकृष्ण के परामर्श से राजा युधिष्ठिर ने देश की प्राचीन प्रणाली का अनुसरण कर राजसूय यज्ञ किया तथा देश के सम्राट हुए।

श्रीकृष्ण धार्मिक और राजनीतिविद् दोनों थे। देश के धर्म, देश की प्रणाली, देश के सामाजिक नियमों के अन्तर्गत ही कर्म कर, यदि उनके महत् उद्देश्य के सुसिद्ध होने की सम्भावना हो; तो उस धर्म की हानि, उस प्रणाली के विरुद्ध आचरण, उन नियमों को भंग वे क्यों करते? अकारण ही इस प्रकार का राष्ट्रविप्लव करना देश के लिऐ अहितकार होता है। इसलिए प्रथम, पुरातन प्रणाली की रक्षा कर उद्देश्यसिद्धि के लिए वें सचेष्ट हुए थे। किन्तु देश की प्राचीन प्रणाली में यह दोष था कि उसने चेष्टा सफल

(शेष पृष्ट ८१ पर)

'१५ अगस्त नये संकल्प का दिन'

अटल बिहारी वाजपेयी

लड़ने के लिए देश के नौजवान आगे आयें। हमारे देश को आजाद हुए आज यद्यपि ३६ वर्ष हो चुके हैं लेकिन आर्थिक रूप से हमारा देश अभी भी आजाद नहीं है और हम गहरे आर्थिक संकट में फंसे हुए हैं।

इस वर्ष १५ अगस्त के दिन वे इस बात का संकल्प ले कि चाहे कितनी

- '४ करोड़ बेरोजगार युवा शक्ति व्यर्थ जा रही है'
- 'खेतिहर लोग मिल-मजदूरों में बदल रहे हैं'

आज देश को बाहरी खतरा उतना नहीं है जितना अन्दरूनी; क्योंकि एक ओर कुर्सी के मोह में पड़े हुए कुछ पदलोलुप राजनेता देश की एकता के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं और दूसरी ओर सामाजिक-आर्थिक स्थिति बिगड़ रही है।

आज जरूरत है कि बेकारी, बेरोजगारी, गरीबी और भ्रष्टाचार के विरुद्ध भी मुसीबतें और कितने भी खतरे क्यों न उठाने पड़ें हम देश को दोबारा विघटित होने नहीं देंगे।

आजादी के बाद के इन वर्षों के दौरान देश में गरीबी, भूख, बेकारी, शहर व गांव का अंतर, गरीब-अमीर के बीच की खाई व पांच सितारा होटलों और झुग्गियों के बीच का फासला और बढ़ा है, लेकिन इस दरार को पाटने, देश के

'रोजी दो या भत्ता दो, नहीं तो सत्ता छोड़ दो'

संसद के समक्ष ५० हजार युवकों द्वारा बेरोजगारी के खिलाफ प्रबल प्रदर्शन

रोजी दो या भत्ता दो, नहीं तो सत्ता छोड़ दो' नौजवान का नारा है, भावी इतिहास हमारा है' 'समाजवाद का असली अर्थ, सबको रोजी पहली शर्त' आदि नारे लगाते हुए आज हजारों नौजवानों ने बेरोजगारी के विरोध में संसद के सामने प्रदर्शन किया। भारतीय जनता युवा मोर्चा के आह्वान पर देश भर के करीब ५० हजार नौजवानों ने इस रैली में भाग लिया और रोजगार को अपना जन्म सिद्ध अधिकार बताते हुए सरकार से काम अथवा भत्ता देने की मांग की। प्रदर्शन कारी प्रातः १० बजे फिरोजशाह कोटला पर एकत्रित हुए जहां से वे जुलूस के रूप में संसद पहुंचे जहां लोकसभा अध्यक्ष को एक ज्ञापन देकर उन्होंने अपनी मांगें दोहराई।

लाखों-करोड़ों नौजवानों का भविष्य सुधारने और एक मजबूत अर्थव्यवस्था की नींव रखने की ओर कोई कदम नहीं उठाया गया।

सरकार की नीतियां दोषी हैं यदि आज देश में बढ़ती हुई इन समस्याओं को रोकना है तो सरकार को सबसे पहले अपनी नीतियों में परिवर्तन करना होगा।

एक ओर विज्ञान इतनी तरक्की कर चुका है, लेकिन दूसरी ओर हम आज भी खेती के मामले में प्रकृति के इतने दास है कि हमारी खेती आसमान की दया पर निर्भर करती है। गांवों में सिंचाई का प्रबन्ध है, लेकिन बिजली नहीं है। छोटे खेतिहरों के लिए कागजी योजनाएं तो है लेकिन उन पर अमल नहीं है। इसी प्रकार बड़े कारखाने है, लेकिन लघु उद्योगों को आगे बढ़ाने के लिए कोई प्रयास नहीं है जिसका परिणाम यह है कि खेतिहार लोग औद्योगिक मजदूरों में बदल रहे हैं। लोग रोजगार की तलाश में शहरों की ओर भाग रहे हैं और बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है।

आज देश में करीब ४ करोड़ बेरोजगार लोग हैं जो काम चाहते हैं लेकिन काम नहीं है, जिससे यह अमूल्य युवा शक्ति व्यर्थ जा रही है।

इस समस्या को सुलझाने के लिए सरकार को खेती, शिक्षा और कृषि की अपनी नीति में परिवर्तन करना होगा और बड़े किसानों और बड़े कारखानों की जगह छोटे भूमिधरों और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना होगा तथा शिक्षा को रोजगार से जोड़ना होगा।

नौजवान देश के नए विकास की व्यूह-रचना और समानान्तर व्यवस्था खड़ी करने में योगदान दें।

चौलादेवी

(४६वीं किस्त)

ऊंचें आकाश में जुन्हाई की ज्योत्स्ना व्याप बढ़ाती गई, तारा गण विहंसते रहे। रात की काली चादर ओढ़े पूरा गांव नींद की गोद में सो गया, खेत-खलिहानों में और कहीं गांव के गली कूचों में कुत्ते अपने जागने तथा सतर्क-रहने के प्रमाण देते रहे। दूलासिंह के निभृत द्वार पर उसका मनचीता पाहुन गुड़-चिउड़ा और दुग्धाहार करते करते जाने किन स्वप्नों में खोया रहा—दूला उससे मुंह मोड़ कर अपनी प्रिय गो से बतियाता रहा, अतीव स्नेह से सहलाता रहा उसका माथा, गला और पीठ—साथ ही वह क्या सोचता जाता था, कौन जानें! जानने का उपाय नहीं।

अंततः नरैनी ने अल्पाहार उदरस्थ कर लिया तो उसने पुकारा-'ठाकुर! रात बढ़ रही है, मुझे पहुंचाने नहीं चलोगे?'

'मैं तो तैयार ही खड़ा हूं। चल न।' लेकिन दूला देखता है, नरैनी तो अचल खड़ी है और कुछ सोचती-सी वह कभी अंधेरे में डूबे द्वार को ताकती है तो कभी गो की ओर देख लेती है।

दूला उसकी ओर बढ़ आया; जमीन से सीधा-पिसान की बोरी उठाकर कंधे पर रखी और बोला, 'तू तो जाने क्या

सम्पादक द्वारा

सोचें खड़ी-खड़ी और मुझें टेरे चलने के लिए! नरैनी, तेरी लीला समझी न जाय कछू!'

नरैनी धीरे से हंस दी और उसके कंधे की बोरी को हाथ लगा कर आग्रह-पूर्वक कहने लगी, 'ठाकुर! मैं खेतों की मज़ूरनी-तुम जानते ही हो, यह बोझा दे दो तो सुख मिले मुझको।'

'क्यों! बिना बोझ के कौन सा दुःख साल रह्यो तोको?'

'यही कि तुम उसे लाद कर चल रहे हो और मैं बैठानी बनी निठल्ले ही साथ चल रही हूं।'

'नहं, रात को सभी निठल्ले दीखें मुझे तो। भला रातहू में कोन हल जोते या गांव में?'

'जोतें तो बुराई क्या है! आखिर रात में हम लोग खेतों में पानी लगाते हैं कि नहीं?'

'अरे, तब तो रात-रात भर सींचनों परै खेतन कों। खेती बड़ी मेहनत मांगे किसान से। किसानी को धंधो आसान कछू नायं। धान की बेड़ लगावन में पांव की उंगलियां सड़ जाया करैं। जाने कित्ता खून जोकैं पी जायें चिपट-चिपट के।'

'ठाकुर! तुम मुझे बारहो मास की मजूरी में रख लो तो खेती के सारे काम मैं कर लिया करूं।'

'और दूलासिंह का करैंगो खाली बैठे-बैठे?'

'खाली क्यों, तुम भैंसें पाल लो। ढेर सारो दूध होयगो। ताको घी करो। फिर बाको सहर में बेच आओ तो बेसी मुनाफा मिले।'

'अरी वाह, कहे मुझे बदनाम करने पर तूली है तू? मैं का सहर जाऊँ घी बेचन को? गांव वारे का कहैंगे मोको? मेरे बंस में ऐसो कबो भवो नाय। दूध-घी कबों किसी ने मेरे कुल में बेचो नायं। घी होय-सो घर वारे ही खाय जाया करैं और दूध बेसी होय तो टोला-पड़ोस में बाट दियो जाया करैं। छाछ तो नित्त ही जाको मन होय सो लै जाय मेरे घर ते-मेरे बाप ने कबों किसी को मना नाईं करी। मटकी-दो मटकी छाछ खाये चुको भी कैसे घर वारेन पै।'

'तो फिर साफ क्यों न कहो कि नरैनी गरीबनी को तुम मजूरी में रखना नहीं चाहते! सोचते होगे, इसने खेती बारी में ठीक-ठाक मेहनत न की तो टोकेंगे कैसे इसको? कहते हुए फिर उसने दूला के कंधे के बोझ को छुवा, इस भाव से कि अब उसे वह लाद कर चले।

दूला ने बोरी उसे दी नहीं। कहा, 'तू का बार-बार इत्ती-सी बोरी के लिए फिकर करे, मर्द-मानुष के जिए जेका कहूं बोझो है? तू तो मुट्ठी भर की भी नहीं, बोरा लादन को चाहे जिद करे भला!'

'कहते हो तो नहीं करूंगी पर यह मोको सुहाये रंच हू नायं कि तुम बोझो लाद के चलो और मैं हाथ झुलाती चलूं।'

'तिरियन को सुभाव कि वे बोलो करैं कछू न कछू। मतलब की थोरी, फालतू बात ढेर करैं, फिर तेरो दोष क्या इसमें?'

'अच्छा ठाकुर! मान लो कल से मैं न मिलूं तुम्हें कहीं, तो का मेरे घर ढूंढने आओगे मुझे या गुस्सा करके बैठ रहोगे कि इतना दिमाग चढ़ गया नरैनी का, तो जाये जमलोक! ऐसा ही न, तुम फिर मेरो पता ठिकाना नहीं ही करोगे न!'

'अरे, तू मेरी परिच्छा तो लेवे मती। तेरो मन न हो तो मैं बरस दो बरस भी न मिलूं तोसे।'

'वाह ठाकुर! आ गये न तुम मर्द की निष्ठुरता की पंगत में! मैं तो पहले से ही समझूं कि ठाकुर के मन में नरैनी अभागिन के लिए कछू दया-माया नाय, मैं तो जबर्दस्ती ही थारे ढिग खड़ी हूं ठाकुर!'

परन्तु कहने के साथ ही नरैनी ने ग्लानिवश अपनी जिह्वा दांतों से दबा ली कि जो इतनी रात में भी अपना घर छोड़कर मेरे लिए सीधा-पिसान बांध लादे चला जा रहा है, लोक-लाज की परवा न करके—उसके लिए मैं यह क्या कह रही हूं! तत्काल नरैनी ने लपक कर दूला का हाथ पकड़ लिया और बिल्कुल उससे सटकर चलते हुए कहा, 'ठाकुर! इस पापिन को क्षमा कर देना, जिसके मुंह से जान-बूझकर इस वेला

वास्तविक रक्षा-बंधन का दिन वही होगा

राखी बांधने की यह प्रथा अच्छी है, परन्तु वास्तविक रक्षाबन्धन का दिन तो वही होगा, जब हिन्दुओं में उत्कट एवं तेजस्वी संस्कार जागृत होगा, जिसके सूत्र में परिश्रम करके हम अखिल हिन्दू समाज को बांधकर सुसंगठित करेंगे। आगामी संकट की देश पर भीषण छाया पड़ने से पूर्व अन्तर्भेदिनी दृष्टि से हम आसेतु हिमाचल तक फैले हुए सुसूत्रबद्ध व सुसंगठित हिन्दू समाज को वैभव सम्पन्न और तेजस्वी राष्ट्र बनाने की आवश्यकता है और उसके लिए मैं प्रयत्नशील और उत्सुक हूं।

मा०स० गोलवलकर 'गुरू जी'

ऐसी बात निकली। झला इतनी बड़ी दुनिया में नरैनी मजूरनी से तुमसे वेसी स्नेह-ममता और दया करने वाला और दूसरा कौन है!' दूला विहंसा। बोला, 'तू नारी है नरैनी! तेरी जात बड़ी लीला करै। कभी तू कुछ कहती है तो कभी ठीक उससे उल्टा! मेरे दया-माया कुछ नहीं भागमान! जे तो तेरोई परताप है कि मैं खानो-पीनो भूल गयो, नींद बिसर गई म्हारी और मैं रात-दिन बस तेरोई सरूप देखूं। न देखूं तो कछू नेक सुहावे न मोको। रैन हो या दिन, थारो साथ है तो सब सोहै। न अंधेरो लगै, न सीत-घाम सतावै। थारो साथ न हो तो संसार सूनो है म्हारे लिए। पै नरैनी, सत्त बात तो जे है कि सिगरो संसार झूठो, या के रिस्ते-नाते झूठे। चार दिना की माया है जे सब-फिर सब सपनो। तू सत्त मान नरैनी! इत्ती जिन्दगानी में मैं सब यही तमासा देखूं। कान्हसिंह चलो गयो दुनिया से; वाकी हवेली खड़ी रह गई—चार जनन को सतायो वाने, तब हवेली बनवाई। पै बरस भर में ही मर गयो, काको है जे संसार! हरीचंद (हरिश्चंद्र) जैसे राजा न रहे धरती पै-न अरजुन रै गये, न भीम। काल बली सब ही को निगल गयो दीखै। तो नरैनी, यह धन-धरती काहू की नायं। जो इसे अपनी समझें-वह नासमझ, मूरख। म्हारो-थारो (मेरा-तेरा) करते जिन्दगानी बीते पै कछू म्हारो है न थारो। पै मानुष है तो मोह-ममता हू वाके पीछे लगी है। उससे छुटकारो नायं; मैं बहुत-बहुत समझाऊं अपने मन को कि दूला! इत्ती उमर तक तो तू निपटा लायो, अब काहे के लिए नरैनी-नरैनी रटै तू! तोको गांव की हू चिन्ता नायं, न काहू

की निन्दा की, पै नरैनी को तो भलो नायं दीखै इन बातन में। जो मैं सोचूं, पै तोको भूल न सकूं-सत्त बात तो जोई है नरैनी, जो मैं कह गयो।'

नरैनी भाव-विगलित-सी उसकी लम्बी बात मौन साधे सुनती रही, समझ सब गई वह और यह भी विचार उसका दृढ़तर ही हुगया कि इस आदमी के मन को छल-कपट छू नहीं गया। बड़े साफ मन का मानुष है दूलासिंह। अकेली युवती के साथ सूनी रैन में वह रास्ता चल रहा है लेकिन बातें उसके मन में तैर रही हैं राजा हरिश्चन्द्र की और अर्जुन-भीम की, संसार की नश्वरता की। जिससे यह कहो-वह मानेगा नहीं कि दो अनुरक्त स्त्री-पुरुष ऐसी चर्चा करते हुए रास्ता पार करते चले थे और परस्पर शरीर-संस्पर्श होते रहने के बाद भी वे मनोविकार से परे रहे—किस तरह? इसका उत्तर या साक्षी देने वाला आज की रात का कोई तीसरा प्राणी संप्राप्य नहीं।

अस्तु। चलते-चलते, बोलते-बतियाते नरैनी का भग्नप्राय घर आ गया। सूना-उदास सा छोटा घर मौन और अभावों की चादर ओढ़े ऊंघ रहा था। इन दोनों की पद-चाप से वातावरण आंदोलित हुआ। नरैनी ने दूला का हाथ छोड़कर उसके कंधे से बोरी उतरवाई। फिर सांकल खोलकर स्वयं बोरी घसीट

पठनीय व मननीय-नवीन प्रकाशन

हिन्दू समाज-संकटों के घेरे में

लेखक—श्री सीताराम गोयल

मूल्य - ४.००

संकटग्रस्त हिन्दू समाज व हिन्दू संस्कृति का प्रामाणिक एवं स्पष्ट चित्र व सरल विश्लेषण

—व्यवस्थापक

लोकहित प्रकाशन

पो० बा० २०७, राजेन्द्र नगर, लखनऊ—४

रक्षा-बंधन : प्रतिज्ञा-दिवस

हिन्दू समाज के विशेष अंग ब्राह्मणों द्वारा सभी के हाथ में रक्षा बांध कर हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि परस्पर एक दूसरे की रक्षा करेंगे। आपस के भेद-भावों को भुलाकर इस दिन हम प्रतिज्ञा करते हैं कि उस महान भारतीय संस्कृति की घरोहर की रक्षा करेंगे। दिन-प्रतिदिन संघ की हजारों शाखायें भारत के कोने-कोने में एकत्रित होकर अपनी इस परम पवित्र प्रतिज्ञा को दोहराती और कार्यान्वित करती हैं।

प्रो० राजेन्द्रसिंह (रज्जू भैया)

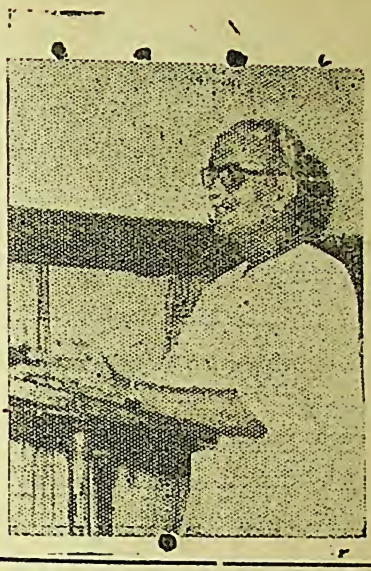

कर अन्दर रख आई। दूला आंगन में खड़ा रहा। नरैनी ने अपनी फटी लेकिन निखालिस पानी से साफ की हुई ओढ़नी जमीन में बिछा दी। फिर हौले से कह उठी, 'ठाकुर! रात है तो क्या, दो पल मेरे घर बैठोगे भी नहीं? मैं पानी को तो पूछूंगी नहीं! पूछते अच्छा नहीं लगता। मन में कुछ अटक जाता है कि ठाकुर नरैनी के घर उसके हाथ का जल पीयें और खाने को भी क्या दूं मैं! सब थारो ही दियो सीधा-पिसान है।"

"तो का भयो। ला व एक लोटा जल और नेक मुट्ठी भर चिउड़ा भी निकाल दे। मैं तो अब एक डकार लेकर ही उठूं थारे घर से।"

बंधी-बंधी-सी नरैनी पानी लाई, चिउड़ा-गुड़ भी बोरी से निकाल कर दिया। दूला जाने क्या सोचता विचारता थोड़ा-थोड़ा चबाता रहा, बीच में पानी भी पी लेता। नरैनी सामने चुप बैठी उसे देखती रही।

दूला खा चुका और हाथ-मुंह धोकर उठा तो बोला, 'नरैनी! जाने कैसो मन ह्वै रह्यो म्हारो। नेक दो पल पसर लूं थारी ओढ़नी पै।"

और वह एक लम्बी सांस लेकर आंगन में बिछी उसी फटी ओढ़नी पर पसर रहा। ऊपर जुन्हैया जगमगा रही थी और उसकी स्निग्ध ज्योत्स्ना में नरैनी की आंखों में दूला को अद्भुत दीप्ति का आभास हो रहा था। नरैनी पूछ बैठी "म्हारी तरफ ऐसे का देखो ठाकुर?"

"थारी आंखों जाने कैसी लगें मोको। मन करै देखते रहूं, बस सारी रैन देखते रहूं।" नरैनी उन अटपटे बैनों से

झेंप गई, संकुचित हो उठी। वह कोठरी में समाये अंधकार की ओर देखने लगी तो दूला बेताब हो उठा। उसने हाथ बढ़ाकर नरैनी का मुंह अपनी तरफ कर लिया। परन्तु अब लज्जा वश वह सीधे उसकी ओर देख नहीं पा रही थी, इससे दूला और अधिक व्यग्र हो उठा। वह लेटा न रह सका, बैठ गया परेशान सा। नरैनी ने टोका—

"नेक बिसराम कर लो न ठाकुर! फिर तो जाओगे ही, अब इतनी जल्दी भी काहे की?"

"नहीं; मैं चलूं ही अब। बैठें रहा न जाय, न लेटें ही चैन।" उसने मन-स्थिति के बारे में ठीक ही कहा था। नरैनी समझी हो, न समझी हो। कहने लगी—

"ठीक ही कहो तुम! थारो बचन ही परमान मानूं। भला नरैनी के पास किसे चैन मिले! म्हारो भाग ही खोटो है ठाकुर! दुःखी के पास सुखी जाय तो वाको सुख हेराय जाय। वाको दुःख मिले। वही गति मेरी है ठाकुर! तुम खासे भले थे अकेले। म्हारो साथ भयो तो थारो चैन बिलाय गयो।"

दूला ने बीच में ही बोलने से रोक दिया उसे। अपने निकट खींचता हुआ कहने लगा—'नरैनी! तू ऐसा मत कह। म्हारो चैन है तो अब एक तू ही और सुख है तो तू ही। एक बात कहूं नरैनी! मानेगी? मोसे डरेगी तो नायं?

"ठाकुर, मैं तुमसे भला क्यों डरूंगी? मैं तो निपट अकेले गांव भर के खेतों में मजूरी-मेहनत करके पेट पालूं! एक भगवान छोड़कर और कौन म्हारो सहारो! तुम साथ हो तो तुम्हें ही अपना सहारा समझकर बेफिकर हो गई हूं। फिर डरने की बात क्या? किस लिए? और थारी कौन बात है जो मैं सिर-माथे रखने में संकोच करूंगी?

किसान भाइयों के लिए खुशखबरी :—

पी० सी० एफ० द्वारा उर्वरक की नकद बिक्री पर :—

२ रु० प्रतिबोरी

३ रु० प्रतिबोरी [नान डिफाल्टर]

छूट प्राप्त कर लाभ उठाएं

यह सुविधा पी० सी० एफ० के प्रत्येक सहकारी बिक्री केन्द्रों पर प्रत्येक जिले में उपलब्ध है।

PCF यू० पी० कोआपरेटिव फेडरेशन लि०

३२, स्टेशन रोड, लखनऊ।

कहो न मुंह खोलकर। नरैनी के बड़े भाग होंगे जो मैं नेक थारे किसी काम आऊं।"

"तो आ, दो पल तू भी पसर जा यहां और मैं बैठकर थारो मुखड़ो, थारी अखियां निहार लूं।" एक ही सांस में कह गया दूला, नरैनी के लिए उसकी यह चाह अनपेक्षित सी थी। उसके मन में दूला के प्रति बड़ी ऊंचाई बसी थी। फिर भी वह उसे सहज लगा। वह छोटी बालिका की तरह चुपचाप उसके सामने लेट गई—दूला उसका चेहरा बहुत पास से उस धवल चांदनी में निहारने लगा। कभी उसकी आंखों की चमक निहारता तो कभी अवाक सा उसका माथा, मुंह; चिबुक ताकता। नरैनी को बरबस हंसी आ गई तो उसने आंचल का एक छोर दांतों से दबा लिया लेकिन दूला देखता है, हंसने से या कि हंसी दबाने के उपक्रम में नरैनी की आंखों की चमक और बढ़ गई है, मुखड़ा और अधिक प्यारा लग रहा है। उसका बड़ा मन हुआ कि वह उसका वह सलोना मुख चूम ले, वे आंखें चूम ले और अपने अंतस्थ अपरिसीम स्नेह की मुहर आंक दे परन्तु उसके संस्कार आड़े आ गये और उसने मनका यह भाव बलात मन में ही दबा लिया। संवरण कर गया किसी तरह दूला। यही नहीं, उसने अपने दोनों हाथ अपनी छाती पर बांधकर कहा, "उठ जा नरैनी! जा पेट भर कुछ खा-पी ले। मैं चला। म्हारे पागलपन पर ध्यान न दीजो कछू। जाने का सूझो मोको जो मैं तोको इस

—कैसा बूढ़ा है, रिश्वत नहीं देता...

बेला पोढ़न के लिए कह बैठो। बड़ी नासमझी की बात हो गई मोंसे। तू माफ कर दे नरैनी! अकेली नार को कोई इस बखत ऐसे देखे-ताके! इसमें न तेरो भलो न म्हारो। जो देखे—हंसे; निन्दै।"

"भले हंसे, फिकर मत करो ठाकुर! नरैनी में कुछ भी नहीं, फिर भी जो कुछ थारे को नीको लगे वह थारो ही है, जाको परायो न समझो। आज की रात मैं तुम्हें वचन दूं कि नरैनी थारी ही दासी—थारी सेवकनी, जब जहां कहो, दोड़ी-भागी आयेगी। बीच में कछू बाधा न मानेगी।"

"सच कह रही है तू?" दूला ने उसे कंधों से पकड़कर झकझोरा। बड़ा उत्तेजित दिख रहा था वह नरैनी के ये बोल सुनकर। उसके मन में यह विश्वास दृढ़ हुआ कि नरैनी उससे निश्छल निस्स्वार्थ स्नेह करती है, विश्वास करती है उसका, तभी तो ये बोल बोल सकी।

उत्तर नरैनी ने कुछ दिया नहीं, देते

नहीं बना। बस, धीरे से उसने अपना छोटा सा सिर दूला के कंधों से टिका दिया। दूला मानो क्षण भर के लिए अमित धन-राशि, अकूत सम्पदा पा गया। जैसे उससे सुखी आदमी दूसरा न हो गाँव भर में। जीवन में कोई अभाव न रहा, कैसा भरा भरा सम्पन्न सा हो उठा उसका मन-मानस! सारी शक्ति रूपा जो है। वही सृष्टि की सुषमा है, स्पृहणीय सौन्दर्य—राशि। निखिल—सम्पूर्ण तृप्ति का मानो वही पर्याप्य है। इस अनुभूति में वासना काम्य नहीं, मात्र एक विश्वास का भाव मनुष्य को अगम शक्ति से ओतप्रोत; समन्वित कर देता है कि उसका अभीष्ट उसके साथ है, उसका सहचर। जीवन-मरण में उसका हाथ उससे पृथक् नहीं, तो मनुष्य दस मनुष्यों की शक्ति से हर विषमता-आपदा से जूझता रह सकता है, और अक्लान्त अश्रान्त रहकर जीवन के ऊंचे शिखर; आदर्शों, सिद्धान्तों और त्याग-बलिदान की बुलन्दी छू सकता है; इसमें संदेह नहीं। [क्रमशः]

(पृष्ठ ११ का शेष)

कर सकें।"

मुडी का जोर इस बात पर था कि सैनिक न्यायालय में मुकदमा भारत से बाहर चलाने से मुकदमे में कम समय लगेगा और सैनिक न्यायालय, नागरिक न्यायालय के मुकाबले में अधिक कठोर दण्ड दे सकेगा। फिर सैनिक न्यायालय में बोस पर हमारे सैनिकों की हत्या के आरोप में मुकदमा चल सकेगा जबकि नागरिक न्यायालय में स्वाधीनता का प्रश्न उठ खड़ा होगा।

भारत में नेताजी को बन्दी बनाने के प्रश्न पर मुडी का विचार था कि 'भारत में उनको बन्दी बनाए जाने पर उनकी मुक्ति के लिए आन्दोलन होगा और उनके मुक्त किए जाने के थोड़े ही समय में वे रूस चले जाएंगे; जैसे वे १९४० में कलकत्ता से नजरबन्दी से घेरा तोड़कर चले गए थे। नेताजी के वहां जाने पर रूसी उनका स्वागत करेंगे। यदि जहां नेताजी हैं वहीं उनको रहने दिया जाये तो उससे कोई अविलम्ब राजनीतिक संकट नहीं होगा। पर सुरक्षा अधिकारियों का मत यह है कि नेताजी का सोवियत संघ में विद्यमान रहना खतरनाक सिद्ध होगा।'

अन्त में मुडी ने लिखा है—'सरकार चाहे तो नेताजी को देश बदलकर किसी अन्य स्थान पर भारत से बाहर बन्दी बना ले या भारत में उन पर मुकदमा चलाकर मौत की सजा उनके लिए तजवीज कर दे। सरकार मुकदमा चलाकर सजा सुनाकर उनको निर्वासित भी कर सकती है।'

संस्कृत और गांधी जी

महात्मा गांधी से जब यह शिकायत की गई कि 'पटना विश्वविद्यालय ने संस्कृत का क्रियात्मक रूप से बहिष्कार कर दिया है और कि यह क्या आप पसन्द करेंगे !' अपनी प्रतिक्रिया 'हरिजन' में (१९४०) गांधीजी ने निम्न प्रकार व्यक्त की थी :

'पटना विश्वविद्यालय ने क्या किया है यह मुझ ज्ञात नहीं है, परन्तु मैं शिकायत-कर्त्ता के साथ पूर्णतया सहमत हूं कि संस्कृत की पढ़ाई को बड़ी खेदजनक अवहेलना हो रही है। मैं उस पीढ़ी का हूं जिसकी प्राचीन भाषाओं के अध्ययन में आस्था थी। मेरा यह विश्वास नहीं है कि इस प्रकार का अध्ययन व्यर्थ है और इसमें समय बर्बाद होता है।

'मेरा तो यह विश्वास है कि संस्कृत के अध्ययन से वर्तमान भाषाओं के अध्ययन में सहायता मिलती है। जहां तक भारतवर्ष का सम्बन्ध है अन्य किसी भाषा की अपेक्षा संस्कृत के सम्बन्ध में यह बात ज्यादा सच्ची है और प्रत्येक राष्ट्रवादी को संस्कृत का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि इसके अध्ययन से प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन अन्य उपायों की अपेक्षा सरल हो जाता है। यह वह भाषा है जिसमें हमारे पूर्वज सोचते और अपने विचार प्रकट करते थे। कोई भी हिन्दू लड़का व लड़की संस्कृत के मौलिक ज्ञान से शून्य नहीं होना चाहिए, यदि उसे अपने धर्म की संस्कृति की आन्तरिक भावना को ग्रहण करना हो। इस प्रकार गायत्री का अनुवाद नहीं हो सकता। किसी भी अनुवाद में उसके मौलिक संगीत की रक्षा नहीं हो सकती। जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है, गायत्री उसका एक उदाहरण है।

समर्पित सेवा की खामोश यात्रा

जनतंत्रः मूल आधार की ओर

स्वतंत्रता और प्रगति का अर्थ

लोकतन्त्र में प्रभुसत्ता जनता में निवास करती है। इसलिए शासन का पहला कर्त्तव्य है कि वह जनता के काम को मुस्तैदी और समर्पित भाव से करें। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अर्थ है उचित कार्य करने की सुनियोजित छूट। प्रगति का मतलब है स्थानीय जीवन को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का अंग बना देना। इसकी शुरुआत होती है व्यक्ति, घर, गांव और जिले से। इस शुरुआत को आगे बढ़ाने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार प्रतिबद्ध है।

सत्ता और शक्ति का विकेन्द्रीकरण

विकेन्द्रीकरण जनतंत्र के बीज फैलाता है। धन और शक्ति जितनी विकेन्द्रित होगी, अशान्ति उतनी ही कम होगी। समाज को पत्थर जैसी शांति नहीं चाहिए—उसे चाहिए हलचल भरी शांति। लम्बे समय से स्थगित ग्राम सभाओं और ब्लाक प्रमुखों के चुनाव इस बार अत्यंत शांत वातावरण में सम्पन्न हुए जिसमें चार करोड़ मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। इसकी अगली कड़ी है जिला परिषदों के चुनाव जो निकट भविष्य में प्रस्तावित हैं।

श्रम ही उत्पादक शक्ति है

आज भी सम्पत्ति पैदा करने का सबसे बड़ा साधन मेहनतकश की मेहनत ही है। आम आदमी की बढ़ी हुई क्रयशक्ति ही खुशहाली नापने का पैमाना है। केवल साधन पैदा करना ही साध्य नहीं है। उत्तर प्रदेश सरकार उन उद्योगों के संरक्षण व संवर्द्धन को प्राथमिकता देती है जो पूंजी को साधारण जन तक विकेन्द्रित करते हैं। हर जिले में उद्योगों की स्थापना के पीछे ध्येय है कि उत्पादन-विधियां गांवों की पहुंच में हो। स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हों। मजदूरों में बेकारी न पैदा हो। आदमी में अपनी प्राथमिक जरूरतों को पूरा करने का सामर्थ्य हो।

सूचना एवं जन संपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

विचित्र किन्तु सत्य

४० करोड़ रु० का अरबी मकान

कहा जाता है कि कई अरब शासको के पास इतना धन है कि वे स्वयं भी इसका कोई अनुमान नहीं लगा सकते। सऊदी अरब के शाह भी इसी विशिष्ट श्रेणी के सज्जन हैं। उनके पास कितना धन है, इसका अनुमान उनके एक मकान से किया जा सकता है, जो उन्होंने अभी लन्दन में बनवाया है। इस पर तीन करोड़ पिचासी लाख डालर अर्थात चालीस करोड़ रूपया खर्च हुआ है। इस मकान में शाह वर्ष में केवल एक माह से भी कम अर्से के लिए आकर रहा करेंगे। यह मकान लन्दन के उस क्षेत्र में है, जहां बड़े-बड़े व्यक्तियों का निवास स्थान है। इसके एक ओर फ्रांसीसी दूतावास है और दूसरी ओर नेपाली दूतावास। ये सब उस सड़क पर स्थित है, जिसे लखपतियों की सड़क कहा जाता है। उसके दोनों ओर सुरक्षा के बड़े कड़े प्रबंध हैं।

इस मकान में २१ रिहायशी कमरे है, और चार छते हैं। १५ सोने के कमरे हैं और १६ गुसलखाने हैं। सबके बीच में एक नहाने का तालाब है। मकान में जो फर्नीचर रखा गया है, वह भी करोड़ो रुपया का है। पांच बड़े शराब पीने के कमरे है प्रत्येक गुसलखाने में सोने की फिटिंग लगी है। दीवारो और छतों पर सिल्क का कपड़ा लगा हुआ है। खाने वाले कमरे में जो संगमरमर की मेज रखी गई है, उसका मूल्य ६० हजार डालर अर्थात १६ लाख रुपए है। जिस कमरे को शाह के सोने के लिए बनाया गया है, उसमें सोने के पतरे लगाए गए है। एक कमरा खेल के लिए है, उसमें चारों ओर शीशे लगे हुए है। खिड़कियों पर बुलट-प्रुफ शीशे है। तालाब के नीचे से एक रास्ता बनाया गया है, जिसके द्वारा हंगामी हालात में गोपनीय ढंग से अन्दर से भाग कर बाहर आया जा सकता हैं। जिन ब्रिटिश और अन्य फर्मों ने इस मकान का निर्माण किया है, उनका कहना है कि इसका खर्च निर्माण के बाद दो गुना हो गया है। मकान को जाने का

जान एण्ड फ्रासासा फर्म को डेढ़ करोड़ डालर अर्थात १५ करोड़ पर दिया गया है। इसके मजदूरों को प्रतिदिन १५० डालर अर्थात १५०० रुपए मिलते रहे। इसके अतिरिक्त इन मजदूरों के बाकी खर्चे भी सऊदी अरब की सरकार अदा करती थी। इस जगह पर जो मकान था वह १८५३ में बना था, और १९८१ में इसे सऊदी अरब की सरकार ने खरीद लिया था। इसके बाद ही शाह फहद ने इसे अपनी जरूरत के अनुसार बनाना आरम्भ कर दिया। अब यह बनकर तैयार है, मगर अभी तक शाह इसमें आकर रहे नहीं। शाह जब भी कभी लन्दन में सरकारी अथवा निजी यात्रा पर आएंगे तो यहां पर रहा करेंगे।

'आप अपने व्यापार की प्रगति तथा प्रसार-प्रचार हेतु कृपया राष्ट्रधर्म में विज्ञापन देकर लाभ उठावें'

विज्ञापन दर

आवरण पृष्ठ ४	(दो रंग)	रु० १०००
आवरण पृष्ठ २	(एक रंग)	रु० ८५०
आवरण पृष्ठ ३	(एक रंग)	रु० ८००
पूर्ण पृष्ठ	(एक रंग)	रु० ६५०
आधा पृष्ठ	(,, ,,)	रु० ३९०
चौथाई पृष्ठ	(,, ,,)	रु० २००

अन्य जानकारी हेतु कृपया सम्पर्क करें :—

विज्ञापन व्यवस्थापक

राष्ट्रधर्म मासिक

राजेन्द्रनगर पूर्व, लखनऊ—२२६००४

फोन :—४२९०१

प्रगति के पांच मास

● किशनचंद बैनीवाल, अध्यक्ष
दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन समिति

१५ अगस्त को हम अपनी स्वतंत्रता की वर्षगांठ मानयेंगे। इस दिन को मैं सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में किये गये कार्यों के लेखा-जोखा लेने के दिन के रूप में लेता हूं। इस अवसर पर मैं दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन समिति के अध्यक्ष के रूप में दिल्ली के सभी नागरिकों को बधाई देता हूं।

देश की राजधानी दिल्ली के नागरिकों के लिये शुद्ध पीने को पानी और अवजल निकासी की सुविधायें प्रादान करना तो एक महत्वपूर्ण कार्य है। कहा गया है। कि "निरोगी काया तो सब कुछ पाया" स्वस्थ शरीर के लिये शुद्ध पानी और स्वच्छ वातावरण बहुत आवश्यक है।

अत: जब मेरे ऊपर जीवन की इन महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले संस्थान-दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान को संचालक समिति के सदस्य और फिर अध्यक्ष बनने का अवसर आया तो मैने इसे केवल इस रूप में ही अपना सौभाग्य माना कि मुझे इस माध्यम से जीवन के लिये अत्यन्त महत्व पूर्ण इन सेवाओं के जरिये दिल्ली के नागरिकों की सेवा करने का अवसर मिलेगा।

प्रधान मन्त्री के नये बीस सूत्री कार्यक्रम में भी पीने के पानी की व्यवस्था करने के मद को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यद्यपि अभी हमारे कार्यकाल की शुरुआत है किन्तु फिर भी इस थोड़े से पांच महीने की अवधि में अनेक ऐसे कार्य हुए हैं जिन पर हम सब गर्व कर सकते हैं।

जहां दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान दिल्ली के नागरिकों की पीने के पानी और अवजल निपटन संबंधी सुविधाओं को बढ़ाने के लिये इतना कुछ कर रहा है वहां मेरा दिल्ली के नागरिकों से निवेदन है कि इन सुविधाओं को सुचारु रूप से चालू रखने के लिये वे संस्थान के अधिकारियों व कर्मचारियों का सहयोग करें।

मेरा विश्वास है कि आप सभी के सहयोग से हम दिल्ली के नागरिकों की बेहतर सेवा कर सकेंगे।

(पृष्ठ ६ का शेष)

बताने चलेगी ? आखिर भावरा में ही लगाये गये शिला-पट पर आजाद के नाम से क्यों परहेज किया गया ? इसका भी जवाब क्या प्रधानमंत्री के पास हो सकता है ? शायद वे कह दें कि उन्हें उसकी जानकारी ही नहीं हो पाई। परन्तु आजाद पर डाक-टिकट निकाले जाने के आग्रह का तो उन्हें पता था—अभी तक उस पर संचार-मंत्रालय ने क्यों नहीं कार्रवाई की ? इसका क्या जवाब हो सकता है ? स्वतंत्रता-संग्राम को झूठलाने की यह कुचेष्टा स्वयं शासन के ही स्तर पर क्यों की जा रही है, सर्वविदित सत्य को इतिहास से क्यों बहिष्कृत किया जा रहा है—इसका कौन जवाब देगा ? ००

। श्रीः ।

अनुपम - प्रकाशन

● स्वा० सावरकर ● भीष्म ● ध्रुव

भारत-भारती बाल पुस्तकमाला के इन अनुपम पुष्पों का पुनर् मुद्रण।

● स्वा० सावरकर जन्मशताब्दी पर विशेष माँग।

● वचन की दृढ़ता और स्थिरता का संदेश देने वाले पौराणिक काल के महापुरुष की जीवनी।

● निर्भीक, स्वाभिमानी व ईश्वर भक्त अमर बालक

मूल्य २ रु० प्रत्येक का

प्राप्ति स्थान—

भारत-भारती

बाल पुस्तक माला

रुईकर पथ, नागपुर

४४०००२, महाराष्ट्र

अभी तक प्रकाशित ८० पुस्तकों में से उपलब्ध ४२ पुस्तकों को एक साथ खरीदने पर पुस्तकों के मूल्य में २० प्रतिशत तथा डाक-व्यय में ५० प्रतिशत छूट।

रूस का आकलन

30 लाख अमरीकी सेना

अमरीकी सेना के सशस्त्र सैनिकों की संख्या लगभग ३० लाख है। यहाँ उपलब्ध नवीनतम सूचनाओं के अनुसार पेंटागन ने रक्षा-सेवाओं में लगभग १० लाख नागरिक सैनिक भी भर्ती कर रखे हैं।

१९८१ में अमरीकी रणनीतिक नाभिकीय सेना में धरती से मार करने वाले १०५३ अन्तर्महाद्वीपीय मिसाइल, समुद्र से मार करने वाले ५७६ अंतर्महाद्वीपीय मिसाइल तथा ४३० रणनीतिक बमवर्षक विमान है।

१९८१ में अमरीकी थल सेना में १६ डिवीजनें, नौ पृथक ब्रिगेड और अन्य यूनिट थे। ये अन्य महाद्वीपों पर, अन्य देशों के भू-क्षेत्र पर युद्ध लड़ने के लिए विशेष रूप से तैयार किये गये हैं। 'सामान्य उद्देश्य की सेना' में ११,४०० स्वाचलित तोपें, २,५०० फील्ड गन, ८,००० से अधिक हेलीकोप्टर और ५५० विमान हैं।

अमरीकी वायु सेना में रणनीतिक और कार्यनीतिक उड़ान भरने वाले २९ विंग, परिवहन विमानों के १७ स्क्वाड्रन. इस प्रकार कुल ३,२०० विमान हैं। १९८१ में वायु सेना में ५५८ हजार सैनिक थे।

अमरीकी नौ सेना में २०० बड़े युद्धपोत है, जिनमें से १३ विमान वाही पोत है, ८४ युद्धक पनडुब्बियां और १,४५० विमान हैं।

नौ सनिकों की कुल संख्या १,८८,००० है। नौसेना में भी ५०५ टैंक, ९८५ बख्तरबन्द सैनिकवाही जहाज तथा ४४० विमान मौजूद हैं।

वायु सेना, नौसेना और नौसैनिकों के पास अपने ९,६०० सैनिक विमान और हेलीकोप्टर हैं। नौसेना में ४० परमाणु शक्ति-चालित पनडुब्बियां हैं जो मिसाइलों से लैस हैं।

अमरीका पश्चिम जगत में हथियारों का सबसे बड़ा उत्पादक है। अमरीका के हथियार निर्माण का अंश पूंजीवादी संसार के कुल औद्योगिक उत्पादन में उसके अंश से कहीं ज्यादा बढ़ चुका है। समस्त नाटो देशों की तुलना में अमरीका को विमानों और मिसाइलों की कुल संख्या के तीन-चौथाई का तोप और अन्य आग्नेयास्त्रों के कुल उत्पादन के लगभग आधे का तथा नौसैनिक जहाजों के कुल निर्माण के दो-तिहाई से अधिक का श्रेय प्राप्त है। अमरीका के हथियार बनाने के उद्योग में २० लाख से भी ज्यादा आदमी काम कर रहे हैं जो कि अन्य नाटों की इस प्रकार की कुल संख्या से कहीं ज्यादा है।००

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जयपुर

सत्यकथा

● बृन्दावनलाल वर्मा

सिद्धराज जयसिंह का न्याय

सिद्धराज जयसिंह गुजरात के राजा (११००-११४५) थे। राजधानी गुजरात के उत्तर में अनहिल पाटन थी जो आज भी पाटन के नाम से प्रसिद्ध है। खम्भात का नगर और बन्दरगाह गुजरात के राज्य में था। खम्भात में पारसी, हिन्दू और मुसलमानों की आबादी थी। हिन्दुओं और पारसियों के मन्दिरों के साथ-साथ वहां मुसलमानों की मस्जिदें भी थीं। इनमें एक सबसे बड़ी थी, जिसका प्रधान मुल्ला खातिबअली था। एक दिन हिन्दू, पारसी और मुसलमानों के आपसी मतभेद के कारण की झगड़े बाढ़-सी आ गई। हिन्दू और पारसी एक ओर और मुसलमान दूसरी ओर। इतनी लड़ाई हुई की अस्सी मुसलमारे गये। हिन्दुओं और पारसियों ने खातिबअली वाली मस्जिद ढा दी।

खातिबअली बचकर भाग निकला और किसी तरह अनहिल पाटन पहुंचा। हिन्दुओं और पारसियों के मुखिया भी जा पहुंचे। जयसिंह के दरबारियों ने खातिबअली की एक न सुनी। खातिब अली जयसिंह तक पहुंच नहीं सकता था।

एक दिन जयसिंह शिकार खेलने के लिए जंगल की ओर गये। खातिब पहले से ही उनके मार्ग में खड़े एक पेड़ के पीछे जा छिपा।

जयसिंह हाथी पर चढ़े उस पेड़ के पास जैसे ही आये मुल्ला उनके हाथी के सामने जा खड़ा हुआ। नम्रता के साथ गिड़गिड़ाया—'मेरी एक फरियाद सुन ली जावे, महाराज!'

सिद्धराज ने हाथी खड़ा कर दिया।

मुल्ला ने राजा के हाथ में हिन्दी में लिखा हुआ एक 'कसीदा' पेश किया। कविता में मुल्ला ने अपनी व्यथा विस्तार के साथ लिख दी थी।

जयसिंह ने अपने निजी सचिव को, जो साथ में था, आदेश दिया। खातिबअली को पूरी सावधानी के साथ अपने पास रखना। इसको किसी तरह का भी

कष्ट न होने पावें। जब मैं कहूं तब इसे मेरे सामने हाजिर कर देना। बात फैलने न पावे।'

खातिबअली को सचिव ने अपनी रक्षा में ले लिया।

सिद्धराज जयसिंह बहुत शीघ्र शिकार से लौट पड़े।

शिकार से लौट कर उन्होंने अपने प्रधानमन्त्री से कहा; 'तीन दिन के लिए मैं राजकाज से पूरी छुट्टी ले अपने अन्तःपुर में आराम करूंगा। किसी भी काम के लिए कोई भी मेरे पास न आवे।'

मन्त्री को काम सौंपकर जयसिंह अन्तःपुर में चले आए और रात लगी एक तेज ऊँट पर सवार होकर खम्बात की ओर चल दिए। पाटन से खम्बात लगभग साठ कोस की दूरी पर था।

लगभग इक्कीस घण्टे लगातार चलकर जयसिंह खम्बात नगर के बाहर सूर्यास्त के पहले आ गए और सेठ-साहूकार का वेश धर के नगर में गये।

उन्होंने बाजार में कई प्रमुख स्थानों में बड़े ढंग से खातिब वाली दुर्घटना की खोज-बीन की। घटना के तथ्य उन्हें मालूम हो गए। खातिबअली की फरियाद सच्ची निकली वे तुरन्त पाटन की ओर लौट पड़े।

परन्तु लौटने के पहले उन्होंने समुद्र के खारी जल को एक बर्तन में भरवा लिया इसे वे अपने साथ लेते गए।

हम अपने भरण-पोषण के लिए पर्याप्त अनाज पैदा करते हैं—और यह कोई मामूली उपलब्धि नहीं है, यह देखते हुए कि जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है जिसे विदेशों से अनाज आयात करने पर भारी खर्च करना पड़ता था।

हम विश्व के अग्रणी औद्योगिक राष्ट्रों में से एक हैं— हम रेडियो से लेकर कम्प्यूटर, सुई से लेकर अत्याधिक परिष्कृत यंत्रों और उपकरणों का उत्पादन करते हैं।

हमारे यहां विश्व के किसी भी देश से (अमरीका और रूस के अतिरिक्त) अधिक प्रशिक्षित वैज्ञानिक एवं तकनिद् हैं। हमारी सहायता से कई विकासशील राष्ट्रों में संयुक्त औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित किए जा रहे हैं।

हमें अपनी उपलब्धियों पर गर्व है

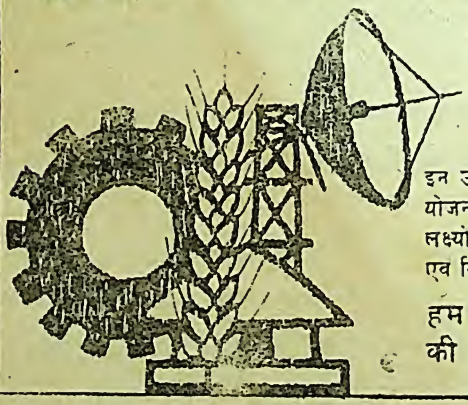

इन उपलब्धियों ने हमें पंच-वर्षीय योजना एवं 20-सूत्री कार्यक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए योग्यता एवं निपुणता प्रदान की है।

हम गौरवपूर्ण भविष्य की ओर अग्रसर हैं।

डीएवीपी 83/119

उन्होंने फिर उसी तेजी और लगन के साथ यात्रा की परन्तु पाटन में प्रवेश रात के समय किया। किसी ने नहीं पहचान पाया।

जयसिंह ने दूसरे दिन दरबार किया। उन्हें विश्वास था कि न्याय को देर में करे तो ढेर में मिल जाता है। इसीलिए जरा भी देर नहीं लगायी।

दरबार में अन्य फरियादियों के साथ खातिबअली को भी बुलवाया गया।

खातिबअली ने विस्तार से अपनी फरियाद सुनाई।

एक मन्त्री ने बीच में रोककर खातिब को धमकाया, 'तुम्हारी बात झूठ निकली तो गर्दन पर सिर नहीं रहेगा।'

खम्बात के कुछ अन्य पक्ष वाले भी जो पाटन में ठहरे हुए थे, उस समय दरबार में थे। उन्होंने अपने पक्ष की बात बड़े ही दृढ़ स्वर में सुनाई।

परन्तु सिद्धराज ने खातिब की पूरी बात सुनी और अपने एक सेवक द्वारा वह बर्तन मंगवाया जिसमें वे खम्बात से समुद्र का पानी भर लाए थे।

वह पानी सभी को थोड़ा-सा दिया गया। पीते ही सभी ने कहा, 'यह तो समुद्र का पानी है! बहुत ही खारी!!'

किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था कि राजा ने समुद्र का पानी कहाँ से और किसके हाथों मंगवाया और भरे दरबार में क्यों थोड़ा-सा उन सबको चखाया।

सिद्धराज जयसिंह ने बताया:—'मुझे तुम लोगों में से किसी पर भी विश्वास नहीं था, क्योंकि धर्म से सम्बन्ध रखने वाले लड़ाई-झगड़ों में सब पक्ष अपनी-अपनी बात को ऊपर उठाने और उसका समर्थन करने में कभी कोई कसर नहीं लगाते। इसलिए मैं स्वयं खम्बात गया और वहां मामले की छानबीन की।

छान-बीन किस तरह की, इसे उन्होंने ब्योरे के साथ सुनाया।

फिर बोले,—'मैंने खातिबअली की फरियाद सच्ची पायी। हमारा धर्म है कि प्रजा के प्रत्येक जन की रक्षा की जावे और सबके साथ एक सा बर्ताव किया जावे, जिससे सब लोग शान्ति के साथ अपना काम कर सकें।'

फिर अपराधियों को दण्ड देने की बात आयी।

प्रधान अपराधियों का पता उघड़ने में बिलम्ब नहीं हुआ।

राजा ने उन सबको पकड़ कर कठोर दण्ड दिया और खातिबअली तथा उसके साथियों को एक लाख रुपया मस्जिद को फिर से बनवाने के लिए दान किया।

और खातिबअली को चार कपड़े भेंट करके विदा किया : ००

'जीवन तभी विकसित हो सकता है जबकि एक महान् और महानतम समर्पण, त्याग और बलिदान की भावना बिना मनके बीच-बचाव के जीवन में उदय हो।'

जीवन के अग्नि-प्रश्न ?

कोई भी युवकों की समस्याओं का उल्लेख कर सकता है यदि कोई समस्या है तो जीवन और उसके अस्तित्व की है। यह अज्ञात सत्य है कि जीवन आज अत्यधिक उलझनपूर्ण और संश्लिष्ट होता जा रहा है और ये सारी बातें जीवन के सम्बन्ध में हमारे कुछ निश्चित दृष्टिकोण और विचारों के कारण हैं।

जिन समस्याओं के विषय में हम सोचते या बोलते हैं वे कुछ निश्चित मूल्यों और उद्देश्यों के कारण होती हैं और इस तरह जीवन स्वयं ही एक समस्या बन गया है।

मनोवैज्ञानिक तौर पर जीवन प्राणी के मन से नियंत्रित और परिचालित है और वह उससे प्रेरणा भी प्राप्त करता है। इसलिए व्यावहारिक तौर पर यहाँ जीवन की नहीं, मन की समस्याओं का प्रश्न खड़ा होता है। गीता में भी कहा गया है'''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो।।

मन का बन्धन

विभिन्न विचारों तथा आदर्शवादों में विभिन्नताएँ सब मानसिक स्तर की ही उपज हैं। अधिकतर महान तर्कसंगत या बौद्धिक मानी गई विचारपद्धति या कार्यविधि भी मन के सृजनात्मक कार्य के सिवा और कुछ नहीं होती। मन ही अधिक सीमा तक जीवन के अस्तित्व, विकास और विस्तार का केन्द्र बन गया है।

अतः हम देख सकते हैं कि आणविक शक्ति की सक्रियता हमारे जीवन को भय तथा निराशा के गर्त में ढकेले हुए हैं क्योंकि जीवन अपनी शान्ति और अस्तित्व की समस्याओं के हल के लिए एक विचारपद्धति पर ही निर्भर करता है व्यवहारतया सम्पूर्ण जीवन के बुद्धि की गुलामी स्वीकार कर लेने के कारण यह

युवा-संसार

● ले० दादाराव परमार्थ
● अनु० श्री व्यंकटरमण

'बुद्धि, राजनीति और मन के बनाए गये बंधनों तथा सीमाओं का पूर्ण अतिक्रमण करने के लिए अदम्य प्रेरणा और एक साहसिक चरित्र की आवश्यकता है। कुछ भी विचार मत करो यदि जीवन कुछ समय के लिए अराजक बन जाए। अच्छा बनना अच्छे काम करना ही जीवन का कोई समाधान नहीं हैं।'

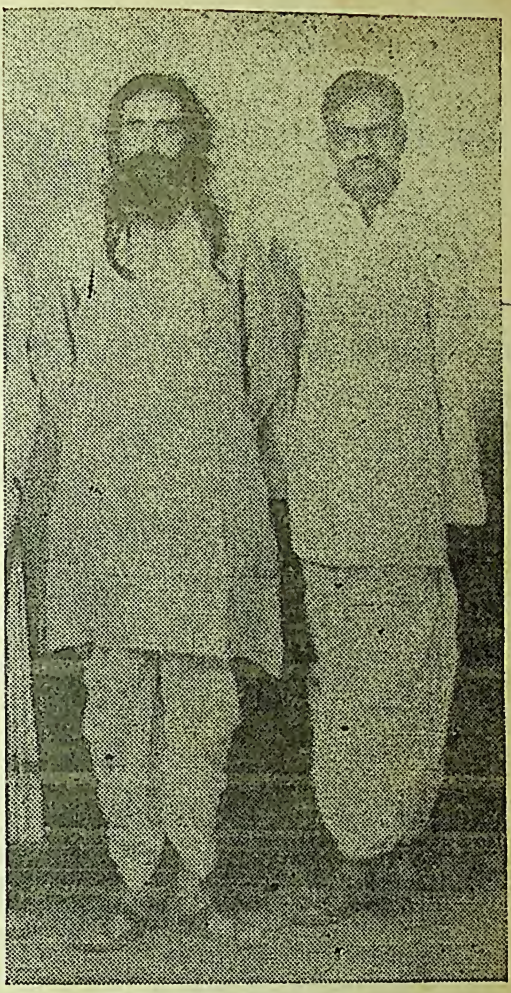

दादाराव परमार्थ श्री गुरुजी के साथ

निष्कर्ष पाया जा सकता है कि जब तक जीवन शुद्ध-तौर पर मन की पद्धति से मुक्त होकर विकास की स्वतन्त्रता की अभीप्सा नहीं करेगा, दिव्य प्रकृति या साधारण प्रकृति योजना में अपना समाधान नहीं प्राप्त कर सकेगा। अतः मनुष्य अपने को किसी में सीमित होकर आगे नहीं बढ़ा सकता।

जीवन का कोई उद्देश्य नहीं

जब हम युवावस्था के विषय में सोचते हैं तो वर्तमान समय की साधारण प्रवृत्ति के अनुसार यह नहीं सोचते कि युवावस्था पन्द्रह वर्ष से तीस या पैंतीस वर्ष की अवस्था के बीच सीमित है और युवक वर्ग कोई विशेष उद्देश्य नहीं रखता है। सोचने की दूसरी कठिनाई यह है कि हम ऐसे रास्ते से समाधान की प्राप्ति चाहते हैं जो उन्हें वित्त की दृष्टि से इस योग्य बना दे कि वे आदर्शों के आनन्द का उपभोग कर सकें तथा विचार और आदर्श भी इतने निश्चित होते हैं कि विकास न कर सके और चरित्र में एक अग्निमय प्राणवन्त भरने में समर्थ न हो सके। यह जीवन को प्रोत्साहित नहीं कर सकता और जीवन से जीवन के लिए कोई उद्देश्य नहीं होता।

अदम्य प्रेरणा चाहिए

इसलिए जीवन का मूल उद्देश्य और दिव्य जीवन तथा भगवान् की योजना पूरी तरह से हमारी दृष्टि से बाहर रहती है और बौद्धिक विचार जीवन को आगे की विकसित ऊँचाइयों पर ले जाने में असमर्थ होता है। अतः मन के स्तर पर समाधानों की खोज हमें दिग्भ्रमित बना देती है और कभी-कभी हम जोश और आवेश में अंधे हो जाते हैं। वैसे आज देश को जवानी केवल भौतिक नहीं तो नैतिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक समस्याओं का भी सामना कर रही है। जहां तक अध्यात्म का सम्बन्ध है हमें आत्मा की पुनर्प्राप्ति करनी है पर यह कोई समस्या नहीं। इस समस्या पर यही कहने का दावा किया जा सकता है कि जवानी जीवन को पाशमुक्त करने के लिए जवाब बनी रहे। जीवन का विकास उसकी समस्या का समाधान है और जीवन तभी विकसित हो सकता है जबकि एक महान् और महानतम समर्पण, त्याग और बलिदान की भावना बिना मन के बीच बचाव के जीवन में उदय हो। पर तात्कालिक समाधान के लिए हमारे पास कोई उपाय नहीं है। यह उन लोगों का भ्रम है जो जीवन के भाग्य विधाता बन कर झूठे वादे करके युवकों को प्रेरणा दे या समस्त राजनीतिक उद्देश्यों के लिए तात्कालिक क्रिया के आधार पर प्रेरणा दें। परन्तु जीवन को क्रमशः विकसित विश्वास और श्रद्धा का सन्देश देना होगा जो कल आने वाली है। बुद्धि, राजनीति और मनके बनाए गये बन्धनों तथा सीमाओं का पूर्ण अतिक्रमण करने के लिए एक अदम्य प्रेरणा और साहसिक चरित्र की आवश्यकता है। कुछ भी विचार

मत करो यदि जीवन कुछ समय के लिए अराजक बन जाए। अच्छा बनना, अच्छे काम करना- ही जीवन का कोई समाधान नहीं है। हम इस बात को गम्भीरता से अनुभव करते हैं कि हम एक संक्रमण वस्तुस्थिति से गुजर रहे हैं और कोई सरकार, शिक्षा, या दल इस स्थिति में नहीं है कि समाधान या प्रेरणा दे सके। राजनीतिक दलबन्दियों से लोगों की भीड़ से दूर होकर व्यक्तिगत तौर पर युवक विकास करे और वे सार्वभौमिक मुक्त वातावरण की सृष्टि करें, साहसिक बनें तभी अपने जीवन से वे दूसरों को भी प्रेरणा दे सकते हैं। ००

विश्व-कप : रोमांचक विजय

कन्हैयालाल चतुर्वेदी

अविश्वसनीय, अकल्पनीय, अप्रत्याशित ! प्रूडेन्शियल कप में भारत की विजय के लिए यही कहा गया। प्रतियोगिता शुरू होने के पहले जिस टीम के लिए पांचवां स्थान भी एक उपलब्धि माना जा रहा था, उसने आस्ट्रेलिया, इंगलैण्ड तथा वेस्टइण्डीज जैसी दिग्गज टीमों को परास्त कर दिखाया। इग्लैण्ड की धरती पर कदम रखने के पश्चात् आस्ट्रेलियाई टीम के कप्तान किम ह्यूज ने कहा था कि, 'भारत छिपा रूस्तम साबित हो सकता है।' उस समय सबने किम ह्यूज की मजाक बनाई। उसने भी भी शायद पूरी गम्भीरता से यह बातनहीं कही होगी, किन्तु, भारत ने अपने आपको 'छिपा रूस्तम' साबित करके ही दिखाया।

यह केवल संयोग मात्र नहीं था। पहले ही मैच में जब भारतीय टीम ने वेस्टइण्डीज को ३४ रनों से शिकस्त दी तो अधिकतर लोगों ने इसे संयोग ही माना था। यहां तक कि आस्ट्रेलिया पर मिली ११८ रनों की शानदार विजय के साथ अन्तिम चार में पहुंचने को भी संयोग माना गया। इंगलैण्ड् के खेमे में भारत के सेमी-फाइनल में पहुंचने की खुशियां मनाई गई, यह सोचकर कि अब इंगलैण्ड् का फाइनल में पहुंचना निश्चित हो गया है। २२ जून को ओल्ड ट्रेफर्ड पर हुआ इसका विपरीत ही। इंगलैण्ड् की छह विकिट से करारी हार हुई।

वास्तव में भारत का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन इसी मैच में हुआ। जिनको एक दिवसीय क्रिकेट में एकदम महत्वहीन समझा जा रहा था—यह अनुमान अधिक गलत भी नहीं था, क्योंकि पिछले दो विश्व कपों में भारत केवल एक मैच जीत सका था—उसी टीम ने मानों एक दिवसीय क्रिकेट का पाठ पढ़ाते हुए इंगलैण्ड को धूल चटा दी। इस विजय ने भारत की धाक जमा दी। फिर भी, फाइनल में वेस्ट इण्डीज खिलाफ भारत के जीतने के अवसर के अधिक से अधिक तीस प्रतिशत माने जा

रहे थे। यह सही भी था, क्योंकि वेस्ट-इण्डीज की टीम में एक से एक उत्कृष्ट खिलाड़ी भरे हुए थे। जिस टीम में रॉबर्ट, होल्डिंग, गार्नर तथा मार्शल जैसे जबर्दस्त तेज गेंदबाज तथा ग्रीनिज, रिचर्ड, हेयन्स तथा लॉयड् जैसे आक्रामक बल्लेबाज मौजूद हों उस टीम को हारने की कल्पना भी कोई कैसे कर सकता था ?

२५ जून को क्रिकेट के तीर्थ लार्ड्स के मैदान में जब भारत की टीम १८३ रन पर सिमट गई तो सबने मान लिया कि वेस्टइण्ड्रीज की विजय अब पक्की हो गई है और इसके बाद जब रिचर्ड ने अपनी आक्रामक बल्लेबाजी से चौकों की बौछार शुरू कर दी, तब तो यह निश्चित ही मान लिया गया कि वेस्ट इण्डीज की विजय महज औपचारिकता मात्र रह गई है। लेकिन उन लोगों को शायद भारतीय टीम की दिलेरी का का अन्दाजा नहीं था। रिचर्ड आउट हुआ नहीं कि 'तू चल मैं आया' का सिलसिला बन गया। बड़ी कठिनाई से वेस्टइण्ड्रीज के १४४ रन बन सके, भारत को ४३ रनों की यादगार विजय मिली।

आखिरकार भारत की यह विजय कैसे सम्भव हुई ? इसका उत्तर कोई मुश्किल नहीं है। एक विश्व-विजयी टीम की जो खूबियाँ होनी चाहिए वे इस टीम में थी। सर्वप्रथम और सबसे आवश्यक बात होती है, 'टीम स्पिरिट'। वर्षों के बाद भारतीय

गवास्कर

टीम में यह 'टीम स्पिरिट' दिखाई दी। प्रत्येक खिलाड़ी ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा और क्षमता का प्रदर्शन किया। प्रत्येक खिलाड़ी टीम के लिए और केवल टीम के लिए खेला। इसी कारण साधारण समझे जाने वाले खिलाड़ियों का संयुक्त प्रयास आश्चर्यजनक सफलता के रूप में सामने आया। यह चमत्कार था कपिल-देव की कप्तानी का। उसने स्वयं का

उदाहरण रखकर अपने सहयोगियों को प्रेरणा दी।

जिम्बाबवे के खिलाफ दूसरे मैच में मात्र ९ रन पर भारत के चार खिलाड़ी पैवेलियन में लौट चुके थे। १७ रन बनते-बनते संदीप पाटिल भी आउट हो गया। सब कुछ समाप्त-सा लगने लगा, अधिकांश लोगों ने अपने ट्रांजिस्टर बन्द कर लिये। ऐसी कठिन परिस्थिति में कपिल किसी नेपोलियन की तरह आगे आया। सूझबूझ के साथ आक्रमण की नीति अपनाते हुए उसने चौकों और छक्कों की बौछार शुरू कर दी। यह क्षेत्ररक्षण जो जिम्बाबवे की जान था, असहाय हो गया। अपनी बेहतरीन बल्लेबाजी से कपिल ने न केवल भारत की निश्चित पराजय को विजय में बदल

महेन्द्र अमरनाथ

दिया, बल्कि विश्व कप के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया। कपिलदेव—१७५ आउट नहीं, यह स्कोर क्रिकेट के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिये।

यह विजय भारतीय टीम के मनोबल को बुलन्दियों पर पहुंचाने के लिए काफी थी।

इस विश्व कप ने यह सिद्ध कर दिया कि एक दिवसीय क्रिकेट एक युद्ध की तरह से है जिसमें ऊँचा मनोबल एक महत्वपूर्ण पक्ष है तथा जिसमें युद्ध के मैदान की-सी व्यूह रचना की जानी चाहिये। युद्ध के मैदान की तरह कभी आक्रमण तो कभी बचाव, कभी मोर्चेबन्दी तो कभी विस्मयकारी अस्त्र का प्रयोग एक दिवसी क्रिकेट में टेस्ट मैचों से अधिक ही देखने में आया। कपिलदेव ने प्रत्येक मैच की व्यूह रचना बहुत सोच समझकर की।

सेमी फाइनल में इंग्लैंड के प्रारम्भिक बल्लेबाज भारतीय आक्रमण की धज्जियां उड़ा देने पर तुले हुए थे। उस समय कपिल ने महेन्द्र अमरनाथ तथा कीर्तिआजाद का विस्मयकारी अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। भारत को डेविड गॉवर का महत्वपूर्ण विकेट चाहिये था। उसके आउट होते ही कपिल ने इंग्लैण्ड के बल्लेबाजों पर दबाव बढ़ाया। मदनलाल, महेन्द्र अमरनाथ तथा कीर्तिआजाद ने सधी हुई तथा सटीक गेंदाबाजी कर इंग्लैण्ड की

मध्यम क्रम की बल्लेबाजी की कमर ही तोड़ दी। इंग्लैण्ड को २१३ रनों पर चलता कर देना भारतीय गेंदबाजों की बहुत बड़ी सफलता थी।

इसके जवाब में भारतीय बल्लेबाजों ने जो प्रदर्शन किया वह वर्षों तक याद किया जाएगा। चालीस ओवर तक प्रति ओवर रनों का औसत ३ से भी कम था। अन्तिम सोलह ओवर में विजय के लिये ७४ रन बनाने थे। उस समय दूरदर्शन पर मैच देख रहे दर्शक मन ही मन खीझ रहे थे कि भारत जान-बूझकर मैच को मुश्किल किए दे रहा है। वास्तव में यशपाल और मोहिन्दर योजनाबद्ध रूप से खेल रहे थे, इंगलैण्ड के गेंदाबाजों का पैनापन समाप्त करने के लिए खेल रहे थे। वे अपने लक्ष्य में सफल हुए क्योंकि विजय के लिए शेष ७४ रन भारत ने केवल ११.४ ओवर में बना डाले।

यह बहुत सतर्कता पूर्वक बनाई गई योजना के कारण सम्भव हो सका। ऐसी योजना वही नायक बना सकता है जिसका अपने सहयोगियों पर अटूट विश्वास हो। कपिल ने अपने आपको एक सुयोग्य नायक सिद्ध किया। टीम के किसी भी सदस्य ने कप्तान के विश्वास को गलत साबित नहीं किया। बल्लेबाजी में जहां यशपाल और मोहिन्दर ने टीम के लिए आधार स्तम्भ का काम किया वहीं श्रीकान्त, संदीप पाटिल तथा कपिलदेव ने धमाकेदार बल्लेबाजी कर टीम को विजय की राह दिखाई। मदनलाल,

किरमानी

बिन्नी, सन्धु तथा किरमानी भी पीछे नहीं रहे। इसी प्रकार गेंदबाजों ने भी सधी हुई गेंदबाजी कर विरोधी बल्लेबाजों को बांधे रखा। लोग आशंकित थे रफ्तार के सौदागरों से किन्तु कमाल किया बिन्नी, मदनलाल और मोहिन्दर की घुमावदार गेंदों ने।

भारत के इन साधारण समझे जाने वाले गेंदबों ने गेंदबाजी के एक ही मूलमन्त्र का पालन किया, 'सही दिशा तथा सही लम्बाई।' और उनकी सटीक गेंदबाजी को धार मिली बिजली की गति के क्षेत्ररक्षण से। क्षेत्ररक्षण के मामले में भारतीय टीम का मानों यह पुनर्जन्म ही था। श्रीकान्त निस्सन्देह प्रतियोगिता का सर्वश्रेष्ठ क्षेत्ररक्षक था। उसका चीते की तरह गेंद पर

Suitings for the Connoisseur

DIG JAM

Lightweight suitings for summer

झपटना देखते ही बनता था। श्रीकान्त के अतिरिक्त यशपाल, बिन्नी, मदनलाल, कप्तान कपिलदेव, कीर्ति आजाद तथा विकेट के पीछे किरमानी सभी ने आला दर्जे के क्षेत्ररक्षण की बानगी दिखाई। क्षेत्ररक्षण की जमावट के मामले में भी कपिलदेव ने एक श्रेष्ठ कप्तान होने का सबूत दिया। वास्तव में क्षेत्ररक्षण किसी भी टीम के लिये सफलता की कुंजी होता है। एक अन्य टीम जिसने क्षेत्ररक्षण के मामले में अपना सिक्का जमाया वह थी जिम्बाबवे। अपने पहले ही मैच में आस्ट्रेलिया को शिकस्त दे इस टीम ने सनसनी फैला दी थी।

किन्तु, सबसे बड़ी बात यह रही कि भारत की टीम ने अवसर नहीं गंवाये; कभी हौंसला नहीं खोया। फिर चाहे वह जिम्बाबवे के खिलाफ हो चाहे इंगलैण्ड के या फाइनल में वेस्ट इण्डीज से भिड़न्त हो। फाइनल में १८२ रन पर उखड़ जाने के बाद भी भारतीय टीम ने हिम्मत नहीं हारी। ऐसी स्थिति में आक्रमण ही प्रमुख हथियार होता है। कपिल ने शुरू से ही यह नीति अख्तियार की। उस समय विकेट के पीछे दो स्लिप देखकर लोग मन ही मन कपिल को देखकर हंस रहे थे। उधर रिचर्ड ने आते ही गेंदबाजों को धुनना शुरू कर दिया। कपिल फिर भी अपनी व्यूहरचना पर अडिग रहा। एक क्षेत्ररक्षक को उसने स्लिप पर रखा ही। रिचर्ड के आउट होते ही कपिल ने दबाव बढ़ाया। उसे मालूम था कि दबाव में वेस्टइण्डीज की टीम बिखर जाती है। हुआ भी यही और भारत ने एक ऐसी विजय हासिल की जो आने वाले अनेक वर्षों तक यादगार बनकर रहेगी।

कपिलदेव और भारतीय टीम इसके लिये बधाई के पात्र हैं। ०००

डांगरा हींग वटी (रजि०)

पेट व गैस के रोगों पर रामबाण स्वादिष्ट, पाचक व जायकेदार टिकियाँ

निर्माता :-डांगरा आयुर्वेदिक फार्मेसी (रजि०) कासगंज

प्रत्येक स्थान पर ऐजेन्टों की आवश्यकता है।

बालाजी का मंदिर जो अपने आप में

मैं नहीं जानता कि भारत में कोई और मन्दिर है जिसकी सालाना आय १५ करोड़ रुपया है और उस आय का जिस तरह मन्दिर उपयोग करता है, कोई और करता है। वह मन्दिर है, तिरुमला का श्री वेंकटेश्वर मन्दिर। इसको उत्तर में बालाजी का मन्दिर भी कहा जाता है।

इस मन्दिर की कितनी ही विशेषताएं हैं। यह मन्दिर भक्तों और यात्रियों की जितनी भीड़ आकर्षित करता है शायद कोई दूसरा मन्दिर नहीं करता। यह आज और कल की बात नहीं है, इस उत्सव और उस उत्सव की बात नहीं है, यह सिलसिला सदियों से बराबर चला आ रहा है।

हर मन्दिर का अपना इतिहास होता है, स्थल पुराण होता है। इस मन्दिर का भी है। पहले कभी, कहा जाता है,

इसी स्थल पर जैनों का मन्दिर था, फिर शक्ति मन्दिर। अब श्री वेंकटेश्वर का मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण विजय नगर के महाराजा श्री कृष्ण देव राय ने करवाया था, कोई चार सौ पांच सौ वर्ष पूर्व। उनकी ताम्रमूर्ति अब भी मन्दिर के सिंह द्वार के समीप प्रतिष्ठित है।

विजय नगर काल की अपनी विशेष मन्दिर वास्तु कला है, जिसमें कलालंकृत उच्च गोपुर—(सिंह द्वार) मुख्य है। श्री वेंकटेश्वर मन्दिर का गोपुर कोई विशेष आकर्षक नहीं है, और जब से यह 'पुनर्निर्मित' हुआ है, और भी कम आकर्षक हो गया है। इससे बड़े, भव्य, सुन्दर विशाल मन्दिर दक्षिण में अनेक हैं, पर जितनी महिमा श्री वेंकटेश्वर के मन्दिर की है, किसी की नहीं है। यह वैष्णव मन्दिर है।

श्री वेंकटेश्वर दक्षिण के लाखों परिवारों के इष्ट देवता हैं। घर-घर में इनके के चित्र हैं, और इनकी आराधना होती है। जिले-जिले में इनके मन्दिर हैं, उनकी सुविधा के लिए जो तिरुपति नहीं जा सकते हैं पर जाना चाहते हैं। यह मद्रास से कोई १०० मील दूर, आन्ध्र के चित्तूर जिले में है।

श्री वेंकटेश्वर आन्ध्र में ही नहीं हैं, कर्नाटक और तमिलनाड़ में भी 'आराध्य' हैं। उत्तर में भी इनके कई भक्तहैं।

एक विशाल संस्था है

विविध

डा० आरिगपूडि

कोई मास नहीं, कोई सप्ताह नहीं, कोई दिन नहीं, कोई क्षण नहीं, जबकि हजारों भक्त इनके दर्शनों के लिए दूर-दूर से न आते हों। इन भक्तों के रहने आदि की जो व्यवस्था मन्दिर की ओर से होती है वह अन्यत्र किसी मन्दिर में नहीं होती।

यह मन्दिर सात पर्वतों के पार, एक भौगोलिक कटोरी में स्थित है। यह तिरुपति से कोई दस बारह मील, तीन हजार फुट ऊंचाई-पर है। इसलिए जनसाधारण, श्री वेंकटेश्वर को 'सात पर्वतों वाला भगवान' भी कहते हैं, यहां आने-जाने के लिए टैक्सी और बसों की व्यवस्था है। सैकड़ों बसें हैं, फिर भी वे नाकाफी मालूम होती हैं।.पर्वत पर, मन्दिर के समीप, सब आधुनिक सुविधाओं से युक्त कितने ही 'काटेज' (पक्के कुटीर) बने हुए हैं। वे किराये पर दिये जाते हैं। तीन-तीन-चार मंजिला धर्मशालाएं हैं पर ये सभी यात्रियों के लिए नाकाफी हैं।

दिन रात दर्शन होते हैं। ब्राह्म मुहूर्त में दर्शन प्रारम्भ होता है। और मध्य रात्रि तक चलता है। हजारों लोग, प्रतिदिन चार, पच्चीस, सौ, रुपये के टिकट खरीद कर दर्शन करते हैं। कितने ही मन्दिर के उत्सवों व 'सेवाओं' के लिए हजारों रुपये देते हैं। इनके अलावा निःशुल्क सर्वदर्शन हैं।

मंदिर के एक कोष्ठ में, एक 'हुंडी' है। जिसमें भक्त रुपया, बहुमूल्य द्रव्य डालते हैं। मन्दिर का प्रसाद भी प्रतिदिन हजारों के हिसाब से बिकता है। दान दक्षिणा द्वारा भी लाखों रुपया बालाजी के मन्दिर से संचित होता है। ये ही मन्दिर की आय के मुख्य मार्ग हैं।

मन्दिर की महिमा क्या है? मन्दिर भी तरह-तरह के हैं। उनके आराध्य भी भिन्न-भिन्न हैं। कई देवता ऐसे हैं, जो आराध्य हैं, पर वे आशुतोष नहीं हैं। वर देने में कृपण हैं। जन विश्वास है कि श्री वेंकटेश्वर भक्तजनों की इच्छा पूर्ति करते हैं। अभिलाषाएं और मनौतियां पूरी करते हैं। और कौन मानव है जो 'अभिलाषा' से मुक्त है? मुमुक्षू में भी मोक्ष की अभिलाषा होती है।

जब अभिलाषा पूरी होती है, मनौती पूरी करने के लिए; लोग श्री वेंकटेश्वर के दर्शन के लिए चले जाते हैं। भक्ति के साथ एक भय भी होता है, यदि मनौती पूरी होने पर, दर्शन के लिए व

गये, तो श्री वेंकटेश्वर दंड भी दे सकते हैं।

यह धार्मिक विश्वास है और हिन्दू समाज की पारम्परिक आस्था है और भक्ति प्राण समाज का प्रेरणा स्रोत है। यह सब होना चाहिए कि नहीं होना चाहिए, यह तर्क संगत है कि नहीं, यह सब विषयान्तर है यहां।

एक समय था, पचास वर्ष पूर्व, यह मन्दिर एक महन्त के आधीन था, तब आय इतनी न थी, जो भी थी; उनकी अपनी थी। वह किस प्रकार खर्च होता था, इसका कोई विशेष लेखाजोखा भी नहीं है।

अब यह मंदिर सरकार के तहत है, और देव स्थान द्वारा चलाया जाता है। यह अपने आप में एक विशाल संस्था है।

...बैठकों की गर्मा-गर्मी में घुंसे-चांटे तक तो ठीक है..लेकिन रोज-रोज कुर्त्ता तो नहीं फड़वाया जा सकता...।

इसकी अपनी शासन प्रणाली है।

इतनी सारी आय कैसे खर्च जाती है? मन्दिर की ओर से विश्वविद्यालय ही पर्वत के नीचे, तिरु में चलता है। कितने ही, और कित ही तरह के महाविद्यालय इसके नीचे वेद पाठशालाएँ चलती हैं। वैदिक संधान शालाएँ चलती हैं। मंदिर च हैं। कितनी ही संस्थाओं को मन्दिर तरफ से अनुदान मिलते हैं।

मन्दिर की आय अनिश्चित है, वह हमेशा करोड़ों में ही रहेगी। अब के व्यय के लिए एक निश्चित योज बना दी गयी है। इसका अर्थ यह कि पहले व्यय अंधाधुन्ध होता था।

इस योजना के अनुसार मन्दिर आय का दस प्रतिशत धार्मि पुस्तकों के प्रकाशन के लिए खर्च होगा। इस सम्बन्ध में देवस्थान लेख और विद्वानों को पुस्तकें लिखने के लि प्रेरित और प्रोत्साहित करेगा।

और दस प्रतिशत, आन्ध्र में जी शीर्ण मंदिरों के पुनरुद्धार के लि लगाया जाएगा। और आंध्र में ह संख्या काफी बड़ी है। इसके अंत पुरोहितों को प्रशिक्षण दिया जाये स्थपतियों को भी प्रोत्साहित कि जायेगा।

दस प्रतिशत, भारत में व विदेश जगह-जगह सूचना केन्द्रों की स्थापना लिए खर्चा जायेगा। अब भी बड़े न में देव स्थान के सूचना केन्द्र हैं।

दस प्रतिशत, संस्कृत के पठन पाठन की सुविधाओं के लिए दिया जायगा। संस्कृत की जो गति है, स्पष्ट है, इसको दस प्रतिशत से कहीं अधिक धन की आवश्यकता है, खैर, इतना ही दिया जा जा रहा है, संप्रति पर्याप्त है।

इतनी बड़ी आय है कितने ही तरीकों से इसका उपयोग हो सकता है। क्यों नहीं इसके लिए एक समिति गठित की जाती, जो समय-समय पर उपयोगी योजनाएं प्रस्तुत करती रहे? आन्ध्र में कितनी ही शिक्षण संस्थाए हैं जो धन के अभाव में मृतप्राय हैं। तुरन्त उनकी सहायता की जा सकती है। जनकल्याण के कार्यक्रमों के लिए एक न्यास स्थापित किया जा सकता है।

धर्मनिरपेक्ष समाज की मेरी कल्पना में, व्यक्ति नास्तिक नहीं पर वह रूढ़ि-बद्ध कर्मकांडी भी नहीं है। जो भी हो; जब तक व्यक्ति भक्ति में, सांत्वना पाता है, और अपनी भक्ति धन द्वारा अभि-व्यक्त करता है, तब तक शासन का यह दायित्व है कि भक्तों के दान का पूर्ण सदुपयोग हो। ०००

स्वाधीनता दिवस के पावन पर्व
पर
हार्दिक शुभ कामनायें

फोन- (निवास
(प्रधान कार्यालय-८३३२५
(दूकान
(सहयोगी कार्यालय-८३४५४

उमा, आर चिकन उद्योग

चिकन कला की साड़ियों एवं ब्लाउज पीसेज के विशेषज्ञ कुर्त्ता एवं एक्सपोर्ट, कार्य के मर्मज्ञ

निवास एवं प्रधान कार्यालय
२५/४६ सोंधी टोला, चौक
लखनऊ-३

दुकान एवं ब्रांच आफिस
चौक सर्राफा, लखनऊ-३

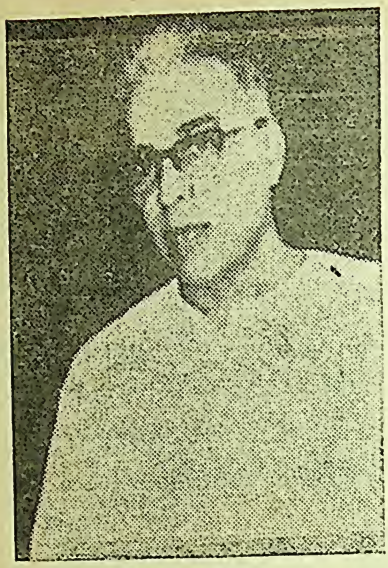

● बाला साहब देवरस
(सरसंघचालक)

आगे चलकर जब वे राजनीतिक क्षेत्र
गये तो उनका एक प्रभावशाली नेतृ
विकसित हुआ। मै उनको संघ के प्र
रूप के नाते तथा राजनीतिक नेता
नाते से भी जानता था। राजनीति
नेतृत्व करते हुये भी वह इस बात
कभी भूले नहीं कि वे संघ के स्वयंसेव
थे। जब ट्रेन में उनकी हत्या हुई
उनका सामान खोला गया तो उन
सामान में खाकी हाफ पैंट व काली टो

एक प्रेरणादायक व्यक्तित्व

दीनदयाल जी के व्यक्तित्व का श्रेय संघ को कुछ न कुछ देना ही पड़ेगा क्योंकि उन्होंने संघ के संस्कार पाये। लेकिन कुछ तो उनका अपना स्वयं का कृतित्व अवश्य होगा। साधारणतया ऐसा ही होता है। अंग्रेजी में कहा भी गया है। 'जीनियस इज ओनली टेन परसेंट इन्सपरेशन एण्ड वाइंटी परसेंट पर्सपिरेशन।' (महानता में दस प्रतिशत प्रेरणा और नब्बे प्रतिशत श्रम होता है) कुछ स्वाभाविक गुण उनमें थे। वे बहुत परिश्रमी थे। अखण्ड चिंतन, पढ़ना-लिखना उनका स्वभाव था और उसके कारण उस समय निकली। इसका कारण है
जहां भी वे जनसंघ के कार्य के निमि
भी जाते थे तो वहां भी थोड़ा
समय निकाल कर शाखा पर प्रार्थना
ही लेते थे। डा० श्यामाप्रसाद मु
की मृत्यु के बाद जिन दो चार लो
जो बिल्कुल अभी युवक बने थे, पर
संघ को प्रभावी बनाने का दायित्व
और उन लोगों ने बहुत अच्छा नि
भी, उनमें दीनदयाल जी भी थे।
होते हुए भी आखिर तक उनका
संघ का नाता अटूट था। यह मैं जा
हूं।

सिद्धान्तों की राजनीति

राजनीतिक क्षेत्र के बारे में जो विचार अटलबिहारीजी ने प्रकट किये हैं, मैं भी उनसे सहमत हूं। कभी-कभी तो लोग समझते होंगे कि मैं सरसंघचालक हूं और संघ यथा सम्भव अपने को राजनीति से दूर रखता है। इसलिए राजनीतिक क्षेत्र के बारे में मेरे विचार ऐसे होंगे कि इस क्षेत्र को मैं खराब समझता हूं। ऐसी बात नहीं है। समाज-जीवन के अनेक क्षेत्र हैं। उनमें राजनीतिक क्षेत्र भी आता है।

किसी क्षेत्र में उसकी भलाई या बुराई नहीं होती बल्कि मनुष्य अपने व्यवहार के कारण उस क्षेत्र को भला या बुरा बनाता है। कई धार्मिक संस्थाओं व नेताओं द्वारा दुराचरण नहीं किया जाता, ऐसा नहीं है। लेकिन हां, कोई क्षेत्र ऐसा हो सकता है जिस क्षेत्र में व्यवहार करते समय ज्यादा सावधान रहना पड़ता है। उसके लिये सदा-सर्वदा मैं यह उदाहरण देता हूं कि आजकल जो नये मकान बने हैं वे सब नये प्रकार के ही बने हैं। मकान के फर्श या तो सीमेंट के होते हैं, या फलसी होते हैं या टाईल्स होते हैं, बड़े चिकने चुपड़े होते हैं। चाहे बरान्डा रहे, बीच का हॉल रहे या जहां रोटी बनती है वह चौके का स्थान रहे अथवा बाथरूम रहे, उन पर चलते समय जरा चिन्ता करनी पड़ती है कि अगर

ठीक से नहीं चले तो पैर फिसल कर कहीं भी आदमी गिर सकता है। ऐसी आजकल घरों की बनावट है। लेकिन पैर फिसल कर गिरने की ज्यादा सम्भावना होती है बाथरूम में। क्योंकि वहां पानी रहता है। फिर कई लोग तेल लगाकर स्नान करते हैं। इससे बहुत-चिकना चुपड़ा बनता है और तेल निकल जाये इसलिए फिर साबुन लगाकर स्नान करते है, इससे और चिकना चुपड़ा बनता है तो बाथरूम की चिन्ता ज्यादा नहीं की तो फ्रैक्चर ज्यादा वहीं होते हैं। ऐसा डाक्टरों का भी कहना है। इसलिए हो सकता है कि राजनीतिक क्षेत्र के बारे में चिन्ता करते समय सावधान रहना पड़ता है। क्योंकि फोटो तो मेरे भी आजकल बहुत निकलने लगे हैं। मेरे सामने भी बड़ी चिन्ता का विषय होता है कि डाक्टरजी ने संघ की स्थापना की, तब शायद उनके १५ वर्ष के कालखण्ड में १५ भी फोटो नहीं निकले होंगे। गुरूजी ने ३३ वर्ष सरसंघ चालक के नाते दायित्व निभाया और उन्हीं के कालखण्ड में संघ का कार्य प्रभावी बना।

लेकिन शायद ३३ वर्ष में उन की ६६ भी फोटो नहीं निकली होंगी। लेकिन मैं सरसंघचालक ७३ में बना और ८२ तक मेरे चार-पांच सौ फोटो तो निकले होंगे, ऐसा मुझे लगता है। अनेक क्षेत्रों की यह समस्या तो होती है फिर भी यह बात निश्चित है कि राजनीतिक क्षेत्र आवश्यक है और अच्छे लोगों को राजनीतिक क्षेत्र में जाना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि राजनीतिक क्षेत्र का प्रभाव अपने ऊपर न हो, बल्कि अपना प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र के ऊपर होता रहे। राजनीति सिद्धान्त से चले। विगत दिनों अटल बिहारीजी का ही भाषण आया हैं। उसमें उन्होंने 'मूल्याधिष्ठित राजनीति' शब्द का प्रयोग किया है तो इस प्रकार कुछ सिद्धान्तों को लेकर राजनीति चले ऐसा विचार चलना चाहिए। आजकल इस बात की ओर ध्यान नहीं रहता और केवल चुनाव और सत्ता की नीति; इसी में सब लोग लग जाते है। सिद्धान्तों को भूल जाते हैं। कभी-कभी राजनीतिज्ञों से बातें होती हैं तो मैं कहता हूं कि भाई आपने यह क्यों किया, यह तो ठीक नहीं है। तो वे बोलते हैं कि 'भई, यह राजनीति है।' राजनीति में बहुत कुछ बातें करनी पड़ती है और कभी-कभी 'यह आवश्यक बुराई है'; ऐसा शब्द प्रयोग भी करते हैं। इसके बारे में अंग्रेजी में एक कहावत है कि 'आवश्यक बुराई बाद में अधिकाधिक आवश्यक और कम से कम बुरी हो जाती है।' यही आजकल चल रहा है। ऐसा नहीं होना चाहिए। कश्मीर की समस्या है। और भी देश में तरह तरह की समस्याएं हैं। बड़ी पेचीदी हैं, बड़ी कष्टदायक हैं। उसमें से रास्ता निकलना कोई सरल नहीं है, सभी के लिये कठिन काम हैं। लेकिन अगर आखिर सिद्धान्त यह है कि देश एक रहे, अखण्ड रहे तो कुल मिलाकर जिस कारण इस देश की अखण्डता व एकता के ऊपर आंच आयेगी, ऐसी कोई बात न हो, इस प्रकार का विचार करना तो आवश्यक रहेगा। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जो भी समस्यायें निर्माण होती हैं। उसकी तरफ देखते समय चुनाव या सत्ता का विचार न रखते हुए देश की अखण्डता, सार्वभौमता का विचार होना चाहिए। यही विचार पं० दीनदयाल जी के थे और उन्हीं विचारों को सामने रखते हुये उन्होंने जनसंघ में एक ध्येयवाद निर्माण किया और उस ध्येयवाद पर चलने वाले कार्यकर्त्ताओं का निर्माण किया। उसी के फलस्वरूप डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा जनसंघ की स्थापना की गयी; परन्तु उनकी मृत्यु जल्दी हो गयी। शायद लोगों ने सोचा होगा कि अब क्या होगा? लेकिन वैसा नहीं हुआ। उसका कारण ही ऐसा है कि जिनके ऊपर दायित्व था उनमें सैद्धान्तिक व व्यवहारिक दोनों प्रकार की क्षमताएं थी और वह क्षमताएं आगे चलकर प्रकट हुई। इस प्रकार के प्रभावी व्यक्तित्व के धनी दीनदयालजी थे।

गुणों का समुच्चय

मैंने पहले ही कहा कि वह बड़े परिश्रमी थे। उनकी हत्या भी वास्तव में इसी कारण हुई। दिन भर व्यस्त रहते थे। पढ़ने को, लिखने को; समय नहीं मिलता था। रेल में समय निकालते थे। अब रेल में जाकर समय निकालना है तो पैसेंजर गाड़ी से प्रवास करते और पैसेंजर गाड़ी में भी कूपे का आरक्षण कराते थे और समझते थे कि उसमें अकेला रहूंगा, पढ़ सकूंगा, लिख सकूंगा। वह उस कूपे में अकेले थे, और इस कारण जिस किसी ने भी जिस भी कारण से उनकी हत्या की होगी, वह उसमें सफल रहा। इस प्रकार उनमें अनेक गुणों का समुच्चय था। ऐसा उनका व्यक्तित्व था। स्वाभाविक है जो-जो लोग उनको जानते हैं जिन्होंने उनके बारे में पढ़ा है या सुना है, वे ऐसा सोचें कि उनके स्मरणार्थ कुछ न कुछ किया जाये। दिल्ली में 'दीनदयाल शोध संस्थान' बनाया है, जहां उनका जन्म हुआ, वहां एक बड़ा भारी काम खड़ा हो रहा है। इसी वर्ष जो इमारत बननी है, उसकी आधार शिला रखने के लिये मैं गया था। अटलजी, विजयाराजेजी भी वहां थी। उस दिन बहुत भयानक वर्षा हुई लेकिन फिर भी कार्यक्रम हुआ। ऐसे तरह-तरह के उपक्रम उनके नाम से चल रहे हैं; अब यहां दीनदयाल नगर बन रहा है; दीनदयालजी का भी स्वभाव सेवा ही करने का था। अतः यह उचित है कि जिससे जनता की सेवा हो, ऐसे उपक्रम उनके नाम से चलें।

संस्कारक्षम काम

तो यहां जो सभागृह बना है इस दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है। उसका उपयोग सबको संस्कार देने में भी हो। दीनदयालजी का व्यक्तित्व ऐसा ही सुसंस्कारित था किन्तु जो-जो भी उनके सम्बन्ध में आते थे सब प्रकार के लोग अच्छे-अच्छे संस्कार ग्रहण करते थे। इसी-लिए बहुत अच्छे कार्यकर्त्ताओं का संचय वह कर सके, जिसके कारण जिस काम को उन्होंने उठाया व खड़ा किया था, वह काम दिनोंदिन प्रभावी हो रहा है। अतः दीनदयालजी के व्यक्तित्व से हम लोग योग्य प्रकार से प्रेरणा लेकर काम करेंगे। ऐसी मेरी आशा है।००

"समाज जीवन के अनेक क्षेत्र हैं। उसमें राजनीतिक क्षेत्र भी है। किसी क्षेत्र में उसकी अच्छाई या बुराई नहीं होती बल्कि मनुष्य अपने व्यवहार से उस क्षेत्र को भला या बुरा बनाता है। अच्छे लोगों को राजनीति में जाना चाहिए! परन्तु राजनीतिक क्षेत्र का प्रभाव अपने ऊपर न हो, बल्कि अपना प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र के ऊपर होता रहे।"—बालासाहब देवरस

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी
(काकोरी-केस)

शहीदों की माँ से भेंट

हमारे देश में सदियों से नारी जाति की, हमारी माताओं तथा बहिनों के त्याग और बलिदान के इतिहास में ऐसे-ऐसे नमूने आते रहे हैं जो बेमिसाल है, दुनिया के किसी दूसरे देश में ऐसे उदाहरण भी नहीं मिलते।

ऐसा ही एक उदाहरण हैं-राजस्थान का 'जौहर व्रत' जब कभी राजस्थान का कोई दुर्ग या शहर दुश्मनों से घिर जाता रहा और घमासान लड़ाई होती रही, तब अगर युद्ध का अन्दाज लग जाता कि दुश्मन बहुत बलशाली तथा बहुसंख्यक है और युद्ध का परिणाम निश्चित पराजय है, वैसी परिस्थिति में हर जवान पुरुष युद्ध में शरीक हो जाता और स्त्रियां एक बहुत बड़ा अग्नि कुंड बनाकर उसमें एक-एक करके सामूहिक रुप में सब की सब उसमें कूदकर अपना जीवन समाप्त करती थी—ताकि कोई भी महिला लुटेरे तथा विधर्मी शत्रु के हाथ में न पड़े।

इस सामूहिक बलिदान को राजस्थान की वीराङ्गनाएं 'जौहर व्रत' नाम से पुकारती थी।

और ऐसे कितने ही 'जौहरों' से राजस्थान का इतिहास भरा पड़ा है।

ऐसी वीरांगनाओ के त्याग, बलिदान तथा साहस को विरासत में पाकर हमारी विशिष्ट सभ्यता और संस्कृति में पलकर, हाल के जमाने में भी कितनी ही माताओं तथा बहिनों ने अपने व्यक्तिगत जीवन में तरह-तरह के अनोखे दृष्टान्त प्रस्तुत किये हे और करती रहती हैं, जिसका पता साधारणतः हमें नहीं चलता हैं।

इन आदर्श जीवनों से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। इनसे हमें प्रेरणा मिलती हैं।

एक ऐसा ही नमूना आपके सामने पेश कर रहा हूं।

उस महान आत्मा का नाम भी मुझे को नही मालूम। नाम की जानकारी न होने के कारण मैं उन्हें 'चाफेकर' बन्धुओं की माता कहकर पुकारूंगा, घटना सन् १८९७ तथा ९८ की हैं। तब से दो साल से ऊपर गुजर गये हैं। सन् १८९७ में दक्षिण भारत के पूना शहर में प्लेग

महामारी के रूप में चल रहा था। अंग्रेज सरकार ने मि० आर्यस्ट नाम के एक अंग्रेज अफसर को 'प्लेग कमिश्नर' के रुप में नियुक्त किया था। उस अफसर ने जिला कलेक्टर मि० रैंड आई० सी० एस० के साथ मिल कर पूना के नागरिकों को बहुत सताया। प्लेग के बहाने किसी के घर में घुस जाता। बहू-बेटियों का अपमान करता तथा रसोईघर में बूट पहन कर पूजास्थल पर चला जाता, यही उसका आम रवैया था। जिला कलक्टर से शिकायत करने पर भी कोई नतीजा नहीं निकला वरन् अत्याचारों का रुप और भयंकर भी तथा गति और अधिक ज्यादा तेज हो गयी।

भगिनी निवेदिता

शहर भर में आम तौर से असन्तोष फैल गया। जन-मानस में बदला लेने की प्रवृत्ति दिन पर दिन बढ़ती गई, विरोध में आंदोलन भी हुआ।

परन्तु अंग्रेज अफसरों ने अपना तौर तरीका नहीं बदला।

और एक दिन 'चाफेकर बन्धु' दो नौजवान सगे भाइयों ने उन दोनों अंग्रेज अफसरों को पिस्तौल से गोली चलाकर मार डाला।

पूना शहर के नागरिकों में खुशी की लहर दौड़ गयी। सारे देश के लोगों ने चकित होकर उन दोनों भाइयों की वीरता की बात सुनी।

अंग्रेज सरकार की पुलिस भी खामोश नहीं बैठी थी, उसने ढूंढ़ कर पता निकाला और दोनों भाईयों को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस को गवाह भी मिल गये, मुकद्दमा चला। चाफेकर बन्धुओं ने बहादुराना बयान दिये और आखिरकार उन दोनों को फांसी की सजा हुई। साल के आखिर तक वे दोनों फांसी पर चढ़ा दिये गये।

सन् १८९८ के शुरू में उन दोनों भाइयों के तीसरे भाई ने, उस मुकद्दमे के प्रधान सरकारी गवाह, जो कि उस केस का मुखबिर था और दोनों भाईयों को गिरफ्तार कराया था, उसे भी पिस्तौल की गोली का शिकार बनाया अनन्तर उस तीसरे भाई ने शायद भागने की चेष्टा नहीं की। और मौके पर पकड़ा गया। उसे जल्दी ही सेशन सुपुर्द किया गया और उसे भी फांसी की सजा मिली। जल्द ही फांसी पर लटका दिया गया।

उन दिनों रामकृष्ण मिशन, कलकत्ते में स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता रहती थी। शिष्यत्व लेने के

बाद वे पूरी तरह भारतीय बन गई थी। परन्तु थी आईरिश महिला। आईरिश होने के नाते उनके खून में क्रांति का बीज था— और वे क्रांतिकारी कामों की सराहना करती थीं। जब उन्हें अखबारों से मालूम हुआ कि पूना के चाफेकर परिवार के तीन लड़के—तीनों सगे भाई, फांसी चढ़ गये हैं-और बेहद खुशी के साथ तीनों ने फांसी को अपनाया है। तीसरे भाई का बयान बहुत लापरवाही भरा था। उसने कहा था— मैंने अपने भाईयों की फांसी का बदला ले लिया है—अब जो कुछ हो उसकी परवाह मुझे नहीं।'

चाफेकर बन्धुओं की माता को देखने की प्रबल इच्छा निवेदिता को पूना खींच ले गयी। यह भी चाहती थी कि उस महीयसी माता को कुछ सांत्वना की बातें कहूंगी— जिसको तीनों बेटों के बलिदान के बाद बहुत सांत्वना की जरूरत है।

पूना पहुंचने के बाद, निवेदिता कचहरी पहुंच गयी, जहां के बार एसोसियेशन से—महाराष्ट्र के प्रसिद्ध चितपावन ब्राह्मण—चाफेकर परिवार के घर का पता उन्हें चला।

निवेदिता उनके घर पहुंची। शहीद बन्धुओं की माताजी को खोज निकाला।

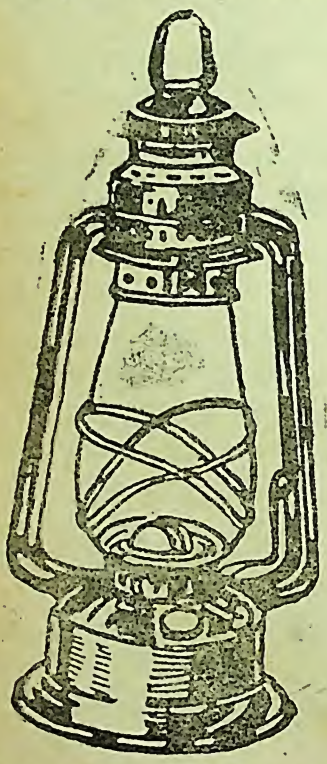

तार कोहनूर :
कार्यालय—८५-२३७५
८५-२८७६
निवास—८५-३४०८

रजि० कार्यालय :—
मारवाड़ी होटल
सदर बाजार, दिल्ली-११०००६

गाजियाबाद जनरल
इंडस्ट्रीज प्रा० लि०
कैला रोड, गाजियाबाद-२०२००१

दिवाकर—?
आश्चर्यजनक !
गृह कार्य एवं सामान्य व्यवहार में उत्तम

उनके पैर छुए और उनके पास ही बैठ गई।

अब आप भगिनी निवेदिता की ही भाषा में आगे सुनिये —जैसा कि वे अपनी 'आत्म कथा' में लिख गई हैं—

'मैं उनके पैर छूकर, उनके चरणों के पास बैठ गई। फिर उनके चेहरे की तरफ एकटक देखती ही रह गई। उनके मुखमंडल की तरफ देखते हुए मैं पहले से आए सान्त्वना के शब्द भूल गई।

मेरे मन में केवल यही बात घुमड़ती रही कि यह वही माता हैं, जिनके तीन-तीन जवान बेटों का अभी हाल में बलिदान हुआ है।

तब तक उनका मधुर स्वर सुनाई पड़ा—'कहो बेटी' कहां से आ रही हो? कैसे आयी मेरे पास?'

प्रश्न का मतलब कुछ कुछ समझ में आया था—तब भी साथ के नवयुवक वकील ने दोभाषिए का काम किया और उनके प्रश्न का अनुवाद करके मुझे सुनाया।

मेरे कोई उत्तर देने से पहले हृदय तन्त्री पर न मालूम कैसा एक आलोड़न हुआ, और मेरी आंखों से अजस्र अश्रु-धारा बह निकली। कुछ भी जबाव मैं नहीं दे सकी।

मेरे बारे में उन्हें समझाया और सब बताया उस दोभाषिये वकील ने मेरा परिचय दिया, कलकत्ता से मेरे पूना आने का उद्देश्य आदि की सब कथा उन्हें सुनायी।

मैंने देखा, सुनकर माताजी के चेहरे पर एक मधुर मुस्कान फैल गयी, समग्र चेहरा उज्ज्वल आभा से दीप्त हो उठा। उन्होंने मुझको दोनो हाथों से पकड़कर अपने हृदय से लगा लिया। मुझको अपनी गोद में खींच लिया। मेरे आंसुओं को पोछकर वे मुझे सांत्वना देने लगीं।

'बिटिया, तुम रोती हो। रोने का कोई काम नहीं। हमने हिन्दूकुल में जन्म लिया है। हमारी संस्कृति ने हमें सिखाया है कि आत्मा अविनश्वर हैं। वह अमर है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे तीनो बच्चे फिर से इसी देश में जन्म लेंगे। वे फिर से इन विदेशियों तथा अत्याचारी विधर्मियों से लड़ेंगे। मुझे कोई चिन्ता नहीं। उनके फांसी पाने का कोई गम भी नहीं।'

इसी प्रकार की बाते होती रही। फिर माताजी ने मुझको मिठाई खिला कर और पानी पिलाकर विदा किया।

पूना से कलकत्ता लौटते समय मेरे मन में सबसे गहरी अनुभूति यही रही कि भारतवर्ष कितना महान देश रहा है। सदियों की गुलामी के बाद भी यहां के मनुष्य में कितनी महानता आज भी विद्यमान है। यह देश फिर आजाद होगा फिर महान होगा! विश्व में अपने उच्चतम स्थान पर पहुंचेगा। फिर एक बहुत बड़ा शक्तिशाली राष्ट्र बनकर रहेगा।'

और यह घटना आज से ८६ वर्ष पहले की है लेकिन कितनी प्रेरणामयी है!

कविता

(शहीद ऊधमसिंह जिसने लन्दन में जाकर डायर को गोली मारी)

तूफानी ऊधम इसी धरा पर सोता है....

● नरेश कात्यायन

सत्याग्रह का तूफान उठाये कांधे पर, रण के प्रयाण का आंखों में ठहरा पानी।
पंजाब डुबाना चाहे सारे भारत को, पाँचों नदियों में हुआ बहुत गहरा पानी॥
यदि इसी तरह से दुराग्रही चौपालों में हिंसा अपना ताण्डव दिखलाती जाएगी।
तो जन्मेजय के वंशज शपथ उठा लेंगे, फिर नागयज्ञ की रचना कर दी जाएगी॥
जिसकी चौखट पर जाकर भय मिट जाता है, नयनों को ज्योति, प्राण को जीवन मिलता है।

दुनिया की लू से मुरझाया सूखा गुलाब, जिसकी पवित्र रज पाकर फिर से खिलता है।
उस गुरुद्वारे की चौखट का रंग बदल गया, झुकने वाले को और झुकाया जाता है।
जिसके माथे गुरु तेगबहादुर की पगड़ी, बेरहमी से वह शीश उड़ाया जाता है॥
जिसको गौरव-गाथा लिख दी है लोहू से, गोविन्दसिंह ने सवा लाख से एक लड़ा।
अपनों के खातिर कैसे शीश दिया जाता, गुरुद्वारा शीश महल का है चौखता खड़ा॥
उस परम्परा की गली-गली, चौराहों पर, खुल्लम-खुल्ला होलियां जलायी जाती है।
कुछ लोलुप हाथों के द्वारा इन्सानों पर, निर्दयता से गोलियां चलायी जाती है॥
पूजागृह की पावन चहारदीवारी यदि, हत्यारों पर ममता बरसाती जाएगी।
॥ तो॥

था जहां देश की आन जिन्दगी का सपना, वह ऊधमसिंह की धरती जार-जार रोयी।
क्योंकर लंदन में जाकर दे दी 'कुरबानी', ऊधम की जननी धाड़े मार-मार रोती॥

वह लंदन जहां देश की रक्षा करने को, खिलते गुलाब में पंखुड़ियां नुचवा डालो।
वह लंदन जहां सुलाकर दुश्मन डायर को, गोलियां वीर ने अपने सीने पर खा लीं।।
यह कौन दूसरा जो ऊधम की मिट्टी पर गद्दारी के नापाक इरादे बोता है।
क्यों भून गया वह जन-गण-मन का अधिनायक, तूफानी ऊधम इसी धरा पर सोता है।
वह जूझा यह कहकर लन्दन की धरती पर, हम बालक हैं पर महाकाल बन जाते हैं।।
भारत मां के लाड़ले आन पर भारत की, हंसते-हंसते फांसी को गले लगाते हैं।।
उस सूरज के घर की कोई बदनाम किरण, सूरज के घर की बोली यहां लगायेगी।

।। तो० ।।

जिस आराधनाकक्ष में जाने के खातिर, नंगे पैरों झुक करके जाया जाता है।
सौंपा गुरु ने जिसको स्वदेश की रक्षाहित, केवल वह तेगा ही ले जाया जाता है।।
गूंजती जहां पर गुरुवाणी की स्वर लहरी, जिस जगह गुरु की फतेह मनायी जाती है।
गुरु के आदेशों पद-चिन्हों पर चलने की, सौगन्ध जहां मिलकरके खाई जाती है।।
क्या फतेह गुरु की है देश खिलौना है, जब तक चाहा खेला जब चाहा तोड़ दिया।
निःस्वार्थ सिन्धु क्या इतना ओछा नाला है, जिस तरफ जहां जब जैसे चाहा
मोड़ दिया।।
वह पूजाघर हथियारों के गोदाम हुए, गुरुवाणी को हठधर्मी तत्व दबाएं हैं।
कुछ निपट स्वार्थी ही झेलम के पानी में, हर कदम-कदम बारुदी जाल बिछाए हैं।।
बाजों की बाजी व्याधों के संकेतों पर, यदि इसी तरह दिन दूनी बढ़ती जाएगी।

।। तो० ।।

कवि-कुटीर, शंकरपुर राजा मोहमदी (खीरी)।

त्यागी बनाम नेहरूजी

भू० पू० रक्षामन्त्री, श्री महावीर त्यागी अपने समय के उच्चकोटि के सांसद थे, जिन्होंने अपने व्यंगेन शिष्टहास परिहास का रिकार्ड बनाया था।

चीन द्वारा (१९६२) हमारी भूमि पर अनधिकृत कब्जा कर लेने पर संसद में बड़ी गर्मागर्मी और भारत सरकार की कड़ी आलोचना हुई थी।

तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल ने बहस का उत्तर देते हुए कह दिया कि 'यह भूमि वीरान और बंजर है, इस पर चीन ने कब्जा कर भी लिया तो क्या हो गया?'

इस पर महावीर त्यागीजी ने नाटकीय ढंग से अपने गंजे सिर को पंडित जी के सामने करते हुए पूछा, 'इस सिर पर बाल नहीं हैं और यह बंजर एवं वीरान है तो क्या मैं इसे बेकार समझकर कटवा दूं?'

● रघुनाथप्रसाद पाठक

इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में घातक

एन० सी० आर० टी० यू० सी० द्वारा भेजे गए निर्देशन पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि ये भारतीय इतिहास के विद्यार्थी को निर्देश देने की बजाय अधिक भ्रमित करने का, राष्ट्रीय एकात्मता की आड़ में एक सुनियोजित मार्क्सवादी षड़यन्त्र है जो सरकार से ताल-मेल कर वैचारिक क्रान्ति लाने के लिए लालायित है। वास्तव में यह एक विद्यार्थी को दिशाहीन करने की सोची समझी योजना है। अधिकतर इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के लिए केन्द्रीय सरकार के निर्देश डा० विपिनचन्द्र, हरवंश मुखिया, रोमिला थापर की पुस्तक 'कम्यूनलिज्म ऐण्ड द राईटिंग आफ इण्डियन हिस्ट्री' से लिए गए हैं। वास्तव में अधिकतर निर्देश उक्त छोटी-सी पुस्तक में उपलब्ध हैं। तथा ये निर्देश न केवल इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के लिए हैं, बल्कि उक्त पुस्तक में राजनीतिक नेताओं, समाचार पत्रों, आल इण्डिया रेडियो के लिए भी बतलाये गये हैं।

केन्द्रीय सरकार के निर्देशन पत्र से ज्ञात होता है कि सरकार इतिहास के विद्यार्थियों को हजारों साल के गौरवमय अतीत के अनुभव से वंचित रखना चाहती है। उसे प्राचीन गौरव, आध्यात्मिकता, धर्म आदि के वर्णन से चिढ़ है। जबकि अनेक इतिहास के विद्वानों का मत है कि भारतीयों की दृष्टि से इस्लाम के पूर्व का २००० वर्ष का इतिहास ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह यद्यपि सही है कि जेम्स मिल ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' में भारतीय इतिहास का काल विभाजन हिन्दू व मुस्लिम तथा ब्रिटिश भागों में किया यही विभाजन बाद में प्राचीन, मध्यम तथा वर्तमान में किया गया है परन्तु व्यवहारिक रूप से ब्रिटिश वही चली आ रही हैं जो गलत है। वास्तव में इस देश के इतिहास को हिन्दुस्तान का इतिहास कहना ही उपयुक्त होगा।

सरकारी निर्देशन पत्र के सन्दर्भ में यदि प्राचीन काल के लिए दिए गये निर्देशन का अध्ययन करें तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वे अत्यधिक अधूरे, अस्पष्ट तथा भ्रामक है।

प्रथम आपत्ति इस काल को हिन्दू काल तथा उसकी विशेषताओं के सन्दर्भ में है। इन मार्क्सवादी लेखकों के अनुसार हिन्दू शब्द इस्लाम से पूर्व शोध ग्रन्थों में मिलता ही नहीं है। (देखिये उपरोक्त पुस्तक का पृष्ठ ६) इनके अनुसार इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अरबों ने हिन्द के निवासियों के लिये किया (पृष्ठ ८)

साजिश की ये ज्वलंत साक्षियां

लेखक डा० सतीश मित्तल

तथा वर्तमान हिन्दुत्व का विचार भक्ति सम्प्रदाय की देन है जो कि मध्यकाल में हुआ। (पृष्ठ ८)

परन्तु उपरोक्त हिन्दू शब्द का प्रयोग मनुस्मृति, मेरूतन्त्र हेमन्त कवि कोष आदि अनेक ग्रन्थों में मिलता है। पिछले बारह वर्षों से इस शब्द का बहुतायत प्रयोग हुआ है। अनेक ब्रिटिश, जर्मन, फ्रेन्च, विद्वानों ने भी इस देश के सन्दर्भ में इसे हिन्दू देश कहकर पुकारा है।

इसी भांति दूसरी आपत्ति आर्य को एक नसल के रूप में कहने पर की गई है (विचारणीय विषय है कि यह निषेधात्मक मत कहां तक लादना उचित है। उपरोक्त लेखकों ने इन्डोलोजिस्ट अथवा ओरियंटलिस्ट का हवाला देते हुए इस मत की आलोचना की है (पृष्ठ ३ तथा ११) और इनका यह दावा है कि गोबीनियों जैसे नस्ल सिद्धान्तों के दार्शनिक के प्रभाव स्वरूप जर्मनी में हिटलरवाद के रूप में दिखलाई देता है (पृष्ठ ३, ४)। यह यद्यपि ठीक है कि पिछले तीस वर्षों में पुरातत्व सम्बन्धी पर्याप्त खोज हुई हैं परन्तु यह विवादास्पद मत कहां तक लादना उचित है।

तीसरी आपत्ति प्राचीन भारतीय इतिहास को गौरवान्वित करके दर्शाने की है। इस सन्दर्भ में ऐसा लगता है कि जो वास्तव में भारत का है वह भी अपने विद्यार्थी को बतलाने से कतरा रहे हैं। हम उनके आत्मविश्वास, जीवन मूल्य तथा उनके अतीत से नाता तोड़ना चाहते हैं। निस्सन्देह भारत का अतीत अत्यन्त गौरवपूर्ण है। यहीं वह काल है जब हड़प्पा की गौरवमय सभ्यता, आर्यों का विस्तार, वैदिक साहित्य की रचना, रामायण तथा महाभारत का काल, साहित्यिक, कला, ज्ञान में अत्यधिक उन्नति हुई। यह वह काल है जब भारत का सांस्कृतिक विस्तार भी हुआ है। यह वह काल है जब अनेक विदेशी जातियां भारतीय जनजीवन में मिलकर राष्ट्र की प्रमुख धारा में एकरस हो गयी। अतः यह समझना कठिन है कि राष्ट्रीय एकता में यह बालक कैसे हैं। उपरोक्त लेखकों का मत है कि अतीत के गौरव का इसलिए वर्णन किया जाता है क्योंकि वह बहुत प्राचीन है तथा इसके जानने के साधन कठिन है (पृष्ठ ४५)

अर्थात गुमराह करने में सुविधाजनक तथा इसके वर्णन से स्वस्थ धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद कमजोर होता है तथा साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है (पृष्ठ ४५) इनका यह भी तर्क है कि इतना शानदार अतीत का वर्णन पढ़ने से नवयुवक वर्तमान की पतनोन्मुख दशा होने पर भी सन्तोष का अनुभव कर लेता है (पृष्ठ ५)

चौथे प्राचीन भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष के बल देने पर आपत्ति की गई। यह इसलिए की गई है क्योंकि यह उनकी दृष्टि में आदि भौतिक तथा संशयपूर्ण दार्शनिक है तथा इसका नित्य के व्यवहारिक जीवन में कोई सम्बन्ध नहीं। उपरोक्त लेखकों के मत के अनुसार यह विचार भी अपेक्षाकृत नया है तथा अधिकतम इसका प्रचार १९वीं शताब्दी में हुआ (पृष्ठ १३)। इन लेखकों के अनुसार कुछ व्यक्तियों ने जहां इसे प्राचीन भारतीय व्यवस्था को कल्पना में रखने में सुविधा होती है वहां भारतीय मस्तिष्क को आवश्यक वस्तुओं जैसे औद्योगिकीकरण, तकनीकी विकास, विदेशी शासन मुक्ति आदि से दूर रखने के लिए भी किया गया है। (पृष्ठ १३ तथा ४७)। इन लेखकों की उपरोक्त आपत्तियों का क्या उत्तर दें वह तो भारत का कोई भी बालक दे सकता है। वास्तव में आध्यात्मिक पक्ष भारतीय जनजीवन को सदैव ही आकृष्ट करता रहा है और करता रहेगा। सम्भवतः इस मूल तत्व को न ही पाश्चात्य विद्वान समझ पाए और न ही मार्क्सवादी लेखक। वास्तव में आध्यात्मिकता पर बल राष्ट्रीय एकता की जोड़ने वाली कड़ी ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता को मार्गदर्शन में सहायक हो सकती है।

पांचवीं आपत्ति प्राचीन काल में स्वर्णयुग शब्द के प्रयोग पर है तथा इसे गैर ऐतिहासिक बतलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि शब्द तो गैर ऐतिहासिक है परन्तु इस शब्द का प्रयोग विश्व के विभिन्न देशों, अपने देश के अलग-अलग काल खण्डों का वर्णन करते हुए उसके तुलनात्मक स्वरूप तथा प्रगति को दर्शाने के लिए किया हैं। तुलनात्मक अध्ययन पद्धति भी ऐतिहासिक अध्ययन की एक महत्वपूर्ण पद्धति है। उदाहरणतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं को नरम दल, गरम दल आदि में बांटा जाता है। वास्तव में यह केवल तुलनात्मक अन्तर ही स्पष्ट करता है। स्वर्णयुग शब्द के प्रयोग के लिए वास्तविक आपत्ति इस बात से है कि यह शब्द इन लेखकों के अनुसार योरोपियन राष्ट्रीय आन्दोलनों से उधार लिया गया है। (पृष्ठ ४७)

छठीं आपत्ति इतिहास में मिथ्य को ज्यादा महत्व देने तथा प्रयोग करने के सन्दर्भ में हैं। वास्तव में निर्देशन पत्र में कोई स्पष्ट उदाहरण नहीं दिये गये कि कौन-कौन से मिथ्य है। क्या आर्य बाहर से आये, मिथ्य है या सच्चाई? क्या रामायण तथा महाभारत मिथ्य है अथवा ऐतिहासिक घटनायें? क्या राज-

पूत भारत के मूल निवासी न थे ? मिथ्य है या सच्चाई आदि। निर्देशन पत्र में इस प्रकार के कोई स्पष्ट मिथ्यों का नाम नहीं लिया गया है। उपरोक्त पुस्तक में चार मिथ्य दिये गये हैं, ये है प्राचीन भारत को स्वर्ण युग कहना (पृष्ठ ४५-४६) दूसरे इस स्वर्णयुग में मानव सभ्यता का चरम विकास मानना (पृष्ठ ४६) तीसरे आर्य को एक नस्ल मानना तथा भारतीयों को असली आर्य मानना (पृष्ठ ४९) तथा चौथा मिथ्य महान पुरुषों के

मालवीय, आर० सी० दत्त, व तिलक ने रखा (पृष्ठ ५८)। इन लेखकों का मत है कि ये तीनों नेता मध्यकाल के थे तथा तीनों ही मुगलों से लड़े थे अतः इनको महत्व देने से धर्म निरपेक्षता तथा राष्ट्रीय एकता को खतरा है तथा इससे द्वि राष्ट्रवाद तथा साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है। इन विचारकों को सन्देह है कि क्या ये नेता राष्ट्रीय थे तथा क्या इन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लिया (पृष्ठ ५८)। इनके मतानुसार इन तीनों

राणाप्रताप, अकबर की तुलना में या शिवाजी औरंगजेब की तुलना में राष्ट्रीय नेता नहीं कहे जा सकते। इनके अनुसार इन्हें राष्ट्रीय कहकर राष्ट्रविरोधी तथा विघटनकारी तत्वों को इतिहास में बढ़ावा देना है। (पृष्ठ ६०)। उपरोक्त मतों के आधार पर हम सोचें कि ये कहां तक सही है तथा राणाप्रताप, शिवाजी तथा गुरुगोविन्द सिंह राष्ट्रीय एकता में बाधक हैं या साधक ?

सन्दर्भ में है (पृष्ठ ५८, ५९)। वास्तव में उपरोक्त कथन मिथ्य नहीं, विवादास्पद विषय है लेकिन ये राष्ट्रीय एकता में कहां तक बाधक है हम सोचें। जहां तक नेताओं के सम्बन्ध में मिथ्य का सम्बन्ध है राणा प्रताप, शिवाजी व गुरु गोविन्दसिंह को राष्ट्रीय नेता बतलाने के सम्बन्ध में हैं। इन लेखकों के अनुसार ये मिथ्य भारतीय राष्ट्रवाद के साडरेट काल में बनाई गई तथा इनको सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, जस्टिस रानाडे, मदन मोहन

के एकत्व का आधार यह था कि ये तीनों हिन्दू या गैर मुस्लिम थे और मुसलमानों से लड़े अतः उपरोक्त लेखकों के अनुसार इससे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है (पृष्ठ ५९)। इन्हें इस बात का भी बड़ा दुःख है कि भारतीय आकाशवाणी राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाने में इन मध्यकालीन नेताओं का उपयोग करती है (पृष्ठ ५९) और विशेषतः इस सम्बन्ध में सेठ गोविन्ददास के नाटकों का भारतीय आकाशवाणी से प्रसारण किया गया

है (पृष्ठ ५६)। उपरोक्त लेखकों ने इन राष्ट्रीय नेताओं के विषय को ऐतिहासिक कड़ी न बतला कर राजनीतिक कृति बतलाया है। (पृष्ठ ५६)। साथ ही अपना मत दिया है कि "राणाप्रताप अकबर की तुलना में या शिवाजी औरंगजेब की तुलना में राष्ट्रीय नेता नहीं कहे जा सकते। इनके अनुसार इन्हें राष्ट्रीय कहकर राष्ट्रविरोधी तथा विघटनकारी तत्वों को इतिहास में बढ़ावा देना है।' (पृष्ठ ६०)।

उपरोक्त मतों के आधार पर हम सोचें कि ये कहां तक सही है तथा रा प्रताप, शिवाजी तथा गुरु गोविन्दसि राष्ट्रीय एकता में बाधक हैं या सा हैं ?

सातवीं आपत्ति भारतीय संस्कृ को इस ढंग से रखने में है पर इसका सम्बन्ध किसी क्षेत्र अथवा युग आर्य संस्कृति से है। इस सन्दर्भ में शा उनका मत भारतीय संस्कृति न कहक मिली-जुली संस्कृति कहने से है। स कारी निर्देशन पत्र भी इसी शब्दावली प्रारम्भ किया गया है। वास्तव में य

- **SILVER PLATED** — Copper wires, Single or Stranded
- **TIN/NICKEL PLATED** — Copper wires in Various Sizes for Medium & High Temperature Electronic use
- **HOLLOW BRAIDS** — For Shielding, Earthing & Other Electronic use in Tin or Silver Plated Copper

Manufactured on Unique Continuous
ELECTRO PLATING EQUIPMENT TO
INTERNATIONAL STANDARDS
by

Sukriti Vidyut Udyog Pvt. Ltd.

Factory : D-39, Industrial Area 3, Meerut Road
Ghaziabad (U. P.)

Telex : 0592-234
Gram : SUKRITI
Phone : 840081

अपने आपमें बहुत बड़ी उलझन है। किसी मत को इस प्रकार से लादना कहां तक उचित है।

इन आपत्तियों के अतिरिक्त निर्देशन पत्र में कुछ और विषयों के भी संकेत दिये गये जिसका पाठ्य पुस्तकों में अभाव न हो ये है—भारत की प्राचीन भौतिक संस्कृति का वर्णन, विभिन्न संस्कृतियों का परस्पर प्रभाव, आर्य तथा गैर आर्य संस्कृतियों का प्रभाव, अन्य देश की संस्कृतियों की भारतीय संस्कृति को देन, परिवर्तन की प्रक्रिया तथा विदेशी सम्बन्धों के प्रभाव आदि। इन वर्णित अभावों की आवश्यकता को झुठलाया नहीं जा सकता। परन्तु इसमें अनेक विषय इतिहासकारों के लिये अभी भी खोज के हैं तथा इनकी दिशा भी बहुपदीय नहीं हैं।

जिस प्रकार प्राचीन काल के सम्बन्ध में अनेक निर्देश काट-छांट तथा अभावों की कमी की ओर इंगित किया गया हैं। इसी भांति मध्यकाल के सम्बन्ध में भी अटपटे निर्देश दिये गये हैं। जिनका अति संक्षिप्त वर्णन पर्याप्त होगा।

साधारणत: मध्यकाल को मुस्लिम काल कहने पर आपत्ति की गई है जो आपत्ति प्राय: सन्तोषजनक है (पृष्ठ ८ एवं १०) वास्तव में इस काल में अरब, तुर्क, मंगोल आदि आक्रमणकारियों के रूप में विभिन्न काल में भारत आये। लेकिन इस काल को भारतीय इतिहास का अंधकार युग अथवा हिन्दू मुसलमानों के बीच संघर्ष का काल कहने पर आपत्ति करना (पृष्ठ ४५ व ५०) तर्क संगत् नहीं है। वास्तव में देश विदेश के अनेक इतिहासकारों ने इसे संघर्ष का इतिहास ही माना है। जर्मनी के लेखक विलियम वान पाकहेमर ने अपनी नवीनतम पुस्तक 'इण्यिन रोडस टू नेशनहुड' में ७५० ई० से लेकर अगले ८०० वर्ष के इतिहास को संघर्ष का इतिहास बतलाया हैं (पृष्ठ २११) साथ ही, भारतीय इतिहास को पढ़कर उसे इस बात का बड़ा आश्चर्य भी है जो उसने भारतीय मध्यकालीन इतिहास की लिखी पुस्तकों के सम्बन्ध में दिया हैं, इतिहासकारों ने प्राय: विजयों का वर्णन किया, जिसमें मुसलमानों द्वारा उत्तरी भारत को लूटने तथा अधीन करने का वर्णन है। उन्होंने प्राय: आक्रमणों को ही अपने ग्रन्थों का मुख्य विषय रखा है। भारत के वास्तविक इतिहास में भारतीयों द्वारा इसे संघर्ष का इतिहास कहना चाहिये (पृष्ठ २६०)।

इस भांति मुसलमानों को विदेशी कहने पर आपत्ति की गई है पूर्व वर्णित लेखकों ने भी अपनी उक्त पुस्तक में इसे आपत्तिजनक बतलाया है। (देखिये ४५, ५०, ५४) इन इतिहासकारों में इस बात का बड़ा खेद है तथा अपने मत का समर्थन करते हुये कहा है—जबकि राजपूत जो कि तुर्कों से पहले हिन्दुस्तान आए लेकिन जिन्होंने आज तक अपना अलग अस्तित्व रखा है और इसे खोना भी नहीं चाहते हैं, जबकि

अनेक मुस्लिम शासक जिन्होंने भारत पर राज्य भी किया, जैसे गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोदी तथा मुगल वंश जिन्होंने अपना अलग अस्तित्व खत्म कर दिया और भारत की धारा से मिल गये हैं [पृष्ठ ३८]।

विचारणीय प्रश्न यह है कि विदेशी और स्वदेशी होने की कसौटी क्या है? महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, गुलाम व खिलजी शासक को किस सीमा तक स्वदेशी कहा जाए? सही बात तो यह है कि बाबर तथा हुमायुँ जैसे मुगल शासकों ने भारत के प्रति अपना कोई लगाव नहीं दिखलाया है। तत्कालीन भारतीय जनता ने इन्हें विदेशी के रूप में भी माना। यहां तक कि बाबर की भारत में हुई सफलताओं पर बाबर द्वारा काबुल के बाजारों में खुशी में चांदी के सिक्के बांटे गये। समरकन्द की विजय उसके जीवन की लालसा रही; क्या देश के बाहर स्थित होना अपने आपमें विदेशी होने का लक्षण नहीं है? क्या हमने यह देखने का कष्ट किया कि दिल्ली सल्तनत के काल में हुये लगभग ५० से अधिक बजीरों में कितने भारतीय थे? क्या शब्दजाल से राष्ट्रीय एकता स्थापित की हो सकेगी। इसमें सन्देह नहीं है कि इन सभी शासकों ने भारतीय मानस को प्रभावित किया।

इसी भांति इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है कि प्रायः सभी सुल्तानों ने अपने राज्य को धर्म प्रभावित घोषित किया तथा इसे घोषित करने में गौरव अनुभव किया। तत्कालीन दरबारी तथा पर्यटक इतिहासकारों ने भी इसका वर्णन किया है।

यह आपत्ति भी तथ्यों से दूर होगी कि धर्म के प्रभाव को राजनैतिक संदर्भ में बढ़ा-चढ़ा कर दिखलाया गया है। शासक और शासित के बीच सम्बन्धों में धर्म कोई आधार न था। इस सन्दर्भ में उपरोक्त लेखकों का मत है कि यह राय

स्वाधीनता विशेषांक के प्रकाशन पर हमारी हार्दिक शुभ कामनायें

फोन : ४७१३६, ४४३०८

updh यू० पी० ड्रग हाउस प्रा. लि.

Estd 1950 अंग्रेजी दवाइयों के निर्माता

३८–मेजर बैंक्स रोड, समीप प्रतिभा सिनेमा

विधानसभा मार्ग, लखनऊ–२२६००१

नतिक संघर्ष था न कि धार्मिक [पृष्ठ २०] मार्क्सवादी लेखकों के अनुसार यह केवल हिन्दू तथा मुस्लिम शासक वर्ग में था व कि सामान्य जनता में। इसी तरह उसका मत है जो भी धर्मान्तरण हुआ, वह स्वयं की इच्छा से हुआ [पृष्ठ ३४] न कि जबरदस्ती [पृष्ठ ३२] इन लेखकों को जजिया और जकात में कोई खास अन्तर नहीं दिखाई देता, सिवाय इसके कि जजिया हिन्दुओं से लिया जाता था, जकात मुसलमानों से, इसी तरह मन्दिरों के ध्वंस का उद्देश्य भी धार्मिक न था। मन्दिरों का ध्वंस प्रायः शत्रुओं की भूमि में किया गया और औरंगजेब का उदाहरण देते हुए बतलाया गया कि केवल वही मन्दिर गिराये गये, जो षड़यन्त्रों के केन्द्र थे। (पृष्ठ ३४)।

इतिहास को इस प्रकार तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर रखने की प्रक्रियाओं को भला कौन मानेगा। प्राचीन काल की भांति एक अन्य आपत्ति मध्यकाल को बहुत बढ़ाचढ़ाकर दिखाने को की गई है। लगता है कि मार्क्सवादी लेखक स्वयं इन आपत्तियों का शिकार हैं।

उपरोक्त आपत्तियों के साथ मध्यकाल के इतिहास के सन्दर्भ में भी कुछ अभाव को दर्शाया गया है जैसे समन्वय की प्रक्रिया मिली-जुली संस्कृतियों का विकास, सामाजिक तथा राजनैतिक सुधार आन्दोलन, भाषा, कला स्थापत्य कला का विकास इत्यादि का अभाव।

आधुनिक काल के सन्दर्भ में भी सरकारी निर्देश लगभग उसी प्रकार की आपत्तियों तथा आक्षेपों से भरे हुये हैं। उदाहरणतः इस बात पर आपत्ति की गई कि आधुनिक काल का वर्णन करते हुये ब्रिटिश शासन द्वारा पैदा की गई कठिनाइयों को छोड़ दिया गया तथा १८वीं शताब्दी के सामाजिक जीवन की उपेक्षा की गई है [पृष्ठ ५२]। उपरोक्त लेखकों का मत है यदि सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास का अच्छी प्रकार अध्ययन किया जाये तो धर्म का प्रभाव अपने आप कम दिखलाया जा सकता है। इन लेखकों को १९वीं शताब्दी के सुधार आन्दोलनों की कमियां न बताने पर भी आपत्ति है। [पृष्ठ ५४]। इनका कहना है कि हम लोगों ने अपने आपको राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, अरविन्द घोष, लोकमान्य तिलक, लाजपतराय तथा गांधी आदि से बांध दिया है। [पृष्ठ ५४] आल इण्डिया रेडियो आदि से भी इन नेताओं की बड़ी प्रशंसा की जाती है जिससे साम्प्रदायिक लोग लाभ उठाते हैं। इनको यह भी आपत्ति है कि हम देश के युवकों को, इन महान पुरुषों के बारे में यह नहीं बताते कि इनका ज्ञान अधूरा तथा कार्य अपूर्ण थे; [पृष्ठ ५५] इन्होंने दर्शाया है कि १९वीं तथा २० वीं शताब्दी के कुछ भारतीय नेताओं ने यद्यपि महान योगदान दिया लेकिन धर्म तथा राजनीति का सम्बन्ध जाति प्रथा; इतिहास की सम-

व्याओं, भारतीय समाज का निर्माण या धार्मिक अल्पसंख्यकों के बारे में बहुत गलत जानकारी थी [पृष्ठ ५५] अतः विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिलता है।

आधुनिक काल के सन्दर्भ में भी कुछ अभावों की ओर ध्यान दिलाया गया जैसे भारतीय रियासतों में आन्दोलन स्वतन्त्रता आन्दोलन के सामाजिक आधार पर अभाव, महिलाओं का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान आदि का अभाव। वास्तव में ये सभी विषय अभी ऐतिहासिक खोज के हैं।

उपरोक्त सभी सरकारी निर्देशन से ज्ञात होता है कि अधिकतर सुझाव ऐतिहासिक तथ्यों पर कम तथा कुछ मान्य वादियों की इतिहास की अधकचरी व्याख्याओं पर तैयार किये गये हैं। इनका उद्देश्य भारतीय अतीत का धूमिल चित्रण, मुस्लिम तुष्टीकरण, वर्तमान भारतीय नेताओं का चरित्र हनन तथा धर्म, तथा सांस्कृतिक पक्ष को गौण कर आर्थिक पक्ष को प्रमुखता देना है।

इस सन्दर्भ में यह कहना उपयुक्त होगा कि इतिहास के निर्देश इतिहास शिक्षण के उद्देश्य पर आधारित होने चाहिये। स्कूल तथा कालेज के विद्यार्थियों के लिये पाठ्य पुस्तकें इस प्रकार

THINKING CABLES IN DIFFERENT SITUATIONS
FOR VARIOUS PURPOSES IN NUMEROUS WAYS.

There is UNISTAR Cable are being used in Power generation, Shipping, Mining, Exploration, Heavy Engineering, and by the Railways, Airfields, Petro-chemical Industries and others. UNISTAR has a very versatile cable for every need.

for more information write to :

UNIVERSAL CABLES LTD.
P. O. BIRLA VIKAS
SATNA 485001
(M. P.)

की हों जो हमारे सम्बन्धों को अतीत से जोड़े तथा समय-समय पर हुए परिवर्तनों की प्रक्रियाओं को समझाने में सहायक हों। भारतीय इतिहास का काल-विभाजन कुछ भी हो, परन्तु इस बात का ध्यान करना होगा कि हजारों साल पुराना देश होने के कारण इतिहास के पाठ्यक्रम में पृष्ठों का अनुपात भी उसी ढंग का हो, उदाहरणतः हजारों साल के इतिहास को सर्वाधिक स्थान, इसके बाद के कुछ सौ वर्ष के इतिहास को उससे कम तथा पिछले २०० साल के इतिहास को उससे भी कम स्थान दिया जाना चाहिये अन्यथा विद्यार्थी को यह भ्रम होता है कि शायद अपने देश का इतिहास कुछ सौ वर्ष पहले ही प्रारम्भ हुआ।

इसके साथ ही यद्यपि भारत सरकार यू० जी० सी० तथा आई० सी० एच० आर० आदि के माध्यम से ऐतिहासिक खोजों पर प्रतिवर्ष लाखों रुपता खर्च करती है, लेकिन कालिज का विद्यार्थी—उन नवीनतम खोजों से वंचित रहता है। अतः ये नवीनतम खोजें कक्षा के कक्षों अथवा पाठ्य पुस्तक तक आनी चाहिए, अन्यथा अनेक वर्षों तक वह नवीन जानकारी से वंचित रहेंगे।

इतिहास का वर्णन अतीत का निष्पक्ष रूप से तथा तथ्यों पर आधारित होना चाहिए ना कि आगामी भविष्य में समाज की कल्पना को साकार करने के लिए।

राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में यह आवश्यक है कि भारत का इतिहास वास्तव में भारत का चाहिए न कि विदेशियों का। उदाहरणतः भारतीय इतिहास में महमूद गजनवी के आक्रमण का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है, वास्तव में इस सन्दर्भ में इसकी कारण-मीमांसा पर ज्यादा बल दिया जाना चाहिये कि भारतीय क्यों हारे? क्यों विघटित हुये?

भारतीय इतिहास में प्रायः उन प्रसंगों को योजना पूर्वक अधिक उभारा गया है जिसमें भारतीय हारे। कई बार भारत का इतिहास पराजय का इतिहास लगता है। इतिहास में उन प्रसंगों का भी वर्णन चाहिए जिससे विद्यार्थी में आत्म विश्वास पैदा हो और उनको लगे कि हम अपने राष्ट्र को शक्तिशाली बना सकते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि एन० सी० ई० आर० टी० को पूर्वाग्रह का या किसी विशिष्टवाद की प्रणाली को छोड़ इतिहास के निर्देशन के सम्बन्ध में पुनर्विचार कर तथ्यों पर आधारित उदात्त निर्देशन पत्र देना चाहिए।

'भारतीय इतिहास संकलन समिति' द्वारा)
सी—८६ कुरुक्षेत्र विश्व-विद्यालय;
कुरुक्षेत्र।

विदेशी वैज्ञानिकों का मत-'हवन

संसार के बहुत से देशों में, कुछेक रोगों के, मानसिक तनाव व प्रदूषण के निवारण और उत्पादन वृद्धि के लिए मन्त्रोच्चार के साथ अग्निहोत्र की प्राचीन पवित्र प्रथा को अपनाया जा रहा है जिसके द्वारा शुद्ध, पवित्र और सुगन्धित पदार्थ अग्नि में जलाए जाते हैं।

अमेरिका के एक मनोविज्ञान वेत्ता पूना विश्वविद्यालय में अग्नि होत्र का मानसिक तनाव पर क्या प्रभाव होता है, इस विषय पर अनुसंधान कर रहे हैं। कहा जाता है कि इस घरेलू चिकित्सा से बच्चों की मृगी रोग जाता रहता है और मानसिक रूप से अविकसित बच्चों की बुद्धि विकसित हो जाती है। शोलापुर के निकटवर्ती एक स्थान पर स्कूल के मानसिक रूप से अविकसित बच्चों पर प्रयोग किया गया। ४ महीने तक हवन के समक्ष बच्चों को बिठाने पर तीन के मृगी रोग का शमन हो गया। इसी प्रकार मानसिक रूप से अविकसित बच्चों का यज्ञ-हवन में बिठाकर उनका बुद्धि-विकास किया गया और उनकी अत्यधिक भूख को सामान्य रूप भी दिया गया।

जीव-विज्ञान के कुछेक सूक्ष्म-दर्शियों का दावा है कि अग्निहोत्र के धुएं के शरीर के भीतर जाने से उसके सूक्ष्म तन्तुओं पर प्रभाव पड़ता है। रक्त में निहित शुगर प्लेटों के हवन के धुएं के सामने रहने पर उसके दायरे में कमी हो जाती हैं। यह विशेष अनुसंधान बताया जाता है। एक बार पिपल ग्राम के एक फार्म में हवन किए जाने पर बीज ४२ दिन के बजाय २२ दिन में ही उग आये।

पश्चिमी जर्मनी के अनुसन्धान कर्त्ताओं का कहना है कि अग्नि होत्र के धुएं एवं सामग्री से, जुकाम, शिर दर्द, खाल के छाले, पुराना बुखार, पेचिश, दाद, टांसिल और जोड़ों का दर्द दूर हो जाता हैं। अमेरिका में भी अग्नि होत्र लोकप्रिय है।

प्रकृति की प्रक्रियाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ता है और उन्हें शुद्धरूप प्राप्त होता है। ०००

हवन की उपयोगिता विशेषकर रोगों को नष्ट करने की इसकी क्षमता इससे पूर्व भी विज्ञान के परीक्षणों से कई बार सिद्ध हो चुकी है। इस सम्बन्ध में कतिपय विज्ञानविदों के निम्न

एक चमत्कारिक चिकित्सा'

लिखित मत दृष्टव्य हैं:—

जलती हुई शक्कर के धुएं में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति हैं। इससे हैजा, तपेदिक, चेचक इत्यादि का विष शीघ्र ही दूर हो जाता है।

—(प्रो० टिलरवट, फ्रांस)

'मुनक्का, किशमिश, छुवारे इत्यादि सूखे फलों को हमने जलाकर देखा है। हमें ज्ञात हुआ है कि उनके धुएं से टाईफाइड् ज्वर के कीटाणु आधे घण्टे में और दूसरे रोगों के घंटे दो घंटों में मर जाते हैं।'

(डा० टाटलिर)

'घी-चावल में केसर मिलाकर जलाने से रोग के कृमियों का नाश होता है।'

(डा० कर्नल किंग सेक्रेटरी कमिश्नर, मद्रास)

'घी जलाने से रोग के कीटाणु मर जाते हैं।'

(डा० हेफकिन फ्रांस)

भारत सरकार के एक वैज्ञानिक का मत

यह ठीक है कि प्राचीन आर्यों द्वारा किए जाने वाले हवन-यज्ञ से बादल बनते और उनसे वर्षा हुआ करती थी।

(हिन्दुस्तान टाइम्स ८-८-१९५२)

'रक्षा-बन्धन' पर एक बहिन की मार्मिक अपील

भारतीय संस्कृति और समाज उत्सव प्रधान है। उत्सव के माध्यम से समाज में एक दूसरे के प्रति कर्तव्य भावना का निर्माण करना भारतीय संस्कृति का असाधारण वैशिष्ट्य है। रक्षा-बन्धन का उत्सव मातृ-रूपी राष्ट्र पुरुषों को भगिनियों की समस्याओं के निराकरण करने के लिये प्रेरित करता है। इस पावन पर्व पर मैं एक कुष्ठ पीड़ित भगिनी के नाते आपको तथा आपके माध्यम से समस्त राष्ट्र पुरुषों के सम्मुख मेरी सभी की समस्यायें रख रही हूं।

कुष्ठ रोग मानव देह को विकृत कर देता है। इसी कारण सर्वसाधारण समाज कुष्ठरोग से और कुष्ठग्रस्त समाज से भयभीत रहता है और कुष्ठरोगियों के प्रति घृणापूर्ण व्यवहार करता है। कुष्ठ रोग कुछ प्रमाण में सांसर्गिक अवश्य है किन्तु रोगी के साथ निरन्तर और निकट सम्पर्क के बिना इस रोग का होना सम्भव नहीं है। उसी प्रकार कुष्ठरोग न तो आनुवंशिक है और न ही असाध्य। इस सत्य को विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है। इस परिस्थिति में कुष्ठ रोग और कुष्ठ रोग सम्बन्धी भ्रान्तियों के निर्मूलन हेतु संगठित प्रयास ही आज की प्राथमिक आवश्यकता है। कुष्ठरोग सम्बन्धी भ्रान्तियों ने भारतीय समाज का मानस कैसा विषैला बना दिया है। इसकी जानकारी अनेक लोगों को नहीं होगी। कुष्ठ-पीड़ित माता-पिता को दूर बसे कुष्ठधाम में पहुंचाकर उनकी सन्तान माता-पिता के देहान्त का झूठा समाचार अपनी बिरादरी को दे देती है। अपने कथन पर समाज का विश्वास प्राप्त करने हेतु वे अपने जीवित माता-पिता का श्राद्ध कर्म आयोजित कर स्वजनों को मिष्ठान्नयुक्त भोजन भी कराते है। परिवार के किसी सदस्य के कुष्ठरोग से पीड़ित होने पर उसे पारिवारिक कलंक मान लिया जाता है। शादी-विवाह में भी यह बाधक ही है। इन समस्याओं से मुक्ति हेतु जीवित माता-पिता को स्वर्ग पहुंचा देने तक का पतन समाज के मन-मस्तिष्क में आ गया है। कुष्ठ-रोग से सम्बन्धित भ्रान्तियों तथा कुष्ठ कलंक सम्बन्धी भ्रान्त धारणा जब तक समाज के हृदय से नष्ट नहीं होती, तब तक समाज कुष्ठग्रस्त जीवित माता-पिता का पिण्ड-दान करता ही रहेगा।

रक्षाबन्धन के इस पावन और प्रेरक पर्व पर भ्रातृरूपी राष्ट्र पुरुषों से यही प्रार्थना है कि अपने मन में जो कुष्ठरोग सम्बन्धी भ्रान्तियां है, उन्हें दूरकर कुष्ठ कलंक से राष्ट्र को मुक्त करने हेतु हो रहे कार्य में तन-मन धन से सहयोगी बने।

● मालती पाटील, बी० ए०
एक कुष्ठरुग्णा भगिनी, (भारतीय कुष्ठ निवारक संघ)
चाम्पा—४६५६७, जिला—बिलासपुर म० प्र०।

जमशेदपुर में मंगल पाण्डेय शहीद-दिवस

● सुरेन्द्र शर्मा

लौह नगरी जमशेदपुर की बागबेड़ा कालोनी में अमर शहीद मंगल पाण्डेय का 'शहीद दिवस' 'मंगल पाण्डेय शहीद समिति' के तत्वावधान में धूमधाम से मनाया गया।

जमशेदपुर के नागरिकों की भावना को मद्दे नजर रखते हुए भारत के लब्ध प्रतिष्ठि मूर्धन्य विद्वान, जिनका शोध विषय ही रहा है 'शहीदों की खोज' तथा 'राष्ट्र-धर्म' पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्रीवत्सनेशजी त्रिपाठी को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया था; परन्तु शहीद-दिवस के आयोजकों एवं लौह नगरी जमशेदपुर के नागरिकों का दुर्भाग्य रहा कि माननीय त्रिपाठीजी जमशेदपुर में पदार्पण करने के बजाए भुसावल पहुंच गये।

अतएव मुख्य अतिथि के रूप में भारतीय जनता-पार्टी (बिहार शाखा) के अध्यक्ष श्री कैलाशपति जी मिश्र का सहयोग प्राप्त किया गया।

महान शहीद को स्थानीय सभी राजनीतिक नेताओं एवं गणमान्य जन-सेवियों ने अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

'शहीद दिवस समिति' के अध्यक्ष पाण्डेय सुरेन्द्र शर्मा ने शहीद मंगल पाण्डेय की जीवनी पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि 'देश के वर्त्तमान परिवेश में ऐसी विभूतियों का स्मरण करना नितांत आवश्यक हो गया है।' आपने केन्द्रीय एवं सभी राज्यों की सरकारों से आग्रह किया कि राजधानी में शहीद मंगल-पाण्डेय की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की जाय।'

परम्परा भूल गये

जमशेदपुर (पूर्वी) के विधायक श्रीदीनानाथ पाण्डेय ने कहा कि 'सन् १८५७ का स्वातंत्र्य युद्ध धर्मयुद्ध भी था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के सैनिकों ने अपने-अपने धर्म की रक्षा करते हुए एक-दूसरे के धर्मों की रक्षा हेतु कदम-से-कदम मिलाकर अंग्रेजों

के छक्के छुड़ाए। काश! १९४७ में हमारे देश के नेता, मंगल पाण्डेय एवं १८५७ की परम्परा याद रखते तो देश का विभाजन नहीं होता।'

मुख्य अतिथि श्री कैलाशपति मिश्र जी ने अपने विस्तृत भाषण के क्रम में कहा कि 'इस लौहनगरी में भारत के प्रथम शहीद क्रान्तिकारी की पुण्यतिथि का जिस प्रकार यह प्रथम आयोजन हो रहा है भारत के कोने कोने के लिए प्रेरणा स्रोत बनेगा। आजादी रूपी यह वृक्ष इसी पुण्यात्मा ने रोपा था, जिसका फल आज हम सभी देशवासी पा रहे हैं। आज भारत के सभी सम्प्रदायों के नर-नारियों का परम-कर्त्तव्य हो जाता है कि इस महान शहीद की धरोहर इस आजादी की रक्षा अपने आप को मिटा-कर भी करें।'

अध्यक्षपद से बोलते हुए स्थानीय 'नेशनल मेटालॉजिकल लेबोरेट्री' के सहा-यक निदेशक डा० ललन पाण्डेय ने देश-वासियों को मंगल पण्डेय से प्रेरणा लेने का आग्रह किया।

श्री दूबे ने आगत अतिथियों तथा श्री भूपनारायण तिवारी के प्रति आभार प्रकट किया जिनके सहयोग से यह आयो-जन सफल रहा।

रात्रि में श्री राजनारायणसिंह तोमर के संचालन में एक कवि-सम्मेलन भी किया गया जिसमें विभिन्न भाषा-भाषी श्रेष्ठ कवियों ने भाग लिया। ०००

'सिख कहते अब शर्म आने लगी है'

मैं एक सिख परिवार में पैदा हुई, इस बात का फख्र मुझे हमेशा रहा, लेकिन पिछले दिनों दस साल के लम्बे अन्तराल के बाद जब मैं स्वर्ण-मन्दिर गयी, तो मैंने जीवन में पहली पहली बार अपने सिख होने पर शर्मिंदगी महसूस की। वहाँ मैंने जिस तरह का धर्मोन्माद देखा, उसे देखकर मुझे विश्वास नहीं हुआ कि यह वही सिख धर्म है, जो समानता बुद्धिवाद और आधुनिकता में यकीन रखता था। मेरी समझ के अनुसार, सिख धर्म में केश बढ़ाना, सिख धर्म का ही एक अंग था, लेकिन आज के 'अमृतसर' छाप नये धर्म के अनुसार यदि किसी ने अपने शरीर पर सिर के एक भी बाल साफ किया, तो उसे सिख नहीं माना जा सकता। सिखवाद को संत भिंडरांवाले की शैली ने स्वर्णमंदिर को धार्मिक कट्टरता का एक गढ़ बना दिया है...। अमृतसर में एक सिख पुलिस-अधिकारी ने आज से तीस-चालीस साल पहले के स्वर्ण मन्दिर के स्वरूप का स्मरण कर बताया कि उन दिनों मन्दिर में आने वालों में ८० प्रतिशत हिन्दू होते थे, लेकिन आज एक भी हिन्दू वहाँ नहीं आता।' ०००

● सिख महिला पत्रकार तवलीनसिंह

नई दिल्ली के स्थित राष्ट्रपति भवन में 'राजश्री' कृत फिल्म 'नदिया के पार' के विशेष प्रदर्शन के बाद दिल्ली शाखा के जनरल मैनेजर महावीर बड़जात्या फिल्म का एल०पी० रेकार्ड भेंट करते हुए।

राष्ट्रपति-भवन में 'नदिया के पार' का प्रदर्शन

नयी दिल्ली के राष्ट्रपति भवन में राजश्री कृत 'नदिया के पार' का विशेष प्रदर्शन हुआ और राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने उसका अवलोकन किया। इस अवसर पर राजश्री की दिल्ली शाखा के जनरल मैनेजर महावीर बड़जात्या ने राष्ट्रपति को 'नदिया के पार' का एल० पी० रेकार्ड भी भेंट किया। निर्माता ताराचन्द बड़जात्या की ईस्टमनकलर 'नदिया के पार' के मुख्य कलाकार हैं, सचिन, नयी तारिका साधनासिंह, मित्ताली, इन्दर ठाकुर और शीला डेविड साथ में हैं राममोहन, विष्णुकुमार व्यास, लीला मिश्रा, रंजन सचदेव, बीना श्याम, आभा शर्मा इत्यादि। पटकथा, संवाद और निर्देशन गोविन्द मूनिस का है। सहयोगी निर्माता हैं कमलकुमार बड़जात्या, राजकुमार बड़जात्या; अजित-

कुमार बड़जात्या। गीत और संगीत रविन्द्र जैन का है। कथा केशवप्रसाद मिश्र और छायांकन सुनील शर्मा ने किया है। संकलन—मुख्तार अहमद; ध्वनि—वी० एम० गांधी, कला-के० के० माथुर और नृत्य—बद्रीप्रसाद।

विनय वेंसिग

प्रचार व्यवस्थापक; राजश्री पिक्चर्स (प्रा०) लि०. भावना,
४२२ वीर सावरकर मार्ग; प्रभादेवी, बम्बई—४

सिंचाई विभाग, उ०प्र० का हरित-क्रान्ति कार्यक्रम

सृष्टि की रचना कर, जीवन प्रदान करने से पूर्व ही प्रकृति ने, इस हेतु अपने विभिन्न स्रोतों से जल की उत्पत्ति कर दी। इस नैसर्गिक अमूल्य निधि को कृत्रिमरूप से नियंत्रित कर, कृषि प्रधान उत्तर प्रदेश में, असीम सदुपयोग हेतु उत्तर प्रदेश सिंचाई विभाग सतत कर्मशील है।

वर्ष १९८२-८३ में सिंचाई आंकड़े (लाख हैक्टेयर में)

	खरीफ	रबी	योग
नहर प्रणाली	१९.१०	२७.०७	४६.१७
राजकीय नलकूप	१.९९	६.०२	८.०१
योग	२१.०९	३३.०९	५४.१८

वर्ष १९८३-८४ में धनोपयोग के प्राविधान

१—वृहत् एवं मध्यम सिंचाई परियोजनायें	१८२.९२ करोड़ रु०
२—राजकीय लघु सिंचाई परियोजनायें	५८.०० करोड़ रु०
३—बाढ़ नियंत्रण कार्यों हेतु	११.३ करोड़ रु०

विश्व बैंक की सहायता से राजकीय नलकूप परियोजना का द्वितीय चरण आरम्भ किया जा रहा है। जिसके अन्तर्गत २२०० नलकूपों का निर्मित किया जाना प्रस्तावित है।

बाढ़ से क्षति बचाने हेतु कार्यक्रम

१—छठीं पंचवर्षीय योजना (१९८०-८५) प्राविधान	१३२.७ करोड़ रु०
२—लाभान्वित क्षेत्र	४.० लाख हे०
३—तटवर्तीय बांधों का निर्माण	४०० कि० मी०
४—जलोत्सारण नालियां	८०० कि० मी०
५—नगर सुरक्षा	१० नगर

भागीरथी के इस बेसिन में जल से शक्ति उत्पत्ति; जल से तृप्त कर जीवन विकास, जल प्लावन से सुरक्षा हमारा लक्ष्य है।

सिंचाई विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

(शेष पृष्ठ ८१ पर)

होने पर भी उस फल के स्थायी होने की अति अल्प सम्भावना थी जिन्हें सामरिक बल-वृद्धि प्राप्त है, वे राजसूय यज्ञ कर सम्राट तो निश्चय ही हो सकते हैं; किन्तु उनके वंशधरों के क्षीण तेज होते ही मुकुट उनके मस्तक से अपने आप गिर पड़ता है। जो तेजस्वी वीर जातियाँ उनके पितामह के वंश हुई थीं, वे अपने विजयी पुत्र अथवा पौत्र की आधीनता क्यों स्वीकार करेंगी? वंशगत अधिकार नहीं, अपितु राजसूय यज्ञ, अर्थात् असाधारण बल-वीर्य ही साम्राज्य का मूल है, जो अधिक बलवीर्य के स्वामी हैं, वे ही यज्ञ कर सम्राटपद को सुशोभित कर सकते हैं। अतएव साम्राज्य के स्थायित्व की कोई आशा नहीं थी, अल्पकाल प्रधानत्व अथवा hegemony अवश्य सम्भव थी। इस प्रथा में एक और दोष यह था कि नवसम्राट की अकस्मात बलवृद्धि और प्रधानत्वलाभ से देश के बलदृप्त, असहिष्णु, तेजस्वी क्षत्रियगणों के हृदय में ईर्ष्याविह्नि प्रज्जवलित होती है; ये ही प्रधान होंगे, हम क्यों नहीं हो सकते; यह विचार उनके मन में उठाने की सम्भावना थी। युधिष्ठिर के निजकुल के क्षत्रियगण इस ईर्ष्या से उनके विरुद्धाचारी हुए, उनके पितृव्य की सन्तानों ने इसी ईर्ष्या पर कौशल से उनको पदच्युत और निर्वासित किया। द्वेष की प्रणली का दोष अल्पदिनों में ही व्यक्त हुआ।

उनका शरीर भी.....

जड़तत्व भी चेतना का ही एक रूप है; परन्तु बाह्य वस्तु को पूर्णतया उसके अतीन्द्रिय तत्व में रूपांतरित मत कर। ऐ भगवत प्रेमी! भगवान् के शरीर का त्याग मत कर, वरन् उसे अपने आनन्द के लिये बनाये रख; क्योंकि उनका शरीर भी ठीक उसी तरह आनंदमय है जिस तरह कि उनकी आत्मा।

योगी अरविंद

श्रीकृष्ण जैसे धार्मिक थे वैसे ही राजनीतिविद् भी थे। वे कभी सदोष, अहितकर, अथवा समय की दृष्टि से, अनुपयोगी प्रणाली, उपाय अथवा नियम बदलवाने से पीछे नहीं हटे। वे अपने युग के प्रधान विप्लवकारी थे। राजा भूरिश्रवा ने श्रीकृष्ण की भर्त्सना करते समय समकालीन पुरातन मत के अनेक भारतवासियों के आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहा था, कृष्ण और कृष्णचालित यादवकुल कभी धर्म के विरुद्ध आचरण करने अथवा धर्म का विकृत करने में कुण्ठित नहीं होते; जो कृष्ण के परामर्श से कार्य करेगा, वह निश्चय ही अविलम्ब पाप से पतित होगा; क्योंकि, पुरातन रीति से आसक्त रक्षणशील के मत से नूतन प्रयास ही पाप होता है। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के पतन से सचेत समझा क्यों, वे भगवान थे, पहले से ही जानते थे—कि ये द्वापर युग की उपयोगी

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

प्रथा, कलि में कभी रक्षणीय नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने फिर इस प्रकार की चेष्टा नहीं की, कलि की उचित भेद-दण्ड प्रधान राजनीति का अनुसरण कर गर्वित-दृप्त क्षत्रिय जाति के बलनाश से भावी साम्राज्य का निष्कंटक करने के लिए वे सचेष्ट हुए। उन्होंने कुरुवंश के पुरातन समकक्ष शत्रु पांचाल जाति को कुरुध्वंस में प्रवृत्त किया, जिनकी जातियों को कौरवों के विद्वेष से युधिष्ठिर के प्रेम अथवा धर्मराज्य और एकत्व की आकांक्षा की ओर आकृष्ट किया जा सकता था, उन सब को उन्होंने उस पक्ष की ओर आकृष्ट किया और युद्ध में प्रवृत्त किया। सन्धि की जो चेष्टाएँ हुई उनमें श्रीकृष्ण का विश्वास नहीं था। वे जानते थे कि सन्धि कीसम्भावना नहीं है, सन्धि होने से भी वह कभी स्थायी नहीं हो सकेगी, फिर भी धर्म के लिए और राजनीति के लिए, वे सन्धि की चेष्टा में प्रवृत्त हुए। निःसन्देह, कुरुक्षेत्र का युद्ध श्रीकृष्ण की राजनीति का फल था। कुरुध्वंस, क्षत्रिय ध्वंस, निष्कंटक साम्राज्य और भारत का एकत्वसंस्थापन ही उनका उद्देश्य था। धर्मराज्यस्थापनार्थं जो युद्ध हुआ, वही धर्मयुद्ध था और उस धर्म युद्ध का ईश्वर निर्दिष्ट विजेता था दिव्यशक्तिप्राणोदित महारथी अर्जुन। अर्जुन के शस्त्रत्याग से श्रीकृष्ण का राजनीतिक परिश्रम व्यर्थ होता, भारत का एकत्व साधित नहीं होता, देश के भाग्य में अविलम्ब घोर कुफल फलित होता।००

कविता

सरफरोश मतवाले

उमाशंकर वर्मा 'साहिल'

यहां घास की रोटी खाकर वीर जिया करते हैं,
किन्तु लहू से अपने मां का हवन किया करते हैं।
वीर प्रसूता इस धरती ने ऐसे लाल जने हैं,
आजादी पाता जीवन बलिदान किया करते हैं॥
सती नारियों के जौहर को सबने शीश झुकाया,
नहीं हट सका पीछे जो नारी ने कदम बढ़ाया।
झांसी की लक्ष्मीबाई की गाथा नहीं पुरानी,
जिसने पग पग पर फिरंगियों को था पाठ पढ़ाया॥
'आजादी अधिकार हमारा जन्म सिद्ध' की बोली,
'हर हर महादेव' कह उठ्ठी दीवानों की टोली।
चले काटने मां के बन्धन सर-फरोश मतवाले,
रोक न पाई थीं तब उनको बन्दूकों की गोली॥
वीर भगत, सुखदेव, राजगुरु, बिस्मिल से बलिदानी,
मौन गुनगुनायेगा सदियों तक रावी का पानी
रणबांकुरा वीर वह आजादी का परवाना था,
'अल्फ्रेड पार्क' सुनाता जिसकी अब तक अमर कहानी॥
वर्तमान से जुड़ी रहें अपने अतीत की कड़ियां,
कभी न विस्मृत होने पायें बलिदानों की लड़ियां।
मां ! दो यह आशीष शीश यह कभी न झुकने पाये।
कीर्तिध्वजा अपने भारत की युगों युगों लहराये॥

मांग का सिंदूर

जिस दिन शेषम्मा की मांग का सिन्दूर लुट गया, उसी दिन से मानो उस के जीवन से इस दुनिया की खुशियां व सौन्दर्य-दर्शन का आनन्द भी छिन गया। लोगों की खुशी को देख, वह या तो परेशान हो जाती, या उनके प्रति उसके मन में नाहक घृणा-सी पैदा हो जाती। यहां तक कि, चिड़ियों की चहक या मासूम बच्चों की किलकती मुस्कुराहटें भी उसकी नफरत का शिकार हुए बिना न रह सकी।

शेषम्मा की धारणा थी कि यह दुःख भरी दुनियां पापों का भण्डार है, अपवित्रता

की प्रतिमूर्ति है। अतः दुनियां से मुक्ति पाने के लिए वह खुलेआम मृत्यु का आवाहन करती—— 'हे कृपालु ! इस नरक-कुण्ड से मुझे जल्द बुला ले !' जैसे कि भगवान उसके अपने पिता हों और जिन्हों ने उसे दुनियां रुपी ससुराल भेजा हो। लेकिन चार साल पहले जब उसे हैजा हो गया था तो शेषम्मा मौत की आशंका से डर-सी गयी थी। मर्मस्पर्शी वाणी में कहने लगी थी ——'मेरे लाल ! डाक्टर ने कुछ बताया ? कहीं मेरी मौत की बात तो नहीं छेड़ी ? अस्पताल से बड़े डाक्टर को क्यों नहीं बुला भेजते ?..... बेटे ! तेरी नानी ९० साल तक जिन्दा रहीं। इतनी कम उम्र में ही मेरी मौत ?'... फिर कुछेक क्षण मौन रह, कहती रही—हां ठीक तो है। एक अनाथ की मौत पर कौन रोए-धोए ? सब की राह का कांटा निकल ही जाने दो।'

शेषम्मा के विचार से दुनियादारी तथा सुन्दरता के प्रति जो आदमी जितनी ही अधिक उदासीनता प्रकट कर सकता है। उसे भगवान के उतने ही निकट पहुंच पाने के अवसर हाथ आते हैं। वह मन ही मन कहती — 'मुझ-जैसी सीधी-सादी औरत के लिए यह दुनियां नहीं। दुष्ट ही यहां सुख-चैन की जिन्दगी पा सकते हैं।'

किन्तु काश ! शेषम्मा समझ पाती कि अनजाने में ही वह मुसीबतों को कैसे

नामिल कथा

अपनाती जा रही थी ! अब तो कोई विश्वास करने तक को राजी नहीं होता कि शेषम्मा ने तीस साल पहले कभी जीवन का आनन्द भी लूटा था।

पड़ोस की लड़की कामाक्षी का गाना जब कभी उसके कानों में पड़ता है, उसके मुंह से अप्रयास ही निकल जाता है —— 'बहू ! यह कामाक्षी की ही आवाज है न ? सुबह-शाम इसे जैसे कोई काम-धाम नहीं। हां, हां! क्यों न हो ? पति दोनों हाथों कमाता जो है। महारानी का घमंड बढ़ता जाए तो ज्यादती क्या हैं ? लेकिन किसी दिन उसकी नौकरी छूट जाय तो महारानी के गाने भी हवा हो जाएं।'

निर्विकार भाव से यदि किसी ने कुशल-समाचार की बात छेड़ भी दी तो उसने कभी सीधा जवाब नहीं दिया। इस देश में इस प्रकार के बहुत कम ही लोग पाये जाते हैं। उसमें भी वैसे व्यक्तियों की संख्या और कम है जो आराम और चैन की जिन्दगी जीते हुए भी जानते हैं कि वे सुखी हैं। इनमें एक-आध अगर समझ भी गये कि वे खुश हैं, तो इस डर से, कि कहीं किसी की नजर लगे, उनकी तकदीर ही पलट न जाय, किसी पर प्रकट नहीं करते। उनकी समझ में खुश रहना एक बड़ा भारी दोष है। केवल पापी ही चैन की जिन्दगी बिता सकते हैं और वैसे लोग निरे मूर्ख हैं जो अपनी खुशी को दूसरों पर प्रकट करते-फिरते हैं।

शेषम्मा कहती —'क्या बताऊं बेटी ? दो दिन भी नहीं हुए, लड़के को सरदी हो गयी है। आज तक वह बिस्तर से उठ न सका। गाय सूख गयी। कल से दूध नहीं मिला। परसों मेरे दादा की सौतेली मां के मामा गुजर गये। उनका परपोता कक्षा तीन में फेल हो गया हैं। कल पत्थरी बर्तन में छेद हो आया। आह ! कितना अच्छा बर्तन था वह ! मत पूछो बेटी, मेरे घर की हालत! सब कलियुग की महिमा है ! बर्तन क्या? आदमी क्या ? दुनियां में शाश्वत ही क्या है ? यह शरीर भी एक दिन फूट जायगा। फिर भी हाड़-मांस का पुतला मानव इस शरीर को दीर्घ काल तक संजोये रखने के लाखों जतन करता रहता हैं।

यदि शेषम्मा का भाषण किसी नेता ने सुना होता, तो खुशी के मारे उछल कर चिल्लाते हुए कहता—हे भारत-जननी ! धन्य है तेरी कोख ! धन्य है तू ! जो शेषम्मा जैसी धार्मिक सुपुत्री को मां कहला सकी, और बेहोश हो जाता।

मुहल्ले में किसी के घर शादी हुई थी। इस पर भी शेषम्मा की टिप्पणी

(शेष पृष्ठ ११६ पर)

मगध की मंगलामुखी

सन् १३३६ का वर्ष था। विजयनगर राज्य की उसी साल स्थापना हुई थी। कृष्णा तथा कावेरी नदियों के मध्य स्थित इस स्वतंत्र राज्य की घोषणा भी हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने मिलकर की थी।

हरिहर बड़े थे इसलिए विजयनगर का राज्य उन्हीं को मिला वह वीर भी थे और धैर्यवान भी। व्यवहार में मृदुता थी और लोकसेवा करने का दिल में उत्साह था। इसलिए उनके राजा बनने की खबर सुनकर समूचे हिन्दुस्तान में खुशी की लहर दौड़ गयी। मगध के राजा तो इतने खुश हुए कि अपने एक विशेष दूत को भेजकर सम्राट् हरिहर को कुछ दिनों के लिए मगध बुला लिया।

मगध उन दिनों उन्नति की चरम-सीमा पर था, धन-धान्य-ऐश्वर्य-सौंदर्य में पूरे भारत में इसका अलग ही स्थान था। राजनर्तकी मृदाल की बाकी अदा-नृत्यकौशल, मीठा स्वर और घुंघरुओं की झनकार से मगध का पत्ता-पत्ता मुखरित था। हरिहर इस रूपसी के अद्भुत नृत्य देखकर ठगे से रह गए। वह बार-बार को अपने को संयमित करते फिर भी नजरे मृदाल की ओर से हटती ही नहीं। बगल में बैठे मगध नरेश इस बात को ताड़ गये पर कुछ सोचकर उस समय चुप ही रह गए।

नृत्य समाप्त होते ही लाज से सकुचाये हरिहर मगध नरेश का मुंह ताकने लगे तो उन्होंने मुस्कराकर कहा —" अब अतिथि-कक्ष में चला जाय, राजकाज सम्बन्धी कुछ बातें वहीं होंगी।"

"हां, हां चलिये और हरिहर उठ खड़े हुए। मृदाल जा चुकी थी। हरिहर ने एक बार सूने मंच की ओर निहारा और मगध नरेश के साथ चल पड़े। अतिथि कक्ष में आकर दोनों देर तक बातें करते रहे किन्तु इस बीच भी मगध नरेश ने लक्ष्य किया कि हरिहर हूंसी-ठहाकों में दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। बातें करते-करते वह चुप्पी साध लेते। उनकी हालत देखकर मगध-नरेश बोले—" अब आप आराम करें, मैं चलता हूं।

हूं, हरिहर ने कहा और मगध नरेश को विदा दी। वह वापस राजमहल लौट पड़े आधी रात बीत चली किंतु हरिहर की आंखों में नींद कहां ? वह बार-बार करवटें बदल रहे थे। अचानक द्वार पर दस्तक पड़ी। हरिहर चौंक पड़े— 'इतनी रात में कौन !'

इतिहास-कथा

● प्रेमशीला गुप्ता

खट...खट...खट, दरवाजा फिर खटखटाया तो हरिहर उठ बैठे और कड़कती आवाज में पूछा —"कौन ?

'मैं हूं,' ! एक मीठी आवाज आयी।

हरिहर को आवाज पहचानी सी लगी। किसी नारी कंठ की मधुर ध्वनि थी। उन्होंने सांकल खोला तो सामने सजी-धजी मृदाल खड़ी थी। राजा को देखते ही वह मुस्कुरायी और बेझिझक अन्दर चली आयी। हरिहर कुछ पूछते इससे पहले ही वह बोली—"हुजूर की क्या सेवा मैं करूं।"

हरिहर झूम उठे। मृदाल की इतनी मीठी खनकती आवाज। गोरी-गोरी बाँहे, सघन बादलों सी केशराशि और स्वर्ण चम्पा सा रंग देखकर वह फिर भावुक हो

(शेष पृष्ठ ११६ पर)

अमर शहीद बाघा जतीन

बालेश्वर के 'यूनिवर्सल एम्पोरियम' की खानातलाशी लेने डनहम और टेग्मर्ट गये थे। बालेश्वर के जिला मजिस्ट्रेट मि० किल्वी ने उसमें सहयोग दिया था। वहाँ पर यतीन्द्र बाबू का कोई भी आदमी नहीं मिला। तो भी एक कागज पर कोप्तिपादा लिखा हुआ था। कोप्तिपादा मयूर भञ्ज राज्य में था। मि० किल्वी ने स्थानीय एस० डी० ओ० को लेकर कोप्तिपादा की खाना तलाशी ली। कोप्तिपादा के गुप्त स्थान को दिखाकर वहां के स्थानीय लोगों ने कहा — इस स्थान पर बंगाली बाबू रहते थे। कोप्ति-पादा की तलाशी लेने पर कोई नहीं मिला। तो भी इस स्थान पर बन्दूक छोड़ने के चिन्ह दिखाई दे गये। यहां पर मि० किल्वी को सुनने को मिला तहिलदा में बंगाली बाबूओं की दूकान है। यतीन्द्र-नाथ कोप्तिपादा से खाना तलाशी के पूर्व ही खिसक कर चित्तप्रिय और यतीश को साथ लेकर जाने योग्य निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये थे। इस तरह पांच लोग (यतीन्द्र नाथ, चित्तप्रिय, मनोरञ्जन; नीरेन, यतीश) बूढ़िबालाम नदी के किनारे से बिन्दपुर में आ गये। नदी पार करने के लिए नौका जुटाने का प्रयास किया। नौका के मांझी सानि माहुर को कुछ संदेह हुआ। उसने प्रश्न किया—आप लोग कहां जाएंगे? 'स्टेशन जायंगे तो नदी पार क्यों करना चाहते हो, इस बीच कुछ लोग इकट्ठे हो गये। सानि जमीदार को बुलाने चला गया। धीरे-धीरे लोगों की भीड़ बढ़ गयी। यतीन बाबू कुछ दूर जाकर बैठ गये। उस समय ११ बजा था। गांव के जमीदार राज महन्ती लोगों को लेकर उन्हें पकड़ने आ गये। विप्लवियों की गोली से राजा महान्ती मारे गये। इस वारदात का समाचार मि० किल्वी के पास बारनेश्वर पहुँचा। यतीन बाबू ने इसके बाद एक सूखे तालाब के ऊपर आश्रय ले लिया था। यह स्थान अपेक्षा-कृत ऊँचा और झाड़-झंकाड़ से घिरा हुआ था। इधर मि० किल्वी सार्जेण्ट रादम-फोर्ड के साथ पुलिस वाहिनी लेकर दो ओर से पूर्वोक्त पोखरे की ओर बढ़ने लगे। पीछे चलने वाले कुछ ग्रामीणों ने मि० किल्वी से कहा कि जो ये कपड़े उड़ रहे हैं उसी स्थान पर क्रान्तिकारी है। वस्तुतः यतीन्द्र नाथ ने भागने का रास्ता नहीं है यह निश्चित समझ कर ही सशस्त्र पुलिस वालो को यह जना दिया था कि वे यहां हैं और युद्ध के लिए प्रस्तुत हैं। प्रकाश,

लेखक-नलिनीकिशोर गुह
रूपान्तर-डॉक्टर रा॰ शं॰ द्विवेदी

और बालेश्वर का खंड-युद्ध !

चित्तप्रिय, मनोरञ्जन आदि ने यतीन्द्र-नाथ से कहा— दादा हम लोग इनका प्रतिरोध करते हैं और पकड़े जाते हैं आप दूसरी ओर चले जायं। यतीन्द्र नाथ ने कहा — यतीश रुग्ण है उसे छोड़कर नहीं जा सकता। यहां पर हम सम्मुख युद्ध मे मृत्यु का वरण करेंगे। बायीं ओर से रादम फोर्ड का और दायीं ओर से किल्वी का दल बढ़ने लगा। विप्लवियों ने गोली वर्षा प्रारम्भ कर दी। दोनों ओर से ही गोली चलने लगी। १६१५ ई० का ६ सितम्बर पुलिस के पास राइफल थीं और क्रान्तिकारीयों के पास रिवाल्वर और पिस्तौल किल्वी और रादमफोर्ड घायल तो नहीं हुए, तो भी उन्होने गवाही देते समय कहा कि उनके आस-पास ही विप्लवियों की गोलियां गिरती थी। पुलिस की ओर से कोई मरा या घायल हुआ या नहीं इसका पता नहीं चला। चित्तप्रिय के वक्ष में गोली लगी और उसने घटना स्थल पर ही मृत्यु का वरण किया। यतीन्द्र नाथ के शरीर में बगल के नीचे गोली लगी। मनोरञ्जन और नीरेन अविश्रान्त भाव से गोली चला रहे थे। मामले में गवाही देते समय मि० किल्वी ने कहा था— एक विप्लवी को निकटवर्ती स्थान से कपड़ा भिगोकर जल लाते देखकर किल्वी ने गोली नहीं चलायी। नीरेन और मनोरञ्जन मरने को प्रस्तुत होकर गोली चला रहे थे। यतीन्द्र नाथ ने आदेश दिया गोली बन्द करो। सफेद कपड़ा उड़ाओ। नीरेन और मनोरञ्जन ने नेता का आदेश शिरोधार्य कर दो सफेद कपड़े उड़ा दिये। सुस्पष्ट रुप से समझा गया स्नेह प्रवण यतीन्द्र नाथ ने तीन तरुणों को बचाने के लिए यह विश्चय किया था।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

यही लोकोत्तर चरित्र था विप्लवी यतीन्द्र नाथ का।

बाघा जतीन

मि० किल्वी ने ट्रिब्यूनल के मामले में कहा था कि वे जैसे ही पास पहुंचे यतीन्द्र नाथ ने उनसे कहा था 'मैने और चित्तप्रिय ने ही गोली चलाई है। ये तीन लोग सम्पूर्ण रुप से निर्दोष है। हमारे साथ मात्र चले आये। हम लोग क्या

(शेष पृष्ठ ११४ पर)

● जयदेव कपूर

संस्मरण

यादें, समय और साथियों की

पार्टी में सहज प्रवेश प्राप्त हो जाने से मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठा था। यह मेरे उस समय तक के जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि थी। एक नई दिशा मिली, नया रास्ता खुला। और मैं चल पड़ा, अपने उन सब अपूर्ण अरमानों और हौसलों को लेकर, जीवन के सार्थक्य की खोज में। राजनीति के पुराने पंडितों की राय में यह कोरा पागलपन था। दुनियांदार इसे मूर्खता की संज्ञा देते थे। इष्टमित्र और परिवार के लोग समझाते थे कि इतनी शक्तिशाली वृटिश हुकूमत जिसकी इतनी विशाल सेना, पुलिस, जेल, अदालतें; दमन के सब प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित-उससे टक्कर लेना सीधे सर्वनाश का आह्वान करना होगा। और हम थे; चन्द नौजवान, साधन शस्त्र विहीन, जो चल पड़े थे उस क्रान्ति-पथ पर, सब सुनी अनसुनी करते हुए। हमारा सहारा और सम्बल थी, प्रेरणा और पथ-दर्शक थी, पवित्र गुरु वाणी:—

'उदयेर पथे, शुनिकार वाणी,
भय नाई! ओरे भय नाई!
निःशेषे प्राण, करिबे जे दान,
तार क्षय नाई, तार क्षय नाई।'

उन्हीं दिनों महाकवि पुश्किन की कुछ काव्य पँक्तियां पढ़ने को मिलीं। कविता क्या थी? एक अनोखा उद्बोधन, एक आह्वान! उठते बैठते, चलते फिरते जाग्रत-जीवन के प्रत्येक क्षणों में उसके सम्मोहक स्वर हमें पुकारते रहते थे और हम उस पथ में खिंचते चले जाते थे। एक अद्भुत आकर्षण था उन स्वरों में। एक अनोखे आनन्द और उल्लास के ज्वार में हम बहते चले जा रहे थे। कविता की हिन्दी रूपान्तर का लोभ मैं संवरण न कर सकता था। उसने मेरे मर्म को ऐसे छू लिया था कि आज तक अक्सर उसे गुनाया करता हूं;

'मैंने देखा मृत्यु निमंत्रण
उसके द्वारे आया।
अत्याचारी के सम्मुख,
जो युद्ध माँगने धाया।
रुद्ध हो गया है, मेरा भी
आज भाग्य का द्वार,
लेकिन कहो, बिना बलि किसने
पाया आजादी उपहार।
मातृभूमि आजाद रहे,
मैं शीश दान करने आया।
महानाश के ऐ सुन्दर नक्षत्र!
तुम्हें वरने आया।'

और उन्हीं दिनों अँग्रेजी के महान लेखक और विचारक, बर्नाड शा का एक प्रेरक वाक्य, न जाने कैसे आकर मेरे मन प्राण को बेंध गया।

"३० वर्ष से कम आयु रखने वाला कोई नौजवान यदि क्रान्तिकारी नहीं है, तो पुरुषत्वविहीन है।'

उस समय हम सब साथियों की आयु २० वर्ष से भी कम थी। हमने बर्नाड शा के इस वाक्य को चुनौती रूप में स्वीकार किया। हमारे संकल्प को इससे बहुत बल मिला। अपने को क्रान्तिकारी कहने और कहाने में हम एक विचित्र गौरव अनुभव करते थे। यही तो कहा था, शहीद सरदार कर्त्तारसिंह सराबा ने, और इसी के लिये मात्र २० वर्ष की आयु में उसे देश भक्ति के सर्वोच्च पुरस्कार—फांसी द्वारा अलंकृत किया गया था। उन्होंने कहा था :

'जो कोई पूछे कि कौन हो तुम,
तो कह दो बागी है नाम अपना।
जुलम मिटाना हमारा पेशा,
गदर का करना है काम अपना।
नमाज संध्या यही हमारी,
श्री पाठ पूजा भी सब यही है।
धरम करम सब यही है प्यारो,
यही खुदा और है राम अपना।'

सम्पूर्ण आजादी, आजादी के लिए विराट और व्यापक गदर संग्राम, संग्राम की सफलता के लिये जुझारू जनवादी एकता, एकता के लिये धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्रीयता सबके प्रति सम्पूर्ण निरपेक्षता, और अन्त में सामन्त-वाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, की शक्तियों को परास्त कर समाज में एक स्वस्थ समाज-वादी व्यवस्था की स्थापना। इस विचार दर्शन से सुसज्जित होकर हम और हमारे साथी मैदान में उतरे थे। हमें अपने सिद्धान्तों पर अटल विश्वास था, अपने आदर्शों में अटूट आस्था थी। अपने देशवासियों की अजेय शक्ति का भरोसा था। पथ के अवरोधों, अड़चनों की परवाह न थी। दुर्गमगिरि, बीहड़ बन, उफनाती नदियां, गहन अन्धकार, कठिन रास्ता कोई भी इस काफिले को आगे बढ़ने से रोक नहीं सकता था। यात्री होशियार और चौकन्ने थे।

(शेष पृष्ठ १२३ पर)

मुसलमान : मुस्लिम

सन् १९४७ के १५ अगस्त को शताब्दियों की गुलामी के बाद भारतमाता के पैरों की बेड़ियां औपचारिकरूप से झनझनाकर टूट गईं। पाकिस्तान का निर्माण भारत से २४ घंटा पहले हुआ था। यद्यपि यह महज आकस्मिक है, फिर भी यह अर्थपूर्ण है। लार्ड माउन्टबेटन शायद यह दिखा गये कि संग्राम बड़ा नहीं, खुशमद और चापलूसी बड़ी है। भारत में कांग्रेस के हाथों में शक्ति प्रदान की गई। उस संस्था की बागडोर जब १९१९ में महात्मा गान्धी के हाथों में आई, तभी वह संग्रामशील बनी। उसके बाद वह वर्षों तक, जबतक कि वह एक दल के रूप में सीमित कुंठित नहीं हो गई, स्वातन्त्र्य-योद्धाओं का संयुक्त मोर्चा रही। कांग्रेस का फिर भी एक संग्रामकारी हिस्सा रहा, भले ही वह संग्राम दबाव राजनीति तक ही सीमित रहा हो। कौन नहीं जानता, इस बात को 'गांधी एण्ड हिज टाइम्स' में गांधी और गांधीवादियों के वक्तव्यों से पूर्णरूप से प्रमाणित किया गया है। महात्मागांधी क्रान्ति से घबराते थे और जब भी क्रान्ति की सम्भावना की लालिमा क्षितिज में दिखाई देती थी, वह दौड़कर आन्दोलन की बत्ती का स्विच आफ यानी बटन दबाकर बुझा देते थे।

कांग्रेस और लीग की तुलना

कुछ भी हो कांग्रेस की एक जंगजू परम्परा थी। चन्द्रशेखर आजाद जैसे सैकड़ों क्रान्तिकारी कांग्रेस की पुकार पर ही राजनीति में कूदे थे। पर मुस्लिम लीग, जिसके हाथों में पाकिस्तान की शक्ति सौंपी गई, संग्राम के नाम पर शून्य थी : उसकी सारी राजनीति यह थी कि किस प्रकार मुसलमानों के नाम पर मुस्लिम बुद्धजीवियों को नौकरियों का, पदों का सबसे अधिक सिंहसमान भाग दिखाया जाये। कांग्रेस ने सारी जनता (जिसमें मुस्लिम जनता भी थी) को आगे बढ़ाया, स्त्रियों को मुक्त किया, अछूतों को उठाया, चरखों और करघा के द्वारा खादी के नाम पर गांव वालों की

विद्वान लेखक जाने-माने क्रांतिकारी तथा लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं आपने एक ऐसे ज्वलंत तथ्य की ओर देश का ध्यान खींचा है- जिसके संदर्भ में स्वयं शासन भी इस दिशा में जुगाबते में रहा है। इसमें संदेह नहीं कि इकबाल पाकिस्तान के दूसरे पिता थे, भले शुरू में उन्होंने राष्ट्रीय शायरी देश को दी।

होमलैण्ड में मुस्लिम समस्या

● मन्मथनाथ गुप्त

विद्वान लेखक

हालत सुधारने का नारा दिया।

पर मुस्लिम लीग ने मुसलमान जनता के लिए भी कुछ नहीं किया। उसका तो एक ही कार्यक्रम था—हिन्दुओं का हनन कर मुसलमानों को उनसे लड़ाओ। ऐसा करते हुए मुस्लिम लीग के नेता खान साहब और खान बहादुर अंग्रेज शासकों के हाथों खेलते रहे। अवश्य यह कहना गलत होगा कि अंग्रेजों के कारण ही सारा वैमनस्य फैला। असल में हर धर्म में, विशेषकर प्रचारात्मक धर्मों में परपीड़न अन्तर्निहित है। जब भारत में और संसार में कोई मुसलमान नहीं था, उस समय भी यह कहा गया कि यदि हाथी पीछे मुड़कर आपको खदेड़ रहा हो, तो उस समय भी बचने के लिए जैन मन्दिर में आश्रय न लें—हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेत् जैनमन्दिरम्।

लीग मुस्लिम जनता से दूर

मुस्लिम लीग मुस्लिम मध्यवित्त वर्ग की संस्था थी। उन्हें न किसानों से मतलब था न मजदूरों से। यहां तक कि जब सारे भारतीय मुसलमान खिलाफत पर उत्तेजित थे, तो मुस्लिम लीग के नवाब नेता सो गये।

यही लोग बाद को पैनइस्लामवाद के पुजारी के रूप में सामने आये और पाकिस्तान के संस्थापक बने। रहा यह कि खिलाफत आन्दोलन एक गलत आन्दोलन था और महात्मा गांधी ने ऐनकेन प्रकारेण मुसलमानों को खुश करने के लिए गलत तरीके से उसका साथ दिया। यह और बात है कि सन् १९१४-१८ के महायुद्ध में जर्मनी और उसके साथ देने वाले तुर्की हार गये तो जर्मन और तुर्की साम्राज्य तोड़कर अंग्रेजों ने हमेशा के लिए शत्रुओं को समाप्त कर दिया। भारतीय मुसल-

(शेष पृष्ठ १२७ पर)

लोकमत का नियामक कौन ?

राज्य पुनर्गठन के प्रश्न पर जब देश में विभिन्न मांगों को लेकर लोगों की भावनायें बड़ी उग्र होती जा रही थीं, प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से एक शिष्टमंडल मिला। शिष्ट मंडल के एक सदस्य ने पंडित जी से निवेदन किया कि दिल्ली में विधान सभा को समाप्त करने के उनके निर्णय से जनता बहुत प्रसन्न है, अतः वे उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन न करें। नेहरू जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया— "जो लोग विधान सभा को बनाये रखने की मांग लेकर आते हैं वे भी जनता के नाम पर ही बातें करते हैं जनता की इच्छा कौन सी समझी जाय पण्डित जी ने जो प्रश्न उपस्थित किया वह लोक राज्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कारण; लोकतंत्र में राज्य जनता की इच्छाओं के अनुसार चलता है। किन्तु किन्हीं भी दो व्यक्तियों की इच्छायें एक सी नहीं हो सकतीं। फिर जहां करोड़ों मानवों का प्रश्न हो वहां राष्ट्र के सभी जन एक ही इच्छा करेंगे, यह सामान्यतया संभव नहीं। हां, युद्ध आदि के समय अवश्य सबकी इच्छायें शत्रु पर विजय प्राप्त करने की हो जाती है किन्तु वहां भी नीति के प्रश्न को लेकर अनेक मतभेद हो सकते हैं।

बात कहने का अधिकार

लोकेच्छा वास्तव में भाववाचन कल्पना मात्र है। सच तो यह है कि जनतंत्र

चिन्तन

पं० दीनदयाल उपाध्याय

में किसी की भी इच्छा नहीं चलती, प्रत्येक को एक सामान्य इच्छा के अनुसार अपनी इच्छा को ढालना होता है। यदि ऐसा न हो तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं, मान्यताओं और विश्वासों को ही सर्वोपरि मान कर अड़ा रहे तो लोकतंत्र नहीं चल सकेगा। अराजकता, विघटन और अन्त में एकतंत्रीय निरंकुश शासन इस स्थिति के अवश्यंभावी परिणाम होंगे।

अपनी इच्छाओं पर दमन का अर्थ है दूसरे की बात को मानने की तैयारी। लोकतंत्र की एक व्याख्या यह की गई है कि वह वाद-विवाद के द्वारा चलने वाला राज्य है। 'वादे-वादे जायते तत्वबोध' यह हमारे यहां की पुरानी उक्ति है। किन्तु यह तत्वबोध तो तभी हो सकेगा जब हम दूसरे की बात को ध्यानपूर्वक सुनेंगे और उसमें जो सत्यांश होगा उसको ग्रहण करने की इच्छा रखेंगे, यदि दूसरे का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न न करते हुए हम अपने ही दृष्टिकोण का आग्रह करते जायें तो "वादे वादे जायते कण्ठशोधः" की उक्ति ही चरितार्थ होगी। वोल्टयर ने जब यह कहा कि "मैं तुम्हारी बात सत्य नहीं मानता, किन्तु अपनी बात कहने के लिये तुम्हारे अधिकार के लिये मैं सम्पूर्ण शक्ति से लड़ूंगा" तो उस ने मनुष्य के केवल 'कण्ठशोध' के अधिकार को ही स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति इससे आगे बढ़कर वाद-विवाद को "तत्वबोध" के साधन के रूप में देखती है।

दृष्टिकोण में इस परिवर्तन के लिये जीवन में संयम की नितांत आवश्यकता है। जो असंयमी है, वह अपनी इच्छाओं पर कभी काबू नहीं पा सकता। उनकी पूर्ति के लिये वह बाकी लोगों की कुछ भी चिन्ता न करता हुआ सब प्रकार के प्रयत्न करेगा। यदि सफल हो गया तो वह अपने क्षेत्र में एकाधिपत्यप्रतिष्ठापित

(पृष्ठ १०२ का शेष)

पं० दीनदयाल उपाध्याय एक उच्चकोटि के विचारक थे। लोकतंत्र में उनकी गहरी आस्था होने के कारण देश में स्वस्थ चुनाव प्रक्रिया के विकास के विषय में वे बहुधा मार्गदर्शन करते रहते थे। लोकमत का निर्माण और उसकी अभिव्यक्ति—वर्तमान संदर्भ में अति महत्वपूर्ण इस विषय से संबंधित उनका एक लेख पाठकों के उद्बोधन हेतु दिया जा रहा है।—सम्पादक

एक कहानी

आस्था का दर्द

आज से कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले की बात है। वह जिस परिवार में जन्मी थी, वह धार्मिक प्रवृत्ति का था। घर में भोजपत्र की कुछ धार्मिक पुस्तकें अब भी मौजूद थी साधु-संतों का आगमन होता रहता था। माता-पिता बचपन में ही चल बसे। बालिका अकेली रह गई। माता-पिता उसे स्वयं पढ़ाया करते थे। १० वर्ष की उम्र में ही वह संस्कृत सीख गई थी—जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई, धर्म-ग्रन्थों में उसका मन रमता गया। तरुणी होते-होते वेदान्त को जीवन में उतारना ही उसकी दिनचर्या बन गई। घर में कोई नहीं। एकाकी जीवन। धर्म-ग्रन्थों की मंजूषा ही उसके जीवन का आधार थीं। उन्हीं को रात-दिन पढा करती और उनमें बतलाये गये उपायों से साधना किया करती। भगवत्-उपासना करते-करते उसके मन में संकल्प उठा कि किस तरह मुक्ति पाई जा सकती है?

धर्म-ग्रन्थों में मुक्ति पाने के जो साधन बताये गये थे—उन पर चलने की उसने कोशिश की लेकिन उसे सफलता मिलती नहीं दिखाई दी।

आखिर उसने गुरु की खोज की। ग्रन्थों में गुरु-महिमा का बहुत कुछ वर्णन उसने पढ़ा था। सोचा, बिना गुरु के शायद वह रास्ता नहीं मिलेगा। खोज में चल पड़ी।

उसको पता लगा कि एक विरक्त संन्यासी हिमालय के एक गम्भीर गह्वर में रहते हैं—अंधेरी गुफा में। वह बहुत नीचे है। वहां कोई नहीं जाता। अलबत्ता कभी-कभी वह संन्यासी बस्ती की तरफ दिया-बत्ती के लिए तेल जुटाने आता है किन्तु किसी से कोई सम्पर्क नहीं रखते—न किसी से बोलते ही हैं। लोगों ने उस लड़की को बताया कि संन्यासी जाने कितने वर्षों से उसी गुफा में तपस्या करते हैं—वृद्ध हो चले हैं।

साहस करके वह लड़की पहाड़ से सीढ़ियां उतरने लगी। सकड़ों सीढ़ियां थीं। वह उतरती गई।

अन्त में गुफा दिखाई। दिन में भी वहां भय लगता था। घना अंधेरा था। चारों ओर सन्नाटा फैला था। बड़ी शान्ति का साम्राज्य। फिर भी बीच-बीच में रोंगटे खड़े होने लगे। लड़की ने सोचा, जब शरीर नाशवान है, तब भय कैसा? और किससे भय?

वह गुफा में प्रविष्ट हुई। वृद्ध संन्यासी पद्मासन लगाये बैठे थे—निर्विकार। कुछ नहीं बोले। लड़की कुछ देर यों ही खड़ी रही। फिर जब देखा कि संन्यासी का शरीर हिला है तो उसने प्रणाम किया। संन्यासी फिर भी मौन रहा। लड़की थक गई थी। बैठना चाहती थी। प्यास से होंठ सूख रहे थे।

संन्यासी का स्वर उस गुहा में गूंजा—

'क्या चाहती हो?'

लड़की चुप। बोल नहीं सकी।

संन्यासी ने फिर पूछा—'इस अंधेरी निर्जन गुफा में तुम्हारा क्या प्रयोजन है?'

'महात्मन्! मैं, इस भव-सिन्धु से मुक्ति चाहती हूं। आप मुझे मार्ग-दर्शन करें।'

'मुक्ति!' 'ह-ह-ह-ह'—संन्यासी का अट्टहास गूंजा।

'बेटी! मुक्ति इतनी सहज नहीं। उसके लिए सब वासनाएं, सब इच्छाएं त्याग देनी पड़ती हैं। संन्यासी ने उत्तर दिया।

'प्रभु! मैंने संसार की सब इच्छाएं त्याग दी हैं।'

'सोचो, सोचकर देखो कि क्या जो कुछ तुम कह रही हो—सत्य है?'

'सत्य ही है महात्मन्!'

'अच्छा। कुछ दिन रहो। साधना का मार्ग बताऊंगा। उसी का अभ्यास करना।'

लड़की वहीं रहने लगी। निकट ही नदी थी। उसके पुलिन की

हरियाली देखते ही बनती थी। हरिणों का झुण्ड वहां विचरता रहता। गुफा के पास-पड़ोस में फलवाले वृक्ष भी कम नहीं थे। फल न रहते तब कन्द से काम चल जाता। जहां तक होता वह वृक्ष से फल कभी नहीं तोड़ती—पककर धरती पर गिरे हुए फल ही वह बीन लाती। नदी से कमण्डलु भर कर जल ले आती। लड़की के ध्यान में आया कि यह तो भयानक नहीं वरन् बड़ा ही पवित्र और मनोरम स्थान है। आबादी में ऐसा स्थान दुर्लभ है। यहां आना सार्थक हुआ है। अवश्य ही मुझे 'मुक्ति का पथ मिल कर रहेगा। लड़की यह सोच-सोचकर आनन्द-मान रहती।

चलती गई। चलते-चलते उसके मन में प्रश्न उठा कि—'संन्यासी जी कहते हैं कि मुक्ति पाने के लिए संसार की सब इच्छाओं पर विजय पाना आवश्यक होता है किन्तु अब यही देखो कि इन्हें भी आरती आदि के लिए कुछ चीजें चाहिये। भगवान को स्वयं कोटि-कोटि सूर्य्यों से भी अधिक प्रकाश से द्युतिमान हैं—फिर भला उनके सामने दीप जलाने का क्या अर्थ?'

यह प्रश्न शंका का रूप धारण कर चला। उसे शंका होने लगी कि संन्यासी महाराज भी सब इच्छाओं का त्याग नहीं कर सके हैं।

आखिर वह बहुत दूर चलकर बस्ती

भारत की परतंत्रता उसे हृदय में कांटे की तरह खटकने लगी। अपनी मुक्ति की साधना उसे व्यर्थ प्रतीत हुई। जबकि देश स्वतंत्र नहीं, अपने मोक्ष की बात सोचना कहां तक उचित है। शंकालु मन वह संन्यासी के समक्ष आयी।

महीने में एकाध बार संन्यासी बाहर जाता। देवता के लिए धूप-दीप और नीराजन आदि के लिए तेल की जरूरत पड़ती थी लेकिन एक बार वह बूढ़ा संन्यासी बीमार पड़ गया। तब तेल के लिए लड़की को जाना पड़ा। संन्यासी ने उसे रास्ता समझा दिया। मनुष्यों के बीच अकेले किसी कार्य से जाना और अपनी जरूरत के लिए उनसे बात करने का प्रसंग उसके लिए यह नया ही था। उसे संकोच कम नहीं हुआ—फिर भी वह

में पहुंची। लोगों से बात करने में झिझक हुई। लेकिन संन्यासी की आज्ञा का पालन तो करना ही था—आज उसे यह कार्य अच्छा नहीं लगा। सोचती रही—'जब मैंने दुनिया छोड़ दी। घर-बार छोड़ दिया। इस जीवन के अरमानों में आग लगा दी तो यह तेल-फेल किस-लिए? आरती किसकी? वह तो सर्व-व्याप्त है। घट-घटवासी है। सब देख रहा है। सब सुन रहा है। उसका नीरा-जन क्या! उसको क्या हमारे प्रकाश की

आवश्यकता है ?'

तेज उसे मिल गया लेकिन उसने देखा कि वातावरण में पहले से काफी परिवर्तन दिखाई देता है। लोग आतंकित हैं। चेहरे उदास हैं। कुछ लोग उत्तेजित भी लगते हैं। जहां-तहां काना-फूसी भी हो रही है। उसने पूछा—'राज्य का क्या हाल है ?'

उत्तर मिला—'अब कैसा राज्य ? राज्य तो गया। यह है पराधीनता। गोरों का राज्य हैं यह तो।'

'राजा कहां गया ? वह तो बड़ा धर्मात्मा था।' 'वह गोरों से युद्ध में हार गया। बन्दी हो गया। अब अंग्रेजों की दया-भिक्षा पर जीवित है।' लड़की बड़ी चकित हुई—दुखित भी हुई। सोचने लगी—अपना देश पराधीन हो गया और हमें उसकी चिन्ता नहीं। हम मुक्ति-साधन में लगी हैं ? यह क्या स्वार्थ नहीं ? पहले देश की मुक्ति या आत्म-मुक्ति ?

उसकी उत्तेजना पास ही खड़े उस पथिक ने भांप ली। जिसने लड़की के प्रश्नों के उत्तर दिये थे। लड़की पहाड़ की ओर चली तो वह पथिक भी साथ हो लिया। कहा—'मुझे भी कुछ दूर उधर ही जाना है।'

लड़की देश-दशा के सम्बन्ध में उससे ही बातें करती चली। पथिक उत्तर देता गया और उसके उत्तरों ने लड़की को अंग्रेजों का प्रबल विरोधी बना दिया। वस्तुतः वह अनजान पथिक, उस संगठन का एक सक्रिय सदस्य था... जो अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र संग्राम की तैयारियों में लगे थे। लड़की ने पूछा था...

'अंग्रेजों की सुशिक्षित फौज और उनके बढ़िया हथियारों के मुकाबले निहत्थे भारतीय कर भी क्या सकते हैं ?' 'सब कुछ कर सकते हैं। यह काली-करालो दुर्गा का देश है। शिव और शक्ति का देश है। शत्रु संहार करना उसे गैरों से नहीं सीखना है। भारतवासी सिर दे सकते हैं—सिर ले भी सकते हैं और भविष्य में अब इसी कसौटी की परीक्षा होनी है।'

'क्या हम यह भार भगवान पर नहीं डाल सकते ?' 'भगवान पर ?' पथिक का मुंह तमतमा उठा था। एक क्षण रुककर उसने कहा था। अपने पापों का कलंक हमें ही धोना होगा। बलिदान और आत्म-दान की वेला में हम भगवान का नाम लेकर पीठ दिखा चले...यह कैसा धर्म ? कैसी भक्ति ? कल हम देवता की पूजा फूलों और गंगा-जल से करते थे, आज शत्रु के मुण्डों से और अपने रक्त से उनकी आरती करनी होगी।'

पथिक आगे चला गया था। लड़की गुफा की सीढ़ियां उतरते-उतरते उसी के शब्द मन ही मन दुहराती जा रही थी। आज गुफा का वातावरण उसे फीका-फीका लगा। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। मन करता था—भारतीय

वीरों की सशस्त्र वाहिनी घोड़े दौड़ती गुजर रही हो—उसके बीच एक वह भी हो—उन्हीं में से एक।

भारत की परतंत्रता उसे हृदय में कांटे की तरह कसकने लगी। अपनी मुक्ति की साधना उसे व्यर्थ प्रतीत हुई। जब तक देश स्वतंत्र नहीं, अपने मोक्ष की बात सोचना कहां तक उचित है! शंकालु मन वह संन्यासी के समक्ष आयी।

संन्यासी ने एक क्षण उसकी दुविधा-ग्रस्त मुद्रा देखी। वे गंभीर हो गये। उनकी दृष्टि पारदर्शी थी। सिद्ध थे किन्तु अपनी शक्तियां चमत्कार दिखाने में नहीं व्यय करते थे, ऐसा करना हेय समझते थे। आज उन्हें जरुरत अनुभव हुई थी—उस साधिका का मन पढ़ने की। पढ़ लिया था, उन्होंने।

लड़की ने तेल रख दिया। पूछने लगी···'प्रभो! आपको शायद पता न हो, अपना देश पराधीन हो गया। गोरे राज्य चला रहे हैं।' संन्यासी की दृष्टि जहां थी, वहीं स्थिर रही।

उन्होंने लड़की की ओर नहीं देखा··· न कोई उत्तर दिया।

'महात्मन्! पराधीनता की बात सोचकर मेरा मन विकल हो रहा है। लगता है, यहां शान्ति नहीं पाऊंगी। देश कैसे मुक्त हो, वह रास्ता बताइये?'

'रास्ता मैं क्या बताऊं! प्रभु ही बतायेंगे। उन्हीं पर निर्भर रहना है। तुम अपना मन शांत करो। साधना के पथ पर अडिग रहो। अभी तुम्हारा परीक्षा-काल है और साधक को उसमें सफल होना होता है। मुक्ति-पथ अभी दूर है बेटी!'

और वे मौन हो रहे। जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो। लड़की उन्हीं की ओर एकटक ताकती रही। पुनश्च बोली··· 'प्रभु! मेरी शंका का समाधान करिये। साधना-पथ से मेरा मन किंचित् विमुख हो रहा है।'

'तो चली जाओ। बस्ती में वापस जाकर उन्हीं के बीच काम करो। देखता हूं—तुम संसार की इच्छाएं छोड़ नहीं सकी हो। बल्कि इच्छाएं त्याग देने का जो विश्वास तुमने प्रकट किया था—वह भ्रम था। इच्छाएं त्यागे बिना तो मुक्ति सम्भव नहीं।'

'प्रभु! मुझे अपने से दूर न करिये। निराश न बनाइये। मार्ग-दर्शन चाहती हूं।'

'देखो, कुछ दिन प्रयास कर देखो। मन शांत हो सके तो साधना सम्भव होगी।'

लड़की रहने लगी। समय बीतने लगा लेकिन लाख कोशिश करके भी उसको शांति नहीं मिल सकी। उसका मन अधिकाधिक देश की पराधीनता की ओर खिंचता गया और एक दिन वह विकल कंठ से कह उठी—

'भगवन्! मैं किसी भी तरह शांति नहीं पा रही। साधना से मन उचट गया है।'

इस जन्म मे तुम्हारी मुक्ति नहीं हो

सकेगी।'

'फिर कब प्रभु ? क्या जन्म-जन्म इसी तरह मैं आवागमन के बन्धनों से ग्रस्त रहूंगी ? कोई उपाय नहीं ?'

'उपाय है। अगले जन्म में तुम पश्चिमी देश में जन्म लोगी। उनके रहस्य तुम जान सकोगी—निकट उसी जन्म में तुम भारत आओगी। बता जोगी उसका मुक्ति-पथ। पश्चिम के रहस्य उस दिन भारत के लिए अज्ञात नहीं रह जायेंगे।'

लड़की आबादी में वापस लौट गई-आगे सन् १८५७ के दिन आये। लड़की की कहानी का शेषांश किसी भी तरह जाना नहीं जा सका। अलबत्ता अगले जन्म में वह विदेश में जन्म लेकर भी भारत दौड़ी आयी—जागरण-संदेश सुनाने। भारत में वे बंग भंग के दिन थे। उस समय के प्रसिद्ध क्रांतिकारियों से उसके विश्वस्त संबंध रहे और ममता बस ही क्यों न हो, उसके गुरुदेव ने पुनः अगला जन्म भारत में ही लिया।

कौटिल्य की दृष्टि में लिच्छवि गणराज्य

कौटिल्य ने बौद्धकालीन लिच्छवि, वृज्जि मल्ल आदि गणराज्यों को लिच्छविक. वृजिक मल्लक आदि राजशब्दोपजीवी संघ कहा है, जबकि बौद्ध-साहित्य में इनको गणराज्य कहा गया है। कौटिल्य राजनीति के उच्चकोटि के विद्वान थे। उनके उपर्युक्त परिवर्तित नामकरण का विशेष भाव होना आवश्यक है। पाणिनि के अनुसार लिच्छवि, वृज्जि, मल्ल आदि शब्दों का रूप राजभक्ति (नागरिकता) के अर्थ में लिच्छविक, व्रजिक, मल्लक होता है। अतः कौटिल्य ने इन शब्दों का शुद्ध राजनीतिक स्वरूप प्रयुक्त किया है। राजशब्दोपजीवी का अर्थ राजा शब्द से जीविकोपार्जन करने वाला होता है। जमीदार लोगों की जीविका के साधन को जमींदारी ही कहा जाता है। अतः राजशब्दोपजीवी का तात्पर्य जमींदार अथवा सामन्त हो सकता है। इस प्रकार राजशब्दोपजीवी संघ कहकर कौटिल्य ने उक्त राज्यों के सामन्तीय स्वरूप का बोध कराया है इसकी पुष्टि बौद्ध साहित्य से भी होती है जिसमें लिच्छवि गण-राज्य में ७७०७ राजा बताये गये हैं और इतने ही उपराजा, सेनापति तथा भाण्डा-गारिक कहे गये हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक राजा अपना उत्तराधिकारी सेनापति और भाण्डागारिक रखता था।

●डॉ० देवीदत्त शुक्ल

(पृष्ठ ६५ का शेष)

करके लोकतंत्र की ही हत्या कर देगा। यदि असफल हुआ तो उसके लिये लोकतंत्र रनहीन एवं दुखदायी हो जायेगा,। यदि बहुजन समाज लोक राज्य में अपने सुख की अनुभूति न कर सके तो यही कहना होगा कि वहाँ लोकतंत्र का बेजान ढांचा मात्र खड़ा है, आत्म नहीं।

धर्मभीरु झुकता है

दूसरे की इच्छा के सामने झुकने की तैयारी में एक खतरा सदैव बना रहता है। जो सज्जन एवं धर्मभीरु होते हैं वे तो सदैव अपनी बात का सदैव आग्रह छोड़कर दूसरों की बात मान लेते है। किन्तु जो दुर्जन एवं दुराग्रही हैं वे अपना हठ नहीं त्यागते। फलतः ऐसे ही लोगों की तूती बोलने लगती है। वे अपनी बात मनवाकर समाज के अगुवा बन जाते हैं तथा धीरे-धीरे लोकतंत्र एक विकृत रुप में उपस्थित होकर समाज के लिये कष्टदायक हो जाता है। सम्भवतः या इसी संकट के सामने रहने के कारण हमारे यहां के शास्त्रकारों ने लोकमत के परिष्कार की व्यवस्था की। जिस समाज में यह परिष्कार का काम चलता रहेगा; वहां सहिष्णु एवं संयमशील व्यक्तियों का मंडल निरतर बढ़ता चला जायगा। यहां तक कि इन गुणों से वंचित व्यक्तिक्वचित हीं उपलब्ध हो सकोंगे। यदि कोई अपवाद रहा भी तो वह अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकेगा।

लोकमत का परिष्कार कैसे ?

किन्तु यह लोकमत-परिष्कार का काम कौन करे ? रुस एवं अन्य समाजवादी देशों में यह काम राज्य के द्वारा किया जाता हैं। मार्क्स के सिद्धांत के अनुसार मजदूरों की क्रांति के पश्चात फिर क्रांति की संभावना है, उसे रोकने के लिए कठोर उपायों के अवलम्बन की आवश्यकता है। साथ ही अभी तक जीवन के जो मूल्य स्थापित हुए हैं वे पूजीवादी अर्थव्यवस्था पर आधारित हैं। उन्हें हटाकर नये प्रगतिवादी मूल्यों की प्रतिष्ठापना करनी होगी। यह कार्य लेनिन ने राज्य को, जो कि सर्वहारा के प्रतिनिधियों एव क्रांतिदर्शी महानुभावों के द्वारा चलाया जाता है, सौंपा। किन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि वहां लोकमत परिष्कार के नाम पर व्यक्ति की सभी स्वतंत्रायें समाप्त हो गयी तथा कुछ व्यक्तियों की तानाशाही ही सम्पूर्ण जनता की इच्छा के नामपर चलने लगी। जो दवा दी गई, उससे मर्ज तो ठीफ नहीं हुआ, हां मरीज अवश्य चल बसे। अर्थात् समस्यायें दोनों ओर हैं। एक ओर अपरिचित लोकमत, जिसकी दिशा कभी सोच विचार कर निश्चित नहीं होती और दूसरी ओर व्यक्ति की स्वतंत्रता की समाप्ति। शेक्सपियर ने अपने नाटक 'जूनि, यस सीजर' में प्रथम अवस्था का बड़ी अच्छी तरह चित्रण किया है। जो जनता ब्रूटस के साथ होकर जूनियर सीजर के वध पर हर्ष मना रही थी वही थोड़ी देर

में एण्टोनिकों के भाषण के उपरान्त ब्रूटस का बध करने को उद्यत हो गयी। मोबोक्रेसी और ओटोक्रेसी के दोनों पाटों के बीच से डेमोक्रेसी को जीवित रखना एक कठिन समस्या है।

भारत ने इस समस्या का समाधान राज्य के हाथ से लोकमत निर्माण के साधन छीनकर किया है। लोकमत परिष्कार का कार्य है वीतराग द्वन्द्वागीत सन्यासियों का। लोकमत के अनुसार चलने का काम है राज्य का। सन्यासी सदैव धर्म के तत्वों के अनुसार जनता के ऐहिक एवं आध्यात्मिक समुत्कर्ष की कामना लेकर अपने वचनों एवं निरीह आचरण से जनजीवन के ऊपर संस्कार डालते रहते है। उन्हें धर्म की मर्यादाओं का ज्ञान कराते रहते हैं। उनके समक्ष कोई मोह और लोभ न होने के कारण वे सत्य का उच्चारण सहज ही कर सकते हैं। शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हैं, इन मूल्यों का बांध रहने के बाद लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों का अतिक्रमण करके संकट का कारण नहीं बनेगी।

दलों की जिम्मेदारी

मर्यादाओं के अंतर्गत क्रिया का नाम ही संयम है। भूखा मरना संयम नहीं अपितु शरीर की आवश्यकता के अनुसार गुण और मात्रा में भोजन करना संयम है बिल्कुल न बोलना यहां तक कि अत्याचारी के विरुद्ध आवाज भी न उठाना अथवा किसी को सत्परामर्श भी न देना

> वस्त्र-हीन, अन्न-हीन, ज्ञानहीन निर्धनों की पराजय जब सत्य है, तब उनके हृदय का जो विष पूर्ण होकर चारों ओर फैलने लगता है, वह क्यों सत्य नहीं? यही क्रान्ति का राज-मार्ग है।'
>
> ●● शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

संयम नहीं। वाचाल और गूंगे के बीच संयमी पुरुष आता है और आवश्यकता पड़ने पर बोलता है। और अवश्य बोलता है। अपने व्यवहार का यह नियमन तब हो सकता है, जब व्यक्ति को अपने आदर्श की लगन हो तथा अपनी जिम्मेदारी का बराबर भान हो। असंयम और गैरजिम्मेदारी साथ साथ चलते हैं। लोक राज्य भी तभी सफल हो सकता है जब हर एक नागरिक अपनी जिम्मेदारी को समझेगा और उसका निर्वाह करने के लिये क्रियाशील रहेगा। समाज जितना यह समझता जायेगा कि राज्य को चलाने की जिम्मेदारी उसकी है, उतना ही वह संयमशील बनता जायेगा। जिस दल को यह लगता है कि आज नहीं कल मेरे कन्धों पर राज्य-संचालन का भार आ सकता है वह कभी अपने वायदों और व्यवहार में गैरजिम्मेदार एवं असंयत नहीं होगा। फिर जनता के ऊपर तो राज्य चलाने की जिम्मेदारी सदैव ही रहती है। समय-समय पर वह अपने प्रतिनिधि के रूप में भिन्न दलों को चुन लेती है। वह यदि जिम्मेदार रही तो दल भी कभी संयम शून्यनहीं होगें।

जब भारतीय नौसेना ने अपनी तोपें

सुधीर विद्यार्थी

रॉयल इण्डियन नेवी में पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। १८ फरवरी १९४६ को हमेशा की तरह नौसैनिक 'तलवार' पर सुबह पांच बजे उठे और थोड़ी ही देर में नाश्ते के लिए 'मेस' में इकट्ठे होने लगे। कुछ क्षण बाद उनमें से कुछेक ने एक दूसरे के चेहरे को गौर से देखा, धीरे से कुछ कहा भी और एकाएक शोरगुल मच गया। नौसैनिक 'मेस' से बाहर निकल आये। चेहरों पर उनके एक विचित्र प्रकार की चमक थी। उस समय वे चीख रहे थे—

'हम खाना नहीं खायेंगे।'

'हमें अच्छा खाना दो।'

'हमें पूरा राशन दो।'

'हमें गोरों के समान वेतन दो।'

'हमें गाली देने वाले अफसरों को दण्ड दो।'

नारे लगाते-लगाते बहुत से नौसैनिक खुशी से झूमने लगे। वे पागलों की तरह लग रहे थे। वे एक दूसरे से गले मिलते और ऊंचे स्वर में नारे लगा कर ब्रिटिश हुकूमत के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते। एक शक्तिशाली साम्राज्य से टक्कर लेने निकल पड़े थे वे आज। अधिकारी देखकर हैरान थे। नौसैनिकों की बगावत सबसे बड़ी चुनौती बन गई थी उनके लिए कुछ समझ नहीं पा रहे थे। कि क्या किया जाये। जो कोई अधिकारी नौसैनिकों को देखने जाता या यह मालूम करने कि मामला क्या है, वह नारों की आवाज सुनकर दूर से ही लौट जाता था। उस दिन उन साधारण नौसैनिकों की कारगुजारी देखकर किसी ने 'तलवार' पर आने का साहस नहीं किया।.....

बम्बई में एच० एम० आई० एस० 'तलवार' ब्रिटानियां का दूसरा सबसे बड़ा सैनिक सिग्नल ट्रेनिंग स्कूल था, जिसका संचालन ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में रहता था। करीब १५०० नौसैनिक थे वहां। 'यद्यपि तलवार' पर कुछ भारतीय अधिकारी भी होते थे, पर नौसैनिकों के प्रति उनका व्यवहार अच्छा नहीं था। इस कारण वहां असन्तोष तो था ही, लेकिन खराब भोजन ने जल्दी ही नौ सैनिकों को विद्रोह की स्थिति में पहुंचा दिया। लेफ्टीनेंट कमाण्डर कोल वहां एक अत्यन्त उदार शिष्ट अधिकारी था। नौसैनिक उसे पसन्द करते थे। 'तलवार' की दीवारों पर एक बार 'जयहिन्द' और 'भारत छोड़ो' नारे लिखने के कारण उसने किसी के विरुद्धकोई कार्यवाही नहीं की थी और यही कारण

के मुंह बंबई की तरफ कर दिये

था कि कोल को फ्लैग आफिसर द्वारा जल्दी ही वहां से हटा दिया गया। उसके स्थान पर कमाण्डर किंग को भेजा गया। उसने आते-ही-आते दोनों सैनिकों को बिना किसी तहकीकात के दण्ड दे दिया। इससे नौसैनिकों में रोष व्याप्त था।

ब्रिटिश विरोधी नारे लिखने के अपराध में एक सीनियर नौसैनिक मुख्य टेलीग्राफिस्ट श्री बी० सी० दल को भी गिरफ्तार किया जा चुका था। उस दिन जबकि २ फरवरी को 'तलवार' पर प्रधान सेनापति आने वाले थे, उनके इस अपराध को गम्भीरता से लिया गया। लेकिन 'तलवार' पर नौसैनिकों की गतिविधियां कम नहीं हुईं। ६ फरवरी को कमाण्डर किंग की कार पर भी किसी ने अंग्रेज विरोधी नारे अंकित कर दिये। सवेरे रसद आदि लाने के लिए कुर्ला के डिपो में जाने वाले ट्रकों पर भी ऐसी इबारतें लिखी देखी गईं।

उस दिन नौसैनिक लगातार पांच घण्टे तक अपना असन्तोष जाहिर करते रहे। बीच में, करीब ११ बजे दो भारतीय अधिकारियों-लेफ्टिनेंट कोहली और लेफ्टीनेन्ट नन्दा ने नौसैनिकों से उनकी मांगों के बारे में पूछताछ करने का प्रयत्न किया, पर नौसैनिकों ने उनसे कुछ भी कहने से साफ इन्कार कर दिया। वे अधिकारियों से कोई बातचीत नहीं करना चाहते थे। स्थिति की भयंकरता को समझकर बम्बई नौसेना का सबसे बड़ा अधिकारी-फ्लैग आफिसर रियर एडमिरल रैट्रे 'तलवार' पर आया। कैप्टेन इनिगो-जोन्स उसके साथ था। दोपहर का १ बज चुका था। उसने सीधे जाकर नौसैनिकों से अनुरोध किया कि वे काम पर वापस लौट जायें क्योंकि वह उनकी मांगों के बारे में पूरी तरह सावधान है और उन पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेगा। वह भोजन में सुधार भी करायेगा। किंग की गतिविधियों के कारण ही नौसैनिक भड़क रहे हैं, ऐसा समझता था वह। उसने आश्वासन दिया कि शीघ्र ही किंग के स्थान पर इन्डो-जोन्स की नियुक्ति कर दी जायेगी। पर नौसैनिक इस मुद्दे पर शान्त नहीं हुये। वे अति क्रुद्ध थे। जोन्स के कारण ही १९४४ में नौसेना की एक बैरक में इसी तरह का एक छोटा-सा आन्दोलन हो चुका था। नौसैनिक चिल्लाये-

'हम जोन्स को नहीं चाहते हैं। हमें कोहली, शा या दूसरा कोई भारतीय अधिकारी दिया जाये।'

कुछ नौसैनिकों ने नारे भी बुलन्द किये रैट्रे आश्चर्य में था। उसकी योजना धाराशायी हो चुकी थी। वह क्रुद्ध भी हुआ। नौसैनिकों को समझाया भी, पर

किसी ने उसकी एक नहीं सुनी। वह वापस चला गया।

नौसैनिकों को काम पर वापस लाने के सभी प्रयत्न व्यर्थ चले जा रहे थे। रैंट्रे ने प्रस्ताव किया कि नौसैनिक यदि अपने प्रतिनिधि शांतिपूर्ण बातचीत के लिए भेजे तो उनकी मांगों पर चर्चा की जा सकती है। प्रस्ताव उसका किसी ने माना नहीं। अपनी मांगे स्वीकार न होने तक काम पर वापस जाने को नौसैनिक तैयार नहीं थे। रैंट्रे की बात षड़यन्त्र लग रही थी। उन्हें वे अपने प्रतिनिधि भेजने के मामले में सशंकित थे। उन्होंने उत्तर भेजा—

'यदि हम तुम्हारे पास अपने प्रतिनिधि भेजेंगे तो तुम उन्हें सजा दोगे, जैसा कि तुम पहले कर चुके हो। हम किसी को भेजने के लिए तैयार नहीं है। हम एक राष्ट्रीय नेता चाहते हैं चाहे वह कांग्रेस से हो, मुस्लिम लीग से या कम्युनिस्ट पार्टी से जो हमारे मामले को तय करे।'

रैंट्रे को यह असम्भव लगा। वह इसे नौसेना का आन्तरिक मामला मान रहा था और उसकी दलील थी कि इसके लिए किसी बाहरी व्यक्ति की मध्यस्थता का प्रश्न ही नहीं उठता। पर उसने यह वचन दिया था कि किसी भी प्रतिनिधि नौसैनिक को किसी तरह दण्डित नहीं किया जायेगा।

उस दिन शाम तक 'तलवार' पर हुये इस विद्रोह का समाचार देश भर में फैल गया। आकाशवाणी ने इस घटना का बुलेटिन प्रसारित किया था। बम्बई के सभी समुद्री जहाजों, बन्दरगाहों और दूसरे ठिकानों पर यह खबर आग की तरह फैल गई कि 'तलवार' के साथी अपने न्यायोचित अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

प्रत्येक जगह उत्तेजना का वातावरण था। 'कैसल बैरक, 'फोर्ट बैरक' तथा दूसरे समुद्र तटीय मुकामों पर नौसैनिक छोटे-छोटे दलों में इस मुद्दे को लेकर चर्चा कर रहे थे। गुप्त बैठकें भी हुई। कभी-कभी बहस भी छिड़ जाती कि क्या वे वास्तव में आज एक बड़े संग्राम की शुरूआत करने जा रहे हैं? क्या देश के लोग उनके इस कदम का समर्थन भी करेंगे? उन्हें 'तलवार' के भाइयों के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए। उन्होंने तय कर लिया कि वे अब अपमान और पीड़ा की जिन्दगी नहीं जी सकते। कल वे हड़ताल पर चले जायेंगे।

उस रात जहाजों पर भी ऐसा ही हुआ...

एच० एम० आई० एस० 'गोंडवाणा' पर भी खलबली थी। किसी ने पूछा था—'क्या 'तलवार' हड़ताल पर है'

'हां सभी नौसैनिक भूख हड़ताल पर हैं'—सुनकर बड़बड़ाये थे वे। धीरे से कुछ बातें भी हुई और फिर इधर-उधर चले गये। अपने सोने के स्थानों पर वे इकट्ठे हुए। विस्मय से भरे कुछ सोच

रहे थे वे। कई क्षण तक कोई कुछ बोला नहीं। अचानक नीरवता को भंग करते हुए एक ने कहा—'अच्छा, हमें क्या करना चाहिये ?'

'हम भी हड़ताल करेंगे। हमारे साथ जिस तरह का सुलूक किया जाता है, उसका बदला लेने का यही तरीका है।' दूसरा बोला।

एक वरिष्ठ नौसैनिक ने बीच में टोका—'बिना यह जाने कि हमारे साथियों ने ऐसा कदम क्यों उठाया, हम हड़ताल पर जाने का निर्णय कैसे कर लें ?'

एक क्षण को समय जैसे ठहर गया हो वहां सभी शान्त थे। वरिष्ठ नौसैनिक ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा: 'क्या तुम सोचते हो कि बगैर किसी तैयारी के हड़ताल पर जाना आसान है? यदि हम अपने 'तलवार' के साथियों के समर्थन में हड़ताल करते हैं, तो हमें जहाज पर प्रत्येक से बातचीत करनी होगी और इस मुद्दे पर उन्हें तैयार करना पड़ेगा। यदि हम यह कार्य सफलतापूर्वक कर सकते हैं, तभी हम हड़ताल पर जाने का फैसला ले सकते हैं।

एक युवक नौसैनिक को यह सब बर्दाश्त नहीं हो रहा था। व्यग्र स्वर में बोला वह—'क्या तुम समझते हो कि हम हड़ताल के लिए तैयार नहीं हैं ? क्या अब भी तुम्हारा ख्याल है कि हड़ताल के लिए लड़ने वाले लोगों को समझाने की आवश्यकता है ? अगर तुम ऐसा समझते हो तो तुम्हारा ख्याल गलत है।'

उसने आगे कहा—'रोजाना अखबार खोलते ही एक ही बात सामने आती है—बम्बई में गोली चली। कलकत्ता में गोली चली। आज तक इन सफेद चमड़ी वालों ने हम पर जुल्म किया है। अब हम इन्हें दिखा देंगे कि हिन्दुस्तानी अपने बच्चों का बदला लेना जानता है।'

प्रत्येक उसकी इस बात को मान रहा था। वरिष्ठ नौसैनिकों ने विश्वास दिलाया उसे कि अपने 'तलवार' के भाइयों के समर्थन में हड़ताल पर न जाने का तो प्रश्न ही नहीं है। हां, सवाल सिर्फ तैयारी का है। अपने साथियों को बचाने में यदि हमारी जिन्दगी भी दांव पर लगती है, तो भी हमें साहस नहीं छोड़ना चाहिये।

उस रात कोई फैसला नहीं हो सका वहाँ। कोई सोया भी नहीं। सभी सोच रहे थे कि कैसे 'तलवार' के भाइयों की मदद की जाये...

एच० एम० आई० एस० 'पंजाब' पर बहुत जल्दी प्रतिक्रिया हुई। उन्हें दोपहर बाद 'तलवार' का समाचार मिल गया था। सांध्य समाचार पत्रों ने नौसैनिकों की कुछ मांगों को प्रकाशित भी किया था। 'पंजाब' पर रात्रि के दस बजे प्रमुख नौसैनिकों की एक बैठक बुलाई गई, जिसमें १५ सदस्यों ने हड़ताल की स्थिति का जायजा लिया। वे जल्दी ही निर्णय पर पहुंच गये। 'तलवार

क ी मांगों पर उन्होंने गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया और प्रस्ताव किया कि ये मांगें नौसैनिकों की प्रारम्भिक मांगें हैं। अतः वे अगली सुबह हड़ताल पर चले जायेंगे। उन्होंने फैसला किया कि अधिकारियों को हड़ताल की सूचना देने के उपरान्त वे सफेद झन्डे को गिरा देंगे और इसके स्थान पर देश के तीन प्रमुख राजनैतिक दलों के ध्वज फहरायेंगे उन्होंने यह भी तय किया कि वे पड़ोसी जहाजों पर जाकर उनसे आंदोलन में सम्मिलित होने का अनुरोध भी करेंगे। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' हमारी मांगें पूरी हों' 'आजाद हिन्द सेना' के बन्दियों को रिहा करो', 'जयहिन्द' आदि नारों का चुनाव भी फल के लिए कर लिया था उन्होंने।

मीटिंग एक घन्टे तक चली। तत्पश्चात जहाज के चारो ओर जाकर सभी को निर्णय की सूचना पहुंचा दी गई।

एच० एम० आई० एस० 'बड़ोदा' उस समय कोलम्बो में था। एक सम्पर्क करने वाले नौसैनिक ने अपने वायरलेस टेलीग्राफ सेट पर बी० बी० सी० से 'तलवार' का समाचार सुन लिया था। समाचार को दूर-दूर तक पहुंचाने में वह सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुआ। समुद्र पर रात उत्तेजना का वातावरण बना रहा। जिन्हें अब तक भाड़े के सैनिक कहा जाता था, दूसरे दिन सुबह तड़के वे एक महान युद्ध में आहुति देने जा रहे थे...

१८ फरवरी को प्रातः लगभग २०,०० नौसैनिक हड़ताल पर थे। उस दिन सब अखबार की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी को 'तलवार' की ताजा स्थिति के बारे में जानने की उत्सुकता थी। 'कैसल बैरक' में सुबह अखबार आते ही सब घेरकर खड़े हो गये। उनमें से एक ने मोटे हरफों को पढ़ना शुरू किया. 'भारतीय नौसैनिक हड़ताल पर'...'कमांडिंग आफिसर के अपमानजनक व्यवहार से नौसैनिकों में तीव्र रोष'...'नौसेना अधिकारियों में घबराहट'...'भारतीय यूनिट की अन्य देशों से संचार व्यवस्था भंग।'

इसके बाद सभी नौसैनिक मैदान में एकत्र हुए। वे जोर-जोर से बातचीत कर रहे थे कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। एक ने भूख हड़ताल पर जाने का सुझाव दिया। दूसरे ने कहा—'नहीं सबसे पहले हम 'तलवार' पर जायेंगे। हम निश्चय करेंगे कि हमें क्या करना चाहिये।' फिर और भी प्रस्ताव आये। बहसें हुई। वे जोर देकर कह रहे थे—'हमने अभी समाचार पढ़ा कि 'तलवार' पर हमारे भाई भूख हड़ताल पर चले गये हैं। कमांडिंग अफिसर ने नौसैनिकों को गालियां भी दी। यह हमारे जीवन में पहला अवसर नहीं है, जब हमें यह सुनना पड़ा हो। ऐसा कई बार हुआ था, पर 'तलवार' पर आज हमारे भाइयों ने युद्ध का बिगुल बजा दिया है। हम किसी अधिकारी का दुर्व्यवहार अब बर्दाश्त नहीं कर सकते।'

सब शान्त होकर सुनते रहे। स्वीकृति में उन्होंने अपने सिर हिलाये थे। तभी एक नौसैनिक एक कटोरी दाल लेकर दौड़ता हुआ आया। दाल खाने के लायक नहीं थी। बोलने वाले ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—'तुम देख ही रहे हो, यह दाल हमारे भोजन के लिए बनाई गई है—दुर्गन्ध भरी और अधपकी दाल।' उसमें भूसी छानी नहीं गई थी और कंकड़ साफ नजर आ रहे थे। उन्होंने कहा कि अब हम 'तलवार' के भाइयों का समर्थन करेंगे और इस भोजन को नहीं खायेंगे। नौसैनिक जोर से चीखे-'तलवार पर चलो।'

नौसैनिकों ने बैरकों के चक्कर लगाये, लोगों से मिले भी और नारे लगाकर गन्तव्य की ओर चल पड़े। उनके आक्रोश भरे स्वर वातावरण में गूंज रहे थे—'इन्कलाब जिन्दाबाद' 'हिंदू-मुस्लिम एक हों'।

उसी समय 'कैसल बैरक' का कमांडर आफिसर स्ट्रीट फील्ड जेम्स वहां पहुंचा। उसने नौसैनिकों को धमकी दी। पर नौसैनिक उस दिन लौटने के लिए नहीं निकले थे। वे चल पड़े, जहां जाना था उन्हें। उनमें से कोई कांग्रेस, मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी के झण्डे भी ले आया। जनता आश्चर्य से देख रही थी। फुटपाथों पर भारी भीड़ थी। औरतें खिड़कियों से झांक रही थी। बच्चे अपना खेल बन्द कर उस ओर कौतूहल से देखने लगे थे। नौसैनिक देश के बारे में कितनी गम्भीरता से सोच रहे थे, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वे अपने इस अभियान में 'कांग्रेस-लीग एक हो' के नारे लगा रहे थे। उस दिन हजारों नागरिक नौसैनिकों का उत्साह देखकर उनके साथ चल पड़े। अजीब नजारा था वहां नागरिक भी ऊंचे स्वर में नारे लगा रहे थे 'फोर्ट बैरक' पहुंच कर वे एक साथ चिल्लाये—'तलवार' पर चलो।'

भीड़ बढ़ती जा रही थी। 'फोर्ट बैरक' के सिपाही भी अपने बैनर और झण्डे लेकर उनके साथ चल पड़े। कुछ सिपाही ट्रकों पर भी सवार थे। बोरी बन्दर के मार्ग में एक गोरे सार्जेण्ट ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। नौसैनिक उस पर टूट पड़े सार्जेण्टर खूब पिटा और उसका रिवाल्वर भी छीन लिया गया। वह मुश्किल से जान छुड़ाकर भाग सका। हार्न बे रोड (अब दादा भाई नौरोजी मार्ग) पर पहुंचकर जुलूस ने दूकानदारों से आग्रह किया और कहा कि वे उनके आंदोलन का समर्थन करें। भारतीय दुकानदारों ने शीघ्र ही दुकानें बन्द कर दी। उनमें से बहुत से उस अभियान में सम्मिलित भी हो गये। विदेशी दुकानदार दुकानें बन्द करने का विरोध कर रहे थे। नौसैनिकों का आवेश चरम सीमा पर था। वे दौड़कर दुकानों पर चढ़ गये और जो भी मिला, उसे तोड़ते और नष्ट करते गये। उस दिन प्रत्येक

विदेशी चीज पर उनका क्रोध बरस रहा था। जो भी विदेशी शहर के राजमार्ग पर उनके सामने पड़ जाता, वे उसी के पीछे दौड़ पड़ते। यू० एस० आई० एस० के पुस्तकालय पर से अमरीकी झण्डा उतार कर जला दिया। 'ईवनिंग न्यूज' ने उस दिन सम्पूर्ण घटनाक्रम को देखकर लिखा था—'नौसैनिक बौरा गये हैं।'

'तलवार' पर भारी भीड़ थी। प्रत्येक जहाज और बन्दरगाह से नौसैनिक वहां पहुंच रहे थे। प्रमुख हड़तालो श्री बी० सी० दत्त के शब्दों में-'वैसे तो 'तलवार' के तार विभागीय नौसैनिक अपने को ऊंचा मानते और सामान्य नौसैनिकों से मिलने में हेठी समझते थे। मगर आज 'तलवार के नौसैनिकों ने 'कैंसल बैरक के सामान्य नौसैनिकों का हार्दिक स्वागत किया। हम लोग भारतीय ढंग से परस्पर गले मिले।'

१२.३० बजे परेड मैदान में सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। तलवार हड़ताल समिति के एक नौसैनिक ने कहा—'जब हमने आंदोलन आरम्भ किया तो हम कभी नहीं सोचते थे कि हमें अपने भाइयों से इतना बड़ा सहयोग मिल सकेगा। हमें समाचार मिला है कि शाही नौसेना के सभी नौसैनिक बाकायदा संघर्ष में सम्मिलित हो गये हैं। बम्बई के ग्यारह तटवर्ती अड्डों और बन्दरगाहों में खड़े जहाजों के २०,००० नौसैनिकों ने बर-तानियां का झण्डा उतार कर फेंक दिया है। अंग्रेजी सरकार अपनी सेवा के एक समूचे विभाग पर से नियन्त्रण खो चुकी है। हड़ताल ७४ जहाजों, ४ बेड़ों और २० तटवर्ती अड्डों (जिनमें ४ बड़े अड्डे थे) तक फैल चुकी है। दूसरे शब्दों में हड़ताल मुकम्मिल है और अपनी इस एकता पर आज हमें अत्यधिक गर्व का अनुभव हो रहा है।

'अभी आप सब जब यहां आ रहे थे तो आप में से कुछ ने बहुत कुछ ऐसा कर डाला है जो हमें नहीं करना चाहिये था। परन्तु मैं इसके लिए आपको दोषी नहीं ठहराता। हम जानते हैं कि हमने आज तक कितना अपमान पूर्णवक्त गुजारा है और मैं यह भी समझता हूं कि आज हमारे लिए अपनी भावनाओं को कैद में रखना नितान्त मुश्किल था।' पर हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारा संघर्ष अहिंसात्मक है। मैं आप से मांगें पूरी न होने तक आन्दोलन चलाने के साथ-साथ अनुशासित रहने की भी अपील करता हूं। हमारी प्रमुख मांगें जो अधिकारियों के सम्मुख रखी जा रही हैं—जो इस प्रकार हैं—

(१) आई० एन० ए० सहित सभी राजनैतिक बन्दियों को रिहा किया जाये।

(२) नौ सैनिकों को गाली देने के अपराध में 'तलवार' के कमाण्डिंग आफिसर किंग के विरुद्ध कार्यवाही की जाये।

(३) शाही नौसैनिकों के समान वेतन और भत्ते आदि दिया जायें।

(४) अच्छा भोजन दिया जाये।

(५) इन्डोनेशिया से भारतीय

सैन्यदल की वापसी हो।

मांगों के बारे में नौसैनिकों को विस्तार से बताया गया और यह भी घोषणा की गई कि उनके नेताओं ने कांग्रेसी नेता श्रीमती अरुणा आसफ अली से आंदोलन का समर्थन करने और निर्देश देने का अनुरोध भी किया है। वे यह भी बोले कि श्रीमती आसफ अली ने बाद दोपहर यहां आने का वादा भी किया है।

बहुत से नौसैनिक इसके पश्चात अपनी बैरकों और जहाजों पर वापस चले गये। कुछ 'तलवार' पर ही और अपने गुजरे वक्त की बातों और अनुभवों को एक दूसरे से कहते रहे। हड़ताल के नेताओं ने कुछ ट्रक शहर के विभिन्न भागों में भेजें, ताकि वे नौसैनिकों की गतिविधियों को देखते रहें। ट्रकों पर तीनों राजनैतिक दलों के झण्डे लगे हुए थे। वे अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों और अपनी मांगों के बारे में बताने के साथ-साथ नागरिकों से अपने संघर्ष को मदद देने की अपील भी कर रहे थे।

लगभग १ बजे कुछ पत्रकारों ने 'तलवार' पर पहुंचने का प्रयत्न किया। मुख्य द्वार पर संतरियों ने उन्हें घुसने से रोका। एक नौसैनिक उन्हें शाही दरवाजे की ओर ले गया, जहां कुछ नौसैनिक दीवार पर बैठे थे। पत्रकार दीवर फांदकर अन्दर पहुंच गये। भीतर उत्तेजना थी और नौसैनिक समूहों में चर्चा कर रहे थे। पत्रकारों ने देखा, वहां एक कोने में एक नौसैनिक मेज पर खड़े होकर छोटी भीड़ को सम्बोधित कर रहा था। उन्होंने नौसैनिकों को भोजन तथा दूसरी शिकायतों के बारे में बातचीत करते सुना। उनमें ब्रिटिश विरोधी भावना थी। पत्रकारों ने देखा, वहां चारो ओर अंग्रेज विरोधी नारे और 'जयहिन्द' शब्द लिखे हुए थे।

१९ फरवरी की शाम तक 'तलवार' और दूसरे जहाजों पर चलाये जा रहे आन्दोलन का समन्वय और संचालन करने के लिए 'नौसेना केन्द्रीय हड़ताल समिति' का गठन कर लिया गया। इसका मुख्यालय 'तलवार' था। जहाजों तथा दूसरे तटवर्ती अड्डों के साथ सम्पर्क रखने के लिए वायरलेस सेट का उपयोग किया गया। कहा जाता है कि टेलीग्राफिस्टों ने एक नया सांकेतिक कोड भी बना लिया था ताकि उनके संवाद पकड़े न जा सके और हड़ताल की गति में कोई बाधा न पड़े। हड़ताल समिति ने एक प्रस्ताव पास करके यह घोषणा की कि अब वे अधिकारियों से कोई बातचीत नहीं करेंगे और केवल राष्ट्रीय नेताओं के आदेशानुसार ही कार्य करेंगे। उन्होंने रॉयल इण्डियन नेवी का नाम बदल कर इण्डियन नेशनल नेवी रख लिया था। पूरी शाही नौसेना पर केन्द्रीय हड़ताल समिति का अधिकार था। रैटरे ने एक बार फिर हड़ताल समिति के कुछ सदस्यों से बात-

चीत करने का प्रयत्न किया। यद्यपि रैटरे ने कहा था कि वह इस मामले को नेवी मुख्यालय के सामने रखेगा और उसके परिणाम से समिति को सूचित भी करेगा। पर इस बात पर समिति संतुष्ट नहीं थीं।

समाचार पूरे देश में फैल गया था कि पूरी नौ सेना पर केन्द्रिक हड़ताल समिति का कब्जा है। जनता ने हड़ताल की सफलता की कामना की थी। नौ-सैनिक राष्ट्रीय नेताओं की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहे थे। वे चाहते थे कि उनमें से कोई आये और उनके संग्राम का नेतृत्व करे। वे यह भी जानना चाहते थे कि राष्ट्रीय नेता उनकी इस लड़ाई के प्रति क्या दृष्टि कोण रखते हैं? उन्हें विश्वास था कि अरुणा आसफ अली उनके इस आन्दोलन को समर्थन देंगी। पर वैसा नहीं हुआ। उन्होंने हड़ताल समिति के सदस्य प्रतिनिधियों से कहा कि वे "शान्त' रहें। नौ सैनिकों को उनका यह कहना अजीब-सा लगा। विशेषकर उन परिस्थितियों में, जबकि पूरी नौ सेना पर उनका कब्जा हो चुका था। और ऐसे में अरुणा आसफ अली का यह कहना कि नौ सैनिकों की मांग में कमजोरियां हैं अथवा उन्हें अपनी नौकरी सम्बन्धी मांगों के साथ राजनीतिक मांगें नहीं जोड़नी चाहिए, "हमारे राष्ट्रीय नेताओं के खोखलेपन को जाहिर करता है। वे बगावत से डर रहे थे। वह सोचकर कितनी भयंकर भूल की थी उन्होंने ब्रिटिश सेना के एक समूचे अंग पर कब्जा कर लेने के पश्चात नौ सैनिक "शान्त" कैसे रह सकते थे? इस तथ्य को कोई नहीं समझ सका कि ऐसी स्थित में स्थल सेना और वायु सेना को भी विद्रोह में सम्मिलित किया जा सकता है। और तब एक बड़ी क्रांति की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता था, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य जल कर राख हो जाता। सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी नौ सैनिकों को "बेमतलब की बात में टांग अड़ाने वाले चन्द उतावले लोग' कहकर उपेक्षा बरती।

क्या वे नहीं समझते थे कि देश की आजादी की लड़ाई में सेना की भी एक भूमिका हो सकती है? प्रमुख हड़ताली नौ सैनिक श्री बी० सी० दत्त ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा, वह ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार—"उस समय अखिल भारतीय स्तर का कोई नेता हमारे बीच प्रकट होता, जैसे कि सुभाष प्रकट हुए थे, जब रास बिहारी बोस और मोहन सिंह द्वारा स्थापित आजाद हिन्द फौज स्वामिभक्तों के विरोध के कारण डगमगाने लगी थी। पर हमारे सभी नेता —हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख सभी अंग्रेजों से बातचीत और सम्मेलनों के कायल हो चुके थे। वे विदेशी शासन के विरुद्ध हमारे साथ लड़ने की स्थित में नहीं रह गये थे। तब हमें क्या मालूम था कि सुधार और अहिंसा आन्दोलन में विश्वास रखने वाले नेताओं की मदद से क्रांति का चक्र नहीं

घुमाया जा सकता। सिद्धान्तों की बात जाने दे, तो भी भारतीय राजनीतिज्ञ अब निकट आ पहुंची सत्ता की चांदनी देखकर मुदित थे और सत्ताधारियों के लिऐ सेना की अनुशासनहीनता से बढ़कर कोई विभीषिका नहीं।"

यद्यपि अरुणा आसफअली के व्यवहार से नौ-सैनिक क्षुब्ध थे। पर उन्होंने अपनी बैठक बुला कर स्थित का जायजा लेना आवश्यक समझा। समिति को फ्लैग आफिसर का संदेश प्राप्त हुआ था कि जहां नौ-सैनिकों की भोजन सम्बन्धी मांग का प्रश्न है, इसे मानने को वह राजी है; पर शेष मांगों को स्वीकार किया जाना असंभव है। 'तलवार' ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि वे अपना संघर्ष उस समय तक जारी रखेंगे, जब तक कि सभी नौ-सैनिकों की सम्पूर्ण मांगें स्वीकार नहीं की जातीं। :—

[अगले अंक में समाप्य]

पाणिनि-कालीन 'संघ राज्य'

पाणिनि ने आयुधजीवी संघों का भी उल्लेख किया है जो कि कौटिल्य के वार्ता शस्त्रोपजीवी संघों की भांति ही आर्थिक संघ थे। इस इस प्रकार के संघ राजनीतिक भी थे और अराजनीतिक भी। अराजनीतिक संघ को इकाई को बहुधा वर्ग कहा जाता था जो कि संस्था के अर्थ में गण का पर्याय होता है। इसका स्पष्ट उदाहरण बौद्ध साहित्य में मिल जाता है जिसमें पंचवर्ग-संघ, दस वर्ग-संघ आदि का उल्लेख है। इस प्रकार गण शब्द सामान्य अर्थ में संघ पर्यायवाची होता है जो कि समूह के अर्थ में प्रयुक्त होता है। विशेष अर्थ में गण शब्द आर्थिक संस्था के लिए रामायण आदि में उल्लिखित मिलता है और इस अर्थ में यह वर्ग का पर्यायवाची होता है। पारिभाषिक अर्थ में गण का प्रयोग गणराज्य के अर्थ में होता है। इसी प्रकार संघ शब्द भी सामान्य अर्थ में समूह के लिए, विशेष अर्थ में अराजनीतिक संस्था के लिए और परिभाषिक अर्थ में संघ राज्य के लिए प्रयुक्त होता है।

●डॉ० देवीदत्त शुक्ल

(पृष्ठ ८६ का शेष)

करेंगे इन्हें यह भी मालूम नहीं था। सारा उत्तरदायित्व मेरा और मेरे लेफ्टिनेन्ट चित्तप्रिय का है। तीन चारपाई लाकर जब घायल लोगों को सुला दिया गया और मनोरञ्जन तथा नीरेन को गिरफ्तार कर लिया तब यतीन्द्र नाथ ने मि० किल्वी से अन्तिम अनुरोध किया — देखो ब्रिटिश राज में इन लड़कों के साथ कोई अन्याय न हो क्यों कि जो कुछ हुआ है उसके लिए मैं उत्तरदायी हूं, दूसरे ही दिन १० सितम्बर को अस्पताल में यतीन्द्र नाथ की मृत्यु हो गयी। यतीन्द्र नाथ के कातर अनुरोध की रक्षा करने योग्य औदार्य विदेशी राज शक्ति में नहीं था मुकदमे में नीरेन तथा मनोरञ्जन को मृत्यु दण्ड हुआ। यतीश को रोगी होने के कारण आजन्म द्वीपान्तर कारावास का दन्ड दिया गया। लक्ष्य करने योग्य विषय यह है कि यद्यपि राज शक्ति जानती थी कि भारतवर्ष में ब्रिटिश राज-शक्ति का अन्त करने के लिए ही ये लने हुए थे तो भी राजा के विरुद्ध षड़यंत्र का मामला (waging war against King) साक्ष्य प्रमाणों के अभावों में नहीं लगाया गया। ट्रिब्यूनल में मुकदमा चला राजा मोहन्ति की हत्या का मामला।

महर्षि दयानन्द के संस्मरण

पानी का पेंदा

गुरदासपुर में मियां हरिसिंह और शेरसिंह कुछ पंडितों को अपने साथ लेकर स्वामीजी महाराज के पास शास्त्रार्थ के लिए गए। उस समय स्वामीजी का व्याख्यान हो रहा था। उन्होंने उसमें विघ्न डालना शुरू कर दिया और स्वामीजी को कुवाच्य कहकर अपमानित करने लगे परन्तु महाराज बिल्कुल शांत रहे। व्याख्यान बन्द करके उन्हें शंका समाधान करने का आह्वान किया।

एक पंडित ने गणानांत्वा मन्त्र को पढ़कर कहा 'इसमें गणेश की प्रतिमा की पूजा सिद्ध होती है।' महाराज ने उत्तर दिया 'अपना अर्थ किसी भाष्य में दिखलाइए।' उन्होंने महीधर भाष्य निकालकर आगे कर दिया। महाराज ने महीधर के अत्यन्त अश्लील अर्थों को सुनाकर कहा कि इसमें न तो 'मूर्तिपूजन है और न ही गणेश-पूजन। फिर भी आपने इस मन्त्र का सही अर्थ परमात्मा पर लगाकर जनता को बताया, इससे लोगों को पंडितों के पानी के पेंदे का पूरा पता लग गया।'

सर्वव्यापक

फिरोजपुर में पं० कृपारामजी ने महराज से पूछा 'खुदा महदूद है या ला महदूद?' स्वामी जी ने कहा 'मैं अरबी नहीं जानता, आर्य भाषा में भाषण कीजिए। क्या आपका तात्पर्य एक देशी अथवा सर्वव्यापक से है?' उन्होंने कहा- 'हां इसी से है।' तब स्वामीजी ने कहा 'परमात्मा सर्व व्यापक है।

पुजारी का अर्थ

एक दिन फिरोजपुर छावनी के एक बड़े मन्दिर का पुजारी स्वामीजी के पास गया। स्वामीजी ने कहा प्रश्न पीछे करना पहले यह तो बताओ कि पुजारी शब्द का अर्थ क्या है?' इस पर वह अवाक् रह गया। तब स्वामीजी ने बताया कि 'पुजारी पद का अर्थ है पूजा का शत्रु। आप लोग पंडित होकर ऐसे नाम क्यों रख लेते हैं?'

पुजारी ने महाराज से पुनः कहा—'वेद के आधार पर सारे शास्त्र रचे गये हैं इसलिये उनका भी तो वेदों की तरह प्रमाण मानना चाहिए।' महाराज ने उत्तर दिया कि 'वेद के आश्रय से तो मन्य ग्रन्थ बने हैं परन्तु थैली में रखे रुपयों को जैसे परीक्षक ही परख सकता है ऐसे ही दूसरे ग्रन्थों की सत्यता का निर्णय करना केवल विद्वानों का ही काम है।' ००

(पृष्ठ ८५ का शेष)

सुनिए, 'दुग्गिराल वाले के घर शादी सम्पन्न हुई न ? उनको किस चीज की फिकर ? दादे परदादे उनके खूब कमा कर छोड़ गये। क्या शादी, क्या ब्याह, सब करेंगे। उनमें शराफत और ईमानदारी है ही कहां ? गरीबों को लूटो और मौज उड़ाओ।'

यह उसकी समझ के बाहर की बात थी कि धन चालबाजी व धोखेफरेबी को छोड़, शराफत से भी कमाया जा सकता है।

यदि कोई कहे कि अमुक लड़की परसों रात घर से भाग निकली, तो वह झुंझला कर कह उठती— 'राम,राम ! सुबह-सुबह कैसी बातें कान में पड़ गयीं। क्यों बताने आयी ऐसी बातें ? मुझे राम-नाम-जाप को छोड़, किसी अन्य चीज से कोई मतलब नहीं...किस के संग भाग गयी?,

मैं नहीं जानती। इतना ही पता चला कि वह अपनी दीदी के यहां भाग गयी है।,

'बस ! इतनी-सी बात थी और तुम दुनियां-जहान में ढिंढोरा पीटने निकली हो सुबह-सुबह ?'

'क्या मालूम था मुझ ? उन लोगों ने ही बताया।'

इस सिलसिले में विशिष्ट जानकारी पाने के लिए वह अपने पूरे शरीर को कान बना खड़ा करतीं। जब आगन्तुक आगे कुछ नहीं बताती, तो शेष-मा कहती— 'मैं तो इस झमेले में नहीं पड़ने की...पर...पर दीदी के पास लेके ले कौन गया था ? मर्द उसके साथ कोई जरूर हुआ होगा। ठीक से देखने को कहो। दोनों को पकड़ कर लोहे से जला दो। खुद ही रास्ते पर आ जाएंगे और कभी भूल कर भी आइन्दा ऐसा नहीं करेंगे।... छोड़ो भी ! मुझे क्या लेना-देना। लाख मना करती हूं; फिर भी बार-बार क्यों मुझे ऐसी गन्दी बातें सुनाती हो ? वह दीदी के घर गयी या भाड़ में, मेरा क्या जाता है ? जानती हो, दीदी उसकी कैसी है ? ठाट-बाट वह करती बहुत है। ... जाने दो, इससे मुझे क्या ? काम-काज करते-करते मेरे हाथ टूटे जा रहे हैं।'

'घर में बहू जो है ?'

'बहू ? उसके हाथ-हाथ कहां ? नवविकसित फूल है। और पैर उसके पैर नहीं, कमल-पत्र हैं। काम करने से बहू मुरझा न जायगी ?'

'और बेटी आप की ?'

वह तो रोगी ठहरी, बेचारी। वह कर ही क्या सकती है ?'

'पर चाची देखती हूं, वह तो अच्छी-तगड़ी नजर आती है ?'

'देखने में तो ऐसी ही है, पर अन्दर घुली जा रही है बेचारी। दो कदम चली नहीं कि बस ! थक कर पड़ गयी।"

'हमेशा कुछ न कुछ मुंह में डाल कर चबाती रहेगी तो क्या होगा चाची ?'

हायरी मेरी बिटिया ! चबाना

क्या ? यह तो ठीक से खाना भी नहीं खा पा रही। अब तुम्हीं बताओ, अगर जल-पान भी कुछ न करे तो कैसे जीएगी मेरी बिटिया ?'

'मेरी लड़की सुन्दरलक्ष्मी को ही देखो न, चाची ! कभी खांसने या चौंकने तक का नाम नहीं लेती।'

'हां ! ऐसे लोग एक दिन अचानक खटिया पकड़ लेते हैं। मेरे मामा जी के पोते को ऐसा ही हुआ था।'

शेषम्मा की दुनियां अपने काम काज और रीति-रिवाज तक ही सीमित है। मुंह अंधेरे खटिया छोड़, रात के ग्यारह बजे तक (अपराह्न दो घटे विश्राम को छोड़) कुछ काम करती ही रहती है। गत तीस वर्षों में यह एक क्रम सा हो गया है। जब तक वह काम करती रहती है उसका मुंह भी चालू रहता है। भोर उठते ही गत रात जिन बच्चों ने शोर-गुल मचाये थे उनको तथा चूहों को गालियां बकती है। उसके बाद दस बजने तक नौकरानी पर फिकरें कसती है; कौवों को मर जाने का शाप देती है। साग-सब्जी बेचने वालों को गालियां बकती है जिन्होंने भूल कर भी उन्हें अच्छी तरकारी नहीं दी। ग्वालिन पर बरस पड़ती है, जिसने आज तक कभी अच्छा दही न दिया। दोपहर को पास-पडोसियों को, बहू और बेटे के अत्याचार तथा अकृतज्ञता पर, भगवान को, चिड़ियों को तथा राहगीरों को किसी न किसी बहाने गालियां बकती ही रहती ; जब कभी कोई उसकी गालियों का शिकार नहीं हो पाता तो रात के दस बजे खुद को गालियां बकना शुरू कर देती। बगैर काम के क्षण को वह सोच भी नहीं सकती। उसका शरीर एक यन्त्र-सा बन गया है। दिल दिमाग से काम लेना छोड़े उसे कई एक साल बीत गये। अब यन्त्रवत काम करती है। यदि इसमें कुछ भी हेर-फेर हुआ तो मशीन एक पग भी आगे नहीं बढ़ पाती। उसकी जिन्दगी का हर दिन बरतन मांजना, पानी से घर-द्वार की सफाई करना, गोबर से आंगन लीपना इत्यादि से शुरु हो कर इसी में खत्म होता है। सिवा इनके न तो उसके मन में आज तक कोई नया विचार आया, न कोई नया काम ही बन पडा। इससे तो कोल्हू का बैल कई गुना अच्छा है। इसी से ये लोग परिवर्तन के नाम से जल उठते हैं। बगैर दांत के बच्चों को पाठ पढ़ाना एक बूढ़े मास्टर जी के लिए जितनी तकलीफदेह बात होती है, वही कष्ट शेषम्मा को बिना हींग के रसोई बनाने पर होता है। इतने साल जी-तोड़ मेहनत की उसने, पर फायदा क्या हुआ और किसको ? घर में प्रायः कोई भी उस पर कृतज्ञता प्रकट नहीं करता। अपितु अकारण ही खीझते रहते हैं। वह रसोई बनाती है, चार आदमी को खिला कर खुद कुछ खा लेती है और घर में कूड़ा-कचरा फैला डालती है। मगर क्यों ? पुनः रसोई करने करने के लिए। पर भाई, रसोई क्यों करें ? फिर से कूड़ा

डाल रखने के लिए। जितने वर्षों से वह खाना पकाती आयी है उतने समय में कम से कम तीन सौ आदमियों के लिए प्रीति-भोज बना सकती थी। यदि स्वर्ग में बरतन की सफाई व कपड़ों की धुलाई न हो तो शेषम्मा स्वर्गवास के लिए संभवतः कतई राजी नहीं हो सकेगी।

बेचारी ने अपने जीवन से अरमानों, सपनों, आनन्द वनयी रोशनी को निकाल दिया है। अपने रसोईघर को ही अपनी दुनियां बना, दिल के दर्द में आनन्द की अनुभूति करती रही है। इक्के-दुक्के लोगों को ही अपनी जबान की खुजलाहट मिटाने का साधन बना, अपनी रीति-रिवाजों तथा तुलसी माता पर ही गर्व कर अपना जीवन जी रही है। देश में भूचाल आ जाए या देश का नाश हो जाए, उससे कोई ताल्लुक नहीं। वह घर के सौ गज दायरे को छोड़ दूर देखने में असमर्थ; बिल में रहने वाले चूहे की भांति जी रही है। आत्मीयता बरसाकर किसी को अपनाने की अपेक्षा किसी से घृणा करना आसान है। फिर एक लाचार विधवा की आत्मीयता स्वीकारने कौन तैयार होगा? जब-जब उसकी बहू मां बनती गयी थी, शेषम्मा ने एक-एक कर उसके बच्चों को अपनाने की कोशिश की थी, पर हर बार बहू ने अपनी हरकतों से जाहिर कर दिया था कि ये बच्चे उसके अपने थे। बच्चे जब तीन साल के हो जाते तो इस असहाय बूढ़ी विधवा पर डंडे फेंक कर आत्मीयता जतलाते। जीवन में आत्मीयता, चाव व हमदर्दी के अभाव से मजबूर घर की जो तोड़ मेहनत में अपनी पूरी ताकत लगा, घृणा में ही अपने प्रेम को जता, और गालियों में ही अपने आनन्द को सहेज; वह अपने जीवन को ढोती रही। धरती पर ऐसे कितने वीरान दिल वाले होंगे; क्या हिसाब है? ये न खुद ही सुखी होते हैं, न दूसरों को सुखी होने देते। अंततः मृत्यु से ही इन्हें मुक्ति मिल पाती है। इसका जिम्मेदार कौन है? समाज? स्वयं वे ही? ० ०

● अनु: निर्मलानन्द 'वात्स्यायन'

हरिसिंह नलवा की वीरता का कारण

एक दिन स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मचर्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा—सरदार हरिसिंह नलवा जो इतने वीर हुए हैं इसका प्रबल कारण यही था कि वे पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे थे। यद्यपि मेरी आयु इस समय पचास वर्ष से ऊपर है परन्तु कोई बलिष्ठ व्यक्ति सामने आए, मैं उसका हाथ पकड़ता हूं, वह छुड़ाकर दिखलाए, अथवा मैं भुजा फैलाता हूं, कोई उसे झुकाकर दिखाए।' उस बड़ी सभा में अनेक महामल्ल (पहलवान) भी उपस्थित थे परन्तु स्वामीजी के आगे आने का साहस किसी ने भी नहीं किया।

● स्वामी दयानन्दजी

(पृष्ठ ८१ का शेष)

उठे और उसकी बातों का उत्तर दिये बिना बाहों में भर लिया।

मृदाल कसमसाई और दूर छिटक गयी, किन्तु शीघ्र ही उसे अपनी भूल का भान हुआ, वह हरिहर से क्षमा मांगती हुई बोली —"महाराज, हम मगध की राज-नर्तकियाँ नगर-वधुएँ कहलाती हैं, नगर भर के लोग मुझसे मनोरंजन करते हैं किन्तु शरीर समर्पण अपनी इच्छा पर है। हमारे यहाँ कभी बलत्कार नहीं होता। हम अपने राज्य के लिए एक सैनिक से कम वफादार नहीं।

"यह तो मैं भी अनुभव कर रहा हूं। मगध समूचे भारत में अपना एक अलग ही स्थान रखता है, किन्तु इस अर्द्ध रात्रि में इतना सज-संवर कर अकेली तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन समझूं।

"मुझे स्वयं मगध सम्राट ने यहाँ भेजा है। वह मुझे विजयनगर आपकी सेवा में उपहार स्वरूप भेजना चाहते हैं।'

'अहोभाग्य! तुम्हारे चरणकमलों के स्पर्श से विजयनगर स्वर्ग बन जायेगा। तू केवल मेरे हृदय की रानी रहेगी।

मृदाल खिल उठी। इस बार वह खुद राजा के सीने से लिपट गयी। दो प्राणों का सुखद मिलन हो गया। तब से कितने ही वर्ष बीत गए। मृदाल विजयनगर आकर हरिहर के साथ छाया की भांति रहने लगी किन्तु कभी ऐसा अवसर न आया जब वह अपनी वफादारी राजा को दिखा सके।

भादो का महीना आया। वर्षा के फुहार से धरती पर हरियाली छा गयी। हरिहर आखेट के लिए मचल उठे। उन्होंने तीर सम्भाला और मृदाल एवं कुछ सैनिकों के साथ जंगल को निकल पड़े। मृदाल से बाते करते हुए वह जंगल में आ गए पर कहीं कोई पशु पक्षी न दिखा। सारा वन प्रदेश सांय-सांय कर रहा था। आकाश बादलों से भरा था किन्तु हवा के तेज झोंके उन्हें उड़ाने पर उतारु थे। हरिहर दिन भर भटकते रह गए, पर एक चिड़ियाँ तक न मिली। निराश होकर वह लौटने लगे तभी अकस्मात हिरणों का एक झुण्ड आता दिखाई पड़ा।

हरिहर दौड़ गये झुण्ड के पीछे। उन्हें इस प्रकार भागते देख मृदाल भी सैनिकों को बढ़ावा देती हुई दौड़ी, किन्तु दौड़ते-दौड़ते संध्या गहरा गयी पर राजा विधर निकल गए पता ही न चला वह सर्वत्र ढूंढने लगी।

हरिहर हरिणों का पीछा करते हुए दूर निकल आये पर उन्हें भी कोई हिरण हाथ न लगा। थक कर वह घोड़े से उतरे और एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। मृदाल भी उन्हें ढूढती हुई वहां आ गयी। वह पसीने से तर थी। राजा की तरफ क्रोध से देखती हुई बोली ——"इस प्रकार का पगालपन ठीक नहीं, मेरा मन तो अज्ञात आशंका से कांप-कांप जा रहा है, घंटो से आपको ढूढ-ढूढ कर परेशान हूं, यह तो अच्छा हुआ आप मिल गए।

हरिहर मृदाल के भावुक मन के

प्यार को न समझ पाये। वह सोचने लगे —एक वेश्या की यह मजाल जो मुझ पर रोष दिखाये। क्रोध में उफनते हुए बोले —'चुप अपना औकात नहीं देखती, जानती हो मुझ पर क्रोध दिखाने का परिणाम, चाहूं तो तेरा सिर काट दूं।

मृदाल को बड़ा दुख हुआ। वह एकदम कातर हो उठी। राजा से कुछ कहना चाहा तभी उसे घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। घबड़ाकर उसने सैनिकों से कहा— कृपया आप लोग पता लगाये कि इस वक्त हम कहां हैं।

सैनिक दौड़ पड़े। कुछ ही क्षणों में वे लौटकर आये और बताया— "हमलोग तो घोर खतरे में है, बहमनी शत्रुओं की सीमा यहां से बहुत करीब है और कुछ घुड़सवार इधर ही आ रहे हैं। अब तो राजा हरिहर का चेहरा फक्क पड़ गया। मन ही मन वह महसूस करने लगे कि मृदाल ने कितनी सही बाते कही थी। वह कुछ सोच नहीं पा रहे थे तभी मृदाल हाथ जोड़कर बोली— "महाराज, आप अपने समस्त सैनिकों के साथ सामने वाले पहाड़ पर छिप जायें और तब तक न निकले जब तक मैं कोई संकेत न दूं।

हरिहर इस आकस्मिक विपत्ति से खुद घबड़ाये थे। उन्हें मृदाल की बात मान लेने में ही भलाई दिखी। वह अपने सैनिको समेत पहाड़ पर छिप गए।

बहमनी का शासक उनदिनों हसन-जफर खां था। राजा बनने पर उसने अपना नाम बदलकर अलाउद्दीन बहमन शाह रख लिया था। बहमन राज्य की सीमा उत्तर में ताप्ती नदी से लेकर दक्षिण में तुंगभद्रा नदी तक फैली थी।

हरिहर के छिपते ही बहमनी सैनिक वहां आ गए। तब तक मृदाल एक निर्धन किसान की पत्नी का भेष बना चुकी थी। अपने सुन्दर मुखड़े पर घुँघट डालकर वह लकड़ियां चुनने लगी, सैनिकों ने मृदाल को देखा तो ठगे से रह गए — इस वियावान जंगल में ऐसी रुपसी कहाँ से आ टपकी ? सैनिकों का प्रधान हुसैन अहमद तो अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसने मृदाल से पूछा —"कौन हो तुम ?

मैं इसी जंगल में रहने वाले रमजान मियां की घरवाली हूं हुजूर।

"इस सुनसान जंगल में अकेली क्या कर रही हो ?"

सूखी लकडियां तलाशती हुं। घर टपकता है हुजूर लकड़ियां भीग गयीं,अब चूल्हा न जलेगा तो बूढ़ा मुझे बहुत मारेगा।

'क्या वह तुम्हें मारता भी है ?

'हाँ श्रीमन्, रोज मारता है। वह तो इतना शक्की है कि मेरी सुन्दरता देखकर सोचता है कि मैं यारों का खाती हूं, वह इस पाक तालाब की महिमा जानता ही नहीं।

"किस तालाब की बातें करती है तू ?"

"यही तो हुजूर के सामने झिलमिल बह रही हैं 'मृदाल ने सामने बहते तालाब

की ओर इशारा कर दिया। हुसैन अहमद ने झिलमिलाते तालाब की ओर आश्चर्य से देखा फिर मृदाल की ओर मुस्करा कर देखते हुए बोला—— क्या है इसकी महिमा !

क्या सुनाऊँ हुजूर, ...कोई इस तालाब के पानी से बना भोजन प्रेम से खाये तो चेहरे पर वो बुलन्दी आ जाये कि कमसीन छोकड़े भी शरमाये, इस जंगल की लकड़ियों का धुँआ बदन से लगाये तो पूरे बदन में चाँद सी चमक आ जाय और यदि————

बस——बस ! तुम तो शायरों सी बातें करती हो। मैं अपने सैनिकों के साथ आज यहीं ठहरूँगा। तुम खाना पकाओ हम सब प्रेम से खायेंगे ।

जी हुजूर, मृदाल पूरे मनोयोग से खाना बनाने लगी। हुसैन अहमद अपने सैनिकों समेत वृक्ष की छाया में लेट गया। घुँघट के भीतर से मृदाल इन सब की गतिविधियां देख रही थी। वह हरिहर को भी बचाने की तरकीबें सोच रही थी।

अचानक एक अनोखा ख्याल उसके जेहन में आया और वह मन ही मन खिल उठी। उसका ध्यान सम्राट हरिहर के उस हीरे वाली अंगूठी की ओर था जिसमें तेज हलाहल भरा था। लकड़ियां ढूढ़ने के बहाने वह पहाड़ पर गयी और सम्राट से अंगूठी मांग लायी। स्वादिष्ट भोजन की सुगन्ध-दूर-दूर तक फैलने लगी थी। रात गहराने लगी थी। बरसाती हवा का तेजी से एक झोंका आया और मृदाल के सुन्दर मुखड़े से घुँघट हट गया।

उसकी सुन्दरता देख अहमद की आंखें चौंधिया गई। उसने झपट कर उसकी बांहें थाम ली। उसकी सांसे तेज हो चली और वासना के अतिरेक से सारा शरीर कांपने लगा। मृदाल पेशोपश में पड़ी। यदि चिल्लाती है तो सम्राट हरिहर मौत के मुँह में जाते हैं और यदि सहमत तो राजा हरिहर को क्या मुँह दिखलायेगी। उसने दूसरा मार्ग ही उपयुक्त समझा। इसमें सम्राट और विजय नगर दोनों ही की रक्षा थी।

विवश मृदाल ने अहमद की बांहों में अपने को समर्पित कर दिया। मृदाल के मनोभाव से दूर अहमद ने उस सुन्दरी से मन मानी की फिर विजयी मुस्कान लिये सैनिकों के बीच आ गया।

भोजन तैयार हो चुका था। सबने छक कर खाया। इस बात से सभी बेखबर थे कि अमृत तुल्य भोजन में तेज हलाहल भरा है। यह भोजन इन तमाम सैनिकों के लिए अन्तिम भोजन है और उन सबकी जिन्दगी के आखिरी क्षण।

खाना खाते ही विष अपना प्रभाव जमाने लगा। समस्त सैनिकों के साथ अहमद की लाल आंखें भी बोझिल होने लगी। बियाबान जंगल में मरघट सा सन्नाटा छाने लगा। मृदाल इन्हें अचेत देख जोर-जोर से चिल्लाते हुए राजा हरिहर को बुलाने लगी। स्तब्ध रात्रि थी।

मृदाल का स्वर गूंज उठा। पत्ते खड़खड़ा उठे। मृदाल की आवाज सुनकर हरिहर पहाड़ से उतर आये बहमनी सैनिकों को कतार से मौत की गोद में सोये देख उनकी खुशियां फूट पड़ी। लपक कर उन्होंने मृदाल को अपने अंग में लिपटाना चाहा किन्तु वह दूर छिटक गयी। उसकी आंखें पथराने लगी थी। सुन्दर मुखमंडल मुरझाने लगा था। राजा घबड़ाए। उन्होंने प्रार्थना भरे स्वर में मृदाल से पूछा-"इस खुशी के समय में मुझे मातम का आभास हो रहा हैं तुम मुझसे दूर भाग रही हो!

..."हां महाराज, मैं आप से दूर भाग रही हूं। अब मै आप की मृदाल नहीं रही, इसे अहमद हुसैन ने..... किन्तु महाराज, मैं अपनी औकात नहीं भूली न मगध के गोरव को ही भुलायी हूं। मैंने खुद भी हलाहल पी ली है।"

सम्राट आवाक रह गए। उन्होंने मृदाल के कांपते शरीर को सम्भाला किन्तु विष का प्रभाव तेजी से फैल रहा था। मृदाल की आंखें थमने लगी थी। वह हरिहर की बांहों में झूल गयी। सम्राट रो पड़े। धन्य है वह मगध जहां की नगर वधुएँ भी इतनी वफादार होती हैं। उन्हों ने मृदाल को हिलाया ——— "आंखे तो खोलो।

पर आंखें जो थमी तो थमी ही रह गयी। रात्रि का अन्धकार छँट चुका था। हरिहर ने घोड़े की रास सम्भाली और मृदाल के शव को लेकर सैनिकों समेत विजयनगर लौट पड़े। मगध की इस वेश्या के शव को देखने के लिए विजयनगर की जनता उमड़ पड़ी।

मृदाल के अनुपम बलिदान का ही कमाल था कि बहमनी सैनिक हरिहर के जीवन काल में विजयनगर के आक्रमण करने की बात तक न सोच सके'।

विश्वनाथ भवन, जनसार रोड ,देवघर (बिहार)

—दादाजी कोंडदेव शिवाजी महाराज के कोच थे

(पृष्ठ ६१ का शेष)

जिन्दगी हमें भी प्यारी थी, शायद साधारण लोगों से अधिक। हम जीना चाहते थे, खूब जीना चाहते थे, लेकिन जीवन के सार तत्व, सत्यं शिवं सुन्दरम के साथ। इस सार तत्व विहीन गुलामी की गंदगी में रेंगते हुए कीड़ों की जिन्दगी हमें कबूल न थी। राणाप्रताप से लेकर शिवाजी तक, गुरु गोविन्दसिंह से लेकर तात्या टोपे और कुंअरसिंह तक, चफेकर बन्धुओं से लेकर खुदीराम और कन्हाई तक, और उसके बाद भी देश के क्रान्तिकारियों का मूलमंत्र यही तो रहा है। 'Better to die on feet rather than lowe on knees' अपने पैरों के बल पर खड़े होकर पुरुषार्थ का प्रदर्शन करते हुए मृत्यु का वरण करना कहीं अधिक श्रेयस्कर है, बनिस्बत इसके कि घुटनों पर निहुर कर दुश्मन से भीख मांगते हुए जिन्दा रहो। संक्षेप में, हम झुकने की अपेक्षा टूट जाना ज्यादा पसन्द करते थे।

गणित के तराजू पर तौलकर देखा तो इस नतीजे पर पहुंचे कि एक षड्यंत्रकारी संगठन की अवधि अधिक से अधिक २।। वर्ष होती है। अस्तु, इस अल्प समय में ही अपने सब अरमान और हौसले पूरे कर लेने हैं, जो जो कुछ करना है, कर गुजरना है। और इसके बाद—एक चिर विश्राम।

गुलामी की जिन्दगी से नफरत ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी तो हम मौत को सहालने लगे। मुझे अब तक याद है। एक दिन कानपुर की मुख्य बाजार, मेस्टन रोड पर एक दूकान में एक चित्र दिखाई दे गया। सूर्यास्त की रक्तिम आभा धीरे-धीरे मलिन हो रही थी। मरघट में सर्वत्र उदासी बिखरी हुई थी। इधर-उधर सूखी पत्तियां, राख और कोयला छितरा पड़ा था। ऐसे में परस्पर गुणा का चिह्न बनाती हुई दो अस्थियां, उनके बीच में एक मानव खोपड़ी, हँसती हुई मानो कह रही थी :

'तेरा भी एक दिन ऐसा ही हाल होना है,
तुझे भी मेरी तरह पायमाल होना है।'

जीवन के इस यथार्थ सत्य को उद्घोषित करती हुई, यह दो पंक्तियां मेरे मर्म में समा गईं। मैं इस चित्र को खरीदकर ले आया। एक सुन्दर से चौखटे में मढ़ा कर इसे कमरे में टांग दिया। आते जाते, उठते-बैठते में उस चित्र को निहारा करता, इस निर्जीव खोपड़ी से निकला हुआ सजीव राग सुना करता।

और इसके बाद मैं कब्रगाहों के चक्कर लगाने लगा। लाल बंगला, छात्रावास से कचेहरी जाने वाले रास्ते में इसाइयों का एक बड़ा कब्रगाह है। अब मैं अक्सर अकेले वहां जाकर किसी न किसी कब्र के करीब छांह में घंटों बैठा रहता। अनेक कब्रों पर बड़ी सुन्दर पंक्तियां अंकित थीं। अब तक अच्छी तरह याद है। एक कब्र पर अंग्रेजी में लिखा था जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:—

राही! जरा रुको, इधर देखो तो,
आज जो तुम हो, कभी मैं भी था।

शहीद चाफेकर

अब जो मैं हूं, तुम्हें भी कल होना है,
पीछे आने को मेरे, तुम सदा तैयार रहो।'

मेरे लिये यह मात्र कुछ काव्य पंक्तियां ही न थीं। इनमें निहित था एक मूक संदेश, एक आव ह्न। मुझे कबीर से बड़ा मोह हो गया। कबीर को पढ़ने, मनन करने और जीवन में उतारने की उत्सुकता जागी। कबीर के शब्द तो मैं भूल गया किन्तु उनका मन्तव्य मुझे अब भी याद है। कबीर ने कहा: 'जब दुनियां में आये थे तो तुम रोते थे, जग हँसता था। अब कुछ ऐसी करनी करो कि जब तुम दुनियां से जाओ तो तुम हँसते हो और दुनियां रोती हो।' आज भी कबीर की इस उक्ति को भूल नहीं पाया हूं। भूलने योग्य वह है भी नहीं।

अब मैं जानना चाहता था कि मुझसे पहले क्रान्ति-पथ में जो लोग आये गये थे, उनका चिन्तन क्या था। मृत्यु वरण के पूर्व उन्होंने क्या कहा था? क्या संदेश वह हम लोगों के लिये छोड़ गये हैं? कैसे थे वे लोग? किस शान से जिये, किस शान के साथ मरे?

२२ जून १८९७—गवर्नमेन्ट हाउस पूना में महारानी विक्टोरिया का ६०वां राज दरबार बड़ी शान-शौकत से मनाया गया। प्लेग कमिश्नर मिस्टर रैण्ड उस जश्न में भाग लेकर लौट रहे थे। अदालत ने दो चाफेकर बन्धुओं को मौत की सजा दी। तीसरे भाई ने मां के चरणों में जाकर प्रणाम किया। बोला वह: 'मां दो फल तो 'मां के काम आ गये, अब मैं भी उन्हीं के चरणों तक पहुंचने की आज्ञा लेने आया हूं।' माता ने बालक के मस्तक पर हाथ फेरा, मुख चूम लिया। आंखों में अश्रु झलक आये। वाणी रुद्ध हो गए। मां का मौन आशीर्वाद पाकर तीसरा पुत्र भी हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर चला गया।

भगिनी निवेदिता जब उस वीर माता से मिलने गई तो उस माता ने केवल इतना ही कहा: 'मुझे केवल इतना ही खेद है कि मेरे पास अब कोई और पुत्र नहीं जिसे देश-माता के चरणों में अर्पित कर सकती।'

० ० ० ०

१० नवम्बर १९०८—कन्हाई की फांसी के दिन का बड़ा मार्मिक वर्णन, श्री मोतीलाल राय के शब्दों में :

"कन्हाई लाल का शव लेने के लिये हम लोग धीरे-धीरे एक अंग्रेज के पीछे चल रहे थे। शोक और दुख से हमारा सारा शरीर कांप रहा था। धीरे-धीरे लोहे के फाटक को पार कर हम लोगों ने भीतर प्रवेश किया। सहसा उस व्यक्ति ने एक कमरा दिखाया। उसी छोटे कमरे में सिर से पैर तक कम्बल से ढंका हुआ कन्हाई का मृत शरीर पड़ा था·····आशु बाबू की आंखों से आंसूओं की झड़ी लग गई। एक-एक कर सभी रोने लगे। उस समय उस गोरे ने कहा, 'रोते क्यों हो? जिस देश में ऐसे वीर युवक जन्म लेते हैं, वह देश धन्य हैं। जन्म लेकर मरना ही होगा। इस प्रकार की मृत्यु, मनुष्य कब पाते हैं?'

० ० ० ०

कन्हाई के अभिन्न साथी ने फांसी के पहले कहा था : 'मेरे और कन्हाई के मरने से क्या हानि है? हमारे जैसे हजारों के मरने पर ही देश का उद्धार होगा। हमारी मृत्यु शोक मनाने लायक नहीं; बल्कि हर्ष मनाने लायक होगी।'

० ० ० ०

सन् १९०९ जुलाई का पहला दिन। सर करजन वायली को भारी सभा में मदन लाल धींगरा ने गोली का निशाना बनाया। फांसी से पूर्व अपने अन्तिम बयान में उसने कहा था 'मुझ जैसे अबोध

शहीद कन्हाईलाल

और अकिंचन युवक पुत्र के पास माता की भेंट के लिये अपने रक्त के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। और उसी से अपने रक्त की श्रद्धांजलि माता के चरणों पर चढ़ा रहा हूं।'

'भारत में इस समय केवल एक ही शिक्षा की आवश्यकता है, और वह है मरना-सीखना; और उसको सिखाने का एक मात्र ढंग स्वयं मरना है।'

'मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि बार-बार भारत की ही गोद में जन्म ल, उसी के कार्य में प्राण देता रहूं।·····वन्दे मातरम्।'

० ० ० ०

शहीद अवधविहारी—इनके विरुद्ध १३ आरोप थे जिनमें मुख्य यह था कि लाहौर लारेन्स गार्डन के बम की

टोपी इन्होंने वसन्तकुमार विश्वास के साथ मिलकर लगाई थी और उसमें इनका पूरा हाथ था।

फांसी से पूर्व इनसे पूछा गया था कि आपकी आखिरी ख्वाहिश क्या है?

आपने उत्तर दिया, 'यही कि अंग्रेजी साम्राज्य का नाश हो।'

उसने कहा, 'अब इन बातों से क्या फायदा। आज तो शान्तिपूर्वक प्राण दीजिये।'

आपने कहा : 'मैं तो चाहता हूं आग भड़के, चारों ओर आग भड़के। तुम भी जलो, हम भी जलें, हमारी गुलामी भी जले और अन्त में भारत कुन्दन बनकर निकले।'

० ० ० ०

कर्त्तारसिंह सराबा

१९१४-१५ की विराट विप्लवी प्रचेष्टा का संगठन और संचालन करने के अपराध में देशभक्ति का सर्वोच्च पुरस्कार-फांसी—पाने वाले, २० वर्षीय नौजवान कर्त्तारसिंह कहा करते थे :

'सेवा देश दी जिंदडीए बड़ी औखी,
गल्ला करनीआं ढ़ेर सुखल्लियां ने।
जिन्हा इस सेवा विच पैर पाया,
उन्हां लख मुसीबतां झल्लियां ने।'

'अरे दिल, देश की सेवा बड़ी मुश्किल है, बातें बनाना बड़ा आसान है। जो लोग इस सेवा मार्ग पर अग्रसर हुए, उन्हें लाखों विपत्तियां झेलनी पड़ीं।'

कर्त्तारसिंह फांसी की कोठरी में बन्द हैं दादा आकर पूंछते हैं—'कर्त्तारसिंह किनके लिये मर रहे हो? जो तुम्हें गालियां देते हैं। तुम्हारे मरने से देश का कुछ लाभ हो, सो भी तो नहीं दीखता।'

कर्त्तारसिंह अपनी स्वाभाविक गम्भीरता के साथ धीरे से पूंछते हैं, 'दादाजी, अमुक व्यक्ति कहां है?'

'प्लेग से मर गया।'

'अमुक कहां है?'

'हैजे से मर गया।'

'तो क्या आप चाहते थे कि कर्त्तारसिंह भी बिस्तर पर महीनों पड़ा रह कर, दर्द से कराहता हुआ किसी रोग से मरता? क्या उस मृत्यु से यह मृत्यु अच्छी नहीं?' विप्लवी शहीदों की लम्बी शृंखला में यह चन्द बहुत चमकीले मनके थे जिन्होंने आने वाली पीढ़ी के चरित्र और चिन्तन को बहुत प्रभावित किया। इस प्रकार पुरानी पीढ़ी अपनी शिक्षा और संस्कार नई पीढ़ी को सौंपकर चली गई। मशाल अब नई पीढ़ी के हाथों में थी। उसकी ज्योति और जलन निरन्तर बनी रहे, बढ़ती रहे, इसका उत्तरदायित्व अब नये कन्धों पर था। ००

(पृष्ठ ६३ का शेष)

मानों का कहना था कि तुर्की साम्राज्य फिर से कायम किया जाये। इसमें गलती यह थी कि इस मांग को पेश करते हुए भारत के मुसलमानों ने यह जानने की कतई जरूरत नहीं समझी कि अरब लोग तुर्कों की गुलामी में रहना चाहते हैं या नहीं। दूसरे शब्दों में खिलाफतियों की मांग यह थी कि अरब तुर्कों की गुलामी में वापस जाये। गांधीजी ने इस कोण से भारतीय मुसलमानों की मूर्खतापूर्ण मांग का मंथन किये बिना ही खिलाफत को कांग्रेस की मांग बना लिया।

मुस्तफा कमाल

यह बहुत गलत था। इसका सबसे हास्यास्पद पहलू तब खुला जब मुस्तफा कमाल पाशा ने तुर्की के आधुनिकीकरण का बिस्मिल्ला करते हुए अरब लिपि के स्थान पर रोमन लिपि के प्रवर्तन के साथ-साथ खलीफा को लात मारकर स्विटजरलैण्ड भागने पर विवश किया। पर मुस्लिम लीग के नेता खिलाफत की मांग से इस कारण नहीं कतरा गये, कि वे संग्राम के नाम मात्र से उन्हें कंपकंपी आ जाती थी।

मुहम्मद अली जिन्ना

मुहम्मदअली जिन्ना पहले कांग्रेस में थे। फिर उन्होंने अनेक वर्ष भारत के बाहर बिताये कि भारत रहने योग्य नहीं; पर अंग्रेज मान लिए जाने की आशा पूरी न होते देख, वह फिर भारत लौट आये और लीग की लीडरी उन्हें मिल गई; क्योंकि लीग में कोई इस काबिल नहीं था कि उन्हें कोई अखिल भारतीय नेता माने। जिन्ना नमाज जानते शायद थे, पर पढ़ते नहीं थे। वह शराब पीते थे। अरबी या उर्दू से वह कोसों दूर थे। अंग्रेज उन्हें चाहते-समझते थे।

इकबाल नम्बर दो

जिन्ना के बाद ही पाकिस्तान बनाने के लिए कोई जिम्मेदार था तो मुहम्मद इकबाल। यह वही व्यक्ति है, जिन्होंने गीत लिखा—

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।

इस गीत के लिखते समय इकबाल राष्ट्रवादी थे, पर इस गीत में वह जहर से बुझी पंक्तियां हैं—

ऐ आबरूए गंगा वह दिन है याद तुझको
उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा

बाद को कविवर बदल गये। यहां यह कहकर हम लोग आगे बढ़ जायेंगे कि इकबाल की वह प्रसिद्ध कविता १८५७ के झंडा गीत की, जिसे महान क्रान्तिकारी अजीमुल्लाखां ने लिखा था, जमीन पर लिखी हुई है। अजीमुल्ला का यह गीत 'पयामे हिन्द' में छपा था, जहां से डॉ० भगवानदास माहौर आदि विद्वानों ने उसका उद्धार किया। अजीमुल्ला के उस गीत की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—

हम हैं इसके मालिक हिन्दुस्तान हमारा
पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा

ये पंक्तियां देखें—

ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा
नीचे साहिल में बजता सागर का नक्कारा

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

पर ताज्जुब है कि विद्वानों ने यह आविष्कार क्यों नहीं किया कि इकबाल ने अजीमुल्ला की चोरी तो नहीं की, उनकी जमीन पर अपनी प्रसिद्ध कविता लिखी। सचाई तो यह है कि अजीमुल्ला की कविता में ललकार है, जो इकबाल की कविता में नहीं है। जैसे—

आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा

बाद को जब इकबाल पाकिस्तान के दूसरे पिता बने (हाय पाकिस्तान देखना उन्हें नसीब नहीं हुआ, क्योंकि वह १९३८ में मर गये) तो उन्होंने सारे जहाँ से अच्छा से तौबा कर गाया—

चीनो अरब हमारा हिन्दोस्तां हमारा
मुस्लिम हैं हम वतन हैं सारा जहां हमारा

यह कविता काफी लम्बी है। इसमें आक्रमात्मक मुस्लिम फासिस्टवाद का डंका बजाया गया है, जिसका सारांश यह है कि सारी दुनिया पर इस्लाम का झण्डा फहरे। काश इकबाल दीर्घजीवी होकर अपनी आंखों से देख जाते कि उसके सपने के पाकिस्तान में आम मुसलमानों की क्या दुर्दशा हुई है। इकबाल अच्छे कवि थे, पर वह किस तरह पाकिस्तान बनवा कर आम मुसलमानों के लिए कुआं खोद गये, यह मुसलमान तब समझेंगे, जब वे बालिग होंगे। पर अफसोस भारत के राजनैतिक दलों की तोषण में शामिल हैं। वोटों के लोभ से। खिलाफत के दिनों से यह तोषण जारी है। कुछ भी हो भारत में इकबाल चेयर और इकबाल अकादमी बनाना हद दर्जे की देश द्रोहिता है। अली सरदार जाफरी ऐसे नामी और प्रगतिवादी रूप में परिचित व्यक्ति ने इकबाल पर फिल्म बनाकर, जिसमें यह छिपाया गया कि वह पाकिस्तान के दूसरे पिता थे, इस षड्यन्त्र में हाथ बंटाया और भारत सरकार ने उस फिल्म को प्रचारित कर बहुत ही गलत काम किया।

मुस्लिम सपनों का बंटाधार

अब आइये थोड़े में देखें कि पाकिस्तान में किस प्रकार मुस्लिम होमलैण्ड का सपना साकार होने के बजाय बंटाधार हुआ। वहाँ भारत की देखादेखी शुरु में लोकतन्त्र का ढोंग चलाना तय हुआ। लीगी नेता तो अंग्रेजों के इशारे पर चले। भारत के दो टुकड़े इस कारण से किए गए थे कि दोनों कमजोर रहें। भारत में अंग्रेजों की दाल नहीं गली क्योंकि यहाँ जनमत तगड़ा था, क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार था। इसलिए पाकिस्तान ब्रिटिश कूटनीति का केन्द्र बना। उसी के अनुसार भारत पर कथित कबायली आक्रमण हुआ। बहादुर भारतीय सेना ने पाकिस्तानियों को खदेड़ दिया। पर नेहरू की अदूरदर्शिता वा तोषण नीति के कारण सेना अभी सारे कश्मीर को मुक्त नहीं कर पायी थी कि वापस बुला ली गई। कुछ भी हो पाकि-

स्तान के साथ कड़वापन तभी से चला आ रहा है। १९६६ तथा १९७१ के युद्ध उसी के परिणाम हैं। १९७१ में पाकिस्तान के दो टुकड़े हो गये।

अमेरिका क्या चाहता है ?

अमेरिका नहीं चाहता था कि पाकिस्तान अंग्रेजों के इशारे पर नाचे, यद्यपि भारत के बारे में दोनों की नीति एक थी यानी—

१—भारत और पाकिस्तान में अनबन बनी रहे।

२—दोनों उससे शस्त्र खरीदें ताकि उसकी दुकानें चालू रहें।

३—हिन्दू और मुसलमान लड़ते रहें।

अमेरिका ने जब देखा कि पाकिस्तान पर अपने प्रभाव के विस्तार में एक ही व्यक्ति बाधक है और वह है प्रधानमन्त्री लियाकत अली, तो उनकी हत्या करवा दी गई। हत्या इस तरह कराई गई कि घटनास्थल पर ही हत्यारे की भी हत्या कर दी गई ताकि कभी यह न खुले कि इसके पीछे अमेरिका का हाथ है, पर खोजने वाले सब पता लगा लेते हैं। अध्यापक एम० एस० वेंकटारमनि ने एक पुस्तक लिखी 'द अमेरिकन रोल इन पाकिस्तान' जिसमें इस रहस्य का पर्दाफाश किया गया।

इस हत्या के बाद से पाकिस्तान में अमेरिका का सिक्का उसी प्रकार जम गया जैसे दक्षिण कोरिया, ताइवान, इजराइल, दक्षिण अफ्रीका के एक से एक गढ़। उस हत्या के बाद पाकिस्तान में छोटे और टुच्चे अधिकनायकों का राज्य रहा, जिसको जनता से कोई मतलब नहीं था। वे सबसे पहला काम यह करते रहे कि पाकिस्तान से करोड़ों रुपये विदेशी बैंकों में जमा किये, ताकि जब कोई खतरा पेश आये तो वे विदेशों में जाकर गुलछर्रे उड़ाते रहें। ऐसा बार-बार हुआ, तब भी मुसलमानों की आंखें नहीं खुलीं। ये सिद्धान्तहीन सैनिक डिक्टेटर सबके सब कुरान के व्याख्याता बनकर आगे आये। धर्म के सहारे पिछड़े हुये लोगों को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा करना इनका काम था। साऊदी अरब आदि सभी इस्लामी देशों में यह तमाशा जारी है। ईरान में खुमैनी ने अमेरिकी कठपुतलाशाह को निकालकर एक क्रान्ति की, पर उसके पास क्रान्ति का कोई सोचा-समझा नक्शा न होने के कारण पता नहीं देश को कहां ले जाकर पटके। वह भी कुरान का व्याख्याता बना है। शाह ने लाखों ईरानियों को मौत के घाट उतार दिया, खुमैनी उसका रिकार्ड अभी तोड़ न सका, पर जनता से वह भी दूर है और स्त्रियों का शत्रु है।

जिया का चरित्र

अपने को राष्ट्रपति कहने वाला जिया स्पष्ट तो बार-बार कह चुका है इस्लाम में लोकतन्त्र की गुंजाइश नहीं। खुमैनी का कहना है कि पाश्चात्य लोकतन्त्र इस्लाम के विरुद्ध पड़ता है। मतलब यह है कि मुल्लाराज्य ही इस्लामी लोकतन्त्र है। ये सब लोग स्त्रियों को

कोई अधिकार नहीं देना चाहते।

सुप्रीम कोर्ट का खात्मा

जिया के हाथों में पाकिस्तानियों की जो दुर्दशा हो रही है, उसकी कुछ ही झलक यहाँ दी जा सकती है। भुट्टो स्वयं एक अधिनायक ही था। उसी ने अपनी महत्वाकांक्षा के कारण पाकिस्तान के दो टुकड़ करवाये। जिस समय मुजीब वोट से जीते थे, यदि भुट्टो इसे जनता की आज्ञा समझकर मुजीब को पूरे पाकिस्तान का राष्ट्रपति मान लेता, तो पाकिस्तान कम से कम उस समय न टूटता। यह भी सच है कि भुट्टो ने वह हत्या करवाई थी, जिसके कारण उसे फांसी की सजा सुनाई गई। भुट्टो भारत का दुश्मन था। वह एक हजार साल तक भारत से लड़ने का वादा कर चुका था। वह भारत से हाईजैक किये हुये हवाई जहाज पर चढ़कर गरजा था। भारत उसे फांसी देता तो और बात थी, पर जिया ने उसे फांसी दी। वह जिया, जिसे उसने बहुत से सेनापतियों के हक मार कर सर्वोपरि सेनापति बनाया था।

भुट्टो की फांसी की अपील पाकिस्तान सुप्रीम कोर्ट में गई तो जस्टिस वाहिद, जस्टिस सफदरशाह, जस्टिस कैसर, जस्टिस हलीम और जस्टिस दुराव ने भुट्टो की अपील मानने का संकेत दिया। इस पर जस्टिस कैसर को समय से पहले सेवानिवृत्त कर दिया गया। जस्टिस वाहिद को सैनिक अस्पताल में इन्जेक्शन देकर बेकार कर दिया गया। फिर भी वाहिद जिद पर अड़े रहे। तब खुलकर सबको बेकार कर दिया गया। इस्लामी न्याय के नमूने हैं। यदि कट्टर मुसलमान कभी जागे तो वे समझेंगे कि जिन्ना और इकबाल ने मिलकर मुसलमानों को गुमराह किया। ००

—१४ डी, निजामुद्दीन ईस्ट,
नई दिल्ली-१३

स्वतंत्रता दिवस पर हार्दिक शुभकामनाएं
पढ़िए—और—विचारिए

वैद्य रघुवर सिंह वेद

श्रीराम औषधालय

ठन्ढा कुआँ, हरिद्वार

दाद, एग्जिमा, बवासीर, चर्मरोग, मधुमेह, गठिया, वायु विकार, पेट की गैस, उदर विकार, दुर्बलता आदि के साठ वर्षीय अनुभवी चिकित्सक से प्रत्यक्ष अथवा पत्राचार द्वारा सम्पर्क करें।

आगे ख़तरा है

कर्मचारी रहित रेलवे क्रासिंग

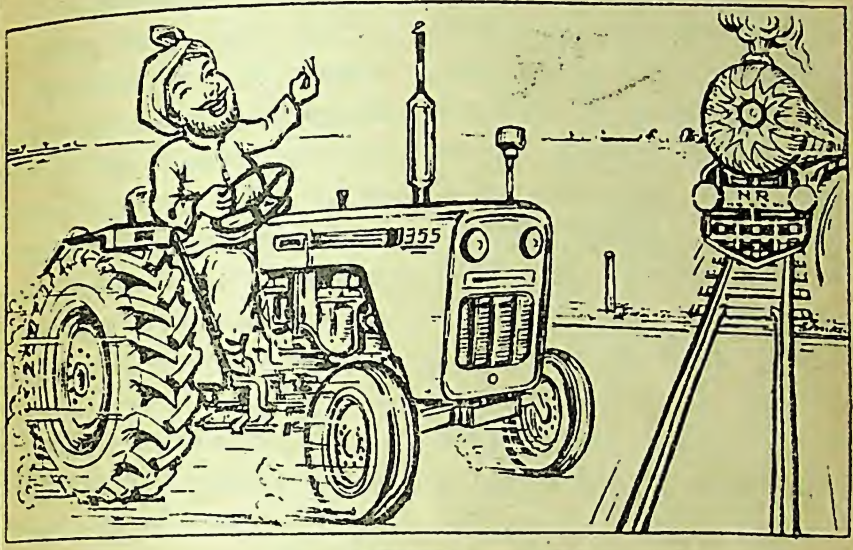

रुकिये

क्रासिंग पार करने से पहले
देखें कि रेलगाड़ी तो
नहीं आ रही !

उत्तर रेलवे

मुहम्मद बिनकासिम के बाद

एक बार की बात है कि व्यवसायी जो खाड़ी के देशों में धंधा करता था, अपनी पत्नी के साथ सिंध के स्वामी सर्वानन्द के पास आया और पूर्ण भक्ति-भाव में गुरु-मन्त्र देने की प्रार्थना करने लगा। स्वामीजी ने रूपचन्द्र नामक उस व्यवसायी और उसकी पत्नी भगवती को गुरु-मंत्र दिया। मनोकामना पूरी होने के उपरांत पति-पत्नी पुनः विदेश को प्रस्थान कर गये। ईश्वर की लीला कि इंजन की खराबी के कारण वायुयान दुर्घटनाग्रस्त हो गया। संकट की इस घड़ी में दोनों ने गुरुदेव का स्मरण किया, भगवान का नाम जपते हुए वे वायुयान की खिड़की से कूद पड़े और समुद्र में जा गिरे। जीवन और मृत्यु के बीच जूझते हुए वे कुछ देर तैरते रहे। तभी एक नाविक उनके पास पहुंच गया। और दोनों को नौका में बैठाकर सकुशल किनारे पर ले आया। अपने यों बच जाने तथा नवजीवन-प्राप्ति को वे उस देव का ही प्रताप मानकर पुनः अमरापुर में गुरु-देव के पास आए और उनको दुर्घटना तथा वे स्वयं किस प्रकार बच गये इसके बारे में मैं बतायस्वामी जी ने इसे अपने गुरु स्वामी टेऊंराम की कृपा माना और कहा कि उन्होंने ही तुम्हारी रक्षा की है दोनों स्वामी जी की नवनिर्मित समाधि पर माथा टेककर पुनः अपना कारोबार संभालने के लिए विदेश चले गये।

सन् १९४७ में, जब भारत को स्वतन्त्रता मिल रही थी और देश का विभाजन भी हो रहा था तो स्वामी जी ने सन्त सत्य प्रकाश को हरिद्वार भेजा। संत ने सोमागिरि संन्यासी के एक भूखंड जिसमें दो कमरे बने हुए थे खरीदा। इस इस प्रकार हरिद्वार में भी 'प्रेम प्रकाश आश्रम' की नींव पड़ी। आज वहां का आश्रम भी बहुत अच्छा बन चुका है।

जिन्हीं दिनों इतिहास करवट ले रहा था और स्वाधीनता के साथ विभाजन की भी घोषणा हो गयी थी। सिन्ध, पंजाब और सीमा तक प्रांत से हिन्दुओं का जबर्दस्त पलायन हो रहा था। मजहबी पागलपन का तो ऐसा दौर चल रहा था कि लूट-मार आगजनी, अपहरण तथा हत्याओं की वारदातें आम हो गयी। हजारों घर उजड़ गये। हजारों जोड़े बिछुड़ गये। हजारों माता-पिता अपने पुत्र पुत्रियों से वंचित हो गये। सिंधप्रदेश में ईसा की आठवीं सदी में मुहम्मद बिनकासिम अरब आक्रमण के रूप में आया था उसके ६ हजार सीरियाई व ईराकी लड़ाकों और इनके ही शुतर-सवारों तथा अन्य लड़ाकों ने जब उस मार्ग में आग तथा मौत को खुला

एक बार फिर

संस्मरण

● नागरिक

छोड़ दिया था जो देबल या भट्टा तक जाता था। सदियों के बाद भी सिंध में मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण की याद ताजा बनी हुई थी। क्योंकि देबल के विशाल देवालय का संहार और तीन तीन दिन तक उस नगर की लूटपाट तथा कत्लेआम ने पूरे सिंध को झकझोर दिया था। देबल या भट्टा के बाद आक्रमणकारी सेना ने निरू और और रावर की ओर कूच किया था और वहां के हिन्दू राजा दाहिर को युद्ध क्षेत्र में परास्त करने के बाद किले में एकत्रित ६ हजार लोगों को तलवार के घाट उतार दिया था। दाहिर की रानी ने सैकड़ों महिलाओं के साथ चिता में प्रवेश करके अपनी इज्जत बचाई की किन्तु नृशंसता क्रूरता और पशुता के उस ताण्डव के बाद भी इस्लाम के प्रचारक उस विजेता आक्रमणकारी ने सिंधवासियों को उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता लौटा दी थी। खिलाफत की ओर से मुहम्मद बिनकासिम को यह स्पष्ट आदेश आया था। 'चूंकि; उन्होंने (सिंधवासियों ने) मुहम्मद के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया है और खलीफा को कर चुकाने को भी सहमत हो गये हैं अतः उनसे और अधिक आशा नहीं की जाती। उन्हें, हमने अपने संरक्षण में ले लिया है और अब हम उनके जीवन और सम्पत्ति पर हाथ नहीं डाल सकते। उन्हें अपने-अपने देवी-देवताओं की पूजा करने की अनुमति दी जाती है। और किसी को भी अपने मजहब का पालन करने से नहीं रोका जाना चाहिए। वे अपने-अपने घरों में जैसे वे चाहें रह सकते हैं।

एक विधर्मी आततायी ने भी सिंधविजय के बाद ऐसा नर्म रुख अपनाया था। देश की शासन व्यवस्था में भी उसने ब्राह्मणों को भागीदार बनाया था। और उनके साथ अच्छा सलूक किया था; किन्तु १९४७ में देश विभाजन के परिणामस्वरूप मजहबी पागलपन की जो आंधी चली, उसने किसी प्रकार की नरमी नहीं जानी। पीढ़ियों से एक ही मोहल्ले में और बराबर-बराबर रहने वाले हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे की जान के ग्राहक बन गये। औरतों की इज्जत और अस्मत की कोई कीमत नहीं रही और अबोध बालकों व शिशुओं पर भी किसी को दया न आयी। हिंसा, बर्बरता और पशुता का ऐसा दौर चला कि सिंध में हाहाकार मच गया। ऐसा हाहाकार कि जैसा इस प्रदेश के इतिहास में पहले कभी नहीं मचा था। हर गांव कस्बे और

फैक्ट्री—८३२७९ फोन ८३१५६—निवास
स्वाधीनता दिवस के पावन पर्व पर हमारी हार्दिक शुभ कामनाएं !
कपड़ों की दूध जैसी सफेद एवं चमकदार धुलाई के लिए
हर गृहणी का मन पसन्द
टेलीफोन व सुपर टेलीफोन
साबुन सदैव प्रयोग करें।
निर्माता:—नेशनल सोप इन्डस्ट्रीज
निवाजगंज—लखनऊ

नगर महापालिका, लखनऊ

स्वाधीनता दिवस १५ अगस्त १९८३ के अवसर
पर
नगर निवासियों का अभिनन्दन करती है
तथा
निम्न अपेक्षायें करती है:—

१—निर्धारित अवधि के अन्दर कर जमा कर छूट का लाभ उठावें।
२—स्वयं निवसित भवनों हेतु छूट प्राप्त करने के लिये गलत घोषणा न करें।
३—नगर महापालिका को चुंगी तथा अन्य प्रत्यक्ष करों की वंचना न करें।
४—बिना अनुमति लाउडस्पीकर का प्रयोग न करें।
५—निजी एवं सार्वजनिक स्थलों पर पोस्टर एवं लिखावट करके शहर की सुन्दरता को नष्ट न करें ।
६—समस्त बकाये कर की शीघ्र जमा करके नगर महापालिका प्रशासन को नागरिक सुविधायें प्रदत्त करने में सहयोग प्रदान करें।
७—सड़कों के किनारे फुटपाथों पर अनधिकृत कब्जा करके आवागमन [यातायात] में अवरोध उत्पन्न न करें।

नगर महापालिका की सम्पत्ति आपकी अपनी है इसकी सुरक्षा करना आपका नैतिक कर्तव्य है।

[दिनेशचन्द्र मिश्र]
उप प्रशासक

[शम्भू नाथ]
प्रशासक

प्रचार विभाग नगर महापालिका, लखनऊ द्वारा प्रसारित।

शहर के हिन्दू अपनी जान बचाने के लिये हिन्दुस्तान की ओर भागने लगे, क्योंकि उनका अपना प्रदेश अब परदेश हो गया था।

टण्डेआदम का अमरापुर स्थान और उसके स्वामी सर्वानन्द हिन्दू धर्म के लिए स्तम्भ और आश्रय-स्थान के समान थे। उनके हजारों अनुयायी भय-भीत होकर आश्रम की ओर ही निहार रहे थे, लेकिन सबको अपनी-अपनी जान की पड़ी थी और बहुत लोग भारत की ओर भागने लगे थे। अमरापुर के साधु सन्तों ने स्वामी सर्वानन्द से मंत्रणा की और कई दिन इस सोच विचार में बीत गये कि भारत चलें या नहीं? संतों की आम राय यही बनी कि 'भारत चलना चाहिए क्योंकि अब अपने धर्म की रक्षा असंभव है और धर्म की रक्षा के लिए यदि उन्हें अपना प्यारा देश भी छोड़ना पड़े तो कोई पर्वाह नहीं क्योंकि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म भी हमारी रक्षा करेगा। स्वामी सर्वानंद ने धैर्यपूर्वक सबकी बात सुनी और कहा कि वे गुरु महाराज की अनुमति से ही फैसला करेंगे। उन्होंने कुछ पर्चियां बनाकर स्वामी टेऊंराम की समाधि के आगे रख दी और रात भर वहीं बैठकर गुरु और गोविन्द का ध्यान किया। सवेरे आठ बजे उन्होंने एक संत को उन पर्चियों में से एक उठाने को कहा पर्ची उठायी गयी और खोली गई तो उसमें लिखा था 'हां जाना चाहिए।'

इस तरह, अनुमति पाकर स्वामी जी ने और सब सामान तो वहीं छोड़ दिया, केवल अपने वस्त्र मात्र, तूम्बी लाठी और गुरुदेव की मूर्ति साथ लेकर सब सन्तों के साथ हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। जो विशाल आश्रम स्वामी टेऊंराम और उनके बाद स्वामी सर्वानन्द ने वहां इतनी मुसरत से बनाया था, छोड़ दिया गया और 'प्रेम प्रकाश पंथ, हीं शरणार्थी बनकर भारत आकर तैयार हो गया।

स्वाधीनता दिवस पर हार्दिक शुभकामनायें

धीरज एन्टर प्राइज

सी-१२, मेरठ रोड, इण्डस्ट्रियल एरिया

गाजियाबाद (उ० प्र०)

क्रेनों के निर्माता

शेरों के साथ एक रात

● डॉम डिसी

मध्य प्रदेश में एसोसिएटेड सीमेन्ट कम्पनी कीमोर फैक्टरी से तीन मील दूर धरैय्या का छोटा सा गांव है। अंधेरा फैल चुका था। गांव के ७५ निवासियों में से अधिकांश सोने जा चुके थे। यह शीतकालीन रात्रि थी, तापमान ५से०ग्रें० से भी कम था।

२६ जनवरी शनिवार की रात्रि ग्यारह बजे का समय था, एक लम्बा पोपले गालों वाला ५० वर्षीय व्यक्ति कम्बल लपेटे वहां से आधा किलोमीटर दूर अपने मसूर के खेत की ओर बढ़ा जा रहा था। यह खेत ही उसकी पैतृक सम्पत्ति थी। यही दुंगली किमोर प्लाण्ट के सिविल-इन्जीनियरिंग डिपार्टमेन्ट के के एक मजदूर की दैनिक दिनचर्या थी। तेज चल रही हवा से बचने के लिए उसने कम्बल और कसकर लपेट लिया और अंधेरी रात में सावधानी पूर्वक कदम उठाते हुए चलने लगा। वह अपना काम शीघ्र समाप्त करने को उत्सुक था जिससे जल्दी ही लौट कर सो सके।

वह आगे बढ़ते समय कल के विषय सोच रहा था—कल छुट्टी थी और क्या काम करने थे, पेड़ की ऊंचाई की ओर उसने देखा, वह बस फैक्ट्री की काली चिमनी को ही देख सका, उसके पीछे एक चमकीला तार दिखाई पड़ रहा था, क्या वह मृगशिरा था ? या कर्क उसे इससे कोई मतलब नहीं था। वह तो बस इतना जानता था कि ये तारे रात्रि में आकाश को प्रकाशित करने का काम करते हैं। उसके लिए इतना ही काफी था। उसका दिमाग किमोर फैक्ट्री में आने से पहले की ओर दौड़ा। जंगली जानवरों के साथ वे उसके बहुत कठिन दिन थे, हिंसक जानवरों को रात में शिकार के समय यह ज्ञान नहीं रहता था कि यह मनुष्य है या उसका भोजन कोई जंगली जीव ?

बन्दूक दूर हो गयी

उसे वे दिन याद आए जब उसने इस प्रकार के कई जानवरों को रात में अपनी बन्दूक का शिकार बनाया था। कई वर्षों से जब उस बन्दूक का प्रयोग नहीं हो पा रहा है। वह सावधानी पूर्वक साफ करके अलग रखी है एक भूतकालीन यादगार वस्तु की तरह। क्योंकि जब से किमोर प्लाण्ट स्थापित हुआ है, जंगली जानवरों का आतंक समाप्त हो चुका है। आज तो खेतों को नुकसान पहुंचाने के लिए भूली भटकी भेड़े हैं; जंगली सुअर हैं या सांभर। यही कारण था कि उसे रात

शिकार-कथा

में खेत के चक्कर लगाने पड़ते हैं।

तब तक विचारमग्न, दुंगल अपने मसूर के खेत में आ चुंका था और क्या देखता है कि सामने साक्षात मृत्यु है। 'अचानक ही, एक काली विकराल आकृति अंधेरे में से निकली" एक सिहरन के साथ बाद में दुंगल ने बताया। छह काले रीछ गुस्से से मुझ पर गुर्राए। यह बहुत भयंकर स्थिति थी। और यह एक आश्चर्य की बात थी कि मैं हतोत्साहित नहीं हुआ वर्ना वही तो मृत्यु का भय ही मुझे मारने के लिए काफी था।

जैसे ही मैंने आसन्न मृत्यु का विकराल चेहरा देखा, मेरी छठी इन्द्रिय सजग हो गई और मैंने मृत्यु से लड़ने का निश्चय कर लिया।

दुंगल ने सोचने विचारने को अधिक समय नहीं मिला। आक्रमण अचानक था। पहला रीछ अपनी पिछली टांगों पर खड़ा होकर अगली टांगों से उसके कन्धे पकड़ चुका था। दुंगल जमीन पर चारों खाने चित्त गिर पड़ा, रीछ उसके ऊपर था।

तब जीवन के लिए संघर्ष शुरू हुआ। उस भयंकर मृत्यु के पंजें में दबकर सबसे पहले उसे ईश्वर याद आया। जैसे ही वह उस भयंकर जन्तु के २०० किलो वजन के नीचें दबा, उसने भगवान से किसी चमत्कार की प्रार्थना की।

उसके कन्धों, छाती तथा पैरों से जहां-जहां रीछ के तेज पंजें लगे खून बहने लगा। इसी अवस्था में उसे एक क्षण का समय मिल गया। रीछ पीछें की ओर हटा, तब उसने एक शिकारी कुत्ते के समान छलांग लगाई, और उसे प्रसन्नता हुई कि वह पहली मुठभेड़ में विजयी हुआ या मनुष्य के दुर्बल प्रतिरोध से अप्रसन्न हुआ। उसके बाद चमकते हुए दांत तथा खुले मुंह से वह दूसरे आक्रमण के लिए सिद्ध हुआ।

दुंगल सम्भला। भयानक जानवर आगे बढ़ा और दोनों शरीर फिर एकाकार हो गए। सीने में उठें एक तीखे दर्द ने दुंगल को बेहोश सा कर दिया। लेकिन उस अप्रत्याशित मौत के विचार ने उसे शीघ्र ही चैतन्य कर दिया।

दुंगल हिंसक रूप से तड़पा और अपने ऊपर पड़ें भारी दबाव को हटाने लगा। साक्षात मौत को देखकर आंधी में हिलते हुए वेंत की तरह उसने खड़े होने की चेष्टा की। उसका एक हाथ रीछ की पकड़ से मुक्त होकर अपने गले तक पहुंच गया था, दूसरे हाथ से उसने रीछ को पीछे ढकेलने का प्रयास किया।

दूसरे रीछ भी आ मिले

आदमी को अब तक अपने पैरों पर

खड़ा देखकर झुण्ड में से दो अन्य रीछ भी जो अब तक अपने सरदार को लड़ता देख कर चुपचाप खड़े थे अखाड़ें में आ कूदे। एक ने दुंगल के गले को चीरने की नीयत से उसके कंधों पर अपने अगले पंजे रख दिए। दूसरे ने उसे पीछें से दबोच लिया, तब उसके सिर पर एक भरपूर प्रहार किया, दुंगल को लगा कि वह जमीन में धंस जाएगा। क्या कठिन समय था; दुंगल ने सोचा, जैसे ही एक रीछ के खून के प्यासे पंजे ने उसके सीने और भुजाओं पर हमला किया तब तक दूसरे ने झपटकर उसके शरीर पर पंजा मारा।

दुंगल लहूलुहान हो गया। इस खूनी खेल में उसकी बढ़ती हुई कमजोरी के साथ-साथ प्रतिरोध भी शिथिल होता गया। ऐसा दिखाई देता था कि जैसे एक के बाद एक जानवर उस पड़े हुए व्यक्ति के साथ खेल रहे हैं। अपनी समस्त शक्ति लगा कर वह केवल अपनी सहायता के लिए धीमे से चिल्ला सका।

सम्भवतया वह रीछ के गंदे बालों की गन्ध थी या उसी के खून का नमकीन स्वाद-अचानक [ही; एक बड़े जानवर की तरह, दुंगल उठा और अपने सबसे नजदीकी रीछ पर झपटा, उसने बायें बाजू से रीछ की गर्दन को कस लिया जबकि दूसरे हाथ से उसने रीछ के नर्म स्थल और गले पर प्रहार किया।

दुंगल लगभग एक जानवर ही बन गया था। उसका सिर रीछ के गले के बालों से ढका था, उसके खुले हुए हाथ और पैर रीछ को लगातार प्रहार कर रहे थे। और उसके गले से धीमी-धीमी गुर्राहट निकल रही थी।

तब अन्तिम हथियार के रूप में; निराश दुंगल ने रीछ के गले में काट लिया और उसके कठोर हृदय पर जोर से घूंसा मारा तथा उसे ढकेल दिया। यह प्रयास कारगर हुआ रीछ फिसला और एक कटीली झाड़ी पर जा गिरा।

उसके इस अचानक प्रहार से सम्हल कर रीछ भय से स्तम्भित से हो गए। उसकी इस अवस्था को देख दुंगल विजय

"राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में मातृभूमि के प्रति श्रद्धायुक्त-भक्ति, स्वधर्म, स्वसंस्कृति के प्रति ज्ञानपूर्वक निष्ठा, अपने उज्जवल भूतकाल की स्मृति से निर्मित अदम्य आत्म-विश्वास एवम् विजिगीषा आदि श्रेष्ठभाव जाग्रत रखना आवश्यक है।"

—परम पूज्य श्रीगुरुजी

से प्रफुल्लित हो उठा परन्तु वह आगे नहीं बढ़ा उसके बजाय वह कांपते पैरों पर खड़ा हुआ और पेड़ों तक पहुंचने के लिए तेजी से दौड़ने लगा।

उसका घायल शरीर कुछ उपचार चाहता था, उसका गाढ़ा रक्त उसके सारे शरीर पर जम गया था। उसको चक्कर आए और वह नीचे गिर गया। लेकिन रीछों की धीमी गुरगुराहट ने, उनके थप्पड़ों के स्मरण ने उसमें नया बल भर दिया और वह तुरन्त सजग हो गया। अपने पैरों पर कूदकर उसने इधर-उधर देखा, कटीली झाड़ी ने उसे बुरी तरह घायल कर दिया था। उसे उस समय तीव्र पीड़ा हो रही थी, उसे एक ही विचार आया कि किसी तरह वह अपने घर तक पहुंच जाए, उसने सोचा मुझे अधिक खून वह जाने से पहले घर पहुंच जाना चाहिए.....वे मुझे किमोर अस्पताल ले जाएंगे और तब डाक्टर उसे बचा लेंगे।"

इस विचार ने उसे साहस दिया। अपनी सांसों को बटोर कर दुंगल किसी न किसी प्रकार अपने घर पहुंच गया

(शेष पृष्ठ १४५ पर)

'सिखों की जिन्दगी से खिलवाड़ न करें'

एक सिख होते हुए भी मैं यह बात सरेआम कह सकता हूं कि भिंडरांवाले सिख धर्म को गलत दिशा दे रहे हैं और पंजाब में बढ़ रहे हिन्दू सिख तनाव के लिए जिम्मेवार हैं। वे पंजाब के साथ-साथ सारे देश के सिखों की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। अगर वे सोचते हैं कि उनके साम्प्रदायिकतावादी तथा अलगाववादी इरादों को देशभर के सिखों का समर्थन मिल रहा है, या मिलेगा, तो यह उनकी जिन्दगी का सबसे बड़ा भ्रम है। हिन्दू तथा सिख दो अलग कौमें नहीं हैं, यह बात प्राचीन सिख इतिहास और सिख गुरुओं द्वारा हिन्दू धर्म के रक्षार्थ दी गयी कुरबानियों से पूर्णतः सत्य सिद्ध होती हैं। सन्त भिंडरांवाले हिन्दू-सिखों में साम्प्रदायिक तनाव पैदा कर सिख धर्म तथा सिख गुरुओं का अनादर कर रहे हैं। यह बात वे अच्छी तरह समझ लें कि इस देश का कोई भी राष्ट्रवादी सिख उनके नापाक इरादों का कभी भी समर्थन नहीं करेगा। ०००

देवेन्द्रपालसिंह माचगो
जमशेदपुर

HIGH PERFORMANCE & HIGH-TEMP PTFE ELECTRONIC WIRES, CABLES & SLEEVES

PTFE EQUIPMENT WIRES U S. MIL-W-16878 COMPLETE RANGE (AND MORE)

PTFE COAXIAL COMMUNICATION RF CABLES U.S MIL-C-17 RG SERIES & SMALLER SIZES

PTFE FLEXIBLE TUBINGS U S. MIL-I-22129

OTHER SPECIALISED PTFE ITEMS

MINIATURE EXTRA HIGH VOLTAGE CABLES (UPTO 30 KV DC)

SHIELDED MULTICORE CONTROL & SIGNAL CABLES (37-PAIRS)

HIGH-TEMP INSULATING MATERIALS (260°C)

NEW PRODUCTS

SEMI-RIGID, SEMI-SOLID (AIR-SPACED) LOW-LOSS. & LOW NOISE COAXES

FINE GAUGE HIGH STRENGTH INSULATED WIRES

PTFE BONDED OR WOVEN FLAT CABLES

BALANCED PROPAGATION-TYPE DELAY LINES

SUBSTANTIAL REPEAT EXPORTS TO THE U.S A , U.K., & W. GERMANY

CAPACITY IN HIGH TECHNOLOGY PRODUCTS AT LOW STABLE PRICES

GARG ASSOCIATES (P) LTD.

D-6, MEERUT ROAD INDUSTRIAL AREA. GHAZIABAD (U.P.) 201 003

COLLABORATORS : W.L. GORE & ASSOCIATES, INC., U.S.A.

GRAM : GARGCABLES GHAZIABAD PHONES : 841485, 840450 852958

वर्षा : दो बिम्ब

● प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय

● वर्षा : अतीत-प्रसंग

अतीत को छुआ था मैंने सूर्य के अस्तराग में
अभी चीड़ों के जंगल की
वे अदब हवाएँ, गाँवों के उदास गीत
और आसमान के भूरे चेहरे में
मैं अपने विरुद्ध
एक यात्रा हूं
शताब्दी के अन्तिम प्रत्यय की
वहां जल के घरौंदे में
कोई मृत चेहरा
या अभी की जन्मी कोई उदास कली
आकाश के नीले प्रसंग में अनुलिखित
"सुबह से अन्तिम सन्ध्या तक
केवल रंगहीन पारदर्शक जल की
उदास उपस्थिति वर्षों ब.द
अभी केसरी हवाओं में
जलों के करुण मुखा करुण तम
शताब्दी के अन्तिम प्रत्यय में
जल का एक और
सुविमल बिन्दु क्लान्त, बहुत क्लान्त

● पारदर्शक जलों का अनुष्ठान

खिड़की से रंगहीन जल छूता है
कांपती हथेली की काजल रेखाएं
वहां, हरे मैदानों में
प्यार का आखिरी त्योहार है
···और क्लान्त चेहरे की पेशियों में
मेरा एक और अतिक्रान्त सुख
···अन्तिम बार
वहां सुबह उदास है
सिर्फ कागज की नावों के बीच
एक विरामहीन अन्तिम यात्रा और मैं
उनके बीच एक सम्भावीअनुष्ठान हूं
खिड़की से पारदर्शक जलों का अनुष्ठान,
हरे मैदान का देश
और मेरा अन्तिम त्योहार
तुम्हारे लिए प्रतिश्रुतियां हैं
···अभी उदास जलों के बीच मैं प्रतिश्रुत
हूं बहुत

★

बेहतर सेवा के लिए आपका सहयोग आवश्यक है

पीने के शुद्ध पानी की सप्लाई की व्यवस्था को अधिक अच्छे ढंग से चालू रखने के लिये आप से निम्न प्रकार का सहयोग अपेक्षित है :–

- नल की टूटी ठीक से बन्द करें और पानी बेकार न बहने दें क्योंकि इससे पानी के दबाव में कमी आती है और वितरण व्यवस्था के छोर पर तथा ऊंचाई पर स्थित घरों में पानी नहीं पहुंच पाता।
- टपकते नल की टूटी और वाशर की जांच करायें तथा खराब टूटी/वाशर को तुरन्त बदलवा दें। सिस्टर्न व छत के ऊपर की टंकियों के पानी के रिसाव को भी तुरन्त ठीक करायें। इन टंकियों की समय-समय पर सफाई भी कराते रहें।
- जल कनक्शन और फिटिंग का कार्य लाइसेंस शुदा प्लम्बर से करायें और टूटियों की निर्धारित मात्रा से अधिक टूटियां बिना विभागीय स्वीकृति के न लगायें।
- कृपया सार्वजनिक नलों का प्रयोग पानी भरने के लिये ही करें। उस पर नहाना, कपड़े धोना और जानवरों को नहलाना आदि दण्डनीय अपराध है।
- पानी की लाइनें, स्लूस वाल्व आदि राष्ट्रीय सम्पति हैं इनकी अपनी वस्तु की तरह ही देख भाल करें।
- भवन में ऊपर के मंजिलों पर पानी पहुंचाने के लिये तल मंजिल पर टंकी बनायें और उस पर बूस्टर पम्प लगायें किन्तु कभी भी मुख्य पानी की पाइप से जुड़ी लाइन बूस्टर पम्प न लगायें, यह दण्डनीय अपराध है।
- पानी की मुख्य पाइप लाइन रिसने या फटने की दशा में तुरन्त दिल्ली नगर निगम के क्षेत्रीय कार्यालय में जल विभाग को अथवा दूरभाष संख्या ६४४७४६ या २२२४६१ पर सूचित करें।

दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान के समस्त कर्मचारी आपकी सेवा के लिये सदैव प्रस्तुत है।

जन सम्पर्क अधिकारी, दिल्ली जल प्रदाय एवं मल व्ययन संस्थान द्वारा प्रसारित

[पृष्ठ १२ का शेष]

के द्वारा जो पूर्णतया पराये हैं और जिनके साथ उनका कुछ भी समान नहीं है, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व स्थापित किया जा रहा है। यही कारण है भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह की इस व्यापकता का।

० ० ०

एक नए धर्म एवं नयी संस्कृति के द्वारा हजम किए जाने के खतरे के सम्मुख आने पर जनता की आत्मा विद्रोह कर उठी। इस विद्रोह का प्रथम दृश्य प्रतीक बने राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज आन्दोलन, जिसके वे जन्मदाता थे। राममोहन राय धार्मिक पुनरुत्थान के अग्रदूत बनकर सामने आये, उन्होंने वेदान्त के मूल सिद्धान्तों की ओर वापस लौटने का और उन मतों एवं सामाजिक कुरीतियों को, जो बीच के काल में हिन्दू धर्म में घुस गयीं थीं, त्यागने का प्रबल आग्रह किया। उन्होंने सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन के सर्वांश पुनरुज्जीवन की ओर योरोप के आधुनिक जीवन की अच्छी और लाभदायक बातों को अपनाने की वकालत की। अतः राजा राममोहन राय नये भारत के जागरण के प्रभात में नये युग के देवदूत बनकर आए।

इसी काल में, इस शताब्दी के अन्तिम चरण में, दो प्रमुख धार्मिक व्यक्ति जनता के समक्ष उदित हुए, जिनका नये जागरण की भावी दिशा पर भारी प्रभाव पड़ने वाला था। वे

देश यदि मांगे रक्त-दान, प्राण-दान

शैशव में लोरियाँ सुनाए यदि आप कहीं अमर सपूतों की कहानियाँ सुनाइये।
माँ का परिधान यदि धूमिल दिखाई पड़ें, जलती जवानी को जवानी बन जाइये।
देश यदि माँगे रक्त-दान, प्राण-दान कहीं, माँ की बलि-वेदी पर बिहंस चढ़ जाइये।
इतिहास स्याही से सदैव ही लिखे गये हैं असि-रक्त, अस्थि की कलम बन जाइये॥

● आनन्द त्रिवेदी

थे सन्त रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द। ब्रह्म समाज के विरोध में उन्होंने इष्ट की मूर्ति की पूजा को आवश्यक बताया और ब्रह्म-समाज की विदेशी अंधानुकरण की प्रवृत्ति की भर्त्सना की।...स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में धर्म राष्ट्रवाद की प्रेरक शक्ति था। उन्होंने नई पीढ़ी में भारत के अतीत के प्रति गर्व और भारत के भविष्य के प्रति श्रद्धा तथा आत्मविश्वास एवं आत्म-सम्मान की भावना भरने का प्रयास किया। यद्यपि स्वामीजी ने कभी राजनीतिक उपदेश नहीं दिया, तथापि जो कोई भी उनके अथवा उनकी बातों के सम्पर्क में आया वह देश भक्ति एवं राजनैतिक चेतना से भर गया। जहाँ तक बंगाल का सम्बन्ध है स्वामी विवेकानन्द को वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन की

आध्यात्मिक शक्ति माना जा सकता है ...इसी काल में, जब रामकृष्ण परमहंस बंगाल में कार्य कर रहे थे एक दूसरे प्रमुख धार्मिक व्यक्तित्व का उदय उत्तर पश्चिमी भारत में हुआ। वे थे स्वामी दयानन्द,—जिन्होंने आर्यसमाज को जन्म दिया। ब्रह्मसमाज के समान उसने भी प्राचीन हिन्दू धर्मग्रन्थों की ओर लौटने एवं परवर्ती गन्दगी और विकृतियों को त्यागने पर जोर दिया। संक्षेप में, स्वामी दयानन्द चाहते थे, कि लोग विशुद्ध आर्य धर्म की ओर लौटें और प्राचीन आर्यों के समान जीवन की चिन्ता करें। उनका मुख्य नारा था 'वेदों की ओर लौट चलो' आर्यसमाज और ब्रह्म समाज दोनों ने पृथक मत खड़ा करने का प्रयास किया, किन्तु रामकृष्ण मिशन ने कभी ऐसा प्रयास नहीं किया क्योंकि श्री रामकृष्ण एक पृथक् सम्प्रदाय की स्थापना के सर्वथा विरुद्ध थे। किन्तु, जबकि ब्रह्म समाज कुछ क्षेत्रों में पाश्चात्य सभ्यता और ईसाई मत से प्रभावित था आर्य समाज ने अपनी सम्पूर्ण प्रेरणा इसी भूमि से प्राप्त की। इन तीनों संस्थाओं में से किसी का भी राजनैतिक उद्देश्य नहीं था, किन्तु फिर भी जो कोई उनके प्रभाव क्षेत्र में आया उसमें बड़ी तेजी से आत्म-सम्मान और देशभक्ति की भावना का संचार हो गया। ०००

ग्राम जगत

फोन निवास : ८३८६६
८२६६७
फैक्ट्री : ८२६८४

जे० के० वर्मा

जे० के० जाफरानी पत्ती नं० ३२, ८० एवं १५१

तथा

सात तारा जाफरानी पत्ती नम्बर ३२१

सदैव प्रयोग करें

जे० के० हिना दरबार अगरबत्ती

निर्माता:—जे० के० सुगन्धी वर्क्स

टिकैत राय तालाब रोड, लखनऊ

(पृष्ठ १३६ का शेष)

और दरवाजे के पास बेहोश होकर गिर गया। वह अपने भाई-बन्धुओं के घबराए हुए चेहरे नहीं देख सका, जो उसके घायल शरीर को संभालने की चेष्टा कर रहे थे, नहीं वह उनकी चीख पुकार तथा बातें सुन रहा था। उन्होंने आराम से उसे उठाया, जल्दबाजी में बनाए एक स्ट्रेचर पर उसे रखा और अस्पताल की ओर ले चले।

आधी रात से अधिक समय हो गया था जब बेहोश दुंगल ने जीवन को बचाने के लिए दूसरी बार संघर्ष किया। रविवार की सुबह लगभग ३.३० बजे डाक्टरों के दल ने उसे कुछ खाने को दिया।

साथी, मित्र और ग्रामवासियों के लिए दुंगल 'हीरो' था। उसकी कहानी बार-बार गर्व से दोहराई गई और बाद में वह घरैय्या गांव के बच्चों को किवदन्ती के रूप में सुनाई जाने लगी। लेकिन दुंगल के लिए हर समय उसका ध्यान अपने मसूर के हरे-भरे खेत की ओर ही लगा रहा। शनिवार की वह रात्रि उसे सदैव स्मरण रहेगी।

डाबर

"बच्चे का पालन-पोषण करना आसान काम नहीं है। बच्चों के पेट में ऐंठन, अपचन, गैस अफारा, तो होता ही रहता है।

"ऐसे वक्त पर डाबर ग्राइप वाटर ही काम आता है। इसके आराम दायक, रोगाणु रोधक असर से बच्चे को तुरन्त आराम मिलता है।

"इसलिये जब भी मेरा बच्चा अपच या गैस के कारण रोता है मैं उसे तुरन्त ही डाबर ग्राइप वाटर देती हूँ...

"डाबर ग्राइप वाटर से बच्चे की खोई हुई मुस्कान लौट आती है"

स्वतंत्रता दिवस से शुभ अवसर पर हार्दिक शुभकामनाएं

जन सेवा के कार्यरत उ० प्र० जल निगम

उत्तर प्रदेश जल निगम २० सूत्री कार्यक्रम के सूत्र संख्या ८ के अन्तर्गत समस्त समस्याग्रस्त ग्रामों को पेयजल सुविधा उपलब्ध कराने के लिये कृत्त संकल्प है। वर्ष १९८२-८३ में ३६७५ अभावग्रस्त ग्रामों के लक्ष्य के विपरीत ५६१९ ग्रामों को पेयजल सुविधा उपलब्ध कराई गई। अधिक से अधिक नागरीय क्षेत्रों में भी पेयजल एवं जलोत्सारण सुविधा प्रदान करने के लिये हम निरन्तर प्रयत्नशील हैं। मार्च १९८३ तक १९२८४ ग्रामों, जिनमें १४४०१ अभावग्रस्त ग्राम हैं तथा ४७६ नगरों में पेयजल एवं ४८ नगरों में जलोत्सारण सुविधा उपलब्ध कराई गई।

वर्ष १९८३-८४ में हमारा लक्ष्य है ८००० समस्याग्रस्त ग्रामों व २० नगरों में पेयजल व २ नगरों में जलोत्सारण सुविधा प्रदान करना।

उत्तर प्रदेश जल निगम द्वारा कारागारों में शुद्ध पेयजल एवं जल प्रवाहित शौचालयों का कार्य प्राथमिकता से किया जा रहा है। दिल्ली पेयजल सम्पूर्ति हेतु एशिया की सबसे बड़ी, २८०० मिलीमीटर व्यास की, आर०सी० सी० कन्ड्यूट पाइप बिछाकर २०० क्यूसेक गंगा जल उपलब्ध कराने का कार्य पूर्ण किया।

ग्रामीण क्षेत्रों में गहरे नलकूप वाले विशेष प्रकार के इंडिया मार्क II हैण्ड पम्प लगाये जा रहे हैं जो मजबूती के साथ ही चलने में इतने हल्के कि एक बच्चा भी आसानी से चला सकता है तथा जिससे सामान्यतः ३० सेकेंड में एक बाल्टी जल उपलब्ध होता है।

उल्लेखनीय है कि लगभग ७० प्रतिशत रोग शुद्ध पेयजल के प्रयोग से दूर किये जा सकते हैं।

शासन द्वारा इस कार्यक्रम को पूरा करने का कार्य तथा योजनाओं का सुचारु रूप से संचालन जन सहयोग द्वारा ही सम्भव है। जो योजनायें निर्मित की जा रही हैं या हैण्ड पम्प स्थापित किये जा रहे हैं वह जनता की सेवा के लिये हैं। इनकी सुरक्षा एवं सदुपयोग करना व जल का अपव्यय रोकना आपका परम कर्तव्य है।

स्वच्छ जल - अच्छा स्वास्थ्य

उत्तर प्रदेश जल निगम द्वारा प्रसारित

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

राष्ट्रधर्म

मई १९८

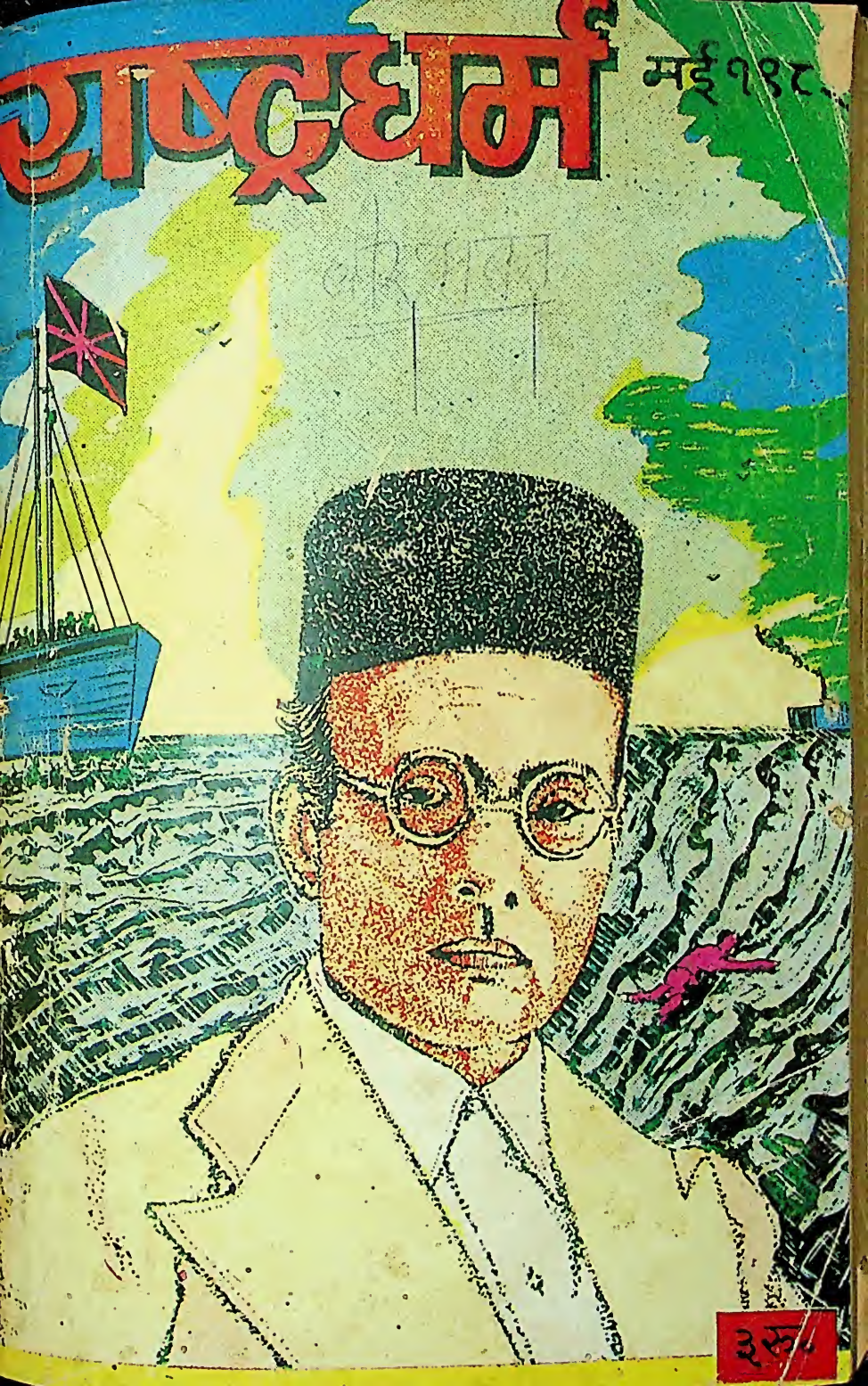

३रु.

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

सुन्दर तथा आकर्षक छपाई के लिये

कृपया सम्पर्क करें

कौशल प्रेस

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर (पूर्व)

लखनऊ-२२६००४

दूरभाष : ४२६०१

राष्ट्रधर्म

अगला अङ्क वार्षिकाङ्क रूप में

'इतिहास-कथा-विशेषांक'

अपनी प्रति अभी से सुरक्षित कराना न भूलिये। विलम्ब होने पर सीमित प्रतियों में से पूर्त्ति सम्भव न होगी।

त्याग-बलिदान-प्रेम-करुणा-सेवा समर्पण-शिक्षा-सत्य - साहस - शौर्य - संघर्ष-निष्ठा-श्रद्धा के संस्कार और भावना जगाने वाली ५० कथाएं जिन्हें एक बार पढ़कर आप फिर-फिर पढ़ना चाहेंगे।

१. राष्ट्र-द्रोही का धन (गोविन्दवल्लभ पंत), २. कुछ कथा आनन्दमठ की, ३. कोहनूर की कीमत (डा० महीपसिंह), ४. शरीर से बम बांधकर, ५. औरंगजेब की आखिरी रात (डा० रामकुमार वर्मा), ६. अंतिम संगीत, ७. तुलसीदास का रैन-बसेरा, ८. पद्मा (रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत) ९. पगड़ी रूप की (बांकेबिहारी भटनागर), १०. जब अचूक संधानी चूक गया, ११. त्रि गंग जब हाथी से रौंदवा दिये गये, १२. बन्धन-मुक्ति (पातुरकर), १३. गंगा पैसा भी देती है, १४. भाई, १५. वरदान, १६. मुट्ठी भर राख के लिए, १७. फांसी दिन भी, १८. राक्षस (एम० बी० अहमद खां) १९. अदायगी सवा लाख रु० २०. एक प्रश्न, २१. अदिति-पुत्र, २२. कविदेव और डाकू, २३. मुक्तसर ४१ शहीद, २४. प्राणों की पीर, २५. दास्ताने दिल्ली, २६. जिसके नाम पर यवी नाम पड़ा, २७. वह सन्ध्या, २८. कौन पुत्र ? कौन पिता ? २९. करनी

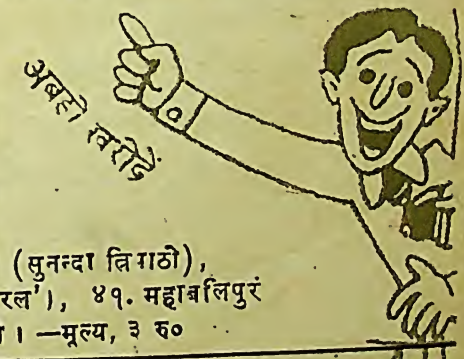

सीतादेवी), ३०. मौके की बात, ३१. जब देश ने पुकारा, ३२. आम्रपाली और आम्रफल, ३३. कवि बनाम जनन्नाथ जी, ३४. गुरु गोरखनाथ की दक्षिणा, ३५. और चन्द्रगुप्त 'देवी' बना, ३६. मंगलावती, ३७. जमानती (अक्षयकुमार जैन), ३८. ज्ञान बड़ा या धन ? ३९. पाँच सौ कोड़ों की सजा (सुनन्दा त्रिपाठी), ४०. अधरों की मदिरा, (मनमोहन 'सरल'), ४१. महाबलिपुरं आरिगपूडि) आदि और चोला देवी भी। —मूल्य, ३ रु०

सम्पर्क : व्यवस्थापक, 'राष्ट्रधर्म' (मासिक), राजेन्द्रनगर, (पूर्व) लखनऊ (उ० प्र०)

अनुक्रमणिका

संपादक : वचनेश त्रिपाठी

लेख

६	ब्रह्मपुत्र को लाल करने का फतवा	संपादकी
१०	प्राणोपासना और ब्रह्मचर्य	स्वा० हिमांशु प्रकाशानन्द सरस्व
१२	उज्जयिनी की कहानी	डा० भगवती लाल राजपुरोहि
१४	महायोगी पवहारी बाबा	कृपाशंकर अवस्थी
१६	संस्कृति में विदेशी तत्व	प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी
२४	आत्महत्या और आत्मार्पण में अन्तर	वीर सावरकर
३५	विदेशी वस्त्रों की होली	वचनेश त्रिपाठी
३६	उनका स्वेच्छया देह—विसर्जन	सम्पादक द्वारा
५६	शहीदों की कष्ट-कथायें	दुर्गा भाभी
६४	भाषा का सवाल	महादेवी वर्मा
६८	शिव—परिवार और पर्व	डा० विद्यानिवास मिश्र
७०	वन-रक्षार्थ ३६३ शहीद	सुन्दरलाल बहुगुणा
७२	जब कुंडलिनी जगती है	
७४	अमेरिका पूंजीवाद की ओर	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
८८	सावरकर ठेले पर विदेशी वस्त्र बेचते थे	डा० अरविंद गोडबोले
९०	जेल से लिखा गया मृत्युपत्र	वीर सावरकर
९६	फिल्मों से जुड़े नेताजी सुभाष बोस	असीम चक्रवर्ती
११६	सावरकर का अनूठा 'वायरलेस और पोस्टेज'	धनंजयकीर
१२४	वियत नाम का हिन्दू राज्य	अजीत दलाल

वर्ष–१६ अंक–१२
मई १६८३

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर पूर्व
(पो० बा० २०७), लखनऊ
दूरभाष : ४२६०१

कथा, संस्मरण तथा घटनायें

१६	चोला देवी (धारावाहिक)	सम्पादक द्वारा
४१	वे दिन, वे बातें	वीर सावरकर
४६	काले पानी की काल–कोठरी में	वीर सावरकर
५३	सावरकर ने कहा था	अटलविहारी वाजपेयी
५५	वे स्मृतियां	बालेश्वर सहाय कंचन
५६	तुम यह क्या कर रहे हो !	प्रणवेश
६६	कनाडियन किम और विन्दी	सुषमा जगमोहन
८३	सावरकर जब पिंजड़े में रखे गये	शान्तिभानु लहरी
८४	कालेपानी की कैद के पहले	डा० एम० पी० मंगुदकर
६२	प्रणय की पुकार	
१०२	सोना देने वाली गाय	जयप्रकाश भारती
१११	कंजूश की मुहरें	ले० टाल्सटाय
११५	महादेवी जी रिश्वत दीजिए !	स० द० स०

कविताएं

६७	नासिर-दोहावली	मिर्जाहसन नासिर
८६	क्रांति सूर्य	डा० ल० ज० हर्षे
११८	संकल्प	वीर सावरकर

अन्य

६०	कलियुग में करिश्मा !	संजीव चौधरी
६६	दिशा-सूचक	बा० सु० गिरि
१२३	अनमोल मोती	

असम लगातार पिछले तीन वर्षों से जल रहा है और दिल्ली में सुखासीन नीरो इत्मीनान से वंशी बजा रहे हैं। इन्हीं नीरो के दल में एक केन्द्रीय मंत्री हैं जनाब ए० बी० ए० गनी खां। रेलवे मंत्रालय इनके पास है। इनकी वंशी से यह विषाक्त नाद निनादित हुआ कि 'जिन लोगों को असम के आन्दोलनकारी असम से बाहर निकाल देना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे निकलें बाद में, पहले दरियाये ब्रह्मपुत्र के पानी को खून से लाल कर दें।' केन्द्रीय रेल मंत्री की इस नसीहत का क्या मतलब हुआ, यही न कि बंगलादेश के जो १० लाख घुसपैठिये असम में जमे बैठे हैं और जो गांव के गांव जला रहे हैं, खूनी हमले कर रहे हैं-दंगाई हैं—वे असम में इतना खून बहा दें कि ब्रह्मपुत्र नदी का प्रवाह रक्तिम हो उठे। शायद गनी खां की यह घुट्टी बखूबी दंगाइयों के गले उतर गई है और

'ब्रह्मपुत्र को लहू से लाल कर दें'

वे ब्रह्मपुत्र को लहू से लाल कर देने में व्यस्त हैं। स्पष्ट है कि घर के चिराग से ही घर में आग लगी है और आग लगाकर बीबी जमालो दूर खड़ी तमाशा देख रही हैं। सवाल है कि जलते हुए असम के लिए ऐसे बयान देने वाले रेल-मन्त्री क्या दंगाइयों के मुकाबले कम गुनहगार हैं और उनकी इस बयानबाजी के लिए क्या उन्हें अदालती कटघरे में नहीं खड़ा किया जाना चाहिए? ऐसा आदमी क्या केन्द्र में मन्त्री बनाये जाने के काबिल है? लेकिन इन्दिराजी के राज्य में यह अरण्य रोदन ही है। एक और मंत्री हैं जिन पर सन् ७१ में 'यूनिसेफ' की सहायता-सामग्री हड़प जाने का मुकदमा चला था, वही आज वहां राहत-कार्यों के सर्वेसर्वा हैं। फलतः राहत-सामग्री की चोरी जारी है।

जहां २२६ वोट पाने वाला भी मन्त्री है

जहां तक मन्त्रि-पद की काब्लियत का सवाल है, असम में एक ऐसा आदमी भी मन्त्री-पद पर ला बिठाला गया है, जिसे चुनाव में सिर्फ कुल मिलाकर सवा दो सौ (२२६) ही वोट मिले थे। फिर भी वह आज मन्त्री है। क्या उसे जनता का सही प्रतिनिधि माना जा सकता है? और ऐसे ही तथाकथित प्रतिनिधियों के आधार पर मुख्यमन्त्री-पद पर कब्जा करने वाले हितेश्वर साकिया का मुख्य-मन्त्रित्व क्या वैध कहा जा सकता है? बिना सूची संही किये चुनाव कैसे?

जाहिर है, असम में बलात थोपी गई सरकार जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती। वहां के विधायक और मन्त्रीगण फौजी पहरे, संगीनों-राय-

सम्पादकीय

फलों की छाया में चलते-फिरते हैं, बिना सशस्त्र सरकारी पहरेदारों किंवा अंग-रक्षकों के वे बाहर कदम नहीं रखते। उनके घर से लगाकर विधानसभा तक बाकायदा सरकारी पहरा व संरक्षण का सिलसिला रहता है, इस स्थिति से क्या यह संकेत मिलता है कि असम की आग जल्द ठंढी हो सकेगी ? और इन्दिरा गांधी ने ज़िद करके जो सरकार असमियों पर ओढ़ा रखी है—उसे वहां की आम जनता ओढ़े रहेगी ? शायद यह असम्भव होगा। क्योंकि चुनाव के पहले यदि वहां

का फतवा देने वाले रेलमंत्री-गनीखां

आन्दोलन में ७० प्रतिशत जनता भागीदार थी तो चुनाव के बाद आज ६५ प्रतिशत लोग आन्दोलनकारियों के साथ हैं, उनकी आवाज में शरीक हैं। इन्दिराजी द्वारा जबर्दस्ती चुनाव कराकर वहां यह स्थिति पैदा कर दी गई है और चुनाव के बीच जो उन्होंने और उनके चाटुकारों ने भाषण दिये, उनसे दंगों की लपटें फूटी हैं। ये लपटें १५ हजार स्त्रियों-बच्चों-जवानों और बूढ़ों को अपनी विकराल दाढ़ों में निगल चुकी हैं। असम को बूचड़खाना बना डाला है। केन्द्रीय सरकार इस जिम्मेवारी से बच नहीं सकती। रेलमन्त्री गनी खां की बयानबाजी बताती है कि उनके हाथ भी असम की निर्दोष-निरीह जनता के खून से रंगे हुए हैं और स्वयं प्रधानमन्त्री आज बेदाग नहीं बची हैं। इसीलिए न्यायिक जांच कराने से कतरा रही हैं।

शायद कोई कहे कि असम की अराजकता और असंतोष के लिए हम प्रतिबद्ध होकर इन्दिराजी को अपराधी कठघरे में घसीट रहे हैं, तो उसके साक्ष्य में असम के कुछ कारनामे पेश करता हूं कि किस नीयत, न्याय और किस नैतिकता से असम में राज्य किया जा रहा है !

चुनाव-बहिष्कार का पुरस्कार

असम में एक शहर ऐसा है, जहां खाते-पीते लोग रहते हैं। मुद्दत से वहां एक राजकीय विद्यालय चलता आया था लेकिन चुनाव के बाद साईकिया सरकार ने उस अच्छे-खासे विद्यालय में कतई तालेबन्दी करा दी, अब वहां पढ़ाई

नहीं होती। विद्यालय ही समाप्त कर दिया। क्या वजह थी ? क्या अपराध था। उस आबादी के लोगों का ? तो अपराध यह था कि चुनाव में वहां से एक भी मतदाता वोट डालने नहीं गया। चुनाव का पूर्ण बहिष्कार ! जनता की यह कार्रवाई सरकारी खाते में काफी गुस्से के साथ दर्ज कर ली गई और जैसे ही चुनाव खत्म हुए तथा हितेश्वरजी की सरकार शासन में आई तो पहला हित उस शहर का उसने यह किया कि जहां उनके लड़के-लड़कियां पढ़ते थे, वह विद्यालय ही उठवा दिया। लो बहिष्कार का पुरस्कार। असम सरकार का यह चमत्कार इंदिरा गांधीजी को न पता हो, ऐसा संभव नहीं। लेकिन आज तो किसी भी प्रदेश में मुख्यमन्त्री का अर्थ है, इन्दिराजी का वफादार सूबेदार होना। सो, असम में सूबेदारी खूब तप रही है। तानाशाही तरीके से जो सरकार वहां सत्तारूढ़ की गई है, वह तानाशाही के ही करिश्मे दिखा सकती है, जन-हित का उससे क्या सरोकार ! सरकार की ऐसी करतूतें आज असम-वासियों को और अधिक उकसा रही हैं, विक्षुब्ध बना रही हैं और आग में घी का काम कर रही हैं। फिर समाधान हो तो कैसे ?

असमिया अभियंता की बर्खास्तगी का कारण

दूसरी जिन्दा मिसाल; वहां एक सरकारी सेवा-रत अभियंता था। बेचारा भला आदमी था। मुसलमान था। उसका गुनाह यह था कि असमिया था और असम-आन्दोलन का समर्थक था। फरवरी महीने में इन्दिरा गांधी चुनाव-दौरे की गरज से असम गईं; हुकुम हुआ कि प्रधानमन्त्री की आमद में एक हेलिपैड बनाया जाय। इस हुक्मनामे का कार्यान्वयन आनन-फानन होना था, मगर यह काम सौंपा गया उक्त अभियन्ता को। उसका मन तो पहले से ही बागी था, चुनाव कराये जाने को अनुचित मानता था। नतीजा यह कि उसने साफ कह दिया, 'यह काम मैं न कर सकूंगा क्योंकि प्रधानमन्त्री किसी सरकारी काम से नहीं आ रहीं—वे आ रही हैं चुनाव-प्रचार के उद्देश्य से और वह दौरा तो उनके दल से सम्बन्धित है, वह सरकारी काम तो नहीं।' सरकार यह कैसे सहन करती कि एक अभियंता इतनी जुर्रत करे ! और वह गुस्ताखी खासुलखास प्रधानमन्त्री की शान में ! फौरन उसे बर्खास्तगी का कागज थमा दिया गया। मगर वाह रे अभियन्ता ! बलिहारी तेरे साहस, देशभक्ति और नैतिकता की ! ऐसी बर्खास्तगी रंग लायेगी। क्योंकि कहते हैं, 'रंग लाती है हिना पत्थर पे पिस जाने के बाद।' असम

में सत्तारूढ़ सरकार अपने विरोधियों को दो पाटों के बीच पीस रही है। एक तरफ बंगला देशी दंगाइयों को भड़काकर हत्याकांड करा रही है—दूसरी तरफ चुन-चुनकर चुनाव-विरोधियों याकि आन्दोलन के समर्थकों से बदला चुका रही है।

चुनाव-विरोधियों को कोई सरकारी मदद नहीं

असम का पर्यवेक्षण करके हाल ही लौटे भारतीय जनता पार्टी के सांसद तथा बिहार में अनेक वर्षों तक राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय रहे हुए श्री अश्विनी कुमार जलोटा से भेंट हुई तो अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर उन्होंने बताया कि असम में पुलिस और सुरक्षा दस्ते उन्हीं की मदद के लिए भेजे जाते हैं जिन्होंने चुनाव में कांग्रेस को वोट दिये, अन्यथा गांव जल रहा है, कत्लेआम हो रहा है। करुण चीत्कारों और तुमुल कोलाहल से वातावरण प्रकंपित है परन्तु आप कितना ही रोइये-गिड़गिड़ाइये, कितना ही हाय—तोबा मचाइये, यदि आप चुनाव में कांग्रेस के साथ नहीं रहे तो सरकार का एक भी आदमी उस स्थिति में भी आपके साथ गांव न जायेगा। न आग बुझाई जायेगी, न दंगाइयों के खिलाफ कोई कार्रवाई होगी।' संसद में भी उन्होंने अपने ये साक्ष्य प्रस्तुत किये। सरकार कान में खांटी सरसों का तेल डालकर बैठी है, सो रही है। १५ हजार लाशें गिर चुकीं, ३० करोड़ रुपये की सम्पदा दंगों में स्वाहा हो चुकी—फिर भी दिल्ली में बैठे नीरो के वंशी-नाद में कोई फर्क या अन्तराय नहीं।

'वे एक जन का खून करेंगे तो हम दो का करेंगे' : गनी खां

जहाँ तक रेलमन्त्री के जहरीले बयान की बात है, सिर्फ अखबारों तक ही सीमित नहीं रही वरन नई दिल्ली में पत्रकारों को सांसद मधु दण्डवते ने गनी खां के भाषण का वह टेप सुनाया, जिसमें गनी खां ने असम की चुनाव-सभा में बंगला भाषा में कहा था, 'ओरा जोदि एक जोन के खून करें, आमरा दु जोन के खून करबे'। इसका अर्थ होता है, 'अगर वे एक आदमी की हत्या करेंगे तो हम दो हत्याएं करेंगे।'

मधु दण्डवते ने लोकसभा में इस विषय पर विशेषाधिकार-हनन प्रस्ताव भी

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

प्राणोपासना और ब्रह्मचर्य

स्वामी हिमांशु प्रकाशानंद सरस्वती
● (डा० चाँदप्रकाश मेहता)

देह सिद्धि के लिये हठयोगी प्राणायाम तथा मुद्राओं की कुछ विशेष क्रियायें अधिक लाभदायक होती हैं। शरीर में प्राण तत्व या सौर शक्ति अंश जो प्रायः मणिपुर चक्र (Solar Plems) में संगृहीत किया जाता है) को बढ़ा लेने से शरीर जरा-मरण से मुक्त हो सकता है। यह अभ्यास से मुमकिन है। इसी को प्राणाकर्षण विद्या या प्राणोपासना के नाम से सम्बोधित किया जाता है। विन्दु सिद्धि द्वारा भी योगी अजर-अमर बन जाते हैं। अभ्यास द्वारा प्राणों को सुषुम्णा में प्रवाहित कर देने से वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाने से साधारण मनुष्य भी ऊर्ध्वरेता बन कर अजर-अमर हो सकता है।

विन्दु सिद्धि या उसकी स्थिति का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य से है। जब तक मन और पवन चंचल हैं तब तक विन्दु रक्षा नहीं हो सकती। ब्रह्मचारी को न केवल विन्दु धारण करना आना चाहिये, बल्कि विन्दु को शुद्ध करके उसे ऊर्ध्वगामी करने की प्रक्रिया भी जानना नितान्त आवश्यक है। आप कहेंगे कि विन्दु तरल पदार्थ है, उसको ऊर्ध्वगामी कैसे बनाया जा सकता है? उत्तर यही है कि स्थूल वीर्य तेजोमय ओज रूप में ऊर्ध्वगामी होता है। अथवा यूं कहिये कि उसकी प्राण शक्ति अथवा प्राण तत्त्व ही ऊपर खींचा जाता है। इस विषय में बहुत रहस्य है। उसकी शिक्षा दिये बिना केवल आसन, व्यायाम से ब्रह्मचर्य का गठन नहीं हो सकता। शास्त्रीय नियम पालन तो उसी के अनुकूल हैं। किन्तु यथार्थ ऊर्ध्वगति की शिक्षा के बिना केवल बाहरी नियम से कुछ नहीं होता।

'वज्रोली मुद्रा' विन्दु को ऊर्ध्वगामी

हमारे महर्षियों का कहना है कि वीर्य प्राण-शक्ति ही है और वीर्य के नष्ट होने से प्राण-शक्ति का ह्रास होता है। अपान शक्ति का उत्थान होने पर उदानरूपी अग्नि का योग होने से वीर्य की प्राण-शक्ति ऊर्ध्वगामी हो जाती है, ऐसे योगी का वीर्य स्खलित नहीं होता तथा स्खलित होने पर भी उसका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं होता।

बनाने के अभ्यास के लिये अत्यन्त सहायक है। बज्रोली मुद्रा का उद्देश्य तथा वास्तविक रहस्य है—शरीरस्थ ओज को उसके स्थूल रूप वीर्य में परिणित होने से रोकना।

इसमें भी कई गुप्त नुक्ते है जो गुरु-मुख से ही समझे जा सकते हैं। साधारण तौर पर साधक को चाहिये कि यदि उसे वीर्य क्षरित होने की आशंका हो तो फौरन दीर्घ श्वांस लेकर मूलबन्ध लगाकर अपना श्वांस रोक लें [कुम्भक करे] और जिह्वा उलट कर काग की ओर जितनी दूरी तक ले जा सके ऊपर तालु से लगा दे ['खेचरी' लगा ले] और भ्रूमध्य पर ध्यान लगाये रखे। ऐसा करने से वीर्य का स्तम्भन होता है।

इसका ध्येय अस्थाई रूप से कुछ क्षण के लिए मन, वीर्य और श्वांस का एक साथ स्तम्भन करना है।

हमारे महर्षियों का कहना है कि वीर्य प्राण शक्ति ही है और वीर्य के नष्ट होने से प्राण शक्ति का ह्रास होता है। अपान-शक्ति का उत्थान होने पर उदानरूपी अग्नि का योग होने से वीर्य की प्राणशक्ति ऊर्ध्वगामी हो जाती

(शेष पृष्ठ २६ पर)

सिप्रा-सहित नौ धाराओं, सात तालाबों, अगणित कुंडों और बावड़ियों से सिंचित उद्यान-परम्परा से शोभित उज्जयिनी प्राचीन काल से ही व्यापार और संस्कृति का समृद्ध केन्द्र और पर्यटन-स्थल थी, जिसे देखने देश-विदेश से यात्री आया करते थे। पेरिप्लस और टालेमी, व्हेनसांग और अल्बेरुनी के समान विख्यात विदेशी यात्री यहां आते रहे हैं और उन्होंने अपने यात्रा-विवरणों में इस नगरी की महिमा बखानी है।

उज्जयिनी वैदिकों, बौद्धों और जैनों की प्रिय नगरी रही है। महाकाल और सिप्रा से वैदिकों को सदा अनुराग रहा।

इतिहास

डा० भगवतीलाल राजपुरोहित

उज्जयिनी की कहानी / पुरावशेषों की जबानी

एक मान्यता के अनुसार तीर्थंकर महावीर यहां भी रहे; अतः जैनों का भी इससे लगाव रहा। बौद्धों को यह इसलिए आकर्षित करती रही कि यहां अथवा इसके आस-पास ही महकच्चान [महाकात्यायन], इसिदासि [ऋषिदासी], अभय और उसकी गणिका माता पदुमवती [पद्मावती] की जन्मभूमि रही।

उज्जयिनी में रहते हुए ही अशोक बौद्ध हो गया था। उसने यहां नरक नामक एक भीषण करागार बनवाया था। सम्भवतः वह उसी स्थल पर था, जहां वर्तमान भैरुगढ़ का किला और कारागार है। विदिशा-वासिनी वैश्य पत्नी से अशोक के दो पुत्र उज्जेनिय और महिंद [महेन्द्र] तथा पुत्री संघमित्ता हुए। 'महावंश' के अनुसार महिंद लंका जाने से पहले छह माह तक उज्जैन के दक्खिनगिरि विहार में रहा।

मौर्ययुग की यादगार के रूप में उज्जैन में केवल दो टेकरियां बची हैं उनमें से एक है वर्तमान नगर के मध्य; योगेश्वर की टेकरी। चूंकि भोज द्वितीय के मन्त्री गोगा ने इस पर योगेश्वर का मन्दिर बनवाया था, अतः यह 'गोगासा की टेकरी' भी कहलाती है। दूसरी है दक्षिण-पूर्व में, वर्तमान देवास मार्ग पर स्थित बिजासिनी की टेकरी, जिसके द्वितीय-पाठ पर मौर्ययुगीन टूटे बरतन प्राप्त होते हैं। यहां देवालय या स्तूप के चिह्न भी हैं।

शायद ये ही वे गिरि-विहार हैं, जिनमें से किसी एक पर महिंद छह माह तक रहा। वह उज्जैन से जो संदेश-बौद्ध धर्म-लंका ले गया था, उसका वहां अब तक अनुपालन हो रहा है। यही नहीं, चूंकि बौद्ध धर्म का प्रथम संदेश उज्जयिनी से पहुंचा था, अतः अच्चुतगामी ने लंका में उसकी स्मृति के लिए एक उज्जयिनी बसा दी।

महिंद की वैश्य माता भी बौद्ध थी और उसने भी स्तूप-विहार बनवाये थे। 'वैश्या टेकरी' शायद उन्हीं अवशेषों और स्मृतियों का संभार लिये विजन में उदास-सी खड़ी है। यहीं लगा हुआ कानीपुरा क्षेत्र है। कहीं यही तो वह स्थल नहीं, जहां कभी कांचनवन-विहार था और जिसके एक हिस्से में महास्थविर महाकात्यायन ने मथुरा से लौटकर पर्याप्त समय तक निवास किया था? और यहीं तो नहीं था वह ऐतिहासिक कनकतालवन जो चंड प्रद्योत ने लगवाया

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

महायोगी

पवहारी बाबा

प्रस्तुति :-
डा० कृपाशंकर अवस्थी

स्वामी विवेकानन्द जी ने पवहारी बाबा के निर्वाण के बारे में लिखा है कि, 'उनके जीवन की उत्कट गम्भीरता का अन्तिम परिणाम एक अत्यन्त अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी आत्माहुति में हुआ जो उस समय सब लोगों को प्राचीन कथाओं के समान केवल एक किंवदन्ती-सी प्रतीत हुई।'

पवहारी बाबा समाधि के बाद हवन किया करते थे। एक दिन ऐसे ही समय में उन्होंने जान लिया कि उनका अन्त—समय आ गया है। उन्होंने निर्णय किया कि आज इस शरीर को ही अन्तिम आहुति, पूर्णाहुति के रूप में दे दिया जाय। और वास्तव में इसी भावना से उन्होंने अपना शरीर होमाग्नि में पूर्णाहुति के रूप में समर्पित कर दिया। पवहारीबाबा का संस्कृत भाषा से, द्राविण भाषाओं से, तथा प्राचीन बँगला से, पूर्ण परिचय था। पातञ्जल-योगशास्त्र तथा शिवसूत्र (काश्मीर सूत्र) उन्होंने

आध्यात्मिक

पढ़ा ही होगा। शिवसूत्र में लिखा है—ज्ञानं अन्नः। शरीरं हविः। तो पवहारी बाबा ने शरीर को हवि (हवन सामग्री) के रूप में अन्तिम क्षण को समर्पित कर दिया। ऐसा कहना सुनना तो सरल है परन्तु इस गम्भीरता से ऐसा कर ले जाना कितना कठिन है—इसका अनुमान हम कर सकते हैं यदि हम किसी आपरेशन के पूर्व की साधारण मनःस्थिति का चिन्तन करें।

किसी समय आर्य-उत्कृष्ट आर्य इसी प्रकार जीवन की आहुति दिया करते थे। रामचन्द्रजी ने नदी में, कृष्णजी ने अन्तिम समय आया देखकर निर्जन बन में, पाण्डवों ने सुन्दर हिमाच्छादित हिमालय में शरीर का उत्सर्ग किया। जीवन के सब काम समाप्त हो चुके। शरीर जीर्ण हो चुका और काम नहीं करता। फिर भी संयम से पाला हुआ वही शरीर प्राण का साथ भी नहीं छोड़ता था। बीमारी तब नहीं थी, या बहुत कम थी। समरांगण में भी शरीरपात न हुआ तो अन्त में अपना शरीर ही एक समस्या बन जाता था। तब आर्य वीरता, धीरता, गम्भीरता से

(स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में)

मण्डित, इसी प्रकार इस समस्या से निपटते थे।

स्वामी विवेकानन्द ने बड़े मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है:—

'हम पहले ही कह चुके हैं कि (गुफा के) बाहर से धुवाँ दीख पड़ने से ही मालूम हो जाता था कि कि वे समाधि से उठे हैं। एक दिन उस धुवें में जले हुये मांस की दुर्गन्ध आने लगी। आसपास के लोग उसके सम्बन्ध में कुछ अनुमान न कर सके। अन्त में वह दुर्गन्ध असह्य हो उठी और धुआँ भी अत्यधिक मात्रा में ऊपर उठता हुआ दिखाई देने लगा। तब लोगों ने दरवाजा तोड़ डाला और देखा कि उस महायोगी ने स्वयं को पूर्णाहुति के रूप में उस होमाग्नि में प्रदान कर दिया है। थोड़ें ही समय में उनका यह पवित्र शरीर भस्म की राशि में परिणित हो गया। यहां पर हमें महाकवि कालिदास की ये पंक्तियां याद आती हैं:—

अलोक सामान्यमचिन्त्य हेतुकम्।
निन्दन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।
—कुमार सम्भव।

—अर्थात् मन्द-बुद्धि व्यक्ति महात्माओं के कार्यों की निन्दा करते हैं; क्योंकि ये कार्य असाधारण होते हैं तथा इस कारण सर्वसाधारण व्यक्तियों की विचारशक्ति से परे होते हैं।

परन्तु उनके साथ हमारा विशेष परिचय होने के कारण उनके उक्त कार्य के

सम्बन्ध में हम एक अनुमान पाठकों के सम्मुख रखने का साहस करते हैं—हम कह सकते हैं कि उन्होंने यह जान लिया था कि उनके जीवन का अन्तिम क्षण समीप आ गया है और उनकी मृत्यु के पश्चात् भी किसी को कोई कष्ट न हो इसीलिये उन्होंने पूर्ण स्वस्थ शरीर तथा मन से आयोंचित रीति से यह शेष आहुति भी समर्पण कर दी।'

पातञ्जल योगशास्त्र के सूत्र—विशेष दर्शिनः आत्मभाव विनिवृत्तिः—के अनुसार पवहारी बाबा विशेष दृष्टा थे। उनको आत्मभाव (अहंभाव) से निवृत्ति मिल चुकी थी। वह संघ बनाकर नहीं काम करते थे। वह विशेषदर्शी महात्माजी 'अवर्णनीय नीरव प्रभाव' द्वारा ईश्वर की तरह काम किया करते थे। जीवन तो उनका पातञ्जल 'योगशास्त्र का प्रत्यक्ष प्रमाण' था ही। जीवन के अन्त को भी यौगिक कर्म मान कर उस 'महायोगी' ने योग का शिखर-शास्त्र शिवसूत्र के सूत्र—'शरीरं हविः' के अनुरूप ही किया। ००

आर्यावर्त की संस्कृति में विदेशी तत्व

विदेशों के साथ भारत का सम्पर्क बहुत पुराना है। आद्य ऐतिहासिक काल में मिस्र, मेसापोटामिया और ईरान के साथ इस देश के सम्बन्ध थे। प्रारम्भ में ये सम्बन्ध मुख्यतः आर्थिक थे। धीरे-धीरे धर्म, दर्शन साहित्य तथा ललितकलाओं के क्षेत्रों में, विभिन्न देशों के साथ भारत का आदान-प्रदान बढ़ने लगा। ईरान, यूनान, रोम, मध्य एशिया, अरब देश तथा चीन के साथ हमारे संबंधों में मौर्यकाल से लेकर पूर्वमध्य-युग तक लगातार वृद्धि हुई। इधर दक्षिण-पूर्व एशिया में सिंहल, बर्मा, हिंदचीन तथा हिंदेशिया के देशों के साथ हमारे सम्बन्ध बहुत उन्नत हुए। विशेष बात यह है कि ये सम्बन्ध मानव-प्रेम के उच्च आदर्शों पर आधारित थे।

बाहर के देशों के साथ भारत के संबंध स्थल तथा जल दोनों मार्गों से थें। प्राचीन काल में देश के भीतर तथा विशेषतः विदेशों में लम्बी यात्राएं करना बहुत कठिन था। परन्तु हमारे देश के लोगों ने इस दिशा में असाधारण ख्याति प्राप्त की। मार्ग की कठिनाइयों की परवाह न करके भारतीय जन दूर देशों की यात्राएं करते थे। विदेशों के साथ प्राचीन भारतीय सम्बन्धों के जो विवरण उपलब्ध हैं, वे बड़े रोचक तथा ज्ञानवर्धक हैं।

विदेशों के साथ हमारे सम्बन्धों में चौथी शती ई० पू० से विशेष उन्नति हुई। ३२७ ई० पू० में भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग पर यूनानी शासक सिकंदर का आक्रमण हुआ। इस आक्रमण का भारत पर कोई स्थायी राजनीतिक प्रभाव नहीं पड़ा, परन्तु इसके कारण यूनान के साथ भारत का सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया। इसके फलस्वरूप, दोनों देशों के बीच आर्थिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों के बढ़ने में सहायता मिली।

मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के समय से लेकर अशोक के शासन-काल तक भारत की राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति मजबूत रही। इस काल में खेती तथा उद्योग-धन्धों की बड़ी उन्नति हुई। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' तथा विदेशी यात्रियों के विवरणों से उस समय के भारत की राजनीतिक शक्ति तथा आर्थिक समृद्धि का पता चलता है। 'अर्थशास्त्र' से ज्ञात होता है कि देश के आंतरिक व्यापार की वृद्धि तथा बाहरी देशों के साथ व्यापार के लिए नियम बनाये गये।

देवेज

प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी

मौर्यकाल में समुद्री यात्रा के लिए नौकाओं के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस काल में पंजाब और सिंध के निवासी नौका-निर्माण में बड़े कुशल थे। स्ट्राबो नामक यूनानी यात्री ने लिखा है कि झेलम तथा चिनाब नदियों के किनारे जहाज और नावें बनाने की मजबूत लकड़ी मिलती थी। यूनानी सेनापति निअर्कस के लिए पंजाब के लोगों ने २,००० जलयान बना-कर दिये थे।

मौर्यकाल में तथा उसके बाद भी विदेशी व्यापारियों की सुख-सुविधा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। धीरे-धीरे इन व्यापारियों ने पेशावर, तक्षशिला, मथुरा, विदिशा, उज्जयिनी, भरुकच्छ आदि में अपने केन्द्र बना लिये। उन्हें पूरी व्यापारिक सुविधाएं प्रदान करने के साथ इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि वे भारत के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों में किसी प्रकार बाधा न डालें।

अशोक की विदेश-नीति के कारण मौर्य साम्राज्य की शक्ति को धक्का पहुंचा। उसकी मृत्यु के पश्चात यूनायिनों ने भारत पर आक्रमण शुरू कर दिये। दूसरी शती ई० पू० के अंत से लेकर लग-भग दूसरी शती ई० के अंत तक उत्तर-पश्चिम भारत के एक बड़े भाग पर विदेशियों का अधिकार रहा। पहले यूनानियों ने और उनके बाद शक, पह्लव तथा कुशाण लोगों ने अफगानिस्तान से

'अर्थ शास्त्र के प्रस्तोता 'कौटिल्य'

लेकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक अधिकार कर लिया।

कुषाणों का आधिपत्य मथुरा और उसके आगे तक हो गया। काठियावाड़, गुजरात पर तथा महाराष्ट्र और मालवा के कतिपय क्षेत्रों पर शकों ने आधिपत्य

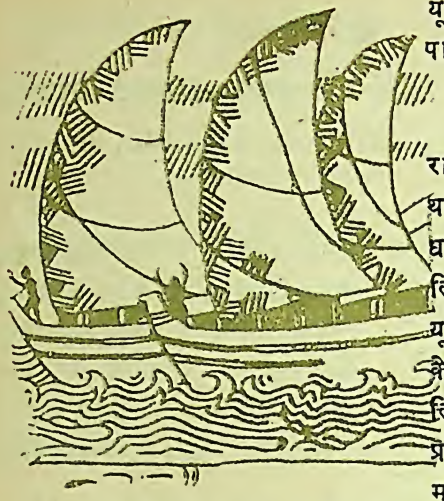

कर लिया। पहले वहां क्षहरात वंश का शासन रहा और उसके पश्चात क्षत्रपों का। चष्टन नामक क्षत्रप के राजवंश ने इस भूभाग पर लगभग चौथी शती ई० के अन्त तक शासन किया। गुप्तवंश के सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिमी भारत से उनके शासन को समाप्त किया।

अशोक के बाद डिमेट्रिअस नामक यूनानी शासक के राजवंश ने उत्तर-पश्चिमी भारत पर अधिकार जमाया। उसका केन्द्र अफगानिस्तान का बैक्ट्रिया [आधुनिक बल्ख] नगर था। दूसरी और पहली शती ई० पू० में यूनानियों ने अफगानिस्तान, बलूचिस्तान तथा उत्तर-पश्चिमी भारत के अलावा प्रायः समूचे यूरोप तथा मिस्र देश पर अधिकार कर लिया था उन सभी विजित क्षेत्रों में यूनानी धर्म, भाषा लिपि और साहित्य का उत्कट प्रभाव व्याप्त हो गया; परन्तु भारत में यूनानियों का ऐसा प्रभाव नहीं जम पाया।

यह उल्लेखनीय है कि भारत के जिन क्षेत्रों पर यूनानियों का राजनीतिक अधिकार स्थापित हो गया था, वहां पर भारतीय वैदिक एवं बौद्ध धर्म, प्राकृत भाषा तथा यहां की दो मुख्य लिपियां-ब्राह्मी और खरोष्ठी-चलती रहीं। यूनानी शासकों ने उत्तर पश्चिमी भारत के अपने अधिकृत प्रदेशों में जो अभिलेख लिखवाये और जो मुद्राएं जारी कीं; उनमें प्राकृत भाषा तथा भारतीय लिपियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इतना ही नहीं, भारत के अनेक देवताओं को उन्होंने अपने सिक्कों पर प्रदर्शित किया। इन देवों में वासुदेव कृष्ण, बलराम, इन्द्र, शिव, लक्ष्मी नगर-देवता आदि उल्लेखनीय हैं। भारतीय धार्मिक और भौगोलिक प्रतीकों [चक्र, कल्पवृक्ष, गज, वृषभ आदि] को भी अनेक यूनानी राजाओं ने अपनी मुद्राओं पर अंकित कराया।

भारत के अध्यात्म-चिंतन तथा सर्वजनकल्याणकारी वैदिक-स्मार्त एवं बौद्ध धर्म से यूनानी लोग बहुत प्रभावित हुए। दूसरी शती ई० पूर्व में पश्चिमी गंधार क्षेत्र के यूनानी शासक ऐन्टिअल्काइडिस ने अपना राजदूत भारतीय शासक भागभद्र के दरबार में भेजा। हैलिउदोर नामक यह राजदूत भागवत धर्म से प्रभावित हुआ। उसने वर्तमान मध्य प्रदेश में विदिशा नगरी में भगवान वासुदेव के

(शेष पृष्ठ १०६ पर)

चौलादेवी

[४५वीं किस्त]

पाबूजी कितना ही समझावैं, देवल आश्वस्त न हो। बोली, 'तुम तीन दिन की कहते हो, तीन दिन में तो जिन्दराज मेरी एक भी गौ न छोड़ेगा। दुनिया जानती है, उसके ऊदो-दूदो नाम वाले दोनों सरदार, को, उनसे कौन पेश पावै भला!'

किसी ने टोका, 'पाबूजी! अमरकोट चलने की लगन निकली जा रही। और पूरी बरात आगे बढ़ चुकी—सिर्फ आप तीनों भाई हिंयै ठाढ़ै। वेगि चलौ पाबूजी! बहुत विलम्ब ह्वै रहो।'

पाबूजी ने चलते-चलते फिर देवल से अनुमति चाही कि वह खुशी-खुशी विदा करे। तब देवल बोली,

'पाबूजी! जब म्हारी गौवों पर विपति परैगी तो म्हारी केसर घोड़ी जहां भी रखोगे, ह्वैं हिनहिनावैं—तब तुम जान लीजो कि देवल तुम्हें पुकार रई है।'

पाबूजी बोले, 'ठीक है माता! तुम निश्चित होकर जाओ। मैं ध्यान रखूंगा; जब केसर हिनहिनायेगी, मैं वचन देता हूं कि जैसे ही मुझे पता चला कि जिन्दराज ने तुम्हारी गौवें घेर ली हैं और अगर उस समय मैं ब्याह-मण्डप में फेरे भी कर

सम्पादक द्वारा

रहा होऊंगा तो बीच से ही उठकर सीधे तुम्हारी तरफ चल पड़ूंगा—पीछे घूमकर देखूंगा भी नहीं।'

देवल चारणी यह वचन पाकर निश्चित हो गई और तब उसके कण्ठ से स्नेह का अजस्र स्रोत स्वरूप एक लोक-गीत मुखरित हो उठा। उसने देखा था, पाबूजी की बारात में उनका तोता [शुक] भी सजे-धजे एक पिंजड़े में बैठकर बाराती बनकर जा रहा है—वह गा उठी,

उनई है कारी बदरिया,
दूलहा बियाहै जाय!
ऐसो है कौन दुलरुवा,
सुअना बरातै जाय!

—आकाश में काली घटा घिरी है, अर्थात् उसने पथ पर छाया कर रखी है क्योंकि दूल्हा बरात लेकर ब्याहने जा रहा है। यह किस मां का ऐसा लाड़ला-दुलारा पुत्र है जिसकी बारात में तोता भी बाराती बनकर जा रहा है!

देवल गाती जाय और टप-टप आंसू टपकते जायें, जैसे कि उसका स्वयं का बेटा बारात लेकर ब्याहने जा रहा हो—कुछ ऐसा ही व्याकुल भाव उमड़ आया उसके गीत में; पाबूजी के प्रति उसका वात्सल्य भाव उसका कण्ठ रुद्ध किये दे रहा है, वह आगे न गा सकेगी।

इसी वातावरण में पाबूजी और उनके

साथ ही उनके दोनों भाइयों डामाजी, चांदाजी ने घोड़ों को एड़ लगाई। घोड़े पवन गति से ऊमरकोट की दिशा में दौड़ चले। बरात धौंसा बजाती बढ़ती गई।

ये लोग अभी चार ही कोस मंजिल पार कर सके होंगे कि मार्ग में विचित्र अपशकुन होने लगे। सबने देखा, 'बीच रास्ते में नागराज फूत्कार लगाते क्रोध से फनफना रहे हैं।' डामाजी तीर चढ़ाकर उसे बींधने चले तो पाबूजी ने मना कर दिया। कहा, 'नागराज के बाएं होकर निकल चलो।' ऐसा ही किया गया। आगे चार कोस पार करने पर फिर अपशकुन हुआ। देखा क्या कि एक विकराल शेरनी पथ रोके सामने खड़ी है, आक्रमण की मुद्रा में। यह दूसरा अपशकुन था। अतः पाबूजी ने ज्योतिषी बुलाकर पूछा—'इन शकुनों का क्या फल है?' ज्योतिषी थे सल्ले महाराज। उन्होंने शकुन-विचार कर कहा, 'शकुन मानना हो तो समय शुभ नहीं है। विघ्नकारक है। अधिक अच्छा हो यदि हम लोग आगे न बढ़ें।'

'आगे न बढ़ें का क्या मतलब? अभी आये ही कितनी दूर? पूरे ५० कोस की मंजिल है। क्या सोढ़े को बेटी बिन ब्याही ही बठी रहे? हमारे आने की बाट ही जोहा करे, यह आप चाहते हैं?'

ज्योतिषी ने कहा, 'अपनी तलवार पठा दें, उसी से भांवरें फेर लेगी सोढ़ी कुंवरी।'

'वाह! मैं जीते जी ही तलवार पठाकर भांवरे डलवाऊँ! सोढ़ क्या कहेंगे कि राठौर अपशकुन देखकर डर गया? कंवलदे का पूत इतना कायर? नहीं, नहीं, बारात आगे बढ़ाओ। और देवो डामाजी! शेरनी को मारना मत, बस-चुनौती देकर गरजो। चली जायेगी।'

डामाजी ने घोड़ा आगे बढ़ाया। डपट दिया शेरनी को। कहा, 'सिंहों का रास्ता रोकती है? क्या प्राण देना चाहती है?'

और बस डामाजी का कठोर स्वर सुनकर ही शेरनी दुम दबाकर भाग चली। तब डामाजी ने उसकी खिल्ली उड़ाकर कहा, 'वाह! वाह! भली शेरनी है तू? डाट सुनकर ही भाग चली! तुझसे तो श्रृगलिनी अच्छी!'

अपनी निन्दा सुनकर शेरनी क्रुद्ध हो उठी। वह लौट पड़ी और चाहा कि डामाजी को पंजा मारकर गिरा दे परन्तु उस वीर पुरुष की मुद्रा देखकर और अंगारे-सी जलती आंखों से हतप्रभ होकर बीच में ही विरम गई। तब डामाजी ने फिर कहा, 'तू रुक मत। अपने मन की हबस पूरी कर ले। डामा मानुष है। मर्द किसी मादा पर हथियार उठाने में पहल नहीं करता। पहल तू कर, चल! बढ़ आगे!'

शेरनी ने जैसे उसकी भाषा ठीक से समझ ली हो। उसने वक्रगति से उछल कर डामा का मस्तकें फाड़ना चाहा कि डामा ने पैंतरा काटा, शेरनी का आघात गैंडे की ढाल पर झेला और फिर तुरत

तलवार चलाकर शेरनी को बीच से चीर डाला। बारात स्तब्ध खड़ी यह द्वन्द्व युद्ध देखती रही और जब शेरनी ने दम तोड़ दिया, तब बरातियों ने घोड़े आगे बढ़ाये। धौंसे पर पुनः चोटें पड़ने लगीं। घोड़ों की टापें बजीं और मंजिल पर मंजिल मारते हुए बारात ऊमरकोट के निकट पहुंच गई। बारात में बजते धौंसा का स्वर सुनकर सोढ़े की बेटी दौड़कर गढ़ी की मुंडेर के पास आ खड़ी हुई और बारात की दिशा में ललककर अपलक देखने लगी। उसकी सखियां उसे छेड़ रही थीं। सोढ़ों ने धौंसा बजता सुना तो पागा-बरछी संभालकर अगवानी की तैयारी करने लगे। कन्या के पिता सूरजमल का दिल बल्लियों उछलने लगा। भरोसा बंधा कि बरात आ गई है। ब्याह निर्विघ्न संपन्न हो सकेगा। स्त्रियां मंगल-गान गुंजाने लगीं। पुरोहितों ने पोथी-पत्रा संभाले। चौक पूरने वाली महिलाएं द्वार पर चौक पूरने बैठ गईं।

लड़की वालों के दरवाजे पर वर-पक्ष की तरफ से डाली भेजी जाती है, पाबूजी ने भाई डामाजी से कहा, 'डाली भेज दो।' डामाजी ने घोड़े को एड़ लगाई, पास ही एक ऊंचा शीशम का पेड़ खड़ा था—डामाजी ने उचककर वह पूरा पेड़ ही भुजा से उखाड़ डाला। घोड़ा बढ़ाया और जाकर वह पूरा पेड़ सोढ़ों के दरवाजे पर रख आये। रस्म है, कि वह 'डाली' कन्यापक्ष वाले ले जाकर ब्याह के मड़वे के नीचे रखते हैं। जिसे देखो, वही वह पेड़ उठाकर ले जाने की जोर आजमायश कर रहा है पर पेड़ उठे तब न! सबने हार मान ली। डामाजी की प्रशंसा होने लगी कि बराती हों तो ऐसे। राठौरों की माता कंवलदे का मान बढ़ गया। उनका दूध सराहा गया कि उन्होंने ऐसे बलशाली पुत्रों को जन्म दिया।

किसी ने पूछा—'ठाकुर! तुम्हारी बारात में तुम्हारे जैसे सामर्थ्यवान कितने होंगे?' डामाजी सहज भाव से कहते हैं, 'अरे, मुझे मत गिनो। मैं तो उनमें कुछ भी नहीं। एक से एक योद्धा और बलवान बराती आये हैं आज ऊमरकोट।' सोढ़े सन्न।

फिर नशा-अमल का समय आया। सोढ़ों की तरफ से नाई अफीम लेकर आया। वह सबकी सब अफीम अकेले डामाजी डकार गये। कुछ भी बाकी न छोड़ी। तब सोढ़ों ने पूछा, 'राठौरजी, अमल में कसर तो नहीं रही?'

डामाजी ने कहा, 'अभी मेरा पूरा अमल हुआ नहीं। इतने में मुझे कुछ भी नशा नहीं होता।' सोढ़ों के काटो तो खून नहीं। अब क्या करें! कैसे बेढब बरातियों से पाला पड़ा है, भगवान ही इज्जत बचायें तो बचे। सब अभिमान हवा हो गया। सोचा था, राठौरों को खूब छकायेंगे। खिल्ली उड़ायेंगे कि बस, तुम्हारे यहां इतना ही अमल छकते हैं? परन्तु यहां तो उल्टे लेने के देने पड़ गये। एक ही बराती का अमल-नशा

भारी पड़ गया। सब अफीम अकेले चट-कर गया और आंख भी अभी सुर्ख न हुई। धन्य राठौर!

फिर डामाजी के ज्योनार जीमने का समय आया तो फिर वही अचरज। सोढ़े परोसते-परोसते परेशान! पसीना छूटने लगा परन्तु डामाजी ने थाल से हाथ न खींचा। सब पूड़ी-पकवान, पायस-पूवे समाप्त। डामाजी को फिर भी डकार न आई।

कन्या पक्ष वालों ने पूछा—'राठौर-जी! आपके समान तो शायद ही और कोई खूराकी हो बरात में?'

डामाजी हंसे, बोले, 'सच कहूं तो मैं उनमें सबसे कम खाने वाला हूं, बरात में तो एक से एक माई के लाल पड़े हैं—देखना जब ज्योनार हो।'

सोढ़ों के हाथ के तोते उड़ गये। वे एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

बरात को जब जनवासा दिया गया तो ऊमरकोट वाले शिष्टाचार करने आये। सोढ़ा—सरदार के कई पुत्र थे। वे सब पाबूजी से बोले, 'जीजाजी! आपकी घोड़ी तो बढ़िया है। क्यों न हमारे घोड़ों से उसका मुकाबला हो जाय?'

केसर ने पूर पचास कोस की मंजिल पार की थी और अभी-अभी उसने पानी पिया था परन्तु पाबूजी ने कहा, 'पक्की रही। मेरी केसर का करिश्मा देखो आज।'

पाबूजी के एक साले ने कहा, 'जीजा जी! काहे को इस बेचारी की जान लेंगे? हमारे बापू का घोड़ा बेजोड़ है, उस पर सवारी करो।' और साले साहब ने जीजाजी की खातिर में पिता का नौलखा घोड़ा सामने कर दिया। पाबूजी ने उधर देखा भी नहीं। वे बाग उठाकर केसर पर जा बैठे। तब सालों ने कहा,

'जीजाजी! हार-जीत की कोई शर्त?'

'लग जाये वह भी।' पाबूजी ने कहा।

'तो यह हो कि जो पक्ष पराजित हो वह अपना घोड़ा किसी को दान कर दे।'

'ठीक है, शर्त मंजूर।' पाबूजी ने कह दिया।

पाबूजी ने केसर की पीठ थपथपाई। कहा, 'केसर बेटी! राठौरों की लाज तेरे हाथ है। तू थकी होगी। फिर भी सोढ़ों ने चुनौती दी है तो निभाना।' केसर पूरे ओज से अपनी टापों से धरती खूंदने लगी, मानो आश्वस्त कर रही हो कि 'पाबूजी! मैं देवल चारणी की केसर हूं, सोढ़े मुझे नीचा नहीं दिखा सकते।' अस्तु, सोढ़ों के खूब खाये-पिये, मालिश किये हुए तरोताजा घोड़े छूटे और दूसरी तरफ अकेली केसर। पर वाह! पाबूजी को कभी भी न एड़ लगाने की जरूरत पड़ी; न वल्गा झटकने की। केसर तीर की तरह छूटी तो हवा की तरह सनसनाती उड़ चली। देखने वाले दंग, कि ऐसी जानदार घोड़ी तो सोढ़ों के पास एक भी नहीं, सोढ़े—दलपति का नवालखा हपर-हपर करता, फेन उगलता केसर से बहुत

पीछे छूट गया। सोढ़ों ने उसे बहुत-बहुत जोश दिलाया पर उस बेचारे की जितनी सीमा थी, उससे आगे करता क्या? आखिर थके होने के बाद भी केसर ने बाजी मार ली। सोढे लज्जित हुए। पाबूजी का मस्तक गर्वोन्नत। केसर ने वहां खूब प्रशंसा पाई। किसानों के जत्थों ने उसके आगे हरे चनों के ढेर लगा दिये। पाबूजी को विजय प्राप्त कराकर केसर की सारी थकावट दूर हो गई। उसकी टापें जमीन पर नहीं पड़ रही थीं।

और फिर प्रसंग आया तोरण-भंजन का। सोढ़ों ने सोचा था, यही मौका है। पाबूजी से बदला चुकाने का तथा उन्हें नीचा दिखाने का। अतः उन्होंने जान-बूझकर तोरण किले के सबसे ऊंची बुर्जी पर बांधा कि वहां तक पाबूजी क्या, कोई भी अश्वारोही पहुंच न सके।

पाबूजी दुर्ग के सामने आये। केसर मारे उत्साह के धरती खूंदे डाल रही थी। अभी-अभी कन्या के पिता सूरजमल ने दामाद को टीका किया था, थाल भर-भरकर मोहरें उसने पाबूजी के नजर कीं। वर ने वे मोहरें लेकर भिक्षुक-कंगालों में बिखर दीं। चतुर्दिक राठौरों की जय-जयकार गूंजी उठी। सबने सोढ़ी कुंवरी के भाग सराहे कि ऐसा बांका वर ब्याहने आया कि जिसे लोभ छू नहीं गया।

और अब पाबूजी किले के आगे खड़े थे; देख रहे थे आकाश में उठे दुर्ग के ऊंचे शिखर और वे बुर्जियां जिन पर तोरण बांधा गया था। और पाबूजी का मन समझकर केसर उछली जा रही थी' कसर थी पाबूजी के वल्गा शिथिल करने की। दुर्ग की छत पर ढाड़िनें गान-निरत थीं। पाबूजी ने एक बार बस केसर की पीठ पर हाथ रखा और वल्गा शिथिल ही की थी कि केसर चिटकी तो सीधे दुर्ग के आकाश को चुनौती देने वाले शिखर तक जा पहुंची, जैसे कि उसके पंख लग गये हों। सब तरफ 'वाह! वाह' की धूम कि ऐसी घोड़ी तो कभी देखी नहीं। दुर्लभ दृश्य। जो आंखों से न देखे वह पतियाये नहीं। सोढ़ों ने देखा कि दुर्ग की बुर्जी के पास पाबूजी की पगड़ी में जड़ा हीरक-नग झलमलाया एकबार और टूटा हुआ तोरण हवा में तैर रहा था। केसर पुनः नीचे आकर नटी-सी नृत्य कर रही थी, शायद पाबूजी की विजय के आह्लाद में। पाबूजी ने काठी पर बैठे ही बैठे हाथ से उस मूक पशु का मुंह उठाकर चूम लिया। उसकी आन देखकर उनके अश्रु छलक आये कि किस तरह केसर उनका एक-एक संकेत समझकर हर मोर्चा फतेह करती जा रही थी और अब सोढ़े ठाकुर भी खुश थे कि उनके कुल की कुंवरी ने योग्य वर को बरा है। उनके दिल में अब कोई मलाल न था, न बदले या क्षोभ की भावना। प्रतिद्वन्द्विता का भाव समाप्तप्राय था और वे अब आगे बढ़-बढ़कर राठौरों से गले मिल रहे थे, उनके पथ में आंखें बिछा रहे थे।

(क्रमशः)

आत्महत्या और आत्मार्पण में अन्तर

लेखक—वीर सावरकर

धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्य मे न विद्यते किंचित्।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वतद्य सम्पन्नम् ॥

(अवधूतोपनिषद-मन्त्र २६ वां)

आत्मार्पण और आत्महत्या में क्या कुछ भी अन्तर नहीं है? यदि है कहें, तो नहीं है और नहीं कहें तो अन्तर है।

व्याधियों अपघात या ऐसे ही किसी अपरिहार्य कारण से मृत्यु नहीं आ रही है प्राण नहीं जा रहे हैं, इसीलिये जो लोग, जीना मुश्किल हो रहा है, सोचकर स्वयं ही मृत्यु जबर्दस्ती प्राप्त कर लेते हैं, उन्होंने आत्महत्या की, ऐसा हम लोग कहते हैं। अनेक समाजों में यह कृत्य एक दण्डनीय अपराध माना जाता है, किन्तु कुछ मामलों में स्वयं ही अपना जीवन समाप्त करने वाले या अपने ही हाथों से अपने प्राणों की बलि चढ़ाने वाले कृत्यों को, व्यावहारिक अर्थ में वह आत्महत्या होते हुए भी; उन्हें आत्महत्या न कहते हुए आत्मार्पण, आत्मविसर्जन आदि संस्कृत शब्दों का उपयोग करते हुए, वे कृत्य प्राचीनकाल से गौरवपूर्ण माने जाते रहे हैं। यह भिन्नता क्यों आयी? कुछ प्रकार की आत्महत्याओं को मनुष्य समाज ने एक दण्डनीय अपराध न मानते हुए, उन्हें एक पुण्यकार्य, महनीय कार्य, गौरवपूर्ण कार्य क्यों माना, इसका मर्म आगे दिये जाने वाले उदाहरणों से स्पष्ट होगा।

प्रथमतः प्रसिद्ध मीमांसक और वैदिक कर्मकाण्ड के कट्टर पुरस्कर्ता कुमारिल भट्ट का उदाहरण हम देखें। वैदिक धर्म पूर्णरूपेण समाप्त करने की इच्छा रखने वाले बौद्ध सिद्धान्तों को नष्ट करने के लिये, बौद्ध ग्रन्थों का त्रिपिटिका आदि ग्रन्थों का उन्होंने अध्ययन किया। बौद्ध-पन्थीय आचरणों के अनुसार अपना

कुमारिल का जीवित ही तुषाग्नि में प्रवेश

जीवन बिताना चालू किया। फिर बौद्ध मतों की तथा आचरण की व्यर्थता दिखाने का महत्कार्य उन्होंने आरम्भ किया। वाद-विवादों का, शास्त्रार्थों का, बड़ी-बड़ी सभा और प्रवचनों में प्रचार करते हुए सम्पूर्ण भारतवर्ष में वैदिक मीमांसकों के मतों की उन्होंने प्रतिष्ठापना की, अन्त में उन्हें जब लगा कि अपने जीवन का मुख्य कार्य सफलता से सम्पन्न हुआ है, तब उन्हें, अवैदिक और पाखण्डी ऐसे बौद्ध मत के ग्रन्थों का वाचन और तदनुसार आचार-विचार उन्हें रखना पड़ा, इस पापक्षालन के लिये, नैसर्गिक मृत्यु आने के पूर्व ही तुषाग्नि में अपनी देह भस्म करने की उन्होंने प्रतिज्ञा की। तदनुसार अपने हाथों से चिता जलाकर उसमें प्रवेश किया। देखते-देखते उस भूसी की अग्नि में तिल-तिल कर अपनी देह भस्म कर दी।

किन्तु इतिहास ने इस महान् बलिदान को आत्महत्या न कहते हुए अग्निदिव्य, आत्मार्पण इन शब्दों से गौरवान्वित किया।

में) गये, तब उनका वहाँ शाक्त पंथ से शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने विजय सम्पादन किया, किन्तु शाक्त पन्थ के उग्रपंथियों को उनकी विजय सहन न होने से उन्होंने शंकराचार्य पर विष प्रयोग किया। इस कारण उनके स्वास्थ्य को काफी क्षति

वीर सावरकर के बलिदानी शिष्य मदन लाल धींगरा जिन्होंने लंदन की भरी सभा में कर्जन वाइली को गोली मार दी

पहुंची। फिर भी, उसी अस्वस्थ अवस्था में वे संचरण करते हुए काश्मीर तक गये। काश्मीर में अपनी दिग्विजय पूर्णकर उन्होंने अद्वैत-मत प्रचारार्थ चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित करने का महत्कार्य पूरा किया। शंकराचार्य उस समय अपनी भरी यौवनावस्था में थे। महाभाष्यादि

शंकराचार्य का जीवित ही गुफा-प्रवेश

दूसरा उदाहरण जगद्गुरु श्रीमत् आद्य शंकराचार्य का दिया जा सकता है। अद्वैत मत के दिग्विजय के लिये सम्पूर्ण भारतवर्ष में संचरण करते हुए जब वे असम में (उस समय के कामरूप

ग्रन्थ लिखते हुए तथा चारों दिशाओं में मठ स्थापित करने से, अपना अवतार-कार्य पूर्ण हुआ है ऐसे सन्तोष का उन्हें अनुभव हुआ। अपना स्वास्थ्य गिरता जा रहा है, यह भी उन्होंने देखा। 'यदहरेव

विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत । गृहाव्दा वनाव्दा' इस सूत्र के अनुसार बचपन से वैराग्यवृत्ति स्वभावतः उनमें थी ही। इन तीनों कारणों से जीवन का लक्ष्य पूर्ण हो गया है, यह अनुभव कर इस इहलोक के जीवन को परब्रह्म में विलीन कर देने की उत्कट इच्छा उन्हें होने लगी। महान योगियों की पूर्व परम्परा के अनुसार, उन्होंने स्वयं गुफा-प्रवेश का निश्चय किया। तदनुसार वे गुफा में जाकर योगासन लगाकर बैठे। उनकी आज्ञानुसार उनके शिष्यों ने उस गुफा का द्वार एक अतिविशाल शिला से बन्द कर दिया। इस तरह जगद्गुरु शंकराचार्य ने अत्यन्त सन्तोष से योग-मार्ग द्वारा प्राण विसर्जन किया।

जब देखा, अपने आप प्राण नहीं जा रहे हैं तो जबर्दस्ती जीवन समाप्त कराने की पद्धति को हम लोग दण्डनीय आत्महत्या कहते हैं। किन्तु जगद्गुरु शंकराचार्य के गुफा-प्रवेश को, इतिहास में आत्महत्या न मानते हुए आत्मार्पण सरीखे गौरवपूर्ण शब्द से उल्लेख किया जा रहा है। ऐसे योगेश्वरों के गुफा-प्रवेश के अनेक उदाहरण प्राचीन इतिहास में मिलते हैं। अब अर्वाचीन इतिहास में भी जीवन-लक्ष्य की पूर्णता से सन्तोष होने के कारण स्वदेह विसर्जन याकि आत्मसमर्पण के कुछ उदाहरण हम देखें।

बंगाल के वैष्णवाचार्य, गौरांगप्रभु, महाप्रभु चैतन्य की कीर्ति सम्पूर्ण भारत में फैली है। उनके निधन के सम्बन्ध में एक कथा बतलायी जाती है। श्रीकृष्ण के भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करते हुए, सामूहिक भजन में तन्मय होते हुए, जब वे बड़े-बड़े 'नगर-संचलन' निकालते थे, तब उन नगरों में हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष उनके पीछे नामघोष करते हुए चल पड़ते थे और भक्ति के भावोन्माद में चैतन्य महाप्रभु रास्तों से नाचते हुए आगे बढ़ते जाते थे। उनके जीवन के उत्तरार्ध में भक्ति सम्प्रदाय का उत्कट प्रचार सारे बंगाल में करते हुए, अन्त में वे जगन्नाथपुरी पहुंचे। वहां एक बार 'सामूहिक भजन संचलन' में वे जब सागर-किनारे पर चल रहे थे, तब उनको सागर के सुनील जलाशय को देखकर, भवावेश में उत्कट आभास हुआ कि वे घनश्याम श्रीकृष्ण का ही स्वरूप, प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण को ही देख रहे हैं। हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे श्याम!! हे श्याम!!! ऐसा आक्रोश करते हुए उस स्वरूप को आलिंगन करने के विचार से उनको देह का ध्यान न रहा, उन्होंने अकस्मात् उस विशाल सागर में छलांग लगायी। उन्होंने आत्मविसर्जन किया।

मूल-सुधार

इस अंक के पृष्ठ ६८ पर प्रूफ की त्रुटि से 'नजरुल इस्लाम' के बजाय 'जनरुल इस्लाम' छप गया है तथा पृष्ठ ८३ पर 'परमानन्द' के बजाय 'परमान्द' छप गया है।—संपादक

किन्तु इस देहत्याग को चैतन्य महाप्रभु ने आत्महत्या की, ऐसा न कहते हुए, उन्होंने जलसमाधि ली, आत्मार्पण किया, ऐसा ही इतिहास कहता आया है।

उनके गुरु ने ज्ञानेश्वर के अन्तिम निश्चय को अनुमति दी। अनेक सन्त-मण्डलियों की उपस्थिति में, भजननाद के वातावरण में, सफलता के परम सन्तोष की अवस्था

भाई की जीवित समाधि स्वयं चुनी

महाराष्ट्र में श्री ज्ञानेश्वरी, महाराज की कथा प्रसिद्ध है। इस अलौकिक विभूति ने भरी युवावस्था में ही ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव के समान तत्वज्ञान-मन्दिर के कलश के रूप में शोभा देने वाले दो ग्रन्थ लिखे। अपने जीवन में जो करना था वह पूर्ण हो गया है, दुनिया रहे या न रहे, उसका दायित्व मेरे पर नहीं है, ऐसी सफलता की अनुमति से उन्होंने अवतार कार्य पूर्ण करने का, समाधि लेने का, निश्चय किया। जो-जो योगीजन जन समाधिस्थ हो सकते हैं उनकी वह समाधि की स्थिति अन्तिम ही रहती है, ऐसा नहीं होता। समाधि लेने वाला योगी, स्वेच्छा से वह समाधि उतार भी सकता है। पुनः व्यावहारिक ऐहिक, दुनियादारी के विश्व में लौटने की इच्छा करे तो वह आ सकता है किन्तु श्री ज्ञानेश्वर ने ऐसी कालावधि की समाधि न लेते हुए, 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'। ऐसी अन्तिम समाधि लेने का निश्चय किया। उनके बड़े भाई निवृत्तिनाथ ही उनके गुरु थे। में, स्वयं के ही तैयार कराये हुए समाधिस्थान में श्री ज्ञानेश्वर महाराज उतरे और योगासन लगाकर बैठे। स्वयं निवृत्तिनाथ ने उस समाधि-स्थान को बन्द कराने का अन्तिम पत्थर अपने हाथ से लगाया। इस तरह श्री ज्ञानेश्वर जी ने अन्तिम समाधि ली।

अपने प्राण बाहरी कारणों जाते नहीं, इसलिए उन्हें जबर्दस्ती समाप्त कराने वाली कृति को, व्यवहार में आत्महत्या कहते हैं। उसमें और जीते जी समाधि लेने में समानता रहने पर भी श्री ज्ञानेश्वर ने आत्महत्या की, ऐसा न कहते हुए श्री ज्ञानेश्वर ने आत्मार्पण किया, श्री ज्ञानेश्वर समाधिस्थ हुए, ऐसा ही सन्त-महन्तों से सामान्य जनता तक सबके मुखों से कहा जा रहा है।

यही बात समर्थ रामदास के आत्मार्पण की है। 'यवनों के अत्याचार बहुत दिनों से हो रहे हैं, उसको काबू करने की ताकत हिंदू में बची नहीं है इस तरह की परिस्थिति से व्यथित होकर, यवनों के आक्रमणों

को जड़ से समाप्त करने वाले कार्य को श्री समर्थ ने निज का जीवन-कार्य माना। महाराष्ट्र के हिन्दू समाज में धर्म-युद्ध की ज्वाला निर्माण करने के हेतु, अपने तपोबल से उन्होंने प्रचण्ड संगठन खड़ा किया। दूसरी ओर इसी महान ध्येय से प्रेरित होकर श्री शिवाजी छत्रपति ने अपने शस्त्रबल से मुसलमान शाहों व बादशाहों के तख्तों को झकझोरते हुए प्रत्यक्ष औरंगजेब की छाती पर ही राय-गढ़ में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य, हिन्दू ध्वज तथा हिन्दू सिंहासन का निर्माण किया। उस समय हिन्दू जाति की उस महान् विजय से प्रफुल्लित होकर श्री समर्थ ने गर्जना की, रात्रि में, स्वप्नों में जो देखता रहा, वह सब वैसा ही होता जा रहा है। पापी औरंगजेब डूबा है, म्लेच्छों का संहार हुआ है। टूटे, लुटे, भ्रष्ट किये हुए धर्मक्षेत्र फिर खड़े हो गये हैं, हिन्दुस्थान की ताकत बढ़ी है।

अपनी प्रतिज्ञा की ऐसी अकल्पित पूर्तता हुई है, अपना जीवन सफल होकर अपना अवतार कार्य पूर्ण हुआ है, ऐसी सार्थकता की भावना श्री समर्थ रामदास के मन में उनके ८० वर्ष की उम्र में आयी। इसी समय उन्हें शिव-छत्रपति के देहान्त का दुःखद समाचार मिला। 'राजे हमें छोड़कर चले गये' ऐसा दुःखोद्गार उनके मुख से निकल पड़ा। संभाजी महाराज ने, उसके तुरन्त पश्चात्, अत्यन्त उदण्डता से शिव छत्रपति के अनुकूल ऐसे अनेक प्रमुख व्यक्तियों को कारागार में डाला, अनेकों को समाप्त किया। स्वराज्य में घरेलू संघर्ष बढ़ गया। स्वयं सम्भाजी, सज्जनगढ़ दुर्ग (जहां श्री समर्थ थे) के नीचे आकर, श्री समर्थ से मिलने का हठ लिये बैठा रहा श्री शिव छत्रपति के अनेक विश्वसनीय मन्त्रियों को जिसने समाप्त किया, वह श्री शिव छत्रपति के राजगुरु श्री समर्थ को भी, कष्ट दिये बिना नहीं रहेगा, ऐसे स्पष्ट लक्षण दिखने पर भी, श्री समर्थ ने उसे सूचित किया कि 'वृद्धावस्था के कारण इस समय गढ़ से नीचे उतरने की ताकत अब मेरे में नहीं है। आशीर्वाद के रूप में एक पत्र भेज रहा हूं।' श्री समर्थ का वह पत्र संभाजी की आंखों में तेज अंजन डालने वाला होने से अत्यन्त सुप्रसिद्ध है। पत्र में श्री समर्थ ने लिखा था-'शिवराय के रूप को याद करो, शिवराय का पराक्रम याद करो, इस जगत में शिवराय के प्रभाव को याद करो। अपने स्वयं के जीवन को तिनके के समान मानो। परिश्रम-कष्ट सहन करते हुए म्लेच्छों पर चढ़ाई करो। जितना प्राप्त हुआ है, उसे ठीक सम्हालो; आगे और भी अधिक मिलाओ। चारों ओर महाराष्ट्र में अपना जैसा राज्य करो।

उसी समय हिंदुओं का स्वतंत्र राज्य स्थापित हुआ है, सुनकर, चिढ़ा हुआ औरंगजेब सारी मुसलमानी ताकत एकत्रित कर, स्वयं, मराठों पर चढ़ाई के लिये, चल पड़ा है, यह समाचार मिला। अपने ८० वर्षीय वृद्ध व्याधिग्रस्त शरीर में इस नवीन आपत्ति का प्रतिकार करने की ताकत नहीं है। शिवाजी महाराज समेत अपने समय की पुरानी पीढ़ी चली गयी

(शेष पृष्ठ ३० पर)

[पृष्ठ ११ का शेष]

है, ऐसे योगी का वीर्य स्खलित नहीं होता तथा स्खलित होने पर भी उसका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं होता। 'बज्रोली मुद्रा' की सिद्धि होने पर तो उदान के वेग के कारण स्वप्नदोष द्वारा इन्द्रिय में उतर आया हुआ अथवा बाहर क्षरित हुआ वीर्य भी पुनः ऊपर चढ़ जाता है। ऊपर जाकर वह लौट कर वीर्याशय में प्रवेश नहीं कर सकता वरन् उदान शक्ति की उष्णता से रुधिर में मिल जाता है व प्रोण का वेग सुषुम्णा में ऊर्ध्व प्रवाह करने लगता है। योगियों ने इस क्रिया को 'रजवीर्य योग' माना है।

गुदा और उपस्थ के मध्य सींवनी के ऊपर त्रिकोणाकृत नरम स्थान—जिसको पेड़ (Pelvic Region) कहते हैं, जिसका मुंह पीछे की ओर रीढ़ की तरफ है (पश्चिमाभिमुखी है) वहां पर वीर्य चढ़ने से उष्णता उत्पन्न होती है जो वीर्य व रज की रासायनिक क्रिया की सूचक होती है। गलित होने पर वीर्य अग्नि में गिरकर जलता हुआ मुद्रा अभ्यास से इठात् ऊपर चढ़ा लिया जाता ह। वह बिन्दु दो प्रकार का होता है—एक तो जिसको शुक्र कहते हैं, वह जो पीलापन लिये हुए श्वेत वर्ण का होता है, दूसरा जिसको महाराज कहते हैं, वह जो रक्त वर्ण का होता है, हिंगुल के द्रव सदृश रज नाभि मण्डल में तथा बिन्दु चन्द्रमा के स्थान भ्रूमध्य में स्थित रहता है। इन दोनों का ऐक्य अत्यन्त दुर्लभ है। इन्हीं की एकता से परमपद प्राप्त होता है। शक्ति चालिनी मुद्रा-प्रेरित अपान वायु से जब रज बिन्दु के साथ साम्मिश्र हो जाता है, तब उपासक का शरीर दिव्य हो जाता है।

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि जब अपान वायु अति प्रबल होकर शुक्रधरा नाड़ी में उद्भूत हुए वीर्य को ऊर्ध्वगामी बना देती है; तब योगी को अमृतपान करने के लिये शुभ अवसर सम्प्राप्त होता है। यह क्रम वर्षों तक चलता है। अन्त में उस अमृत द्वारा दिव्य शरीर का निर्माण होता है।

प्रत्येक प्राणी का पूर्ण आयु प्राप्त करना, दीर्घजीवी होना उसकी श्वास क्रिया पर अवलम्बित है। पूर्व कर्मों के अनुसार जीवित रहने के लिये परमात्मा एक नियत संख्या में श्वास प्रदान करता है। श्वास समाप्त होने पर प्राणान्त हो जाता है। इस खजाने से जो प्राणी जितनी होशियारी से खर्च करेगा वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रह सकेगा, और जो इन्हें जितना व्यर्थ गवां-येगा उतने शीघ्र उसकी मृत्यु हो जायेगी।

नियमित रूप से प्राणायाम करने पर दीर्घ जीवन लाभ होता है। प्राणा-याम के समय कुम्भक करने पर प्राण वायु रुकती है। सांस नहीं चलती, इसलिए जीवन दीर्घ होता है और आयु बढ़ती है। स्वाभाविक अवस्था में १२ अंगुल से ज्यादा श्वास की बाहर की गति होने से समझ लेना चाहिये कि जीवन

क्षय के पथ में जा रहा है। ऐसा मालूम होने पर प्राणायाम के द्वारा आसानी से वह दूर की जा सकती है।

प्राणायाम के साथ त्रिसंध्या तथा विभिन्न वर्णों का ध्यान करने से दीर्घ तथा नीरोग जीवन की प्राप्ति होती है।

ताओ पन्थी चीनी योगीजन प्राण रसायन का निर्माण कर दीर्घायु प्राप्त करते हैं। छाया-सिद्धि के समय कण्ठ कूप (विशुद्ध चक्र) पर लक्ष्य रखने से भी दीर्घायु की प्राप्ति होती है, ऐसी मान्यता है।

सदियों से विविध रसायनों का प्रयोग भी दीर्घायु प्राप्ति के लिये किया जाता रहा है। जो क्रिया-औषधि बुढ़ापे को दूर कर पुनर्यौवन और दीर्घायु प्रदान करे, उसे रसायन-क्रिया अथवा रसायन-कल्प या रसायन-औषध कहते हैं। रसायन के अन्तर्गत प्रायः बलदायक, मेध्य, बाजीकर, तारुण्यकर और दीर्घायुप्रद औषधियों का समावेश होता है। रसायन-सेवन के लिए कुछ लोग विशेष प्रकार की कुटिया बना कर उसी में रहते हुए रसायन औषधियों का सेवन करते हुए; किसी पहाड़ी स्थल पर रसायन-प्रयोग कराया जाता है। कहते हैं, प्राचीन काल मे तो हरे पलाश के वृक्ष की लकड़ी से विशेष प्रकार की ढक्कनदार नाव बना कर, उसमें व्यक्ति विशेष को लिटा कर ऊपर से रसायन-औषधियों का काढ़ा भरकर ढक्कन बन्द कर देते थे। कालान्तर में उक्त मनुष्य का शरीर गल कर फिर से नवीन देह का निर्माण शुरू होकर कायाकल्प हो जाता था। इसको 'द्रोण-प्रवेश' के नाम से जाना जाता था। आजकल इस प्रकार की क्रिया देखने-सुनने में नहीं आती। ०००

(पृष्ठ २८ का शेष)

अब अपना भी कर्तव्य कार्य समाप्त हुआ, यही स्वतन्त्र हिंदू राज्य स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ, यही अपने जीवन की सार्थकता है, अब नवीन पीढ़ी की नवीन समस्याएं, नवीन पीढ़ी की योग्यता पर और भगवान की कृपा पर हैं, यही प्रभु की इच्छा दीखती समझकर, श्री समर्थ ने पूर्ण विचार करते हुए, प्राणान्त अनशन का-प्रायोपवेशन करने का निश्चय किया। अपने समस्त शिष्य-शिष्याओं को एकत्र कर उन्हें बतलाया, अब हम देह छोड़ेंगे। हमारा अवतार कार्य पूर्ण हुआ। देह सार्थक हुई। यह सुनते ही सब दुःखी हुए। श्री समर्थ ने सबको धीरज दिया। मेरी वाणी बन्द होने पर भी, अन्तःकरणों में में पहुंची हुई है। मैं हमेशा के लिये विश्व जीवन में उपस्थित हूं। मार्ग दर्शन के लिये 'दासबोध ग्रन्थ पीछे छोड़ रहा हूं। ऐसा आश्वासन देकर, अचल आसन लगा कर श्री समर्थ बैठे, अन्न-त्याग कर राम-नाम घोष आरम्भ किया। कथा ऐसी है कि प्रत्यक्ष श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें दर्शन दिये। तब अत्यन्त कृतकृत्य होकर श्री समर्थ ने श्री रामचन्द्र जी के चरणों में अन्न-त्याग से क्षीणतम प्राय अपना अंतिम निःश्वास छोड़ा।

(शेष जुलाई अंक में पढ़िये)

भूल सुधार

हसन रजा कलर मर्चेन्ट अकबरी गेट, चौक, लखनऊ का विज्ञापन अप्रैल, ८३ के अंक में प्रूफ की भूल से रजि० नं० १६८३८ छपा है सही रजि० नं० ३१६८३८ है। कृपालु पाठक सुधार कर लें।

विज्ञापन व्यवस्थापक

(पृष्ठ १३ का शेष)

था और जहां से उसकी तनया वासवदत्ता का अपहरण वत्सराज उदयन ने कर लिया था, जिसे साहित्य और कला के सर्जकों ने बार-बार चितेरा है ?

मौर्ययुग में तथा उससे पूर्व भी सिप्रा से शहर को बचाने के लिए ऋणमुक्तेश्वर से मत्स्येन्द्रनाथ समाधि तक, काष्ठ-प्राकार बनाया गया था, जिसके अवशेष १९३६-३७ में किये गये उत्खनन में प्राप्त हुए थे। १९५४ ५५ में चले द्वितीय उत्खनन से ज्ञात होता है कि नगर के चारों ओर मिट्टी का प्राकार और जल की परिखा थी, जिसका विवरण बाणभट्ट इत्यादि प्राचीन साहित्यकारों ने दिया है। यह परिखा २५० फुट चौड़ी थी और उसके दोनों ओर ईंटों के पक्के घाट बने थे। उससे पूर्व की ओर सेतु पार करके जाता ईंट के चूरे व मिट्टी से बना वह पथ भी प्राप्त हुआ है, जो सम्भवत: विश्व का प्राचीनतम पक्का [मेटल्ड] मार्ग था।

वर्तमान गढ़कालिका के आस-पास ही मौर्य-गुप्त-युगीन गढ़ था। सांदीपनि आश्रम का खड़ा नंदी शुंगकाल का माना जाता है। महाकाल से शुंगकाल की ईंटें भी प्राप्त हुई हैं। गढ़कालिका के निकट चतुर्व्यूह वैष्णव प्रतिमा उज्जैन में प्राप्त एकमात्र श्रेष्ठ गुप्तयुगीन प्रतिमा है। वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इसके चार स्वरूप चारों दिशाओं में पीठ सटाये निर्मित हैं।

हर्षवर्धन ने गढ़कालिका के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। बाणभट्ट के अनुसार, यहां के भवन शाखानगर के समान विस्तृत थे। कुछ पुराने बाड़े आज भी ऐसे ही विस्तृत हैं। एक-एक बाड़ा एक-एक कालोनी के बराबर है।

उज्जैन के प्रसिद्ध महाकाल का उल्लेख भास, कालिदास, बाणभट्ट, पद्मगुप्त प्रभृति अनेक लेखकों ने तथा पुराणों ने बड़े चाव से किया है। कालिदास ने 'मेघदूत' में इसकी भव्यता और गरिमा बखानी है। उदयादित्य ने इस मन्दिर का पुनरुद्धार किया था। नरवर्मा ने महाकाल की प्रशस्ति में ८४ श्लोक रचे थे, जो वहीं शिला पर उत्कीर्ण कर दिये गये थे। महाकाल का इतना सुन्दर तथा विशाल स्तोत्र न तो इससे पूर्व रचा गया और न बाद में। परन्तु दुर्भाग्य से अब उसके आरम्भ और अन्त का कुछ भाग ही मिलता है।

उस युग में प्रासाद भी महाकाल मन्दिर से दूर नहीं थे। उन्हीं के अवशेषों पर पुन: परमार-युग में प्रासाद बने। इनके खंडहर महाराजवाड़ा के आस-पास देखे जा सकते हैं तथा कोट मोहल्ला में भी वह प्राकार पाया जा सकता है। संभवत: इस कोट का ही उत्तरी द्वार चौबीस खंभा है, जो अब भी अडिग खड़ा है। गढ़ की नगरी से मोहल्लों के नाम भी इधर आ गये थे। जैसे 'मकररथ्या' आज 'मगरमुहा' कहलाती है तथा 'लवणापणिका' अब 'नमकमंडी' बन गयी है।

यहां प्राप्त कई प्राचीन सिक्कों पर मदनरट्ठि इत्यादि नाम प्राप्त होते हैं, जो इतिहास में अज्ञात हैं। उज्जैन के कृत की मोहर भी प्राप्त हुई है। कृत, मालव और विक्रम अभिन्न माने जाते हैं। प्रसिद्ध विक्रमादित्य सम्बन्धी यही एकमात्र प्रबल प्रमाण यहां से प्राप्त हुआ है।

चौबीस खभा के निकट से तथा महाकाल क्षेत्र से संस्कृत-प्राकृत में लिखे कई छोटे-छोटे खंडित शिलालेख प्राप्त होते हैं। रंगबावड़ी से प्राप्त लेख का कवि वेणु है, जिसने ललित शैली में भोज तथा अब तक अज्ञात राजपरम्परा का उल्लेख किया है।

ललित संस्कृत में २७५ से अधिक श्लोकों में रचे गये एक लेख का खंड भी प्राप्त हुआ है, जिसमें किसी राजा का यश गाया गया है। एक अन्य शिलालेख से जयसिंह सिद्धराज की विजय का ज्ञान होता है। चौबीस खंभा से प्राप्त एक लेख में द्रोणवंश की उपलब्धियों की चर्चा की गयी है। अब तक अज्ञात इस वंश की राजधानी सम्भवतः रिंगनोद थी, जो जावरा के निकट है।

एक शिलाखंड पर राजा भोज की प्रशस्ति भी उसी शैली में अंकित है, जिसमें लिखित अनेक प्रशस्तियां धार में प्राप्त होती हैं। 'प्रबंधकोश' में यह उल्लेख है कि उज्जैन के सरस्वतीकंठाभरण प्रासाद में अनेक शिलाओं पर भोज की प्रशस्तियां उत्कीर्ण थीं। सम्भवतः यह उसका खंड है। उस सरस्वतीकंठाभरण प्रासाद का कोई चिह्न आज नहीं है। शायद वह अनंतनारायण से 'बिना नींव की मसजिद' तक के भाग में रहा हो; क्योंकि ये परमार-युगीन अवशेषों से निर्मित प्रतीत होते हैं।

भर्तृहरि गुफा भी परमार-युगीन निर्मिति है। मत्स्येन्द्रनाथ की समाधि; भर्तृहरि गुफा इत्यादि स्थलों से स्पष्ट है कि नाथपंथियों का यह प्रिय स्थल रहा है। चौंसठि जोगिनी का मंदिर, नगरकोट की देवी, कालिका, हरसिद्धि के देवालय इत्यादि शाक्तों के पीठ के रूप में विख्यात रहे।

ह्वेनसांग के अनुसार यह नगरी पांच मील के घेरे में बसी थी। बाद में इसे 'नवतेरी' भी कहने लगे थे, अर्थात यह ९ कोस चौड़ी तथा १३ कोस लम्बी थी। परन्तु यह विस्तार पंचकोशी की सीमा-समेत रहा होगा। ह्वेनसांग यह भी बताता है कि यहां कई विहारों के खंडहर थे और असंख्य मन्दिर थे। मंदिर तो आज भी असंख्य हैं, परन्तु विहारों के अवशेष दुर्लभ हैं।

अल्बेरुनी ने महाकाल-पूजा की चर्चा की है। इल्तुतमिश ने महाकाल मन्दिर को ही नहीं, अपितु नगरी को भी खंडहर में बदल दिया था। राणोजी शिंदे के समय रामचन्द्र बाबा शेणवी ने महाकाल-सहित ८४ महादेवों के मन्दिरों का पुनर्निर्माण किया। उसी समय गोपाल मंदिर भी बना, जो आज भी विद्यमान है।

कालियादह पर प्राचीन सूर्यकुंड था।

सल्तनत-युग में १४५८ ई० में महमूद खिलजी ने उसे एक महल का स्वरूप प्रदान किया और वह विलास-भूमि बन गया। यहां अकबर भी आया था। उसने उज्जैन की नयी बस्ती के सुरक्षार्थ प्राकार बनवाया था, जिसके द्वार थे गणगौर, दानी, गोनसा, कालियादह, फूटा, अंकपात, सती, देवास, इन्दौर, मदार हरसिद्धि आदि। इनमें से नाम एवं स्थल तो सबके ज्ञात हैं, परन्तु अवशेष कुछ के ही प्राप्त हैं।

औरंगजेब के समय मिर्जा राजा जयसिंह ने वेधशाला, रामजनार्दन, काल-भैरव इत्यादि के मन्दिर बनवाये। औरंगजेब तथा उसके वंशजों से लोहा लेते रहने तथा उन्हें संरक्षण भी देते रहने वाले वीरवर दुर्गादास की छत्री भी उसकी याद ताजा करती है।

महादजी शिंदे लाहौर से चांदी का जो द्वार अपने साथ लाये थे, वह उनके महाराजवाड़ा महल में कुछ समय लगा रहा। जब बायजाबाई ने गोपाल मन्दिर बनवाया, तो वह द्वार गोपाल मन्दिर में लगाया गया और आज तक वहाँ विद्यमान है। कहते हैं, यह वही द्वार है, जिसे महमूद गजनवी सोमनाथ की लूट में गजनी ले गया था और जिसे बाद में अहमदशाह वहां से लाहौर लाया था।

कम से कम एक हजार वर्षों की स्मृतियां ढो रही यह द्वार आज विद्युत-ज्योति में खिलखिलाता हुआ मानव, उसकी सत्ता और उसके अहंकार का उपहास करता हुआ उज्जयिनी का भविष्य जानने को उत्सुकतापूर्वक अपनी दोनों पटरूपी पलकें बराबर खोलता रहता है और आगे भी खोलता रहेगा।

'मेरा अगला जन्म भारत में हो'

कुमारी मेडलिन पश्चिम का परीलोक कही जाने वाली नगरी पेरिस के रेडियो टेलिविजन केन्द्रों में काम करती हैं। दीखने में सुन्दर, युवा, आकर्षक और स्वस्थ शरीर की स्वामिनी इस बाईस वर्षीय तरुणी के पास सुख-सुविधाओं के वे सभी साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जिनके लिए हर कोई तरसता है। लेकिन वह अपने जीवन से सन्तुष्ट नहीं है।

कुमारी मेडलिन अपने परिवार से अलग अकेली रह रही हैं, माता-पिता के सहज सौजन्य से वंचित मेडलिन को जब कोई भारतीय पर्यटक मिल जाता है तो वह उसे अपनी गाथा सुनाना नहीं भूलती। थोड़ी सहानुभूति मिल जाती है तो वह तुरन्त अनौपचारिक हो उस पर अपनी मनोव्यथा उड़ेलने लगती हैं। वे कहती हैं कि—'कितने भाग्यशाली हैं आप लोग! जहाँ परिवार का हर सदस्य एक दूसरे की चिन्ता करता है, जैसे उनके सुख-दुख पर ही उसका अपना दुख-सुख निर्भर करता हो। मेरा स्वप्न है कि मेरा अगला जन्म भारत में हो।'००

[पृष्ठ ६ का शेष]

रखा है और लोकसभा-अध्यक्ष उस पर विचार कर रहे हैं। मधु दण्डवते का कहना है, 'असम में जिस तरह का तनाव है—उसमें एक खून के बदले दो खून करने की बात कहना हिंसा को खुली दावत देना है।' दण्डवतेजी की यह टीका उचित ही है।

विडम्बना यह है कि एक तरफ इन्दिराजी के सत्तारूढ़ खास आदमी असम में ऐसी खतरनाक बयानबाजी करते हैं, दूसरी तरफ असम के मुख्यमन्त्री अपने प्रदेश के दंगों में रा०स्व० संघ को सानना चाहते हैं जिसके विरुद्ध संघ के सर कार्यवाह रज्जू भैया ने उन्हें सीधी चुनौती दी है कि वे 'दंगों में संघ का हाथ होना साबित करें या अपने शब्द वापस लें।' दुनियां में ऐसे लोगों की कमी नहीं जिन्हें अपना थूक चाटने से गुरेज नहीं होता। सत्ता-लिप्सु तो इसके आदी होते हैं।

सरकार न सहायता-कार्य करेगी, न करने देगी

एक और दुर्नीति उल्लेखनीय है; अगर कोई सेवा-समिति या संस्था असमी भूमि की ही देन है और वह दंगा-ग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों-असहायों और आर्त्तजनों की मदद याकि सेवा करना चाहती है तो असम सरकार उसके रास्ते में रोड़े डालती है, उसे उन क्षेत्रों में न तो घुसने देगी—न कोई सहायता कार्य ही करने दे रही है, यहाँ तक कि चिकित्सकों का एक जत्था सरकार से बहुत चिरौरी-विनती करके थक गया कि 'हमें पीड़ितों-आहतों के सेवाकार्य के लिए दंगा-ग्रस्त इलाकों में जाने दें याकि शरणार्थी-शिविरों में निःशुल्क चिकित्सा-कार्य करने दें। हम जरूरतमन्दों को मुफ्त दवाइयां देंगे, घायलों की मरहम-पट्टी करेंगे और जो लोग मौत के मुख से बचाये जा सकते हैं—उन्हें बचा लेने की कोशिश करेंगे।' परन्तु सरकार टस से मस न हुई, जरा भी न पसीजी। मतलब यह कि न सरकार सहायता-कार्य करेगी, न किसी को करने देगी। सोचती है, जिन्होंने कांग्रेस का चुनावों में साथ नहीं दिया वरन् विरोध किया, वोट डालने तक नहीं गये—ऐसे लोग आग में जलकर, खंजर से जख्मी होकर अगर मरते हैं तो मरने दो। उन पर तरस खाने याकि उसकी मदद करने की जरूरत क्या! अलबत्ता जो चुनाव में कांग्रेस को ही वोट डाल गये—बिना बुलाये भी उनकी सरपरस्ती और होसला अफजाई बेशक करते रहो चाहे वे दंगाई ही क्यों न हों, आगजनी और हत्याकांडों के ही सरगना क्यों न हों। आखिर सरकार के विरोधियों के साथ वे दंगाई वही कुछ तो कर रहे हैं जो सरकार चाहती है, इसलिए उनके सौ खून माफ। और भी जो न्यामतें', जो सुविधाएं उन्हें दरकार हों वे उन्हें दो! और उन्हें मारकर फेंक दो ब्रह्मपुत्र के प्रवाह में, जो कहते हैं, घुसपैठियों को असम से बाहर करो! सनद् है रेल-मन्त्री गनी खां साहब का बयान।००

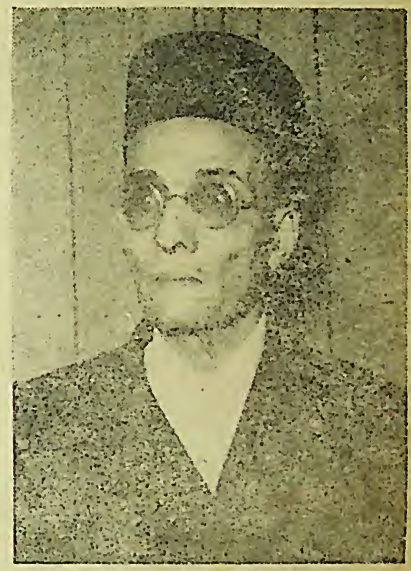

जब विदेशी वस्त्रों की होली जली

● वचनेश त्रिपाठी

सन् १९०० के जमाने में पूना का 'काल' साप्ताहिक पत्र काफी मशहूर था; सावरकर को यह अखबार पढ़ने का बहुत ताव रहता था। उस समय सावरकर १५ साल के थे, फिर भी उनके उत्तेजक लेख 'काल' में छपा करते थे। इसी उम्र में सावरकर; देश को स्वतन्त्र करने की प्रतिज्ञा देवी दुर्गा के समक्ष ले चुके थे और एक क्रांतिकारी दल की स्थापना भी कर चुके थे। प्रतिज्ञा उन्होंने भगूर नामक स्थान में ली थी। क्रान्तिकारी उनके दल का नाम था 'मित्र मेला।' शुरू में कुल ६ तरुण ही भरती हो सके थे।

'मित्र-मेला' नाम इसलिए रखा था ताकि अंग्रेज सरकार को सन्देह न हो सके; लेकिन ब्रिटिश सरकार तो क्रांतिकारियों की खोज करने के लिए भारत की चप्पा-चप्पा जमीन सूंघती फिर रही थी, उसने 'मित्र-मेला' का पता लगा ही लिया। कालान्तर से 'रौलट रिपोर्ट' में 'मित्र-मेला' के लक्ष्य के बारे में गुप्तचर विभाग ने यह लिखा—'दासता की जंजीर को टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देना है। हिन्दुस्तान को अंग्रेजों के चंगुल से छुड़ाने के लिए जो भी जरूरी और सफल साधन मिलें उनसे स्वतन्त्रता का युद्ध प्रारम्भ किया जाय। अगर शान्तिमय प्रयास सफल हों तो हम उनको अपनायें-अन्यथा सशस्त्र प्रतिकार अर्थात् दण्ड प्रक्रिया से देश स्वतन्त्र करें।

ब्रिटिश सरकार की इस रिपोर्ट में अंकित शब्दों से सिद्ध होता है कि वीर सावरकर के 'मित्र मेला' ने अनेक-क्रांतिकारी कार्य किये होंगे। नासिक में उन्होंने अपनी संगठन कुशलता से तरुणों का एक अच्छा ग्रुप तैयार कर लिया। कभी 'शिवाजी उत्सव,' कभी 'गणेश उत्सव,'

कभी 'मित्र-मिलन' कभी 'सहगान' तो कभी गर्मागर्म भाषणों की धूममची हुई थी। उन्ही दिनों स्वदेशी आन्दोलन चला। सावरकर के दल ने उसमें खुलकर भाग लिया। एक-एक दिन में कई-कई स्थानों पर जाकर सावरकर स्वदेशी आन्दोलन के पक्ष में भाषण देने लगे, साथ ही पढ़ाई भी जारी रखी। सन् १९०१ में उन्होंने दशवीं कक्षा में सफलता प्राप्त की। अब सावरकार पूना के कर्म्यूसन कालेज में पढ़ने आये। कालेज के एक छात्रावास का नाम था रेजीडेंसी इसमें सावरकर ने अच्छा काम किया, शुक्रवार के दिन सावरकर के साथी-छात्र शिवाजी महराज का चित्र अपने छात्रावास में लगाते और उसकी आरती करते, 'आरती' सावरकर ने ही रची थी, जिसका अर्थ यह था;—

'हे छत्रपति शिवाजी! आर्यों के देश पर विदेशियों का हमला हो गया है, सजग होकर आप शीघ्र आइए। भारत माता आपको रुद्ध-कण्ठ से पुकार रही है। क्या आपके हृदय को उसका करुण स्वर वेधता नहीं?' हे शिवाजी! आपकी जय हो। आर्य जनता आप की शरण है। इसकी मुक्ति के लिए जल्द आइये?

—कभी जिस भारत के लिए माता दुर्गा ने शुंभ-निशुंभ आदि दानवों को अपना भोजन बना लिया था और जिसकी सुरक्षा के लिए श्री रामचन्द्र ने रावण का संहार किया था। वही भारत भू आज अंग्रेजों से पीड़ित है। हे शिवाजी! आपके बिना कौन उसकी रक्षा करेगा।

हम भारतवासी त्रस्त हैं और निर्धन हो गए हैं। गुलामी की बेड़ियों ने देश को मरणासन्न बना दिया है। अब आपके शरणागत हैं। इसलिए हे प्रभु! सज्जनों के रक्षार्थ तथा भगवत् गीता के सन्देश को सार्थक बनाने के लिए आप तुरन्त आइये।

कहते हैं आर्यों की करुण पुकार सुनकर स्वर्ग में शिवाजी का गला भर आया, और तब देश स्वतन्त्र कराने के लिए श्रंगेरी किले में जन्म धारण किया। जब देश का कार्य हो गया, तब उन्होंने रायगढ दुर्ग में अन्तिम विदा ले ली। बोलो उन शिवाजी की जय बोलो, जिन्होंने देश को स्वतन्त्र कराया।'

यह आरती गाकर सावरकर और उनके साथी देश-सेवा का संकल्प दृढ़ करते रहते थे।

सावरकर छात्रों से अक्सर यह आग्रह करते रहते थे कि सिगरेट क्यों पीते हो? विलासी मत बनो, कठोर जीवन जीने की आदत डालो। देश का दुःख, दारिद्र्य वा दासत्व दूर करने की प्रतिज्ञा करो और अपने जीवन में वैसे ही गुण उत्पन्न करो। एक दिन उन्होंने योजना बनायी कि प्राचीन दुर्ग देखें जाय। पहले सिंहगढ़ किला देखा। इस किले में छात्रों के बीच सावरकर जी ने बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। इनका दल नित्य व्यायाम करता था। मोटे देशी कपड़ें पहनते थे। आपस में प्रेम और

विश्वास था। धीरे-धीरे अध्यापकों की नजर भी इन लोगों पर गड़ती गयी, यहां तक कि एक दिन आचार्य ने सावरकर के बारे में कह ही दिया कि यह 'एक दिन महान आन्दोलन का नेतृत्व करेंगे।'

पूना में स्वदेशी प्रचार की सभा हो रही थी—अनेक लोग इकट्ठे थे। जोश की लहरें उठ रही थी। एक सवाल यह उठ खड़ा हुआ कि हम स्वदेशी प्रचार की तो धूम बांध रहें हैं; किन्तु कभी यह भी सोचा है—कि अभी तक जितना विदेशी कपड़ा लोगों के पास मौजूद है, इनमें दुकानदार भी है—जनता भी है, उस कपड़े का क्या होना चाहिए ?'

सभा में मौजूद लोग अभी इस प्रश्न पर ऊहा-पोह कर ही रहे थे कि सावरकर फौरन खड़े हो गये-बोले—

'वह सब विदेशी कपड़ा एक जगह लाकर जमा किया जाय और उसकी होली जलाई जाय इस तरह विदेशी वस्त्र पहनने का प्रायश्चित भी पूरा हो रहेगा।'

कई प्रौढ़ नेताओं ने इस विचार को मान्य नहीं किया—अलबत्ता प्रोफेसर शिवराम पन्त, परांजपे ने सावरकर के उक्त प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन किया—तब प्रश्न आया कि थोड़े कपड़े की होली-जलाकर भी क्या होगा ? कपड़ें काफी हों तो उसका कुछ असर होगा। एक तत्कालीन प्रभावी नेता ने शर्त रखी—'एक गाड़ी न सही कम से कम आधी गाड़ी विदेशी कपड़े यदि इकट्ठे न हो पाये तो हम तुम्हारी होली में शामिल नहीं होंगे।'

सावरकर ने सोत्साह कहा—'प्रयास करना हमारा काम है, आधी गाड़ी बड़ी बात नहीं।' प्रयास प्रारम्भ हुए। छात्रों के झुंड लेकर सावरकर सभायें करने लगे। पूना में सावरकर की सभाओं से हल-चल मच गयी। आग्नेय भाषण हो रहे थे—सावरकर उन वक्ताओं में अग्रणी थे।

पूना की एक ऐसी ही स्वदेशी प्रचार सभा की बात। जनता एकत्र थी। सावरकर धारा प्रवाह बोल रहे थे, बोलते-बोलते वे कह गये—

'अरे, अभी भी आप लोग विदेशी वस्त्र अपने शरीर से चिपकाये हुए हैं ? फेंको, फेंको इन कपड़ों को उतार डालो। जहरीली खाल की तरह इन्हें फेंक दो। इन्हें कैसे गले लगाए हुए हो ? जला डालो होली इन कपड़ों की और इस प्रवृत्ति की, जो आपकोविदेशी वस्त्र पहनने को विवश करती हैं।'

फिर क्या था। वह जमाना ही ऐसा था। इस तरह की वक्तृता पूना में किसी ने न सुनी थी न कहीं हुई ही थी। एक बार पूरी सभा में अग्नि-स्फुलिंग छा गये। चेहरे तमतमा गयें। लोगों के हाथ उठे—विदेशी वस्त्र घृणित पदार्थ की भांति शरीर से उतरने लगें—एक ने अपना विदेशी कपड़े का कीमती कोट उतारकर सावरकर की ओर फेंक दिया, तो दूसरे ने पैंट ही उतार डाला—तीसरे ने हैट हवा में उछाल दी तो चौथे ने विला-

यती वस्त्र की बनी कमीज झटपट उतार कर सावरकर की ओर फेंक दी—देखते-देखते कपड़ों का एक बड़ा स्तूप खड़ा हो गया। कपड़े आधी गाड़ी से भी अधिक हो गये। सावरकर के साथी बड़े उत्साहित हुए। जनता में भी सक्रियता जगी। तभी श्रोताओं में से एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ, 'किन्तु-परन्तु' लगाते हुए बोला—'आप लोगों' का यह कार्य आर्थिक तौर से नुकसान भी पहुंचायेगा।

सावरकर ने जवाब दिया—'नुकसान किसको? जनता वह हानि सह लेगी; लेकिन उसका फायदा बहुत होगा-जब इन कपड़ों की होली जलेगी, उस समय इसकी वह्नि से देशभक्ति का पवित्र आलोक आलोकित हो उठेगा-उसका जो प्रभाव जन-मानस पर पड़ेगा-हानि उसकी तुलना में पसंगा भर भी नहीं।'

निदान वे सब विदेशी कपड़े एक गाड़ी पर इकट्ठे किये गये, फिर उन्हें अबीर-गुलाल से रंगकर होली का वातावरण तैयार किया गया। बाजे-गाजे आये। विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का भारत में यह प्रथम उपक्रम था, प्रथम घटना थी। जल्द जुलूस चल निकला। इसमें लोकमान्य तिलक, प्रोफेसर परांजपे प्रभृति मान्य पुरुष शामिल हुए। तिलक जी 'केसरी' के प्रकाशक-सम्पादक थे, परांजपे जी प्रसिद्ध मराठी पत्र 'काल' के। जुलूस सभा में परिवर्तित हो गया। विदेशी कपड़ों की होली धधक उठी। सावरकर ने सुझाव दिया—'इस होली के इर्द-गिर्द वृत्ताकार खड़े होकर भाषण भी हों।' तिलक जी ने निषेध किया। कहा-'इतना काफी है, होली अपनी जगह जले—भाषण भिन्न स्थान पर चले क्या हर्ज है?' सावरकर कह उठे—'फिर हम सबको यहां तक आने की ही क्या जरूरत पड़ी थी? यहां होली जला करती—भाषण की जगह (रे मार्केट) भाषण चालू रहता। बात यह है कि यदि भाषण इस होली को केन्द्र में लाकर सम्पन्न हो तो वह अधिक संस्कार डालेगा।

तब तक यह लड़ाई जारी रहेगी

अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन नहीं होता। सबके लिए अन्न उगाने वाला किसान सपरिवार भूखों मरता है। सम्पूर्ण विश्व के बाजारों में कपड़े की पूर्ति करने वाले बुनकर के पास अपना और अपने बच्चों का शरीर ढकने के लिए वस्त्र नहीं हैं। कब तक एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण, एक देश के द्वारा दूसरे देश का शोषण होता रहेगा। (६ जून १९२९ 'असेम्बली-बम-कांड' में भगतसिंह और बी० के० दत्त द्वारा दिया गया बयान)

●सम्पादक द्वारा

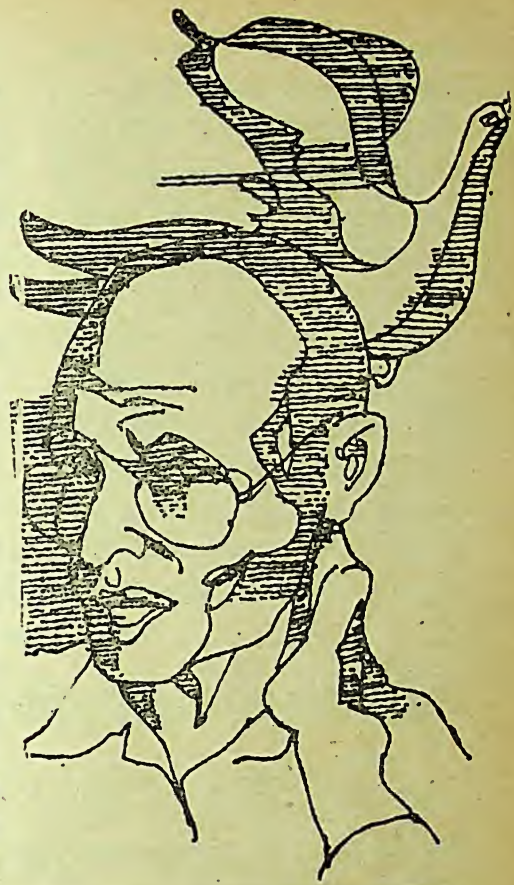

उनका स्वेच्छया देह-विसर्जन

सावरकरजी के स्वेच्छया स्वयं देह त्याग करने में उस महान क्रान्तिकारी की पूरी जिंदगी का मर्म मुखरित है। जिस समय सावरकर जी तरुण थे, देश पराधीन था। वे बंधन-पाश काटने में, देश की बेड़ियां तोड़ने में, उन्होंने अपनी जवानी की श्रेष्ठ शक्ति लगायी। कालेज-जीवन में ही क्रान्तिकारी बन चुके थे। लन्दन बैरिस्टरी पढ़ने गये-तो भी देश की स्वतन्त्रता का लक्ष्य उनके जीवन में ओत-प्रोत रहा। उसी के लिए उनका बोलना-चालना, उठना-बैठना, सोना-खाना, अध्ययन और तरुण उम्र की सभी गतिविधियां होती थीं-मानो वे उसी के लिए आये थे। यही करते-करते वे कैद हो गये; लेकिन देश तो तब तक स्वतन्त्र नहीं हुआ था-इसलिए अंग्रेजों की जकड़ में रहते हुए भी वे जहाज से अथाह समुद्र में कूद गये। तैरने लगे। यह सागर-संतरण जीवन-रक्षा के लिए नहीं था; अधूरे देश-कार्य की पूर्ति के लिए था। पुनः गिरफ्तार होने पर दो कालेपानी (५० वर्ष) की सजा मिली-बड़े भाई को भी आजीवन काले पानी का पुरस्कार मिला और आगे छोटे भाई डा० नारायण सावरकर को- भी षड्यन्त्र में फंसाने की कोशिश अंग्रेजों ने की-पूरा परिवार छिन्न-भिन्न होने आया किन्तु सावरकर को इसके लिए कोई पछतावा नहीं हुआ। १४ साल बाद अण्डमान से लौटे तो अलीपुर जेल के पश्चात रत्नागिरी में नजरबन्द रहे-६ मई सन् ३७ तक। १० मई को छूटे तो देश की परिस्थिति

बदल चुकी थी-अंग्रेजों से मिलकर मुस्लिम लीग देश-विभाजन अर्थात देश-घात की साजिश में लगी थी-इसलिए उन्होंने अपनी शक्ति हिन्दू संगठन में लगायी और 'हिन्दू-राष्ट्र, की स्थापना अपना लक्ष्य बनाया। 'रत्नागिरी' के नजरबन्दी काल में 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ लिखा। इसकी प्रशंसा में स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा था-'वीर सावरकर में वेदों की अभिव्यक्ति करने वाली कोई आदि ऋषि की आत्मा अवतरित हुई है' जब तक शरीर ने साथ दिया वे—'हिन्दू राष्ट्र' के लिए कर्मरत रहे, देश के नेतृत्व ने चूंकि इस ध्येय के प्रति उपेक्षा और निन्दा का दृष्टिकोण रखा इसलिए स्वतन्त्र होते-होते भी देश खण्डित हो गया। सावरकर जी ने देखा कि उनका शरीर अब इस लायक नहीं रहा कि अखण्ड भारत के लिए कुछ कर सकें-इसलिए स्वेच्छा से देह-त्याग कर दिया। चले गये। उनके लक्ष्य की मशाल जलती है। और हिन्दूराष्ट्र, अखण्ड भारत का ध्येय दीप्तिमान है-अहरह आह्वान-रत है। याद रहे 'हिन्दू' शब्द का इस्तेमाल वे उस हर आदमी के लिए करते थे जो भारत में जन्मा हो, इसे मां मानता हो और देश की संस्कृति के प्रति निष्ठावान हो। देश उनका लक्ष्य लेकर चले तो सावरकर के प्रति यही-श्रद्धांजलि होगी।

श्रीराधा और जानकी जरूर चिन्ता करेंगी

जन्माष्टमी और रामनवमी ये दो पर्व दो प्रमुख अवतारों के जन्मोत्सव के पर्व हैं। हिन्दू इन दिनों में जन्मदिन या वर्षगाँठ नहीं मानता, केक नहीं काटता, वह यह अनुभव करता है कि भादों के अँधेरे पक्ष की अंधेरी रात में श्री कृष्णचन्द्र का आविर्भाव हो रहा है, उनके अवतरण की प्रतीक्षा करता है, चैत्र शुक्ल रामनवमी को ठीक दोपहर में श्रीराम जन्म ले रहे हैं, घर-घर अयोध्या हो रहा है। श्रीकृष्ण हिन्दू हृदय चुराने के लिये वज्र अंधेरी रात में जन्म लेते हैं, श्रीराम हिन्दू धर्म को चेताने प्रसन्न दोपहरी में जन्म लेते हैं, श्रीकृष्ण के प्यार करने का अर्थ है अपने को सनातन सौन्दर्य के प्रवाह में विसर्जित कर देना, श्री राम के साथ चलने का अर्थ है सत्य के लिए निर्वासन स्वीकार करना। और उनके साथ वन की यात्रा करना। पर जीवन का आस्वाद इसी विध्वंसक प्यार में है, इसी वन-यात्रा में है। इन दोनों के पीछे हिन्दू चलकर आश्वस्त है कि ये दोनों तो कुछ करें न करें पर इनकी चैतन्य शक्तियां श्री राधा और जानकी अवश्य चिन्ता करेंगी। ००

● डा० विद्यानिवास मिश्र

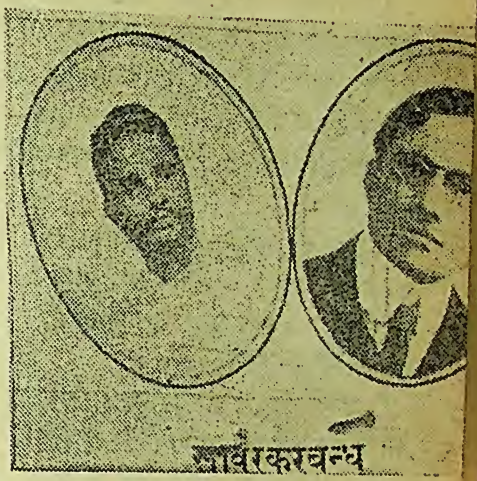

वे दिन, वे बातें

प्रथम महायुद्ध छिड़ चुका था। जर्मन नौकायें अंडमान को घेर लेने का प्रयत्न कर रही थीं कि अचानक एक दिन समाचार पत्र का एक छोटा टुकड़ा किसी सह-कारी 'लेखक' ने हमें लाकर दिया। उसे वहीं एक कोने में छिपकर पढ़ने लगा, शीर्षक था-'मेरठ में विद्रोह।'

मई महीने में, मेरठ की छावनी में जो सेना थी, उसने विद्रोह का झण्डा फहरा दिया। निश्चित तिथि के पहले ही यह अचानक प्रकट हो गया और धर-पकड़ शुरू हो गयी। उनमें से कई को आगे चलकर फांसी दे दी गयी। सैनिक-विद्रोह का समाचार पढ़ते ही शरीर रोमांचित हो उठा।

सन् अठारह सौ सत्तावन में इसी मेरठ में इसी मई मास में सैनिक-विद्रोह प्रारम्भ हुआ था। वह सर्वदेशव्यापी क्रान्ति की केवल चिनगारी थी। मैं सोचने लगा कि क्या यह मेरठ की दूसरी-चिनगारी उसी महाक्रान्ति पर्व का नान्दी पाठ तो नहीं है? यदि ऐसा न होता तो सरकार उसे इस तरह प्रसिद्ध न करती! न भी हो तो भी दस वर्षों में इतना अन्तर! असन्तोष, आवेदन, अभ्यर्थन, निषेध, झगड़े-फिसाद, आघात-प्रत्याघात, पिस्तौलें-बम तथा अब प्रत्यक्ष सैनिक-विद्रोह की अफवाहें! कहां से कहां तक हमारी गाड़ी चलती आई!

उस दिन तथा उस सप्ताह भर में राजबन्दियों में तथा सर्वसाधारण बंदियों में भी उपर्युक्त चर्चायें चलती रहीं, परंतु थी वह टुक-टुक रूपरेखा में!

धूनियां जलती रहीं

उसी समय लाहौर तथा पंजाब के क्रांतिकारियों के विद्रोह के

समाचार आ गये। बात की बात में वहाँ उन सिपाहियों की पलटनों पर पलटनें अण्डमान की जेलों में आने लगीं, जिन्होंने युद्ध पर जाने से इन्कार करने के फल-स्वरूप सजायें पाई थीं। देश की अशान्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण, सेना में यह जबरिया भर्ती थी।

एक दिन लाहौर के क्रान्तिकारियों की प्रथम टोली अण्डमान में आजन्म कारावास की सजा लेकर आ पहुंची। वे सब 'गदर' दल के सिक्ख थे।

उनको देखकर उनकी दुखद स्थिति को मैं क्षण-भर भूल सा गया और मैं बोल उठा—'ये सिक्ख आ गये। अन्त में हुआ वही, जो मैंने कहा।'

पुरानी बातें याद आ गयीं। उस समय मैं विदेश में था, मैं क्रान्तिकारियों के आंदोलन में नेतागिरी करता था। उस समय किसी सिक्ख के साथ यही बात-चीत चल रही थी कि सिक्खों में राष्ट्रीय जाग्रति कैसे सम्भव हो! पंजाब के कई तरुण इंगलैण्ड में थे। उस समय पंजाब सैनिक भर्ती का केन्द्र होने से हम उन सबको विभिन्न प्रकार की युक्तियों-प्रयुक्तियों द्वारा 'घर-घर में राष्ट्रीय जाग्रति को किस प्रकार फैलाया जाय'-इस विषय पर चर्चायें किया करते थे। एतदर्थ मैंने अपनी एक योजना भी तैयार की थी। इस योजना को मैं सबको समझा देता था। उस समय यह भी समझा देता था कि हम हिन्दुओं में से एक प्रमुख भाग जो सिक्ख पंथ है, उसमें जाग्रति लाना अत्यन्त महत्व का है। उस समय एक सिक्ख सज्जन किञ्चित निराशा से बोले थे. 'सिक्खों में धार्मिक कूपमंडूकता की जो बीमारी घर कर गयी है, उसे हटाकर उनमें अखिल भारतीय ममत्व निर्माण करना, तथा उनके धार्मिक उत्साह को राष्ट्रीय मोड़ देना कठिन काम है।'

तब मैंने कहा था-'मित्र! तुम भी तो सिक्ख हो! तुम्हारे सरीखे नरम सरदार परिवार में जन्म लेने वाले तथा शिक्षा-प्राप्त सिक्खों में उच्च वंशज तरुण को इतने अल्पकाल में राष्ट्रीय धर्म की दीक्षा तथा त्याग की शक्ति दी जा सकती है, तो अन्य सिक्खों को क्यों नहीं? मैंने सिक्खों का इतिहास ध्यान पूर्वक पढ़ा है, मैं जो योजना आपके सामने रख रहा हूं उसे सामने रखकर यदि आप प्रयत्न करेंगे, स्वदेश में, परदेश में जहाँ-जहाँ सिक्ख मिलेगा, वहाँ-वहाँ प्रयत्न कर लेने पर आप देखेंगे कि आगामी चार-पांच वर्षों में ही सिक्ख वीर कन्धे से कन्धा मिलाकर युद्ध करते हुए पाये जायेंगे।' यह बात सन् १९०८-९ की थी।

यह स्मरण होकर जब प्रथम बन्दियों की टुकड़ी अंडमान पहुंची तो वह समय स्मरण हो आया और तब अचानक मुख से ये शब्द निकल पड़ा-'देखो, सिक्ख भी आने लगे। अन्त में वही हुआ जो मैंने कहा था।'

उनमें एक 'गदर' दल का उच्च शिक्षित प्रमुख नेता था। उसने लाहौर के विद्रोह में मृत्यु-दण्ड होने पर भी

अपना बचाव करने से इनकार कर दिया था। बोला था-'मैंने जब जान बूझ कर क्रान्तिकारी प्रयत्न किये ही हैं, तो फिर बचाव किस लिए ?' और उसने अपना हठ अन्त तक निभाया था। वह एक शौकीन आदमी था। राजनीति से दूर था। परन्तु किसी दिन एक मित्र की सूचना पर 'सत्तावन ०का क्रान्ति युद्ध' हाथ में लेकर पढ़ा। उसने रात-दिन उसका पारायण किया और तभी से उसका पुराना जीवन एकदम बदल गया। उसने राष्ट्र-विमोचन की सौगन्ध खायी और वह कैद होकर यहां तक आ पहुंचा था। 'यहां तक' पर कोटि-क्रम करके मैं बोला था: 'तो वह पुस्तक अंडमान के लिए 'टिकट' का भी काम करती है।'

एक दूसरा वृद्ध सिक्ख था। वह पहले सेना में था, तत्पश्चात् उसने स्वपरिश्रम से परदेश में हजारों रुपये कमाये थे। उसने 'गदर' पत्र में जब क्रान्तिकारी लेख पढ़े तब उसी कार्य के लिए अपना सब धन दान में दे दिया। एक दिन उसने मुझसे कहा-'चीन में भी कभी-कभी वहां के प्रगतिशील लोग हिन्दुस्थान की चर्चा करते समय पूछा करते थे कि 'सावरकर कहां हैं ?' किस कारागृह में उसे हल में जोता जाता है ?'

चीनी दुःख करते थे

उस सिक्ख ने उन चीनियों को बताया था 'कि सच ही सावरकर को अंडमान के कारागार में कोल्हू में जोता जाता है।' तब उन्हें दया हो आती

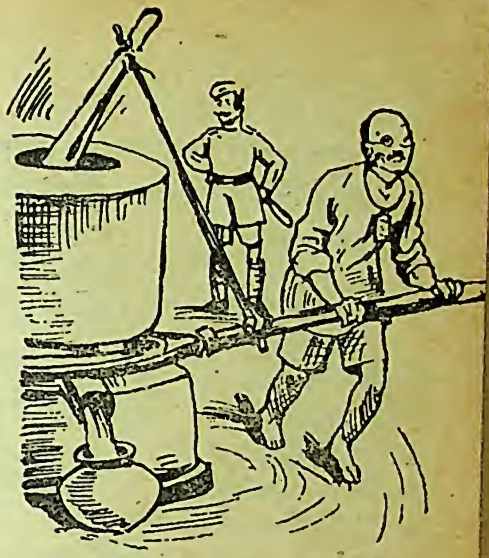

और वे चीनी दुःख प्रदर्शित करते थे। जब मैं विदेश में था, तब डा० सनयातसेन के नेतृत्व में चीन के क्रान्तिकारी-केन्द्र तथा समाचार-पत्रों में भारत के क्रान्तिकारी समाचार छपाने का प्रयत्न किया करता था, उनमें से कुछ चीनियों को मेरी स्मृति सन् १९१५-१६ तक अवश्य रही थी। मैंने इस स्मृति का उस सिक्ख से प्रमाण पाकर समाधान व्यक्त किया कि हो न हो, विदेश के हमारे प्रयत्न निष्फल नहीं गये।

कोल्हू में जोते जाने की बात

कोल्हू में मेरे जोते जाने की बात अमेरिका में भी पहुंची थी। किस प्रकार फैली इस बात ने उन सिक्ख बन्धुओं को, जो शूर तथा ध्येयनिष्ठ थे, कर्तव्योन्मुख करने में कैसे प्रेरित किया आदि बातें कोल्हू के 'घानी' शब्द से स्मरण हो आयी। उस सिक्ख ने कहा था-'गदर दल

चाँदनी पत्ती
के निर्माता की
एक और अनुपम भेंट

भोला

स्पेशल
ज़ाफ़रानी पत्ती

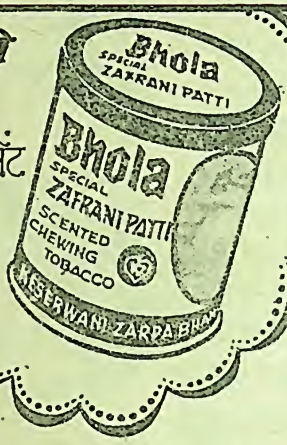

स्पेशल
पान छाप
ज़ाफ़रानी
पत्ती

चाँदनी पत्ती

भोला छाप
ज़ाफ़रानी
पत्ती

पान
रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क

निर्माता: **केसरवानी जर्दा भण्डार** सहसों, इलाहाबाद

ने आपका एक चित्र, 'कोल्हू सहित सावरकर के रूप में छापा था। उसे देखकर अत्यन्त दुःख से हम लोगों की आँखों में पानी भर आया था। और विचार आया-'अपने राष्ट्र के उद्धार के लिए जबकि ये बड़े लोग घोर कष्ट सहन कर रहे हैं-तब हमारे लिए शराब में बेहोश रह कर जीवन बिताना कितनी लज्जा की बात है। इस प्रकार के तीव्र पश्चात्ताप से युक्त होकर राष्ट्र-कार्यार्थ कुछ करने-धरने की उत्कट इच्छा भी हममें निर्माण हो गयी। और तब बड़े कष्टों से कमाये हुए पैसों पर ठोकर मारकर वे सिक्ख भारत को स्वाधीन बनाने के लिए सचेष्ट हुए; अपना सिर हथेली पर लेकर अमरीका से भारत की ओर चल पड़े थे।

इन्हीं सिख-मित्रों में से किसी एक ने मुझे बताया कि उसने मेरी लिखी 'सत्तावन के क्रान्ति युद्ध' की एक प्रति ब्राजील के अपने किसी मित्र को दी थी। वह पुस्तक सरकार ने जब्त कर रखी थी, जिससे उसकी कीमत बढ़ते-बढ़ते १५० रुपये तक पहुंच चुकी थी। और अनेक लोग, विशेषकर हिन्दू तरुण उसे खरीद-खरीद कर पढ़ रहे थे।

वे सिक्ख सरकारी मित्र मुझे 'क्रांति-रत्नों' का एक संकलित इतिहास लिखने का उन दिनों बार-बार आग्रह किया करते थे, तब मैं गम्भीर विनोद में कह देता था—'मित्रो ! इतिहास निर्माण करना अपनी पीढ़ी का काम है। इतिहास लिखने का काम तो इसके पश्चात् का है; और उसे अगली पीढ़ी करेगी।'

ऐसी एक प्रसिद्ध पुस्तक स्वयं वीर सावरकर ने लन्दन में ही लिखी थी।

'हिन्दू दूकानें थीं, इसी से नहीं खरीदा'
पाकिस्तानी पत्रकार की नुक्तेबाजी

लाहौर से दिल्ली 'शिखर-सम्मेलन' में आये हुए एक पत्रकार अब्दुल खालिक हुसैनी ने लिखा था कि 'मैंने दिल्ली में खरीदारी नहीं की क्योंकि सभी व्यापारी हिन्दू थे।' मेरे एक मित्र ने जब उनसे कहा कि 'बेगम जिया ने हिन्दुओं की दूकान से खरीददारी की है, और आप स्वयं 'हिन्दू भारत' के होटल में रहकर भोजन करते रहे हैं, बाकी सभी पाकिस्तानी पत्रकारों ने भी यहां खरीददारी की, यही नहीं इनमें से कई एक को मैंने यहां की पुस्तकें भी भेंट कीं तो इस पर श्री हुसैनी कोई जवाब नहीं दे सके। उल्टे उनके एक साथी ने मुझे बताया कि उन्होंने अपनी पत्नी के लिए खादी भण्डार से चार रेशमी साड़ियां खरीदी हैं। ००

● जमनादास 'अख्तर'

कालेपानी की काल-कोठरी में

जमादार मुझे लेकर सात क्रमांक की बैरक की ओर चल पड़ा। मार्ग में पानी का एक हौज मिला। जमादार ने कहा—'इसमें स्नान करो।' मैंने कई दिनों से स्नान नहीं किया था। समुद्र-यात्रा से शरीर मलिन और पसीने से तर हो गया था, अतः स्नान की अनुमति मिलते ही अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ। मुझे एक लंगोटी दे दी गई कि इसे पहनकर स्नान करो। लंगोटी लगाकर जैसे ही मैंने कटोरी से हौज से पानी लेना चाहा कि इसी बीच जमादार ने चिल्लाकर कहा—'ऐसा नहीं करना, यह कालापानी है। जब मैं आज्ञा दूंगा कि 'लो पानी' तब तुम झुककर एक कटोरा पानी लेना। फिर मैं कहूंगा 'अंग मलो' तो उससे अंग मलना। फिर जब मैं कहूंगा 'और पानी लो, तब तुम और दो कटोरे पानी लोगे। बस कुलतीन कटोरों में स्नान होगा।'

आदतवश जैसे ही चुल्लू-भर पानी से कुल्ला किया कि खारे पानी ने जीभ का जायका बिगाड़ दिया। पूरा शरीर कसमसा गया। लगा कि इससे स्नान न करता तो ही अच्छा रहता। मगर फिर विचार किया कि इसकी आदत तो डालनी ही होगी। लन्दन तथा पेरिस के 'टर्किश बाथ' का आनन्द लिया है तो 'अण्डमानीश बाथ' का भी आनन्द लेना चाहिए।

कपड़े पहनकर आगे बढ़ा। सामने देखा ईंटों से बना भव्य भवन था। उसकी ऊँची-ऊँची दीवारों में लोहे की छड़ें ठोकी हुई थीं। सब कमरे एक समान पंक्तिबद्ध थे। ऐसी थी वह तिमंजिली, पत्थर-ईंटों से बनी भव्य बैरक। चौड़ी सीढ़ियां, सफेद रंग तथा विशालता को देखकर मन को बड़ी प्रसन्नता हुई कि जैसे कोई बड़ा राजमहल रहने के लिये मिला हो। यदि यह मेरा खुद का घर होता तो मैं कितना बड़ा धनवान कहलाता ?

मुझे जब यह मालूम हुआ कि वर्षों तक कोठरी में अन्दर ही बन्द करके रखते हैं, बाहर नहीं निकलने देते तो मैंने मन-ही-मन कहा—'इस बन्दीगृह को अपना महल समझ कर रहेंगे। काव्य रचना करेंगे।'

साहब आता है, खड़े रहो

सावरकर बैरक के दूसरे दिन पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

'दूसरे दिन प्रातः ८ बजे पठान वार्डर दौड़ते आये और बोले—'साहब आता है, खड़े रहो।' मैं दरवाजे के पास आया—सलाखों से जकड़े दरवाजे के पास खड़ा

बीते हुए दिन

संस्मरण

● वीर सावरकर

हो गया। जेलर बारी अपने साथ कुछ गोरों को लिये खड़ा था। बारी ने १८५७ के स्वातन्त्र्य समर को गदर बताकर चर्चा छेड़ दी। मैंने निर्भीकता से तर्क देकर स्वातन्त्र्य संग्राम ही सिद्ध किया।

बंबगोले वाले

जब मैं अण्डमान पहुंचा तो उस समय इलाहाबाद के चार सम्पादक राजद्रोह के आरोप में बन्दी थे। बाद में पंजाब से सशस्त्र क्रान्तिकारियों का आगमन हुआ तो उनके लिये जेलर व वार्डरों ने नया नाम दिया—'बंबगोले वाले'। यदि कोई हमें 'बाबू' भी कह देता तो जेलर 'बारी' तुरन्त कहता—'कौन साला बाबू है? यहां सब साले कैदी हैं। बारी हमें राज-बन्दी (पालीटिकल प्रिजनर्स) मानने को तैयार नहीं था। उसने हमें 'डी' (डेंजरस) टिकट दिया हुआ था जिसे हमें कपड़ों पर लगाना होता था।

पानी पर भी प्रतिबन्ध

कुछ दिन तक काम भी ठीक दिया गया यानी नारियल का रेशा निकालना पड़ता था, किन्तु एक साहब कलकत्ता से आये तो देखा कि राजनीतिक कैदी आस-पास बैठकर काम करते हैं।

कभी करते, कभी नहीं करते; तब ऊपर से लिखकर आया—'इनसे सख्ती की जाय।' बस इन लोगों को कोल्हू दिये गये, आपस में बात करने से ही सात दिन की हथकड़ी मिलने लगी। बदला लेना था न! सख्त-से-सख्त काम दिये जाने लगे। जेल के डाक्टर बहुत अच्छे स्वास्थ्य वाले के अतिरिक्त किसी को यह सब काम नहीं देते थे, किन्तु इन राजनीतिक कैदियों का स्वास्थ्य खराब हो या भला, ये सब सख्त काम उन्हें दे दिये जाते थे। चिकित्सा-शास्त्र भी इस प्रकार के 'साम्यवाद' के हाथ का कठ-पुतला हो गया। लोग कोठरियों में बन्द होकर कोल्हू पेरने, थोड़ी देर के लिये रोटी लेने खुलते, इसी बीच में वह अभागा कैदी यह चेष्टा करता कि हाथ-पैर धो ले या बदन पर थोड़ी धूप लगा

ले, तो नम्बरदार का पारा चढ़ जाता था, वह माँ-बहिन की सैकड़ों गालियां देता था। हाथ धोने को पानी नहीं मिलता था, पीने के लिए नम्बरदार से सैकड़ों निहोरे करने पड़ते थे। पानीवाला पानी नहीं देता था, जो कहीं से उसे एक-आध चुटकी तम्बाकू की दे दी तो अच्छी बात है, नहीं तो उल्टी शिकायत होती कि, 'ये फिजूल पानी बहाते हैं, और जेल में यह एक बड़ा जुर्म है। यदि किसी ने जमादार से शिकायत की तो वह उबल पड़ता, 'दो कटोरी' का हुक्म है, तुम तीन पी गया। क्या तुम्हारे बाप के यहाँ से आयेगा ?' नहाने की तो कल्पना ही अपराध थी। हां, वर्षा हो तो कोई भले ही नहा ले। खाने का भी यही हाल, खाना देकर कोठरी बन्द हो गयी, कैदी खा पाया या नहीं, किन्तु बाहर से हल्ला होने लगा—'बैठो मत, शाम को तेल पूरा हो, नहीं तो पीटे जाओगे, और जो सजा मिलेगी सो अलग।' ऐसे वातावरण में खाते तो कैसे ? बहुत ऐसा करते कि मुख में कौर रख लिया और कोल्हू में चलने लगे। सौ में एकाध ऐसे थे जो दिनभर मेहनत करने पर ३० पौंड तेल निकाल पाते थे। जो न निकाल पाते उन पर जमादार, नम्बरदार डण्डेबाजी करते। लात, घूंसा, जूता पड़ता। कालेज के छात्र तथा अध्यापक श्रेणी के राजनैतिक कैदियों को भी कोल्हू मिला तो वह बीमार हो गए। किन्तु बारी के राज्य में १०२ डिग्री से कम बुखार नहीं माना जाता था, यानी उसे न अस्पताल भेजा जाता, न काम से छुट्टी मिलती ? जिस बदकिस्मत को बुखार, दस्त या कै न होकर सिर दर्द, हृदयरोग या ऐसा कोई अप्रत्यक्ष रोग होता तो उसकी तो शामत ही आ जाती।

राजनीतिक कैदी कोल्हू चलाते-चलाते थक जाते, उनके सिर में दर्द होता, वे सिर थामकर बैठ जाते। जमादार कहता—'क्या है, कोल्हू चलाओ।' राजनीतिक कैदी कहते—'सिर में दर्द है।' जमादार कहता 'मैं क्या करूँ, कोल्हू पीसो, डाक्टर को दिखाओ।' डाक्टर आता किन्तु क्या करता, थर्मामीटर लगाता, पर बुखार नहीं। वह हिन्दुस्तानी था, मि० बारी से डरता था, वह बगले झांकने लगता। उधर बारी साहब फरमाते—'देखो डाक्टर, तुम हिन्दू हो, यह पोलिटिकल कैदी भी हिन्दू हैं। इनकी मीठी बातों से कहीं तुम खटायी में न पड़ जाओ, यह हमें डर है। कोई जाकर शिकायत कर दे कि तुम इनसे बोलते-बतलाते हो; तो तुम्हें लेने के देने पड़ जायें। इसलिए संभल जाओ, समझे ? नौकरी करो। माना कि तुम डाक्टरी पढ़ हो किन्तु हम भी गुणी हैं। कौन सच्चा बीमार है, कौन झूठा, मैं फौरन ताड़ लेता हूं।'

एक बार ऐसा हुआ कि गणेशपन्त [मेरे अग्रज] के सिर में जोर का दर्द उठा; डाक्टर ने उन्हें अपने हुक्म से कोठरी से निकलवाया और कहा—'उसे

'वही हिन्दू है'

● वीर सावरकर

असिन्धुः सिन्धुपर्यन्ता-यस्य भारतभूमिका।
पुण्यभूः, पितृभूश्चैव-स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

● सिन्धु महानद से लेकर सागर पर्यन्त इस भारत की भूमि को जो व्यक्ति अपनी पुण्यभूमि और पितृभूमि स्वीकार करता है, वही हिन्दू है।

अस्पताल भेजो।' वे चले गये, कैदी को भेजने में जो लिखा-पढ़ी होती है, वह भी हो चुकी और गणेशपन्त मय बिस्तरा के जाने लगे। इतने में बारी साहब आ गये—लगे उस पर बिगड़ने—'मुझसे क्यों नहीं पूछा? वह डाक्टर कौन होता है? साले ले जाओ इसको वापस, काम में लगाओ। मैं समझ लूंगा डाक्टर को, मुझसे बिना पूछे इसे कोठरी से क्यों निकाला? ओ साले! मैं जेलर हूं, कि वह डाक्टर!' गणेशपन्त आखिर तक अस्पताल न जा सके। यह सारी तकलीफ विशेषकर राजनीतिक कैदियों के लिए थी।

मलमूत्र पर भी रोक

अण्डमान में अन्न-वस्त्र की तकलीफ, मारपीट, गाली—यह सब असुविधा तो थी ही, किन्तु एक और भयंकर तकलीफ थी, जिसको कहते संकोच होता है। वह थी—मल-मूत्र पर भी रोक-टोक। सवेरे-शाम और दुपहरी के सिवा टट्टी-पेशाब भी नहीं कर सकते थे। रात को टट्टी फिरो तो सवेरे भंगी शिकायत करे और पेशी की नौबत आये। खड़ी हथकड़ी हो गयी तो आठ घंटे बंधे खड़े रहो। सब कैदियों के साथ वही एक ही व्यवहार। दूसरे कैदी तो ऐसा कर लेते थे। कि चोरी से दीवार पर पेशाब कर दिया था खड़े-खड़े जमादार की आँख बचाकर सबके सामने ही पेशाब करने लगते। किन्तु राजनैतिक कैदी ऐसा कैसे करते इसलिए वे हर तरह से घाटे और तकलीफ में रहते।

इस प्रकार सैकड़ों कष्ट थे। पुस्तकें लेने-देने में जहां मुकदमा चलता था, वहाँ भला जीवन का क्या कहना! महामूर्ख बारी हजारों जेलरों में से एक था। राजबन्दी क्या पुस्तकें पढ़ें, इसमें भी वह दखल देना चाहता था। बारी पुस्तकों पर इस तरह अपनी शय जाहिर करता था—'नान्सेन्स? शट्? यह कैण्ट-पैण्ट की किताबें मैं नहीं देना चाहता, इन्हीं किताबों को पढ़कर ये लोग हत्यारे हो जाते हैं, और यह योग, वोग, थिओ-सोफी की किताबें बेकार हैं, किन्तु सुपरि-न्टेन्डेण्ट इस बात को सुनते नहीं, मैं करूँ तो कैसे करूँ? मैंने आज तक कोई

किताब नहीं पढ़ी, फिर भी एक जिम्मेदार आदमी हूं। किताबें पढ़ना औरतों का काम है।' ऐसा था वह जेलर [बारी]।

एक आदत का मारा राजबन्दी भू-गर्भ शास्त्र पढ़ रहा था, उसने अपनी कापी में—उसके कुछ अंश लिख लिए थे, अब बारी ने कापी जांची तो यह मिला। बारी बोला—'पकड़ लिया' यह गुप्त लिपि क्या है? मुझसे भी पूंछा तो मैंने कहा—'यह भू-गर्भ शास्त्र पढ़ता होगा।' किन्तु बारी साहब तो खास आयरलैंड में पैदा हुए थे, वे अंग्रेजी नहीं समझते थे। दूसरे दिन वह कैदी पेशी पर गया और दो हफ्ते के लिए उसकी किताबें छिन गयीं। जेल की भाषा में इसको 'सजा' कहते हैं।

पगला ज्योतिष

एक था बंगाली तरुण नाम ज्योतिषचन्द्र पाल। बारीसाल [मयूर-भंज के जंगल] में बंगाल के कुछ क्रान्तिकारी जर्मनी से शस्त्र या रुपया भरकर लाने वाले मेवरिक नाम के जहाज की प्रतीक्षा कर रहे थे; वे युद्ध के दिन थे। उस विप्लवी दल के नेता थे यतीन्द्रनाथ मुखर्जी [जतीन बाघा]। ज्योतिषचन्द्र भी उनके साथ था? अंग्रेज पुलिस अधिकारी टैगर्ट के साथ उस टुकड़ी का खंड-युद्ध हुआ। क्रान्तिकारियों ने खुले मैदान में खाइयां खोदकर युद्ध किया। बस लड़ाई में ज्योतिषचन्द्र घायल हो गया। उस पर मुकदमा चलाया गया। जन्मकैद, कालेपानी की सजा मिली। अण्डमान में जब हड़ताल चली तो एक दिन सन्ध्या को ज्योतिष को खाना परोसकर सिपाही जब उसकी कोठरी बन्द करके जाने लगे तो ज्योतिष ने उनसे कहा—'कोठरी में शौच का जो बर्तन रखा है, पहले उसे बाहर निकालो, तब मैं खाना अन्दर लूंगा।'

सिपाहियों ने उससे कहा कि, 'वह अन्दर चला जाय और कोठरी बन्द करने दे।' लेकिन ज्योतिष अड़ गया और जिद करने लगा कि शौच का बर्तन बाहर किये बिना भोजन नहीं करेगा।

सिपाहियों ने भोजन और ज्योतिषचन्द्र को जबर्दस्ती कोठरी में बन्द कर दिया और बाहर निकल गये। ज्योतिषचन्द्र के सिरहाने शौच का बर्तन रात-भर उसी तरह रखा रहा। उसकी दुर्गन्ध में पड़े रहने के सिवा ज्योतिष के लिए कोई चारा न था।

हम राजबन्दियों के जीवन में वहां इस तरह के प्रसंग कई बार आ चुके थे। ज्योतिषचन्द्र की सहनशीलता ने इस बार जवाब दे दिया।' उसने खाना फेंक दिया और अनशन शुरू कर दिया। थोड़े ही दिनों में उसे खूनी पेचिस हो गयी और उसे अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। क्रान्तिकारी कैदियों ने उससे अनशन त्याग देने का अनुरोध किया। मैंने भी उससे अन्त में भेंट की और अन्न ग्रहण कराया; परन्तु बलहीन रस्सी कब तक प्रतीक्षा करे, वह हाथ से छूट निकली

और उस रात जो उसका माथा ठनका तो उसने ज्योतिषचन्द्र को पागल बनाकर सांस ली।

आगे उसे एक साल तक पागल खाने में रखा गया। बाद में बंगाल की जेल में भेजा गया और आखिर एक दिन किसी अखबार के कोने में चार पंक्तियों की यह खबर छपी दिखायी दी कि— 'बंगाल के तरुण विप्लवी ज्योतिषचन्द्र पाल का निधन। बहरामपुर के पागल खाने के अस्पताल में प्राणान्त।'

लोगों ने बताया कि अन्तिम समय में उसका पागलपन कुछ कम हो गया था। मरते समय उसने अपने रिश्तेदारों को एक पत्र लिखा था जिसमें उसने यह विश्वास व्यक्त किया था कि, 'यह मत समझो कि मृत्यु के पश्चात् मेरी आत्मा स्वर्ग में खुर्राटे लेती रहेगी। यदि मातृ-भूमि के प्रति मेरी भक्ति स्वयंभू होगी तो मैं पुनर्जन्म लेकर शीघ्र ही उसकी सेवा में लौटूंगा।' पगले ज्योतिष! जो लोग कहते हैं कि तुम्हारा पागलपन कुछ सीमा तक सुधर गया था वे लोग भ्रम में हैं, क्योंकि मृत्यु के क्षणों में लिखे गये तुम्हारे उस पत्र को देखकर यह कहना पड़ता है कि देश की स्वतंत्रता के लिए लगन अथवा पागलपन का जो चिर-व्यग्र भाव तुम्हें क्रान्तिकारी बना बैठा था, मरते-मरते भी तुम उससे बाज नहीं आये।

यज्ञोपवीत के रक्षार्थ बलिदान

एक और क्रान्तिकारी था। नाम था रामरक्खा। ब्राह्मण था। पंजाब का रहने वाला था। इसने चीन, जापान आदि देशों के प्रवासकाल में क्रान्तिकारी दल की सदस्यता ग्रहण की। पश्चात, श्याम और रंगून में क्रान्ति फैलाने के षड्यंत्र में गिरफ्तार हुआ। आजन्म काले-पानी का पुरस्कार मिला। रामरक्खा जब अण्डमान की जेल में आया तो उसने देखा कि यहां ब्राह्मण के गले से जनेऊ निकाल दिया जाता है। यह बात उसे खटकी।

वह देश-विदेश घूम चुका था, विचार विकसित हो गये थे। रूढ़िवाद या अंध-श्रद्धा के कारण नहीं बल्कि विचारपूर्वक ही उसे अंग्रेजों का यह अन्याय सहन नहीं हुआ। उसने इस बात का विरोध किया कि किसी की इच्छा के विरुद्ध उसके जनेऊ आदि धर्म-चिह्न छीने जायें। अतः जब उसका जनेऊ उतारा जाने लगा तो वह बिगड़ उठा और जनेऊ उतारने नहीं दिया। अफसरों ने जिद पकड़ ली और रामरक्खा का यज्ञोपवीत जबरदस्ती छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने कसम खाई कि नया जनेऊ न मिलने तक रोटी नहीं लेगा। जल भी नहीं लेगा। रामरक्खा को अनशन किये कोई १५ दिन गुजर गये; तब उसे नाक में नली डालकर कुछ खाद्य द्रव-रूप में पहुंचाया जाता रहा। यह क्रिया १५ दिन चली। रामरक्खा कमजोर हो गया किन्तु वह डिगा नहीं। उसकी छाती में भयंकर पीड़ा होने लगी। डाक्टरों ने परीक्षा

की। कहा कि इसे तो यक्ष्मा ने ग्रस लिया है। यह जानकर सभी चिंतित हुए और उन्होंने रामरक्खा से अनशन तोड़ने का आग्रह भी किया। वह इनकार करता रहा। मुझ लगा कि उसने शायद मृत्यु-द्वार पर ही आसन जमा लिया है। आखिर उसे मैंने एक पर्चा भेजकर अनशन तोड़ने का आग्रह किया। बहुत कुछ समझाया गया तब कहीं उसने मेरी बात मानी और अनशन तोड़ा। किन्तु वह मृत्यु-द्वार से वापस लौटता नहीं दिखायी दिया। रोग बढ़ता गया। दो महीने तक उसने भयंकर यन्त्रणायें भोगी और अन्ततः वह क्रान्तिकारी ब्राह्मण बलिवेदी की भेंट चढ़ गया। चला गया रामरक्खा। किन्तु यह सनसनी-खेज शोक-संवाद भारतीय अखबारों तक पहुंच गया था। बात दबाई नहीं जा सकी और अन्ततः सरकार को यह आदेश जारी करना पड़ा कि अण्डमान में ब्राह्मणों के जनेऊ नहीं उतारे जायेंगे। यही नहीं, सभी धर्मों के अनुयायियों को अपने धर्म-चिह्न जेल में अपने पास रखने की अनुमति मिल गयी। इसके बाद भी क्रान्तिकारी कैदियों के शरीर छीजते गये। हाड़तोड़ परिश्रम और भुखमरी ही उसका कारण था। कई सुगढ़ शरीर वाले पंजाबी क्रान्तिकारियों को यक्ष्मा हो गई। मेरे परिचित चार सिख क्रान्तिकारियों को यक्ष्मा हमेशा के लिये छीन ले गई। एक दिन मुझे भी यक्ष्मा के अस्पताल में भर्ती किया गया। मेरा मन मुझसे कहने लगता कि शायद इसी रास्ते मुझे भी जाना पड़ेगा। राम-रक्खा सरीखे उदार और शूरवीर देश-भक्तों को जब-जब मृत्यु-मुख में जाते देखता तो हृदय अशान्त हो जाता! उधर युद्ध की हालत पलट चुकी थी। जर्मनी उतार पर था; फलतः क्रान्तिकारी कैदी अपने छूटने की आशा त्याग देने को विवश थे।

बारी की पिटाई

अण्डमान जेल का आयरिश जेलर बारी बहुत क्रूर था—जुल्मी था। एक बार राजबन्दियों की नई टोली का बारी के सधे-बधे (हस्तक) कुछ उद्धत पठानों ने काम के लेन-देन के सम्बन्ध में अपमान कर दिया। उसका प्रतिकार उन स्वाभिमानी राजबन्दियों ने उसी समय लिया। प्रतिवाद की बात जेलर तक गई। उन राजबन्दियों में एक तरुण झांसी (रांठ, बुन्देलखण्ड) का था, निर्भय तथा साहसी था। उसका नाम था परमानन्द। उसे जेलर ने कार्यालय में विवरण हेतु बुला भेजा। यह तरुण (परमानन्द भाई) परमानन्द से भिन्न व्यक्ति था। आगे चलकर उसी कारागार के 'नालन्दा विहार' में यथेच्छ विद्या सम्पादन करके जो अध्यापक बने थे—स्नातक बने थे—उनमें इस परमानन्द का नाम अग्रगण्य था। उसने वही विद्वता, वही बुद्धिमत्ता तथा वही त्यागवृत्ति प्राप्त की जो सर्वमान्य प्राध्यापक में पायी जाती है। बारी अपनी जन्मजात आदत से बाज नहीं आता था। उसने एक बार परमानन्द को किसी

सावरकरजी ने कहा था...

सावरकरजी के अन्तिम दिनों में, जब वे बहुत बीमार थे—मैं उनसे मिला था। यह कामना प्रकट करने पर कि 'आप अभी बहुत दिनों तक हमारे बीच रहेंगे और शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे'—सावरकरजी ने कहा था—'हां, जी तो सकता हूं—अगर कोई यह वादा करे कि मेरे जीवनकाल में ही भारत अखण्ड बन जायेगा। सिंध, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल फिर से भारत में एक हो रहेंगे।' कोई भी उनसे यह वादा नहीं कर सका और वे चले गये सदा के लिए। ००

● अटलविहारी बाजपेयी

से बातचीत करते देखा तो आदेश दे बठा—'ऐ! सीधे खड़े होकर बोलो' परमानन्द ने उसकी बात की ओर ओर ध्यान नहीं दिया, यह देखकर बारी ने उसे दो-चार गालियां दीं। परन्तु उस तेजस्वी तरुण को गालियां सुनने की आदत न थी। बारी के मुख से गाली का निकलना था कि परमानन्द ने अपने को बलात् दो वार्डरों के हाथ से मुक्त कर लिया और तुरन्त दो तमाचे बारी के गाल पर रसीद कर दिये। बारी ने परमानन्द को जब शेर के समान अपने ऊपर टूटते देखा तो घबड़ाकर उठने लगा। जिससे तमाचा उसके टोप पर पड़ा और उसका टोप जमीन पर लोटने लगा, बारी 'पकड़ो—मारो' चिल्लाते-चिल्लाते जेल के दफ्तर से बाहर दौड़ा। अन्य वार्डरों ने परमानन्द को पकड़ा और फिर उसे इतनी बुरी तरह मारा कि उसके होंठ फट गये—रक्त बहने लगा। फिर भी परमानन्द को वे लोग डंडों आदि से मारते ही रहे। बारी ने घबड़ाकर जेल के पर्यवेक्षक को दूरध्वनि से सूचना दी—आने के लिए कहा। जेल में दंगा मचा। दौड़-धूप मची। अफवाहें फैलीं कि; 'बारी को बमगोले वाले (क्रान्तिकारियों) ने पीटा है।'

पर्यवेक्षक दौड़ता आया। उसने परमानन्द को बेंत से पीटने की आज्ञा दे दी। परमानन्द को रस्सी से बांध दिया गया और उस पर बेंतों की बौछार पड़ने लगी। यह बीर युवक लहूलुहान हो गया। मांश-पेशियां छिल गईं। चमड़ी उघड़ गई। मगर परमानन्द के मुख से उफ तक न निकली। वाह रे शेर! वास्तविकता यह थी कि बेंत के प्रथम प्रहार ही से वहां बड़े-बड़े खूंखार कातिल डकैत पशुवत् चीत्कार कर उठते थे। पूरा जेल उनकी चीखों से गूंज उठता था, परन्तु परमानन्द ने आह तक न भरी। बारी आग-बबूला हो उठा, आज्ञा हुई कि 'मारते-मारते बेदम कर दो।' फिर भी परमानन्द चुप था।

पीटई हो चुकने पर उसकी मलहम पट्टी की गयी और उसी कमरे में पुनः बन्द किया गया। उसे अस्पताल तक नहीं भेजा गया। जेल में बन्दी पर बेंत पड़ने का यह प्रथम प्रसंग था।

बेंतों से न राजबन्दियों को दुख था; न परमानन्द को। परमानन्द ने बारी को पाठ पढ़ाया था। परमानन्द के इस कृत्य से जेल ही नहीं, पूरे अंडमान-भर में राजबन्दियों का आतंक-सा छा गया। इस लाभ को देखते हुए परमानन्द को जो सजा मिली थी, वह नगण्य थी—इसलिए परमानन्द आनन्दित था। बन्दी ने, जेलर पर हाथ उठाया था, अधिकारियों ने बन्दी को सजा दे दी। कारागृह के नियमानुसार दोनों बातें परस्पर निपट चुकी थीं परन्तु बारी ने जो गालियां दी थीं, उसके प्रतिकारार्थ वहां कुछ लोगों ने हड़ताल कर दी। पर्यवेक्षक तथा [illegible] अपनी-अपनी ओर से सबको समझ फिरते रहे। पर्यवेक्षक ने सबको समझ दिया कि—'अब उसने सब जेल-कर्मचा रियों को डांट दिया है, साथ ही यह अभिवचन दे दिया कि उसने बारी को मना कर दिया है कि किसी राजबन्दी को कभी गाली मत दे। भविष्य में ऐसा कभी नहीं होगा। तुम लोग काम आरम्भ करो। जो कुछ बने, उतना ही करो— परन्तु करो।' इतना अभिवचन मिलने पर सबने अपना-अपना काम आरम्भ कर दिया।

इस प्रथम टोली के प्रतिकार से अण्डमान के राजबन्दियों को इतना लाभ हुआ कि आगामी टोलियों के बन्दियों को कभी काम में त्रस्त नहीं होना पड़ा।

[अगले अंक में समाप्त]

हिन्दू राज्य नेपाल

वीर सावरकर

नेपाल ही एकमात्र हिन्दू राज्य है। हिन्दुओं के उज्ज्वल अतीत का वह सबसे बड़ा प्रतिनिधि है और वह अतीत से अधिक भव्य हिन्दू-भविष्य की आशा है। इसलिए नेपाल के अधिराज के प्रति मैं सारे हिन्दुओं की ओर से भक्ति प्रकट करता हूं। महाराज वृद्ध शमशेरजंग बहादुर राणा इस बात को अनुभव करते हैं कि नेपाल का भविष्य हिन्दुत्व से बंधा हुआ है। हिन्दू वास्तव में एक राष्ट्रीय इकाई है और उनके भाग्य को परिवर्तित करने की शक्ति नेपाल के हाथ में है।

मुझे कुछ विश्वस्त सूत्रों से मालूम हुआ है कि नेपाल में मस्जिदों की संख्या बढ़ रही है और आस-पास के क्षेत्रों से लड़के-लड़कियों को बहकाकर उन्हें मुसलमान बनाया जाता है। नेपाल सरकार राज्य में शक्ति के प्रति इस संकट को छोटा न समझकर सजग रहे। भारत के अन्य भागों की भांति ये मस्जिदें पहले प्रार्थनागृहों के रूप में बनाई जाती हैं, तत्पश्चात् हिन्दू-विरोधी कहरपन की तप्तभूमिका कार्य करने लगती हैं। ००

संस्मरण

वे स्मृतियाँ

सन् ४६ था। संघ-शिक्षा-वर्ग की समाप्ति पर एक दिन काशी में श्री कालिया के यहां शाम को कार्यकर्त्ताओं की बैठक हुई, अन्त में प्रार्थना हुई, प्रार्थना करते समय एक स्वयंसेवक बेहोश होकर गिर गया। गुरुजी की वेदना उनके चेहरे से ऐसी प्रकट हुई कि देखने वालों के चेहरे उतर गये। प्रार्थना के बाद उस स्वयंसेवक की परिचर्या हेतु गुरुजी ने संकेत किया। उसी समय जलपान का भी आयोजन था। इस बीच गुरुजी को पता चल गया कि कुछ बन्धु अभी थोड़ी देर में लखनऊ और शाहजहांपुर की तरफ जाने वाले हैं, ट्रेन का समय हो गया है, अतः गुरुजी ने सबसे पहले उन्हीं को जलपान करने का आदेश दिया; जलपान हुआ और चलने की तैयारी भी। चलते समय मैंने गुरुजी के चरण छू लिये; मुझे मालूम नहीं था कि गुरुजी किसी को अपने पैर नहीं छूने देते। चरण स्पर्श करते ही उन्होंने बड़े प्रेम से मुझे एक चपत लगा दी और मधुर स्वर में कहा—'जाकर संघ-कार्य कर।'

उस दिन से लेकर आज तक न जाने कौन-सी अज्ञात शक्ति मुझे चैन से नहीं बैठने देती। श्री जयगोपालजी द्वारा संघ में मैंने प्रवेश पाया था, मा० दीनदयाल-जी, माऊरावजी के सम्पर्क का भी सौभाग्य मिला। ३५ वर्ष तक सुरक्षा-सेवा में रहते हुए भी संघ-कार्य से सतत् जुड़ा रहा; अब आयु-वृद्धि अवस्था और शारीरिक विषिलता को देखते हुए अवसाद घेरता है मगर मन बैठने नहीं देता। उस समय गुरुजी के उक्त शब्द प्रेरित करते हैं। उनका वह स्पर्श इतना विलक्षण और आह्लादजनक था कि आज भी उसकी अनुभूति उतनी ही ऊर्जामय तथा तरोताजा बनी हुई है। ००

● बालेश्वरसहाय कंचन
१४६, परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश

शहीदों की कष्ट-कथाएं ही हमारे लिए धर्म-कथाएं

आज जब हम शहीदों की तिथियों पर उन्हें याद करने जा रहे हैं तो जो मन कैसा- कैसा हो रहा है। कभी लगता है कि यह हमारा सौभाग्य है—सौभाग्य इसलिए कि जिस उद्देश्य के लिए इन अमर शहीदों रामप्रसाद 'बिस्मिल'; अशफाकउल्ला खां, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी; भगतसिंह; आजाद और रोशनसिंह ने अपना बलिदान किया था वह पूर्ण हुआ और भारत आज पू स्वतंत्र है। कभी यह कुछ दुर्भाग्य-सा भी लगता है—दुर्भाग्य इसलिए कि आज भ उनकी शहादतों की याद करके एक दुःखपूर्ण रोमांच भी हो आता है और विशेषत इसलिए कि हमें आज उस क्रान्तिकारी उत्साह के दर्शन नहीं हो रहे हैं, जिसका परिचय इन शहीदों ने अपने आचरण से दिया था और उस समय निश्चित रूप उनका वह उत्साह जनता में मानों बीज की तरह पड़कर एक लहलहाती खेती रूप में उपजा था। उस खेती को साम्राज्यवाद के पशुओं ने बहुत चरा पर वह लहलहाती ही रही। लेकिन आज तो उसकी पत्तियों को भी देखने को आं तरस जाती हैं। फिर भी इन शहीदों की याद में ऐसा कुछ है जो मन को पू तरह उदास और निराश नहीं ही होने देता। हमारे मन में जो यह उन्हें या करने का संकल्प जागा है, वह हमें लगता है, आम जनता में उन भावनाओं पुनः जागृत होने का ही परिणाम है, उस बीज से उत्पन्न फल ही है; जिसे शहीदों ने अपने खून से यह गाते हुए सींचा था :

सूख जाये न कहीं पौदा ये आजादी का
खून अपने से इसे इसलिए तर करते हैं
दरो दीवार हसरत की नजर करते हैं
खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं।

१९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन के समाप्त हो जाने के बाद जनता मन में जो एक मुर्दनी-सी छा गयी थी, वह इन बलिदानों से दूर हो गयी थी और इन शहीदों के खून से सिंचकर आजादी की आशा के बीज पुनः अंकुरित हुए और बढ़े थे। हमें आशा है कि इन शहीदों की याद से उनकी आशा की जनतंत्र समाजवादी आजादी का उत्साह जनता में फिर उसी प्रकार लहलहायेगा।

और फांसी की कोठरी में गाये गये गीत हमारी 'गीता' थी

● दुर्गा भाभी

यह मेरा सौभाग्य रहा है कि मुझे अपने पति अमर शहीद भगवतीचरण बोहरा और उनके अमर शहीद साथियों सरदार भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद आदि के नेतृत्व में क्रान्तिकारी दल में कार्य करने का अवसर मिला था। वास्तव में 'काकोरी-कांड' के सम्बन्ध में जो गिरफ्तारियां, सजाएँ और फांसियां हुई थीं, उनसे दल छिन्न-भिन्न अवश्य हो गया था परन्तु उससे बचे साथियों ने विशेषत: अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह ने, उसे दृढ़तर रूप में संगठित और विकसित कर लिया था। अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने जेल में फांसी की कोठरी से लिखे देशवासियों के लिए अपने सन्देश में इस शेर में यह आशा व्यक्त की थी:

मरते बिस्मिल, रोशन, लहरी, अशफाक अत्याचार से
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से॥

उनकी यह आशा वास्तव में क्रान्तिकारी शहादत के पौदे में फले 'लाहौर षड़यंत्र केस' के अमर शहीदों यतीन्द्रनाथ दास, सरदार भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु और उनके साथी चन्द्रशेखर आजाद और भगवतीचरण बोहरा आदि शहीदों के रूप में तो तत्काल ही फूली-फली और इसमें आगे सूर्यसेन आदि अमर शहीदों की लम्बी परम्परा फूलती-फलती रही।

काकोरी काण्ड और लाहौर केस की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि यह साम्राज्यवादी आततायी अंग्रेजी सरकार को खुली चुनौती थी और आम जनता के मन पर उसी का स्वस्थ प्रभाव हुआ था, विशेषत: असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिये जाने की निराशा और अवसाद के वातावरण में।

तदनन्तर ये क्रान्तिकारी चुनौतियां आततायी सरकार को दी ही जाती रहीं। हमारे दल ने फांसी की सजा पाये अपने नेताओं और अन्य बन्दी नेताओं को जेल से बाहर निकाल लाने की अनेक साहसपूर्ण योजनाएँ बनायीं और

उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास किया। यह दूसरी बात है कि ये योजनाएँ सफल नहीं हुई। इन योजनाओं का महत्त्व भी कम नहीं है। आगे के अनेक क्रान्तिकारी

कान तो केवल सरकार को शुद्ध चुनौती और ललकार देने के लिए ही हुए। लाहौर में ए० एस० पी० सौण्डर्स का बध और दिल्ली असेम्बली में बम-विस्फोट तो क्रान्तिकारी इतिहास की स्वर्णाक्षरी घटनाएँ हुईं, जो सीधे चुनौती की परम्परा में थीं।

जीवन की पैसों की तंगी, भूख, बिना दवादारू की बीमारी, क्रान्तिकारी आपस में विनोद करते सहते रहे। इसके लिए हमें मानसिक बल शहीदों और अन्य बन्दियों की इन कष्टों और यंत्रणाओं की कथाओं से मिलता रहा जो उन्हें सही थीं और तब भी सह रहे थे। ये कथाएँ हमारी धर्म-कथाएँ थीं और उनके द्वारा फाँसी की कोठरी में गाये गये गीत हमारी 'गीता' थी। हमें इनसे वैसा ही महान मनोबल मिलता रहा जैसा मनोबल आम श्रद्धालु जनता में संचरित करने के लिए ही हमारे पूर्वकाल के ऋषियों ने ये धर्म-कथाएँ लिखी थीं और श्रीमद्-भगवद् गीता का प्रचार किया था।

सच तो यह है कि हमारी धार्मिक कथाओं में जो कल्पना-प्रसूत अति-प्राकृतिक बातों का समावेश हुआ है, उनसे हम बुद्धिजीवियों के तार्किक मन पर अब विशेष प्रभाव पड़ने की आशा नहीं की जा सकती, परन्तु हमारे शहीदों की ये कथाएँ तो हमारी अपनी आंखों देखी अनुभव की हुई बातें हैं। जनता के मन को अब यही कथाएँ जीवन को जनतंत्री समाजवादी धरातल पर उठाने का मनोबल दे सकती हैं। शहीदों के ये गीत ही अब हमारी गीता है। ००

तुम यह क्या कर रहे हो !

● प्रणवेश

(१) सहस्रों वर्षों पूर्व की बात है। एक बालक ने जन्म ग्रहण करते ही आसमान में ऊँची छलांग लगाई। उससे किसी ने पूछा, 'तुम यह क्या कर रहे हो ?' उसने उत्तर दिया,' दूर पर्वत के उस पार—वह देखो कितना सुन्दर फल लाल पका पकाया तैयार है; मैं तो उसे अवश्य लूंगा ! यह बालक आगे चलकर बड़ा होने पर हनुमान नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(२) लगभग एक हजार नौ सौ वर्ष पूर्व की बात है एक निराधार माँ अपने छोटे से बालक को लेकर गुप्तरूप से एक कुम्हार के यहां आकर रहती है। कुम्हार मिट्टी के बर्तन, खिलौने आदि बनाता था, बालक कुछ बड़ा हुआ तो वह भी मिट्टी के खिलौने बनाने लगा। हाथी, घोड़े, रथ, सैनिक आदि के दो समूह बनाता और उन्हें एक दूसरे में धंसा-भिड़ाकर वह खिलौने लड़ाता। किसी ने उससे पूछा, 'तुम यह क्या कर रहे हो ?' उसने उत्तर दिया, 'मैं अपनी सेना को शत्रु की सेना से लड़ाता हुआ उसे युद्ध का अभ्यास करा रहा हूं। यही बालक बड़ा होकर एक अत्यन्त पराक्रमी सम्राट् हुआ। वह था। शक मर्दन शालिवाहन।

(३) लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व की घटना है। एक बालक घर में एक ओर उदास कुछ विचार करता हुआ सा बैठा था। उसकी मां ने उससे पूछा, 'यह तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हारे जैसे छोटे-से बालक को काहे को इतनी चिन्ता सता रही है ?' उसने उत्तर दिया,' मां, मुझे चिन्ता है संसार की ! बचपन में नारायण कहलाने वाला यह बालक आगे चलकर एक बड़ा प्रसिद्ध सन्त हुआ। 'समर्थ रामदास स्वामी, नाम से।

(४) लगभग एक सौ पंद्रह वर्ष पूर्व बंगाल में एक बंगले के सामने के बगीचे में कुछ माली काम कर रहे थे। तुम्हारे ही बराबर का एक बालक वहां गया और एक कुदाल उठाकर वहां खोदने लगा। माली ने उससे पूछा, 'अरे, यह तुम क्या

कलियुग में करिश्मा !

दशहरा के दिन जबलपुर के पर्यटक स्थल भेड़ाघाट के नर्मदा नदी के जल में दुर्गाजी की एक प्रतिमा विसर्जित की गयी, जो दो तीन डुबकी लगाने के बाद नदी घाट से दूर जाकर खड़ी हो गयी। लोगों के अनुसार ७२ घंटे के बाद भी जब प्रतिमा का मुखमंडल खंडित नहीं हुआ तो उसके प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। कलियुग में यह कैसा करिश्मा ! कुछ श्रद्धालुओं ने उस प्रतिमा की पूजा करनी शुरू कर दी। आज हालत यह है कि लोगों की भीड़ को सम्भालने में दिक्कत पेश आ रही है।

नर्मदा के जल और उसकी तेज-धाराओं के बारे में यह मशहूर है कि अगर वहाँ हाथी भी खड़ा कर दिया जाये तो उसका धारा में टिके रहना मुश्किल है। कहा जाता है कि मूर्तिकार कुंदन द्वारा निर्मित यह मूर्ति हमेशा हिरण नदी में विसर्जित की जाती थी। लेकिन इस वर्ष पूजा-पाठ में किसी तरह की गड़बड़ी के कारण नर्मदा में इसके विसर्जन का फैसला किया गया था। ००

● संजीव चौधरी

कर रहे हो ?' उसने उत्तर दिया, इस पृथ्वी का केन्द्र कहां है ? यह मैं देखना चाहता हूं ! यही बालक बड़ा होकर प्रसिद्ध हुआ डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाम से। तुमने राष्ट्रगीत 'जन-गण-मन' सुना है न ? इन्होंने ही वह रचा था।

(५) एक सौ वर्ष हुए एक बालक का जन्म होकर तुम्हारी आयु का जब वह हुआ तो एक दिन वह छिपे-छिपे एक पोथी निकालकर पढ़ रहा था ; उसके पिता ने उसे देख लिया, पूछा, 'तुम यह क्या कर रहे हो ?' उसने उत्तर दिया, 'देवी महात्म्य पढ़ रहा हूं।' पिता ने वह पोथी उसके हाथ से छीनते हुए कहा, अरे, यह पोथी घर में नहीं पढ़ी जाती। पढ़ने से घर का श्मशान बन जाता है।' वैसा ही हुआ उस घर का हाल ! परन्तु बड़ा होने पर उस द्रष्टा महापुरुष ने श्मशान शक्ति पर विजय प्राप्त कर उस पर भव्य राजप्रासाद खड़ा करने की कला का सुन्दर उदाहरण सामने रखा। उस बालक का नाम बड़े होने पर प्रसिद्ध हुआ—'स्वातंत्र्य वीर सावरकर !' ०००

(पृष्ठ १८ का शेष)

प्राचीन मन्दिर के सामने पाषण के गरुड़-ध्वज की स्थापना करायी और उस पर ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में एक महत्वपूर्ण लेख खुदवाया। उस लेख में उस यूनानी राजदूत ने अपने को 'भागवत' [वासुदेव कृष्ण का भक्त] लिखा है। कई यूनानियों ने अपने नाम भी भारतीय रखे।

यूनानियों ने भारत के दूसरे बड़े धर्म बौद्ध धर्म को अफगानिस्तान, गंधार क्षेत्र तथा अन्य भागों में फैलाने का सराहनीय प्रयास किया। बुद्ध, बोधिसत्व; जातक-कथाओं आदि का आलेखन बड़े पैमाने पर यूनानी कला के माध्यम से किया गया और उस धर्म को भारत के बाहर भी प्रसारित किया गया। इस यूनानी बौद्ध कला की संज्ञा 'गांधार कला' है, जिसने अपने मूल क्षेत्र से बाहर की कलाओं को भी प्रभावित किया।

यूनानियों के बाद जिन प्रमुख विदेशी शक्तियों ने उत्तर-पश्चिम तथा पश्चिम भारत पर शासन किया, वे हैं शक, पह्लव, कुषाण तथा क्षहरात क्षत्रप। उन पर भी भारतीय संस्कृति कम प्रभावकारी नहीं सिद्ध हुई। इन राजवंशों के कई शासकों ने अपने नाम पूर्णतया भारतीय रखे, यथा—इन्द्रमित्र, वासुदेव, केदार, ऋषभदत्त, रुद्रदामा, जयदामा, ईश्वरमित्र, रुद्रसिंह आदि। उक्त राजवंशों के शासकों ने अपने लेख भारतीय लिपियों तथा भारतीय भाषाओं में लिखवाये। उनके अधिकांश अभिलेखों तथा मुद्रालेखों की भाषा प्राकृत है। महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथम ने शक सं० ७२ [१५० ई०] में गिरनार [सौराष्ट्र] में अपना एक उल्लेखनीय शिलालेख संस्कृत में लिखवाया। इस लेख की संस्कृत भाषा शुद्ध एवं प्रवाहमयी है।

उक्त राजवंशों ने भारतीय धर्मों तथा कलाओं की श्रीवृद्धि के लिए सराहनीय कार्य किये। इतिहास में उनके कृत्य अमर रहेंगे। शैव, वैष्णव; बौद्ध एवं जैन धर्मों का उनके शासन-काल में बड़ा विकास हुआ। प्रथम तीनों धर्मों का प्रसार भारत के अलावा अफगानिस्तान, मध्य एशिया, तिब्बत तथा चीन में भी हुआ इस दिशा में कुषाण-वंशी सम्राट कनिष्क प्रथम का योगदान सर्वाधिक प्रशंसनीय है। उसने शिव आदि देवों के अतिरिक्त गौतम बुद्ध की मूर्ति अपने सोने तथा तांबे के सिक्कों पर बनवायी तथा उन पर बुद्ध का नाम अंकित कराया। इस भाँतिका एक दुर्लभ स्वर्ण सिक्का हाल में मिला है, उस पर कनिष्क को हाथ में त्रिशूल लिये हुए दिखाया गया है।

कुषाण-वंश के अन्य शासकों ने अपने सिक्कों पर शिव, उमा, कार्तिकेय, महासेन, अग्नि आदि देवों की मूर्तियां बनवायीं। पश्चिम भारत पर शासन करने वाले क्षहरत-क्षत्रपों ने भी भारतीय धर्म, वास्तुकला, मूर्तिकला, भाषा तथा साहित्य के उन्नयन में योगदान किया।

उक्त विदेशी राजवंशों का शासन नर्मदा नदी के उत्तरमें आर्यावर्त क्षेत्र के सीमित भूभाग पर रहा। काठियावाड-गुजरात पर तथा महाराष्ट्र एवं मालवा के कतिपय क्षेत्रों पर क्षहरातों तथा क्षत्रपों का अधिकार रहा। इन राजवंशों के दीर्घ-कालीन शासन से भारतीय संस्कृति में कई उल्लेखनीय तत्वों का समावेश हुआ; जो हमारी संस्कृति में घुल-मिल गये।

यूनानी कला-शैली ने मध्य एशिया, अफगानिस्तान, सीमांत क्षेत्र और पंजाब पर अपना व्यापक प्रभाव डाला। धीरे-धीरे इस शैली ने मथुरा-जैसे प्राचीन कला-केन्द्रों तक अपना विस्तार किया। मथुरा तथा अन्य कई स्थानों से गांधार कला की अनेक कृतियां प्राप्त हुई हैं। ये इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि यूनानी-रोमन कला के कई तत्व मध्य देश तक प्रभावी हो गये थे।

यूनानी चांदी के सिक्कों के अनुकरण पर भारत के कई क्षेत्रों में गोलाकार सिक्के बनाये गये। अग्रभाग पर राजा की आकृति या शासन-प्रतीक तथा पृष्ठभाग पर देवाकृति देने की परिपाटी भी यूनानी परंपरा की देन मानी जाती है। जहां तक सिक्कों पर शासक के नाम अंकित करने की बात है, यूनानी मुद्राओं में इसे हम व्यापक रूप में पाते हैं। भारत में बेतवा-नर्मदा की उपत्यकाओं से हाल में कुछ आहत सिक्के दूसरी तथा पहली शती ई० पू० के मिले हैं, जिन पर राजाओं के नाम अंकित हैं। यूनानियों ने अपने चौकोर सिक्के भारतीय सिक्कोंकेअनुकरण पर चलाये।

गणित ज्योतिष की कुछ शाखाओं में यूनानी लोगों ने पर्याप्त उन्नति की थी। भारत में इन यूनानी विद्वानों का सम्मान ऋषियों की तरह होता था, जैसाकि निम्नांकित प्रसिद्ध श्लोक से स्पष्ट है:

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् ज्ञानमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते.....॥

हमारे ज्योतिष-साहित्य में उल्लखित 'रोमक सिद्धांत' शब्द में इसका संकेत है कि इस सिद्धांत का प्रादुर्भाव रोम में हुआ था।

यूनान और रोम साम्राज्यों के साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्ध उन्नत थे। यह विदेशी यात्रियों के वर्णनों तथा हमारे प्राचीन साहित्य के उल्लेखों से प्रमाणित है। यूनान और रोम के व्यापारी भारत के विभिन्न व्यावसायिक केन्द्रों में रहते थे। तक्षशिला, मथुरा, पाटलिपुत्र, विदिशा, उज्जयिनी, भरुकच्छ, शूर्पारक, कावेरी-पट्टिनम, अरिकमेडु आदि स्थानों में उनके निवास थे।

हाल में विदिशा में मिट्टी की एक मोहर मिली है, जिस पर दूसरी शती ई० की लिपि में ब्राह्मी लेख 'यवनकानां' [यवन लोगों की] अंकित है। यह यूनानियों के संगठन का परिचायक है। व्यावसायिक संगठनों के रूप में यूनानियों ने अपने को भारत के विभिन्न भागों में स्थापित कर लिया था। उनके माध्यम

से भारत को अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में सहायता मिली। यहां अनेक व्यावसायिक निगमों तथा श्रेणियों का निर्माण हुआ। ये संगठन बैंक भी चलाते थे, जिनमें विदेशी लोग भी अपना धन जमा करते थे। उत्तर भारत के अनेक स्थलों से प्राप्त प्राचीन अभिलेखों में विदेशों के वाह्लीक आदि नगरों के उल्लेख मिलते हैं, जिनसे हमारे आर्थिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध थे।

शकों तथा कुशाणों की भी सांस्कृतिक देन महत्वपूर्ण रही। सौर गणना में शक-संवत का प्रवर्तन कुषाण सम्राट कनिष्क प्रथम के राज्यारोहण-वर्ष से माना जाता है। आज यह संवत भारत का राष्ट्रीय संवत है। शक-कुषाण वेशभूषा हमारे यहां संभ्रांत वर्ग का पहनावा बन गयी थी। गुप्त सम्राटों तक ने उसे अपनाया। पुरुषों के लिए लम्बा कोट या कुरता, निचले भाग के वस्त्र के रूप में संकरा पाजामा तथा सिर पर ऊंची टोपी शक-कुषाण का पहनावा था। शक स्त्रियों की साड़ियां भारतीय ढंग की थीं, यद्यपि उनके पहनने के प्रकार एक से अधिक थे। कौशांबी, मथुरा, देवगढ़, सारनाथ, सूरतगढ़, [बीकानेर] आदि से प्राप्त स्त्री-पुरुषों की अनेक आकृतियों में शक-कुषाण प्रभाव परिलक्षित होता है।

हमारे यहां रास-नृत्य का जो प्राचीन रूप था, उससे मिलता-जुलता शकों का 'हल्लीश' नृत्य था। उसके उदाहरण अजंता, बाघ आदि के चित्रों में मिले हैं। भारतीय पुराण-साहित्य में भी हल्लीश या हल्लीशक का उल्लेख है। हमारी कतिपय राग-रागिनियों के नाम भी उक्त विदेशी प्रभाव के द्योतक हैं। भारतीय नाट्य [यथा मृच्छकटिक] तथा कथा-साहित्य में आने वाला शकार नाम का पात्र उन शकों की ओर इंगित करता है, जो दंत्य स के स्थान पर तालव्यश का उच्चारण करते थे।

प्राचीन अभिलेखों तथा साहित्य में विविध विदेशी तत्व उपलब्ध हैं, जो इस बात के द्योतक हैं कि उन्हें आत्मसात करके हमारी व्यापक संस्कृति का अभिन्न अंग बना लिया गया।

रज्जब का 'नारायण-नगर'

नारायण ओ नगर के, रज्जब पन्थ अनेक।
कोऊ जावे केहि मग, आगे स्थल एक॥
हिन्दू कहें कि हम बड़े, मुसलमान कहें हम।
एक मूंग द्वै दाल हैं, को ज्यादा के कम॥

समस्या

हमारे देश को देखिये ३३ वर्षों के उपरांत भी हमारे पास कोई भाषा नहीं। हमारा बालक आज का विद्यार्थी न हिन्दी जानता है न ही अंग्रेजी जानता है। कुछ नहीं जानता है। बिना भाषा के आप कुछ विचार नहीं कर सकते, कुछ चिन्तन नहीं कर सकते। चिन्तन कीजिए तो भाषा के ही संकेत आते हैं सामने, सोचने में भी। भाषा नहीं हैं हमारे पास और एक भाषा वह होती है जो सीखी जाती है और एक वह होती है जिसे हम जीते हैं। जो हमारे कि अब कभी नहीं होगी। क्योंकि जो भी देश स्वतंत्र हुए उन्होंने अपनी भाषा को राष्ट्र की भाषा बनाया। ऐसी क्लिष्ट भाषा जैसे चीन की है। वह वहां की हो गई। उसमें तो मानचित्र बनता है तमाम। जापान, जापानी वहां की हो गई और हिब्रू जैसी कठिन भाषा इजराइल ने कर दी। हमने ऐसा किया नहीं। छोटे-छोटे देश अपनी भाषा लेकर अपना विकास कर रहे हैं। हमारे पास कोई भाषा नहीं अर्थात् हमारा राष्ट्र गूंगा है। कोई भाषा नहीं। अंग्रजी हम कितना ही ओढ़ें जो अंग्रेजी बाहर की है, हम उसे व्यक्त कर ही नहीं पाते। तो इस समय शिक्षा की ऐसी स्थिति है। हमारा तरुण जब ऐसा है तो किशोरी बालिका क्या करें कि वे

भाषा का सवाल

'महादेवी'

व्यक्तित्व के साथ विकास करती है। हम छोटे थे तो जो भाषा हमारे साथ थी, वह जैसे-जैसे हम बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उसका शब्दकोश बढ़ता है, वसे-वैसे अपने को व्यक्त करने के लिए हम नए शब्द बनाते हैं। वह भाषा का जीना हुआ। उन्होंने जब कहा कि १५ वर्षों के बाद हिन्दी होगी तो राजेन्द्र बाबू से भी मैंने कहा अपनी भाषा, संस्कृति और कला जान सकें।

भारत माता का स्वरूप

हमारा देश बड़ा प्राचीन है। संस्कृति बड़ी प्राचीन है। औरों के यहां तो फादरलैंड हैं, हमारे यहां भारतमाता है। हम माता को ही अधिक चाहते हैं और सोचिए एक और हिमालय

जहाँ तुषार के कितने शिखर हैं। तुषार किरीटिनी है हमारी माता—जब सूरज की किरण पड़ती है—मानो केशर के फूल खिलते हैं, गंगा-यमुना उसकी शाश्वत मुक्तावली माला है; निरन्तर-निरन्तर इसके तट पर देखिए पूरा भारतवर्ष छोटा भारतवर्ष बसा है। इस समय और सारा काम इसकी अपनी भाषा में हो रहा है। इसी हिन्दी के माध्यम से हो रहा है, जिसको यह कहते हैं कि समर्थ नहीं, अभी यह भाषी इस योग्य नहीं तो इसके तो देखिए—इसके चरण तीन-तीन समुद्र धो रहे हैं। कन्या कुमारी के उस बिन्दु पर खड़े हों आप तो आपको आश्चर्य हो जायगा कि कितना सुन्दर दृश्य है और हमने कैसी कल्पना की है कि शिव तो हिमालय में है और कन्याकुमारी में पार्वती है माला लिये हुए अर्थात् यहाँ से वहाँ तक बांधा है हमने। पूर्व को कैसे हमने पश्चिम से बाँधा है और कैसे उत्तर को दक्षिण से बाँधा है पूरे देश को। कितनी सुन्दर मातृ-प्रतिमा है हमारी। हम इसको अखण्ड रख सकें और इसको सारे सौन्दर्य के साथ रख सकें। इसके लिए आवश्यक है कि संस्कृति को रखें। बिना इस संस्कृति के कैसे चलेगा। और देखिए हमारे रहते-रहते, हम लोगों की

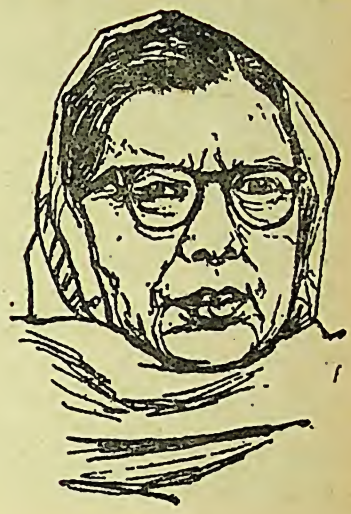

संस्कृत के स्थान पर उर्दू कर दी। उर्दू को पढ़ायें इसमें हमको कोई आपत्ति नहीं। लेकिन संस्कृत का विकल्प कैसे हो, क्योंकि संस्कृत में तो हमारा पूरा जीवन बसा हुआ है। आज भी आप देखिए जितना भी कर्मकाण्ड है जन्म से लेकर मृत्यु तक सब संस्कृत से बंधा हुआ है। आप आज भी देखिए चाहे जितने नये युग का है विवाह में वही मंत्र होंगे, जन्म के समय वही होंगे, चूड़ा कर्म के समय वही होंगे, उपनयन के समय वही होंगे। तो, आप उस भाषा को समाप्त करके एक प्रकार से हमारी संस्कृति को ही खण्डित कर देते हैं क्योंकि इसमें हमारा पूरा जीवन बंधा हुआ है। ००

कनाडियन किम और भारतीय बिंदी

सुषमा जगमोहन के सौजन्य से

कनाडा से भारत यात्रा पर आयी कुमारी किम ने कहा, 'मैं बिंदी लगाकर फोटो खिचवाना चाहती हूं। भारतीय स्त्रियों के माथे पर लगी चौड़ी लाल बिंदी मुझे बहुत अच्छी लगती है, और नाक का मोती भी मैं अपनी भारतीय सहेली की देखादेखी काफी अरसे तक नाक में मोती पहनती भी रही हूं, मुझे भारत और भारतीय चीजों के प्रति बड़ी उत्सुकता है। मैं कनाडा के बर्फीले उत्तरी क्षेत्र के एक शहर में अपने स्कूल में बैठे-बैठे ही भारत भर में घूम जाती थी। पिछले वर्ष नवम्बर में जब किम ने अकेले ही एशिया और यूरोप के कई देशों की यात्रा करने की योजना बनायी तो उसका खास मकसद भारत को अपनी आंखों से देखना था। फरवरी के पहले सप्ताह में जब वे दिल्ली में थी, कनाडा के आज के सामाजिक संदर्भों पर उनसे बातचीत हुई। वे किमबरले कैथलीन वार्ड कनाडा के अलबर्टा विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में बी० ए० कर रही हूं। यह अन्तिम वर्ष है। वर्ष में आठ महीने, जब विश्वविद्यालय खुला होता है, मैं अपने भाई के साथ विश्वविद्यालय क्षेत्र के निकट ही एक फ्लैट में रहती हूं, चार महीने गर्मियों की छुट्टियों में कभी मां के साथ रहती हूं, कभी पिता के साथ। और एक तरणताल में सफाई करने और तैराकी सिखाने का काम करती हूं। अंदाजन १००० डालर हर महीने मिल जाते हैं इससे काफी सहायता मिल जाती है अपना खर्च चलाने में।

मेरी मां पर्यटन-विकास-विशेषज्ञ हैं और उत्तरी कनाडा में अपने गृह नगर में रहती हैं। पिता प्रबन्ध सलाहकार हैं। ठेके पर काम करते हैं। वे अलबर्टा विश्वविद्यालय से जहां मैं पढ़ती हूं केवल ७५ कि० मी० की दूरी पर शहर में रहते हैं। १० वर्ष पहले मेरे मां-बाप में किसी बात को लेकर तलाक हो गया था। इसीलिए दोनों अलग-अलग रहते हैं अकेले। मैं जब

कविता

नासिर-दोहावली

● मिर्जा हसन नासिर

रामचन्द्र के द्वार से, लौटा कौन निराश।
इसीलिये 'नासिर' बना, अब उनका ही दास। १।
'नासिर' संकट के समय, कभी न हिम्मत हार।
सिया-राम ही करेंगे, तेरी नैया पार। २।
'नासिर'—मन का पाप-तम, हर लो हे श्रीराम!
जीवन हो मेरा सफल, हो मन को विश्राम। ३।

'नासिर' इस जग में हुआ, उनका कब उद्धार।
सिया-राम से है नहीं, जिनको कुछ भी प्यार। ४।
जग में उनकी ही सदा, 'नासिर' होती जीत।
सिया-राम-हनुमान के, गाते हैं जो गीत। ५।
तुलसी ने 'मानस' रची, किया बड़ा उपकार।
जीवन को इससे मिला, एक नया आधार। ६।
परख लिये सब रंग हैं, चढ़े न 'नासिर' अंग।
पर लगकर छूटा नहीं, श्याम-कृष्ण का रंग। ७।

१६१।२०५, ताजीखाना, मशकगंज,
लखनऊ—२२६००१

तक स्कूल में थी, मां के साथ ही रही। कालेज में दाखिला मिलने के बाद अलग रहना शुरू किया। कालेज में पहले दो वर्ष गर्मियों की छुट्टियां भी मां के साथ बितायी। पिछले दो वर्ष गर्मियों की छुट्टियों में पिता के पास चली गयी थी तब शायद मां को अजीब लगा हो। शादी के नाम पर डर लगने लगता है। ऐसा नहीं कि मैं शादी नहीं करना चाहती। पिछले दस वर्षों से मां-बाप के बीच तलाक की यातना को भुगत रही हूं, इसलिए शादी के बाद तलाक की प्रक्रिया से मैं नहीं गुजरना चाहती।

संस्कृति

डा० विद्याविलास मिश्र

हिन्दू मन को खींचने वाले शिव और उनके परिवार के सदस्य अपना अलग महत्त्व रखते हैं। हिन्दू कल्पना की समस्त उर्वरता लगी तो शिव का, पार्वती का, गणेश का और स्कन्द का आकार खड़ा हुआ। शिव के साथ सब अटपटापन, सब ज्ञान, सभी कलायें; सभी सुख और सभी सुखों का त्याग, ऐश्वर्य और भिखमंगापन, नित्य-योग और नित्य-भोग—ये सभी चीजें जुड़ गयी हैं। वे आशुतोष हैं, जहर भी प्रेम से दो, प्रसन्न हो जाते हैं। पार्वती हिमालय की कन्या अपने तप से शिव को खरीदने वाली, शिव से भी बढ़कर भिखमंगों, भूतों-प्रेतों का जीवन-निर्वाह वही करती हैं, पर वे सौभाग्य की अधिदेवता हैं। हिन्दू नारी उनकी उपासना करती है कि बस घर का स्वामित्व मुझे ऐसा मिले जैसे गौरी को मिला, पति बौड़म बना रहे, बस अपने तप की सब कमाई मुझे सौंप कर निश्चिन्त रहा करे और हो, एक क्षण को भी पार्श्व न छोड़े, लड़के ऐसे हों, एक तो महाशक्तिशाली, देव सेनापति; दूसरा बड़ा बुद्धिमान, दोनों को अनायास सम्मान प्राप्त होता रहे।

हिन्दू होने का अर्थ है शिव का आराधक होना, क्योंकि शिव की आराधना से ही लोक सधता है, विभूतियां मिलती हैं, शिव की आराधना से मोक्ष सधता है. जीवन में विष मिलता है तो गले में रह जाता है, नीचे उतरता नहीं और अमृत मिलता है तो वह सहस्रार कमल तक पहुंच जाता है, शिव ही तो कला और योग में संगीत की शिक्षा देते हैं। इसीलिए शिव, पार्वती, गणेश और स्कन्द से सम्बद्ध पर्वों में बड़ी जीवन्तता रहती है। महा शिव-रात्रि नृत्य गीत की रात्रि होती है, गौरी-व्रत का दिन हर-

शिव-परिवार और पर्व

तालिका या राजस्थान का गणगौर या दक्षिण में स्कन्द महोत्सव या महाराष्ट्र का गणेशोत्सव या जगद्धात्री पूजा के पर्व-सौन्दर्य, सौभाग्य, उल्लास के पर्व होते हैं। हिन्दू लोक-साहित्य शिव-पार्वती को घर-घर गाँव-गाँव घुमाता रहता है, वह पार्वती की ओट लेकर शिव बाबा के बौराहपन का परिहास भी करता रहता है, वह अपने को इस परिवार का अंग समझता है, उसे भूत प्रेतों का भय कैसे घेरेगा ? उसका बीता और विस्मरणीय इतिहास उसके सिर पर कैसे सवार होगा ? हाँ, जो उसके साथ चल रहा है; वह जीवनभाव चाहे श्रीकृष्ण के रूप में हो, श्रीराम के रूप में हो, शिव-पार्वती के रूप में हो—वह चल रहा है, गतिशील है और उसी गति में गतिशील है, इसलिए हमेशा नया हो रहा है।

हिन्दू-पर्व इसलिए सनातन जीवन-भाव के बार-बार उमड़ने के पर्व हैं। ००

संस्मरण

साकों के लिए विख्यात राजस्थान में एक अनोखा साका हुआ था, जिसकी कहानी इतिहास की पोथियों में नहीं आयी, पर आने योग्य है।

कहानी २५१ वर्ष पुरानी है और जोधपुर से २४ कि० मी० दूर बिश्नोइयों के ग्राम खेजड़लीं में घटी थी। जोधपुर के महाराजा का एक महल बन रहा था। उसके लिए चूना फूंकने को लकड़ियों की आवश्यकता थी। पेड़ कटवाने के लिए कुल्हाड़ी वालों को जब खेजड़ली भेजा गया, तो उस गांव की अमृतादेवी ने इसका विरोध किया। उसने कहा—पेड़ काटना हमारे धर्म के विरुद्ध है। पेड़ कटवाने के लिए आये हुए राजा के कारिंदे ने कहा-

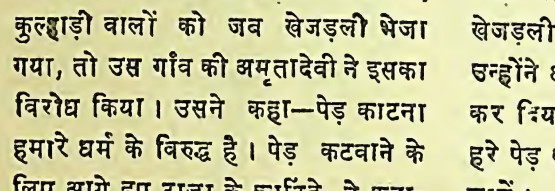

● सुन्दरलाल बहुगु

अगर धर्म की रक्षा करना चाहती है तो डांड दे। परन्तु धर्म की रक्षा के लिए डांड देकर छुट्टी पाना अमृतादेवी को धर्म और अपने पंथ का अपमान लगा। उसने उसी क्षण निर्णय कर लिया कि पंथ की रक्षा के लिए डांड के बजाय सिर दूंगी। बोली :

दाम लिया दाग लगे, टकड़ों देवो न दान।
सिर सांटे रूंख रहे, तो भी सस्तों जाण॥

इस महान बलिदान के प्रेरणा-स्रो थे—राजस्थान में ही पंद्रहवीं शताब्दी जनमे गोपालक संत जंभोजी। वे किस के बेटे थे और गायें चराते थे। उन दि जैसे आज भी होता है, राजस्थान भयंकर सूखा पड़ा। लोग अपने पशुधन बचाने के लिए घर-द्वार छोड़कर इलाकों में चले गये। पर जंभोजी ने नहीं छोड़ा। वे इस प्राकृतिक प्रकोप

कारणों पर विचार करने लगे और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उदार प्रकृति के इस तरह रुष्ट हो जाने का मुख्य कारण है उसके साथ मानव का क्रूर व्यवहार। उन्होंने सुखी जीवन के लिए सदाचार के उनतीस नियम बनाये। उनमें से दो नियम ये थे—वृक्ष नहीं काटना और पशु-पक्षी नहीं मारना।

जंभोजी के अनुयायी इन नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने लगे। राजस्थानी रेगिस्तान में जहां-जहां उनकी बस्तियां थीं, खेजड़ी के वृक्ष पनपने लगे और झुंड के झुंड हिरन निर्भय होकर विचरने लगे। हिरनों के उन झुंडों को देखकर बादशाह अकबर आश्चर्यचकित होकर बोल उठे थे, "यह क्या! मैं कलयुग में सतजुग का दर्शन कर रहा हूं।"

अगर बिश्नोइयों के इलाके में वृक्षों या पशु-पक्षियों पर प्रहार होता था, तो वे लोग प्राण देकर उनकी रक्षा करते थे। इस प्रकार के बलिदान को वे 'साका' कहते हैं। ऐसे साकों की अनेक कथाएं बिश्नोई धर्म ग्रंथों में दर्ज हैं, जिनमें खेजड़ली का साका सबसे बड़ा है। यह परम्परा आज भी जीवित है। दो वर्ष पूर्व हिरन के प्राण बचाते हुए एक बिश्नोई युवक शिकारी की गोली का शिकार हो गया।

पिछले वर्ष मुझे खेजड़ली की तीर्थयात्रा करने का सौभाग्य मिला। आस-पास के गांवों में हमें खेजड़ी के झुरमुट और

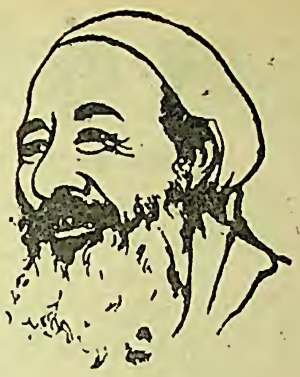

लेखक

गांवों की सीमा पर ही कुलांचे भरते हिरनों के समूह नज़र आये। अगर कहीं से इनके लिए खतरा पैदा होता है, तो देखने वाला बिश्नोई आवाज देकर दूसरों को बुलाता है। सब लोग उस दिशा में दौड़ पड़ते हैं, जहां से गोली की आवाज आती है। महिलाएं झाड़ियों में झांक-झांककर देखती हैं कि घायल हिरनी का छौना तो नहीं छूट गया वहां। छौना मिल गया तो उसे स्तनपान कराकर पालती हैं।

मानो बिश्नोइयों की इस प्रकृति-संरक्षण की महान परम्परा का ही नया संस्करण उत्तराखंड में 'चिपको' आंदोलन के रूप में प्रकट हुआ है। वहां पर पहाड़ी महिलाएं कुल्हाड़ी वालों से पेड़ों का बचाव करने के लिए पेड़ों से लिपट गयीं। बोलीं, 'पेड़ को नहीं हमें काटो।' असल में 'चिपको' आंदोलन का संदेश भारतीय संस्कृति का संदेश है। भारतीय संस्कृति आरण्यक संस्कृति है। हमारे ऋषि-मुनियों ने वनों में वृक्षों

[शेष पृष्ठ ८० पर]

जब कुंडलिनी जगती है

(लेखक का नाम मूल प्रति में न होने से अज्ञात रह गया)

कुंडलिनी शक्ति सर्प के आकार की होती है इसीलिए उसे सर्पिणी भी कहा जाता है।

मानव-देह मेरुदण्ड के नीचे मूलाधार चक्र है। कुंडलिनी इसी चक्र के ऊपर एक त्रिकोण स्थान में स्थित होती है। नीचे से ऊपर की ओर ये चक्र हैं- मूलाधार, (मेरुदण्ड के नीचे) स्वाधिष्ठान (उदर के नीचे), मणिपुर (नाभि में); अनाहत (सीने पर), विशुद्ध (गले में), आज्ञाचक्र (दोनों भौहों के बीच), सहस्रार (सिर के ऊपरी भाग में)

मेरुदण्ड के बीच के स्थान को सुषुम्ना पथ कहते है। कुंडलिनी की यात्रा इसी मार्ग से होती है।

कुंडलिनी विद्युत आभायुक्त सुनहली एवं लचकदार होती है। इसकी पूछ हमेशा मूलाधार से जुड़ी रहती है। यह सर्पिणी संकोचन और प्रसारण शक्ति सम्पन्न होती है।

कुंडलिनी-जागरण का उद्देश्य

कुंडलिनी जागरण तंत्र एवं योग की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। जब तक यह जागृत नहीं होती तब तक सभी दिव्य शक्तियां सोई रहती हैं। और तब तक किसी भी पूजा-अनुष्ठान में सिद्धि नहीं मिलती। कुंडलिनी-जागरण से भौतिक एवं अध्यात्मिक दोनों ही सफलतायें प्राप्त होती है।

कुंडलिनी के जागरण से पूर्व जन्मों की स्मृतियां याद आ जाती हैं

यदि किसी व्यक्ति की कुंडलिनी जागृत हो तो उसकी चेतना मां के गर्भ में भी बनी रहती है। महाभारत में एक कथा का उल्लेख है कि जब अर्जुन अपनी पत्नी सुभद्रा को चक्रव्यूह-भेदन की विधि बता रहे थे तो ६ द्वारों तक तोड़ने की विधि उन्होंने बतायी। उस समय सुभद्रा के गर्भ में अभिमन्यु था, जिसकी कुंडलिनी जगी हुई थी और उसने ६ द्वारों को तोड़ने की विधियां सुनीं जो, उसे गर्भ से बाहर आने के बाद भी स्मृति में बनी रही। बहुत से छोटे बालकों को अचानक उनके पूर्वजन्म की स्मृतियां याद आ जाती हैं, यह केवल कुंडलिनी-जागरण से ही सम्भव है।

आत्म साक्षात्कार कैसे !

जब कुंडलिनी सहस्रार के ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करती है तो वह

(शेष पृष्ठ ८० पर)

●चंद्रगुप्त विद्यालंकार
(अमरीका)

रीगन का अमेरिका पूंजीवाद की ओर

रिपब्लिकन राष्ट्रपति रीगन को कार्यभार संभालने के बाद से अमरीका की कितनी ही आधारभूत नीतियां स्पष्ट रूप से बदल गयी हैं। जानकर लोगों का कहना है कि इतने व्यापक और दूरगामी परिवर्तन किसी अन्य राष्ट्रपति ने नहीं किये थे।

इन परिवर्तनों को दो भागों में बांटा जा सकता है–१. आंतरिक नीतियों से सम्बन्धित और २. विदेश—नीति एवं विश्वशांति के संदर्भ में। राष्ट्रपति कार्टर की डेमोक्रैटिक सरकार जन—कल्याण की ओर अधिकाधिक अग्रसर हो रही थी। उन्हीं के दल डेमोक्रैटिक पार्टी के नेता सेनेटर एडवर्ड केनेडी चाहते थे कि देश के सभी नागरिकों की चिकित्सा का पूरा आर्थिक दायित्व सरकार अपने ऊपर ले ले, जैसा स्वीडन और ब्रिटेन में है। पर कार्टर का कहना था कि इस पर जो अरबों डालर व्यय करने पड़गे, उनकी व्यवस्था करना अभी सरकार के लिए संभव नहीं है। इसी बात पर उन दोनों डेमोक्रैटिक नेताओं में भारी मतभेद हो गया था।

अब राष्ट्रपति रीगन की रिपब्लिकन सरकार ने नये बजट में समाज-कल्याण पर किये जाने वाले व्यय में साढ़े उनतीस अरब डालर यानी २ खरब ६० अरब रुपयों की कमी कर दी है। भारत सरकार के १९८१-८२ के कुल बजट के बराबर की यह कटौती शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज-कल्याण आदि के खर्चे में की गयी है। अमरीका का फौजी बजट तो यों भी बहुत बड़ा था; रीगन ने उसमें २ खरब ६५ अरब रुपयों की वृद्धि कर दी है। इस वर्ष यह बजट १४ खरब रुपयों से भी काफी ऊपर चला गया है।

जनहित के कार्यों में इस भारी कटौती का सीधा प्रभाव यह है कि २ करोड़ ४५ लाख गरीब अमरीकियों को सरकार प्रतिवर्ष २० अरब डालर की जो सहायता दिया करती थी, उसमें अब भारी कमी कर दी जायेगी। यह सहायता अनेक रूपों

में दी जाती थी। मकान के किराये, बच्चों की शिक्षा और चिकित्सा आदि के लिए सरकार गरीबों को आवश्यक आर्थिक मदद देती थी। इसके अलावा, गरीब परिवारों को प्रति सप्ताह कुछ रकम भी दी जाती थी। यह सब अब भी जारी तो रहेगा, पर भारी कटौतियों के साथ।

इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य बात यह है कि १९८० में अमरीका की प्रति-व्यक्ति आय ५ प्रतिशत कम हो गयी। दूसरी ओर, दामों में इतनी वृद्धि हो गयी है कि जहां पहले चार सदस्यों का अमरीकी परिवार ६,७०० डालर वार्षिक से कम आय होने पर गरीब माना जाता था, वहां अब ८,००० डालर से कम आय वाला चार सदस्यों का परिवार गरीब माना जायेगा।

१९८० में अमरीका की केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों ने ४ करोड़ ७० लाख अमरीकी नागरिकों की चिकित्सा में आंशिक सहायता दी थी और इसमें ६३ अरब डालर [५५७ अरब रुपये] खर्च किया था। यह राशि अमरीका के कुल चिकित्सा-व्यय का करीब एक चौथाई है। अब इस व्यय में भारी कमी की जा रही है। सिर्फ वृद्धों को इस कटौती से बख्शा गया है; वह भी इसलिए कि कांग्रेस [अमरीकी संसद] ने उनके चिकित्सा-व्यय में कटौती करने की बात स्वीकार नहीं की।

कटौती का सबसे स्पष्ट और प्रतिकूल प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में पड़ रहा है। अमरीका की राज्य सरकारें और नगर-निगम शिक्षा का व्यय पूरा नहीं कर पा रहे हैं। अगस्त १९८१ में उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में अध्यापकों को यह कहकर सेवामुक्त कर दिया कि आपको वेतन देने के लिए हमारे पास धन नहीं है।

छात्रवृत्तियों में भी भारी कमी की जा रही है। उच्च शिक्षा उस देश में बहुत महंगी है। अच्छे विश्वविद्यालयों में सिर्फ शिक्षाशुल्क [फीस] चार से छह हजार डालर अर्थात ३५ हजार से ५२ हजार रुपया प्रतिवर्ष है। अभी तक सभी अच्छे विश्वविद्यालय, अंशतः सरकारी अनुदान के बल पर, बहुत बड़ी संख्या में छात्रवृत्तियां दिया करते थे। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को बहुत कम सूद पर उधार भी दिया करती थीं। उन राशियों में भारी कमी की जा रही है। उधार की शर्तें भी कठोर बनायी जा रही हैं।

मेरी समझ से, अमरीका की समृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण यह रहा है कि उसके विश्वविद्यालय और औद्योगिक प्रतिष्ठान अपने-अपने क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान पर अरबों डालर प्रतिवर्ष व्यय करते हैं। यहां एक-एक व्यवसाय का अपना अनुसंधान-विभाग इतना बड़ा है, जितना कि भारत में बड़े-बड़े विश्व-विद्यालयों का भी नहीं होता। अमरीकी विश्वविद्यालय तो इस दृष्टि से बहुत ही समृद्ध हैं। सरकारों से उन्हें तथा अन्य अनुसंधान-संस्थाओं को बहुत बड़े अनुदान

मिलते थे। इन अनुदानों में किस तरह कमी की जाए, इस प्रश्न पर आजकल गम्भीरता से विचार हो रहा है। काफी बड़ी कमी की जायेगी, यह निश्चित है। इससे वहां की बड़ी अनुसंधान-संस्थाएं चिंतित हैं। अंतरिक्ष-अनुसंधान संगठन 'नासा' के डाइरेक्टर को भी चिंता हो गयी है कि अब उनकी महत्वपूर्ण योजनाओं का क्या होगा।

एक बात देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। यहां सरकार या नगर-निगम चाहे जब किसी को सेवामुक्ति की नोटिस दे सकते हैं। बोस्टन में अभी अगस्त महीने में करीब एक हजार अध्यापकों को सेवा-मुक्ति की नोटिस इस आधार पर मिली है कि नगर-निगम के पास धन नहीं है। उनका बरसों का 'एग्रीमेंट' समाप्त कर दिया गया है। यही क्यों, बड़ी संख्या में पुलिस-कर्मचारियों और अग्निशमन-सेवा के कार्यकर्ताओं को भी सेवामुक्त कर दिया गया है। यह बहुत ही अजीब तरह की स्थिति है।

दूसरी ओर, राष्ट्रपति रीगन ने आयकर में अरबों डालर की कमी कर दी है। आगामी दो वर्षों में अमरीका में आयकर क्रमशः घटता चला जायेगा। आयकर में कमी करने की बात इतनी आकर्षक थी कि कांग्रेस निचले सदन [हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्स] के ४८ डेमोक्रैट सदस्यों ने अपनी पार्टी के आदेश के विरुद्ध इस कटौती प्रस्ताव के पक्ष में वोट दिया और सदन में अल्पमत में होते हुए भी रिपब्लिकन जीत गये।

फौजी बजट में जो वृद्धि की गयी है, वह समाज-कल्याण के कार्यों के बजट में कटौती करके पूरी कर ली गयी है। पर आयकर में जो कटौती की गयी है, वह कहां से पूरी होगी? इस प्रश्न का जो उत्तर दिया जा रहा है, वह दिलचस्प

जिसने विष दिया था

सन् १८८३ में अस्वस्थ दशा में रोग शय्या पर पड़े हुए स्वामी जी को उनके रसोइए जगन्नाथ ने जिसने पश्चाताप की पीड़ा से पीड़ित होकर जब यह सूचना दी कि उसने शाही वेश्या नन्हीजान के आदेश पर स्वामी जी को विष पिला दिया है, तो स्वामी जी ने केवल इतना कहा कि 'वेदों के भाष्य का काम अधूरा हो जायेगा।' और विषपान कराने वाले उस जगन्नाथ को पर्याप्त धन देकर बचने का आदेश दिया। विष सम्पूर्ण शरीर में फैल गया था। ००

है। कहा जा रहा है कि आयकर में कटौती से बड़े व्यवसायों को जो अरबों डालरों की बचत होगी, उससे वे अपने कारोबार का सुधार और विस्तार करेंगे तथा नये-नये कारोबार शुरू करेंगे, जिससे राष्ट्र की और स्वभावतः सरकारों की भी आय बढ़ेगी। यह दूर की कौड़ी जरूर हो सकती है, पर असम्भव नहीं है।

इस नीति के कुछ परिणाम तो सामने आ ही गये हैं। डालर की निरंतर गिरती हुई कीमत में स्पष्ट सुधार हुआ है। भारत में उसकी कीमत ८ रुपये से नीचे चली गयी थी; अब वह बढ़कर ९ रुपये तक पहुंच गयी है। डालर के मूल्य में ऐसी ही वृद्धि विश्व की लगभग सभी मुद्राओं की तुलना में हुई है।

अमरीकी सरकार ने बहुत बड़ी राशियों के नये सार्वजनिक कर्ज जारी किये हैं, जिनके सूद की दरें बहुत आकर्षक हैं। करीब २८ अरब डालर के नये कर्ज अभी जारी किये गये हैं।

ये सब परिवर्तन अमरीका के अमीरों को और अधिक अमीर बनायेंगे। आयकर की कमी से मध्यम वर्ग के लोगों को भी अवश्य लाभ हुआ है; पर भारी लाभ हुआ है अमीरों को। आजकल अमरीका

—'उन्हें फिलहाल पार्टी के काम के लिए मुक्त किया गया है।'

के बड़े-बड़े व्यवसाय एक-दूसरे के साथ मिलकर सुपर-व्यवसाय बनते जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति स्पष्टतः बढ़ रही है। अमरीका के आर्थिक इतिहास से एक बार पहले भी-करीब पचास साल पहले-यह प्रवृत्ति उभरी थी। लोगों को तब भय हो गया था कि बड़े व्यवसाय अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण एकाधिकार स्थापित करके कहीं मनमानी करने लगे और नये व्यवसायिकों के लिए रास्ता बन्द कर दें। ऐसा पूर्ण एकाधिपत्य बड़ी भयंकर स्थिति होगी।

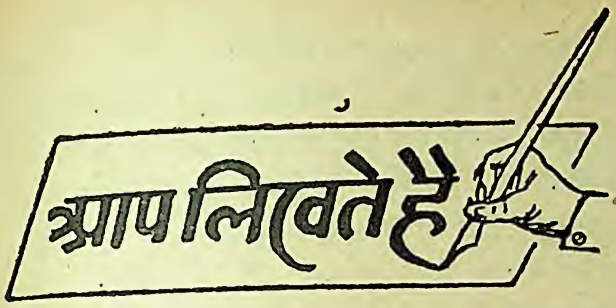

एशियाड के नाम पर यह कैसा डाक-टिकट ?

● दशरथ उपाध्याय

एशियाड की आड़ में जो डाक-टिकट जारी किया गया है, वह चौंकाने वाला है। यह टिकट घोर साम्प्रदायिक भावनाओं को उजागर करता है।

टिकट में एक पुरुष अपने कन्धे पर से उठाकर दूसरे पुरुष को पटक रहा है, पटकने वाले की आकृति अहिन्दू लगती है जबकि पटके जाने वाले की शिखा (चोटी) स्पष्ट दर्शायी गई है। पटकने वाले की दाढ़ी और मूछों की आकृति अरबी संस्कृति प्रकट करती है। वह तहमद भी बांधे है। उससे सिद्ध होता है कि इस्लाम मतानुयाई एक हिन्दू को पछाड़ रहा है। इस प्रकार यह डाक टिकट चित्र इस्लाम-विजय का प्रतीक बनकर हिन्दू समाज को नीचा दिखाने वाला सिद्ध हो रहा है। ००

तिलकजी के लेख में भूल-सुधार

आपका अंक आते ही प्रारम्भ से अन्त तक पन्ने पलटता हूं। विशेष पठनीय सामग्री देख लेता हूं। चुटकुले, हास्य-चित्र, व्यंग्य-विनोद आदि का आनन्द लेता हूं। मन ही मन प्रशंसा करता हूं कि इतनी विविधतापूर्ण सामग्री कैसे आप जुटा लेते हैं।

फिर भी कभी-कभी कोई त्रुटि भी रह जाती है। पिछले एक अंक में बाजीप्रभु विषयक कथा में कुछ स्थान व नामों की गड़बड़ी थी, पर वह एक कथा थी। उसमें लेखक अपनी बुद्धि से अधिक व्यक्ति तथा स्थान जोड़ सकता है। वैसा ही हुआ होगा। परन्तु आज प्राप्त अंक में (अप्रैल, ३) तिलकजी के विषय में जो घटना बताई है, वह सही नहीं है। इसीलिये यह पत्र लिख रहा हूं। इसमें न दोष-दर्शन की भावना है, न आपके सम्पादन-कौशल्य को छोटा दिखाने की भावना है। न मेरा पत्र छपे, नाम हो, ऐसी भावना है। केवल प्रेमवश लिख रहा हूं। आज मैं, 'पत्नी मरती रही फिर भी·····' (पृष्ठ ४५ अप्रैल १९८३) के विषय में वास्तविक घटना ऐसी है कि लोकमान्य तिलक जब माण्डाले के कारागार में थे, तब उनकी पत्नी सत्यभामाबाई की ७ जून १९१२ को पूना में मृत्यु हुई। विद्वांसजी जो कि तिलकजी के भांजे तथा निजी सचिव थे, उन्होंने तार द्वारा यह समाचार तिलकजी के पास भेजा। तिलकजी की प्रतिक्रिया पठनीय तथा मननीय है। उस पत्र का सारांश इस प्रकार है :—

८ जून १९१२

'आपका तार द्वारा भेजा हुआ समाचार प्राप्त हुआ। मन को बड़ा आघात पहुंचा। संकटों के आने पर उन्हें शान्तचित्त से सहन करने का मेरा स्वभाव है, परन्तु सच मानिये, इस दुःखद वार्ता से मैं हिल-सा गया हूं। हम हिन्दू हैं। हमारे यहां पत्नी का पति के रहते निधन गौरवपूर्ण माना गया है। अतः लोग कहेंगे कि जो हुआ, सो ठीक ही हुआ। परन्तु मुझे दुःख इस बात का है, कि उनकी मृत्यु के समय मैं उनके पास नहीं था। और तो और, मैं बहुत दूर कारागार में हूं। परन्तु होनहार को कौन टाल सकता है? भवितव्यता को कौन बदल सकता है? प्रारम्भ से मुझे जिस बात का डर था, ठीक वही हुआ। अस्तु। मनकी उदासी, और उसमें बसे हुए दुःखपूर्ण विचारों का, प्रदर्शन कर, मैं तुम्हें अधिक दुःखी बनाना नहीं चाहता। मेरे जीवन का एक भाग समाप्त हुआ। लगता है, अब दूसरा भाग भी शीघ्र ही समाप्त होगा। उनके क्रियाकर्म यथाशास्त्र करें; तथा उनकी इच्छानुसार उनकी अस्थियां प्रयाग में अथवा काशी में गंगार्पण करें। जो भी अन्तिम इच्छाएं उन्होंने प्रकट कीं हों, उनका शब्दशः पालन किया जाय। बच्चों का स्वास्थ्य ठीक रखने की तथा उनका विद्याध्ययन सुचारुरूप से कराने की सब जिम्मेवारी अब आपको अकेले ही निभानी होगी। मेरी अनुपस्थिति के कारण बच्चे और भी अधिक दुःखी हुए होंगे। उन्हें मेरा संदेश कहिए कि दुःख में डूबकर,

विद्याध्ययन की ओर उनका दुर्लक्ष न होने पाए। जब मेरे माता-पिता का स्वर्ग-वास हुआ था, तब मैं उनसे भी छोटा था। इस प्रकार के संकटों से पाला पड़ने पर मनुष्य को स्वालम्बन ही सीखना चाहिए। मातृहानि का यह कुअवसर ईश्वर की अवकृपा के कारण आया है, ऐसा जानकर उसका स्मरण करें। तब वह तुरन्त बल देगा। दुःख में चूर होकर समय का अपव्यय करना उचित नहीं है। होनी का सामना धैर्य से करना चाहिए।

'उनकी जो भी वस्तुएं होंगी, उनकी ठीक सूची बनाकर, उन सब वस्तुओं को ताले में बन्द कर, सम्हाले रखिए। उनका आगे क्या करना है, मैं लिखूंगा या कहूंगा। इस कठिन अवसर पर आप ही बच्चों के आधार हैं। अतः परमेश्वर आपको पर्याप्त बल प्रदान करे, इतनी प्रार्थना करने के अतिरिक्त, यहां से, इतनी दूरी से, मैं भला अधिक क्या कर सकता हूं ?—…?'

अतः पत्नी की मृत्यु के समय तिलकजी 'केसरी' का अग्रलेख लिख रहे थे, इत्यादि बातें तथ्यहीन हैं।

छोटी-सी त्रुटि पर मैंने इतना सारा लिख डाला। मुझे क्षमा करें। परन्तु सम्पादक को तो ऐसे ही उल्टे-सीधे खूब पत्र आते होंगे। यह तो कांटों का ताज है। कृपया गलतफहमी न करें। प्रेमवश लिखा है।

प्र० ठा० सहस्त्रबुद्धे
भाटे वकीलांचे घर, सिव्हिल लाइन्स,
खामगांव, (जि० बुलडाणा)

विश्व हिंदू संगठन की योजना

काठमाण्डू में हुए ११ देशों के चतुर्दिवसीय हिन्दू सम्मेलन में इस बात का आह्वान किया गया कि एक सशक्त विश्व हिन्दू संगठन का निर्माण किया जाय। जिससे हिन्दुओं को संगठित किया जा सके। और हिन्दुओं के विरुद्ध जो शक्तियां काम कर रही है उनका प्रतिकार किया जा सके। सम्मेलन में में भारत, श्रीलंका, मौरीसश, फिजी, केनिया, इण्डोनेशिया, अमरीका, ब्रिटेन, सिंगापुर, मलयेशिया, और नेपाल के ४४ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वक्ताओं ने ओऽम् के ध्वज और ओम् के नारे के अधीन विश्व के सभी हिन्दुओं को एक सूत्र में गठित होने पर बल दिया।

[पृष्ठ ७२ का शेष]

सहस्रार से निरन्तर गिरते हुए अमृत का पान करने लगती है। वह अपनी पूँछ को मूलाधार चक्र से खींचने लगती है। इस समय साधक को कुछ कष्ट का अनुभव भी हो सकता है। कुंडलिनी के ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करने के बाद कुंडलिनी सहस्रार चक्र में स्थायी रूप से रहने लगती है और उसकी पूँछ मूलाधार से छूट जाती है।

अब विचारशून्य हो जाते हैं। मन आनन्द से आह्लादित हो जाता है। कभी-कभी क्षणिक समाधि लगने लगती है। तंद्रा जैसी स्थिति आ जाती है और साधक आनन्द में लीन हो जाता है। अनेक लोकों के दृश्य अंतर्दृष्टि में दिखाई देने लगते हैं। मन शांत हो जाता है।

सूक्ष्म जगत के विभिन्न लोकों के दृश्य और सूक्ष्म शरीरी आत्माएं दिखाई देने लगती हैं, इतना बड़ा ब्रह्माण्ड प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है और स्वयं को जानते ही अहंकार विलीन हो जाता है।

यहाँ से महाशून्य की यात्रा प्रारम्भ होती है और साधक अपने निर्वाण की ओर चल पड़ता है। ००

(पृष्ठ ७१ का शेष)

के नीचे बठकर मानव-जाति की समस्याओं पर गहरा चिन्तन किया और उस चिंतन का नवनीत वेद, उपनिषद और अन्य महान ग्रंथों के रूप में दुनिया को दिया।

विश्वविख्यात 'वृक्ष-मानव' रिचर्ड सेंट बार्बे-बेकर अमृतादेवी के अमर बलिदान की कथा सुनकर गद्‌गद हो उठे थे। उन्होंने इस कथा को 'प्रथम चिपको वाले लोग' शीर्षक से लेख के रूप में प्रकाशित किया है और विश्व के एक सौ साठ देशों में फैली हुई वृक्षमित्र [फ्रेंड्स आफ द ट्रीज] संस्था की शाखाओं के जरिये प्रचारित कराया है।

६ सितम्बर का दिन प्रकृति और मानव के प्रेममूलक सम्बन्ध के पर्व के रूप में मनाये जाने योग्य है। अमृतादेवी का वचन 'सिर सांटे रुंख रहे, तो भी सस्तो जाण' इस पर्व का मंगल-मंत्र होगा।

आज की भोगवादी सभ्यता ने प्रकृति-पुत्र मानव को प्रकृति का विध्वंसक और लुटेरा बना दिया है। प्रकृति विनाश का दंड उसे जीवन के लिए आवश्यक प्राणवायु जल और मिट्टी की कमी तथा प्रदूषण के रूप में मिल रहा है। पेड़ प्राण, वायु, जल और मिट्टी बनाने के प्राकृतिक कारखाने हैं। यही नहीं, वे दूषित वायु को भी शुद्ध करते हैं। बाढ़ के रूप में तबाही मचा सकने वाले वर्षा जल को सोखकर वे भूमिगत जल के भंडार को बढ़ाते हैं, भूक्षरण को भी रोकते हैं। इसलिए पेड़ों की रक्षा मानव अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। अमृतादेवी और उसके साथियों का २५१ वर्ष पुराना साका आज पूरे विश्व के लिए विशेष रूप से अर्थपूर्ण है।

विचित्र किंतु सत्य

श्याम सुन्दर तुलस्यान

जूठी चाय सहारा की

सहारा अरब गणराज्य के विद्वानों ने बताया कि हम लोग आर्य मूल के हैं। यायावर के रूप में फारस से घूमते-घूमते कभी ये लोग सहारा तक आ गये। इनके नाक-नक्श, विशेषकर वेश एवं व्यवहार पर गौर करने से लगता है कि ये लोग आर्य मूल के ही होंगे। महिलाओं की वेशभूषा में भौगोलिक स्थिति के कारण आये फर्क को निकाल दें तो वे भारतीय ही लगेंगी। महिलाएं ढीले-ढाले वस्त्रों का प्रयोग करती हैं। साड़ी का प्रयोग करती हैं और साड़ी सिर पर रखती हैं। (अफ्रीका और अरब के भागों में सिर्फ सूडान को छोड़कर कहीं भी महिलाएं साड़ी का प्रयोग नहीं करतीं) उनके हाव-भाव, नाक-नक्श, शारीरिक रंग और बनावट, खान-पान आदि में भी समानता है।

यहां की औरतें 'प्रभाती' की तरह की कोई धुन गाती हैं। संगीत कर भारत से इतनी समानता दर्शाती हैं कि कभी न कभी ये लोग एक मूल के थे। यही कारण है कि यहां के लोग भारतवासियों को बड़ी इज्जत, सद्भावना व अपनेपन की निगाह से देखते हैं।

खाने में ये मसालों का प्रयोग नहीं करती तथा नमक भी हल्का डालती हैं। खान-पान में अन्य चीजों के अलावा चाय बनाने की कला इनकी अपनी है। लोग चाय अधिक और बहुत मीठी पीते हैं। उनका विश्वास है कि खास तरह से तैयार की गयी चाय पीने से प्यास कम लगती है और वे ज्यादा चल सकते हैं। चाय पीने-पिलाने का ढंग अनूठा है। चाय प्रायः महिलाएं बनाती और पेश करती हैं। कम से कम सात व अधिक से अधिक जरूरत के हिसाब से छोटे-छोटे गिलास एक ट्रे में रखे होते हैं। एक केतली पानी में चाय-पानी उबालते हैं। फिर थोड़ी-सी चीनी डालते हैं और थोड़ी-सी चाय एक उस छोटे से गिलास में निकालते हैं फिर उस चाय को बारी-बारी से सारे गिलासों में उड़ेलते हैं। अन्त में आखिरी गिलास से थोड़ी-सी चखते हैं और उस चाय को फिर से केतली में

डाल देते हैं। फिर उसमें चीनी की मात्रा बढ़ा देते हैं। यह क्रम कई बार चलता है जब तक कि चाय गाढ़ी न हो जाये और उसे डालने पर गिलास में भाप की मोटी परत न पैदा हो जाये। फिर ये लोग उस चाय को थोड़ी मात्रा में डालकर पीते हैं। यह सिलसिला प्रायः सारे दिन चलता रहता है। चाय पीने की व पिलाने की ऐसी प्रथा किसी दूसरे देश में नहीं है। यहां जूठन का कोई भेद नहीं माना जाता।

स्पेन की हूकूमत में आने से पहले पश्चिमी लोग भी सहारा का नाम 'अल साके जूल हमरा' लेते थे।००

१०१ सांपों के साथ

यह चित्र जबलपुर निवासी २० वर्षीया आशा का है। पिछले दिनों इन्होंने जयपुर के रामलीला मैदान में जहरीले सांपों के बीच रहने का प्रदर्शन किया। आशा शीशे के बन्द कमरे में १०१ सांपों के साथ रहीं। सांप आशा के पूरे शरीर पर रेंगते रहे किन्तु भय तनाव का कोई चिन्ह उसके चेहरे नहीं दिखायी दिया बल्कि उसे तो के बिना सब सूना-सूना सा लगता है

कई बार जहरीले सांप आशा डस भी चुके हैं। तब आशा डसे हुए के ऊपर कस कर पट्टी बांध लेती है सांप के काटे पर चीरा लगाकर वहां खून बाहर निकाल देती है। आशा अनुसार 'सांप प्रेम का भूखा होता है यदि उसे बेकार तंग न किया जाये वह बिल्कुल नहीं काटता।'

बालक भक्षी पाकिस्तानी

पाकिस्तान में पेशावर के निकट एक गांव में अहमद और उसका बेटा शमद एक सात साल की लड़की को मार कर उसका मांस धो रहे थे, तभी पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। पुलिस को बाद में उन्होंने बताया कि अब तक वे २५ बच्चों को मार कर खा चुके हैं।

हमारा उद्देश्य

अंग्रेजों से भारतीयों के हाथों में सत्ता आ जाने पर कांग्रेस संतुष्ट हो जायेगी, जबकि हमारा उद्देश्य समाजवाद की स्थापना है। इससे कोई अन्तर नहीं आने वाला है कि लार्ड रीडिंग के स्थान पर सर तेजबहादुर सप्रू या पुरुषोत्तमदास ठाकुर सत्ता में आ गये हैं।' (भगतसिंह के पत्र से)

सावरकर जब पिंजड़े में रखे गये

● शान्तिभानु लहरी

एक दिन मैंने टहलते-टहलते आगे जाकर देखा कि लोहे का आड़ा डंडा पैरों में पड़ा है, दोनों हाथ फैले हुए हैं तथा हथकड़ियों से बंधे हुए हैं जिन्हें वे किसी भी भांति मोड़ नहीं सकते। एक अधिकारी पहरे पर खड़ा है, जो किसी को भी उनसे बातें नहीं करने देता। मैंने वहाँ के एक पुराने बन्दी से प्रश्न किया—'यह कौन है?' बन्दी ने उत्तर दिया—'आप नहीं जानते इन्हें, यह सावरकार बाबू हैं। इन्हें इसी भांति खड़े-खड़े कई दिन व्यतीत हो गये। सावरकर बाबू यह कष्ट दूसरों के लिए सहन कर रहे हैं।' सावरकर को यह कष्ट पाते देखकर मेरी आंखों से अश्रुकण छलक पड़े।'

वीर सावरकर व देवतास्वरूप भाई परमान्द को कई दिनों तक लोहे के पिंजड़ों में भी खड़ा किया गया। ऊंचे स्थान पर हथकड़ियों से हाथ लटकाकर घंटों-घंटों खड़े रहने की यातनाएँ भी दी गईं। अनेक बार पीठ पर कोड़े भी बरसाये गए। इन सब अमानवीय यन्त्रणाओं से भी सावरकर अपने पथ से विचलित न हो सके।

अण्डमान की अमानवीय यातनाओं से त्रस्त होकर अनेक युवक क्रान्तिकारियों ने आत्महत्या का भी निश्चय किया। इन्दुभूषणराय नामक एक राजबन्दी ने तो आत्महत्या कर भी ली। उल्हासकरदत्त यातनाओं से पागल तक हो गए। देवतास्वरूप भाई परमानन्दजी एवं बंग केसरी क्रान्ति-वीर श्री आशुतोष लाहिड़ी आदि कुछ क्रान्तिकारियों ने अमानवीय जेल-यातनाओं के विरुद्ध आमरण अनशन करके प्राण त्याग देने का निश्चय किया। वीर सावरकर 'अनशन', 'सत्याग्रह' जैसी रीति पर किंचित् भी विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने भाई परमानन्दजी को समझाते हुए कहा—'यदि कोई कार्य ही करना है तो शत्रुपक्ष की हानि अधिक हो ऐसा कार्य करो। स्वयं भूखा रहकर प्राण त्यागने से क्या लाभ?' भाईजी मान गए और उन्होंने अनशन त्याग दिया।००

प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी विनायक दामोदर सावरकर जो कि अपने कट्टर हिन्दू राष्ट्रवाद के लिए विख्यात रहे हैं वास्तव में अंडमान जेल में अपने कारावास से पूर्व धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवादी थे।

सावरकरजी के सामाजिक-राजनतिक विचारों पर किये गये अनुसंधान के निष्कर्षों से पता चलता है कि सावरकर जी के अण्डमान कारावास से पहले और बाद के विचारों में बुनियादी अन्तर है। अण्डमान कारावास से पूर्व के वीर सावरकर उदारवादी भारतीय राष्ट्रवाद के, जिसमें हिन्दुओं के साथ-साथ सभी

कालेपानी की कैद के पहले

धर्मों अर्थात् मुसलमानों ईसाइयों तथा यहूदी लोग सम्मिलित थे, समर्थक थे। अण्डमान पूर्व के सावरकर मुख्य रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोधी थे, जबकि उसके बाद की अवधि के उनके लेख और भाषण मुख्य रूप से मुसलमानों के विरुद्ध थे। स्पष्ट है कि उनकी अण्डमान से पहले की प्रवृत्ति ब्रिटिश-विरोधी थी, जबकि अण्डमान जेल से रिहाई के बाद वह मुस्लिम-विरोधी बन गये। इस प्रकार उनके विचारों का केन्द्र बिन्दु परिवर्तित हो गया।

सम्भवतः उनके विचारों में परिवर्तन आने का मुख्य कारण सूबा सरहद के कबाइली मुस्लिम वार्डरों द्वारा उनके साथ किये गये क्रूर और पाषाण हृदयता के दुर्व्यवहार का कटु अनुभव था। ऐसे वार्डरों ने सावरकरजी के साथ बड़ा अभद्र व्यवहार किया। ब्रिटिश सरकार ने मुसलमान कबाइली वार्डरों को सावरकरजी से क्रूर व्यवहार करने के लिए परोक्षरूप में प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त

● डा० एम० पी० मंगुदकर

सावरकर जी ने अण्डमान जेल में अपनी आँखों से हिन्दू तथा अन्य समुदायों के कैदियों का मुस्लिम मजहब में जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन होते देखा था।

५ जून १९०३ को महाराष्ट्र हिन्दू सभा के विजय दशमी-समारोह में भाषण करते हुए भारतीय राष्ट्रवाद के बारे में सावरकर जी ने कहा था 'जैसे इन्द्रधनुष की वास्तविक सुन्दरता अधिकाधिक बढ़ती है, और विविधता के कारण कम नहीं होती, उसी तरह मुस्लिम, पारसी और यहूदी देशों में हुए सभी सुधारों के उत्तम तत्त्वों को आत्मसात करके भारत भी विश्व आकाश पर चमकेगा।'

इसी तरह आगे २८ सितम्बर १९०६ को वीर सावरकर ने कहा था 'शिवाजी के समय में मुसलमानों के विरुद्ध घृणा की भावना उचित और आवश्यक थी परन्तु ऐसी ही भावनाओं को आज भी यदि हिन्दू रखते हैं तो यह गलत

वीर सावरकर के भिन्न विचार थे

और मूर्खतापूर्ण होगा, केवल इसलिए कि यह तब के हिन्दुओं की प्रबल भावनाएं थी।'

परन्तु इसके साथ ही २९ मई १९०८ को पुणे में हिन्दू महासभा के जलसे को सम्बोधित करते हुए सावरकर जी ने कहा था—'शिवाजी, जो मुसलमानों के विरुद्ध लड़े, वह ठीक उसी तरह मुसलमानों की तरफ से भी लड़ते। शिवाजी की लड़ाई किसी विशेष समुदाय के विरुद्ध न थी; बल्कि अन्याय और गुलामी के विरुद्ध थी।'

ब्रिटिश सरकार ने सावरकरजी पर, उनके सन् १९०६ से १९१० के इंग्लैण्ड प्रवास पर गुप्त रिपोर्ट तैयार की, जो कि १९८० तक अप्रकाशित रही। उस रिपोर्ट में यह लिखा है कि 'सावरकरजी के अनेक मुसलमान घनिष्ठ मित्र थे। इंडिया हाउस में उनका रसोइया मुसलमान था, जबकि रफी मोहम्मद खाँ उनका घनिष्ठ मित्र था। १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम की अर्धशताब्दी समारोह का सावरकरजी ने जो आयोजन किया, उसकी अध्यक्षता एक कश्मीरी मुसलमान अलीखान ने की।' ००

संघवी केशरी कालेज, प्रिंसिपल पुणे

स्वतंत्रता के यज्ञकुंड में; धधक उठी भीषण ज्वालाएं
आजादी का मूल्य चुकाने, चढ़ी यहां पलपल समिधाएं
अंग्रेजों के घर में रहकर, अंगारों पर बढ़ी जवानी
सावरकर ने लिखी वहां पर, सत्तावन की समर कहानी
राजद्रोह का चला मुकदमा, लंदन नगरी दहल उठी थी
तुम्हें लिए जलयान बढ़ा था, सागर लहरें मचल पडी थीं
काव्य हृदय वह सुना रहा था, तट को मन की व्यथा निराली
मां का दर्शन पूजन करने, तड़प रहा था एक पुजारी
कूद पड़ा वह पोर्ट होल से, तैर फ्रान्स के तट पर आया
गोरे कूदे पीछे भागे, सांयसांय गोली का साया
मुक्त हृदय के सपने टूटे, संकट के बादल मंडराये
जेल 'डोंगरी' 'भायखला' के, कितने ताले तुम्हें जकड़ते
लोहे के आभूषण तन पर, घर्षण करते खनखन बजते
दो आजीवन कैद सजाएं, फिर भी धीरज कभी न डोला

● डा० ल० ज० हर्षे

कविता

तब तक क्या यह राज बचेगा, निश्चय से वह गरजा बोला
संकट में भी अविचल साहस, जिसकी तुलना कहीं न पाई
अंग्रेजों को हंसते-हंसते, पुनर्जन्म अनुभूति कराई
पत्नी तुमसे मिलने आती, अपने घर की व्यथा कहां थी
सावरकर की प्रेरक वाणी, देश धर्म परमार्थ सिखाती
मुलाकात के क्षण में तुमने, तेजस्वी संदेश सुनाये ।
अंदमान भी अश्रु बहाता, व्यथा छिपाता कालापानी
काल कोठरे क्रूर यातना, कालजयी ने हार न मानी
हैवानों का राज यहां था, इन्सानों का मान कहां था
कोल्हू खींचा तेल निकाला, खून पसीना बहा जहां था
सावरकर की कष्ट साधना, तिलतिल जलती प्रखर जवानी
देश धर्म पर वंश चढ़ाया, अजर-अमर निर्वंश कहानी
अंदमान के पत्र गूंजते, मुर्दों को भी जिला रहे हैं
दीवालों पर काव्य तुम्हारे, कीले सरगम सुना रहे हैं
वीर तुम्हारे त्याग तपों ने, अंग्रेजों के तख्त हिलाये ॥
कौन दलित है, कौन पतित है, 'सभी एक हम' भाव जगाया
प्रचलित रूढ़ि कुरीति मिटाकर, परिवर्त्तन का नव युग लाया
धर्मान्तर की व्यथा हृदय में, सुप्त पड़ा हिन्दुत्व उठाया
भूले बिसरे जनमानस को, हिन्दु राष्ट्र उद्घोष सुनाया
देश विभाजन, गम के आंसू, कसक हृदय में कदम बढ़ा था
आजादी का स्वागत करने, स्वतंत्रता का वीर खड़ा था
कौन हैं अपने; कौन पराये, राजनीति ने कब पहचाना
स्वजनों से भी मिली उपेक्षा, त्याग तपों को किसने जाना
काल सामने; कालजयी ने; स्वेच्छा से निज श्वास चढ़ाये
आजादी का मूल्य चुकाने, चढ़ी यहां पल-पल समिधाएं ।
स्वतंत्रता के यज्ञ-कुंड में धधक उठी भीषण ज्वालाएं ॥

व ठल पर स्वदेशी वस्त्र बचते और

स्वातंत्र्यवीर सावरकार का स्मरण होते ही साधराणत: उनका क्रान्तिकारी स्वरूप ही मेरे समक्ष आता है परन्तु रचनात्मक या विधायक कार्य-कर्ता के रूप में भी सावरकर जी के जीवन का एक बहुत बड़ा भाग है। प्रत्यक्ष क्रान्तिकारी जीवन का कालखण्ड यह कुल दस वर्ष का है तो रचनात्मक कार्य का भाग लगभग २६ वर्ष का है। रूढ़ अर्थ में जिन्हें रचनात्मक माना जाता है ऐसे स्वदेशी, साक्षरता प्रसार व अस्पृश्यता-निवारण जैसे आन्दोलनों को सावरकर जी ने अत्यन्त दृढ़ता और अनेक स्तरों पर वर्षानुवर्ष चलाये थे।

स्वातंत्र्य प्रेम व स्वदेशी का अभिमान इन भावों का सावरकर जी के मन में बचपन में ही उदय हुआ था। आयु के पंद्रहवें वर्ष में ही सावरकर जी ने 'स्वदेशी या फटका' नामक अत्यंत जोशीला गीत रचा।

महविद्यालय में पढ़ते समय ही सावरकर जी और उनके समवयस्क सभी

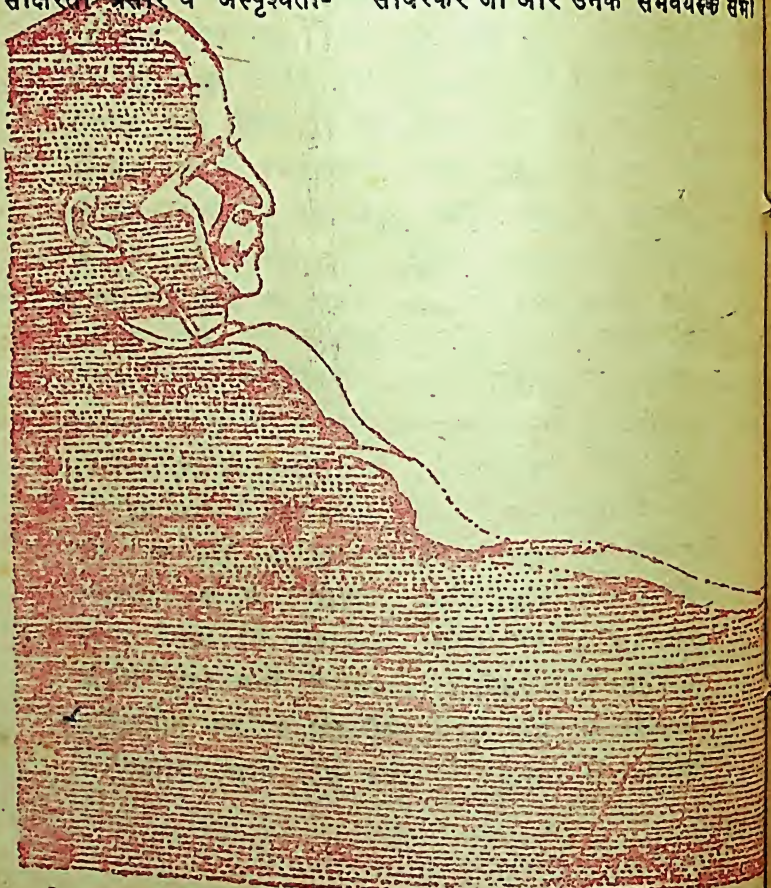

कड़ी धूप में माचिस बेचते फिरते

डा० अरविंद गोडबोले

थित आग्रहपूर्वक स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और प्रचार करते थे।

फर्ग्युसन महाविद्यालय में पढ़ने वाले सावरकर-शीघ्र ही सम्पूर्ण पूना के विद्यार्थियों के प्रिय नेता बन गये। वर्ष १९०५ में संकल्पित बंग-भंग का आन्दोलन प्रारंभ हो गया था। विदेशी माल का बहिष्कार करना यह स्वदेशी आंदोलन अर्थात उस समय के राजनीतिक आंदोलन का महत्वपूर्ण अंग था। १ अक्टूबर १९०५ को पूना की एक सार्वजनिक सभा में सावरकर जी ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आवाहन किया तथा विदेशी कपड़ों की होली जलाने का प्रस्ताव रखा। सभा के अध्यक्ष श्री न० चि० केलकर जी ने कपड़ों की होली जलाने के बजाय उन्हें गरीबों में बांट देने का सुझाव दिया। परन्तु इस पर सावरकर जी ने आग्रहपूर्वक इस बात का प्रतिपादन किया कि विदेशी माल की होली जलाने से जनता में अधिक जागृति उत्पन्न होगी। लोकमान्य तिलक जी ने सावरकर जी के प्रस्ताव का ही समर्थन किया परतु शर्त यह रखी कि कम से कम एक गाड़ी विदेशी कपड़ें होली जलाने के लिए इकट्ठा होना चाहिये। दि० ७ अक्टूबर १९०५ को एक गाड़ी भरकर-विदेशी कपड़ें एक जुलूस के रूप में जलानें के लिये ले जाये गये तथा पूना शहर के बाहरलोकरी पुल के पास उन कपड़ों की होली जलायी गई। सावरकर जी के सुझाव से वहीं पर लोकमान्य तिलक, श्री शि० म० परांजपे तथा सावरकर जी के भाषण हुए। विदेशी कपड़ों की पहली होली सावरकर जी की प्रेरणा से पूना में संपन्न हुई। उनके इस कार्य के लिये महाविद्यालय के अधिकारियों ने दस रुपये जुर्माना किया तथा उन्हें महाविद्यालय के छात्रावास से निष्कासित कर दिया गया।

वे स्वदेशी आन्दोलन के केवल भावनोद्दीपक प्रचारक नहीं थे। अनेकों देशों की राज्य क्रान्तियों का उन्होंने अध्ययन किया था। उन्हें ऐतिहासिक दृष्टि प्राप्त थी। स्वातंत्र्य संग्राम में स्वदेशी आंदोलन का महत्व वह भलीभांति समझते थे। इटली व अमेरिका के स्वदेशी आंदोलन का पर्यवसान राज्यक्रान्ति व स्वातंत्र्य प्राप्ति में किस प्रकार हुआ इसका विवेचन सावरकर जी ने मैझिनी के

(शेष पृष्ठ १०० पर)

जेल से लिखा गया मृत्यु-पत्र

'आ' काश पर वैशाख मास का चन्द्रमा हास्य कर रहा था। उसकी चांदनी चहुं ओर छिटकी हुई थी। जिस मां की लता को बाल ने जल-सिंचन किया था वह अपने छोटे फूलों की महक से फूल रही थी। गोकुल की तरह घर में आनन्द-मंगल हो रहा था क्योंकि सभी आदरणीय सम्बन्धी आये हुए थे। उन नवयुवकों की आदर्श दीप्ति, तेज और धैर्य देखकर स्वयं कीर्ति नाचती थी। नवयौवन के प्रेम से हम लोगों के हृदय-पुष्प खिल रहे थे और सच्चरित्रता की सुगन्ध से सुगन्धित हो रहे थे; दिव्य लता और वृक्षों से हमारा घर उद्यान की तरह शोभा पाता था। ऐसे समय प्रिय भाभी! तुम्हारी कुशलता के कारण भोजन और भी स्वादिष्ट बनता था। हम लोग वार्त्तालाप करते हुए चांदनी में भोजन करने बैठते थे। उस समय कभी-कभी श्री रामचन्द्रजी के बन-वास की कथा, इटली देश के स्वतन्त्र होने का इतिहास कोई कहने लगता, वीरवर ताना जी के वीर गीत हम लोग गाने लगते। कभी-कभी चित्तौड़गढ़ और पूने के शनिवार-वाडे की वार्त्तालाप होने लगती। ऐसे समय जब अनाथ माता का स्मरण आता तो शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने हेतु अत्यन्त द्रवित हृदय होकर मैं प्रतिज्ञा करता। प्यारी भावज! वह रमणीक अवसर, वह प्रियजनों का मधुर सहवास, वह चन्द्रप्रकाश, वे नव-कथायें, स्मरणीय रातें, राष्ट्र को बन्धन मुक्त करने का दिव्य लक्ष्य, उसकी पूर्ति के लिए किए गये दृढ़ निश्चय आदि बातों का तुझे स्मरण है। तुझे स्मरण है देवि बहिनी! उस समय युवकसंघ ने कहा था, 'हम बाजीप्रभु बनेंगे' और युवतियों ने भी गर्व के साथ कहा था 'हम भी चित्तौड़ की वीरांगनाएं बनेंगी।' बहिनी! हमने व्रत अन्धेपन में स्वीकार नहीं किया है। आज तक का इतिहास जिसको प्रकट रूप से दिव्य दाहक कहता है उसी 'सती व्रत' को प्यारी भावज, हमने सोच-समझ कर ही धारण किया है।

देवि बहिनी! उस समय प्रियजनों के साथ की हुई प्रतिज्ञाएं स्मरण करो तथा आज की अवस्था देखो। तुम देखोगी पूरे आठसाल भी नहीं होने पाए

यह पत्र वीर सावरकर ने क्रिस्टम जेल से उस समय अपनी भाभी को लिखा, जब उनकी यह धारणा बन गयी कि अंग्रेज उन्हें फांसी जरूर देंगे; मराठी कविता में 'मृत्यु-पत्र' शीर्षक से लिखित यह ऐतिहासिक पत्र सावरकर ने अंतिम पत्र समझकर लिखा था, जिसका हिन्दी अनुवाद यहां प्रस्तुत है।—सम्पादक

कि हमारा उद्देश्य इतनाअधिक सफल हो है। ऐसे समय बताओं, मन में उल्लास क्यों न हो ? देखो कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक इस देश में हलचल मच गई है और यह राष्ट्र, दीनता को त्याग; वीरता को ग्रहण कर रहा है। रघुवीर के चरणों में भक्तों की अपार भीड़ लगी हुई है और उधर यज्ञ-कुण्ड में हुताशन भी प्रदीप्त हो रहा है। उस यज्ञ को करने के लिए जो लोग दीक्षा ले चुके हैं उनकी परीक्षा का समय आने पर पूंछा जाता है-'समग्र विश्व की मंगल कामना हेतु कौन आहुति डालने के लिए तैयार है ?' साध्वी भाभी ! इस दिव्यार्थ निमन्त्रण को पाकर हमने गर्ज कर कहा, 'हमारा कुल प्रस्तुत है।' यह कहकर हमने ईश्वरीय सम्मान प्राप्त किया है। हम लोग कह चुके हैं कि हमारे शरीर धर्म के लिये निछावर किये जाएंगे। भाभी ! वह कहना अर्थहीन नहीं था। अनन्त यातनाओं को सहकर भी हमारा धैर्य नहीं टूटा और निष्काम कर्मयोग भी हमारा खंडित नहीं हुआ ! उस समय प्रियजनों के साथ की हुई प्रतिज्ञाएं सत्य हो रही हैं। अपनी माँ को बन्धनमुक्त करने के लिए, प्रज्वलित अग्निकुण्ड में अपना सर्वस्व जलाकर हम आज कृतार्थ हो गए हैं।

'मातृ-भूमि ! तेरे चरणों पर मैं अपना तन-मन अर्पण कर चुका हूं। मेरा वक्तृत्व, वाग्यवैभव, मेरी नई कविता सभी तेरे चरणों में अर्पित करता हूं। मेरे

लेखों में भी कोई अन्य विषय नहीं ! तेरे स्थंडिल पर प्यारे मित्र संघ को डाल चुका हूं। अपना तन, मन, धन, यौवन सभी दे चुका हूं। तेरा कार्य ईश्वरीय कार्य है, इसीलिए तेरी सेवा में भगवान की सेवा दिखायी दी। प्रज्वलित अग्नि में अपनी भावज, पुत्र, कान्ता और अग्रज को भी भेंट दे चुका हूं। और मैं स्वयं अपना शरीर चढ़ाने के लिए प्रस्तुत हूं। यही क्या ! यदि हम सात भाई भी होते तो उनका बलिदान तेरे चरणों में होता। इस भारत भूमि की तीस करोड़ संताने हैं। जो मातृभक्ति में लगे हुए हैं वे धन्य हैं। हमारा कुल भी उनमें ईश्वरीय अंश के समान है। निर्वंश होकर भी हमारा वंश अखंड हो गया।

(शेष पृष्ठ १०६ पर)

जब राजकन्या रुक्मिणी को मालूम पड़ा कि उसके पिता विदर्भ राज भीष्मक ने भी उसका विवाह राजा शिशुपाल से करने के लिए अपनी सम्पत्ति दे दी है, तब उसके मन में संजोये कृष्ण-प्रेम के स्वप्नमय स्वप्न जैसे एक क्षण में चकनाचूर हो गये। वह इस निर्णय के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के लिए पिता के महल में जाने को उद्यत हो गयी थी। किन्तु अचानक उसके कदम ठिठक गये।

'प्रतीक'

प्रणय की पुकार

वह अपने महल में वापस आकर चिंतामग्न सी शय्या पर लेट गयी।

स्वयंवर स्थगित करने से उसे असीम दुःख हुआ था। उसकी विश्वासपात्र दासी के द्वारा उसे ज्ञात हुआ था कि स्वयंवर में बिना बुलाये ही कृष्ण आये थे। उसने मन में निश्चय कर लिया था कि वरमाला लेकर जब वह मण्डप में पहुंचेगी, तब कृष्ण के गले में वरमाला पहनाकर सब को चकित कर देगी। किन्तु उसकी यह मनोकामना अपूर्ण ही रह गयी। स्वयंवर के लिए विशेष रूप से राजमाली द्वारा तैयार की गयी सुगन्धित सुन्दर सुमनों की वरमाला उसकी मृदु अभिलाषा की भांति कुम्हला गयी।

स्वयंवर जैसे मांगलिक समारोह में पारस्परिक संघर्ष का तनाव व्याप्त हो गया था। विदर्भराज भीष्मक डर गये कि कहीं स्वयंवर मण्डप में ही कृष्ण और जरासंध एक दूसरे के विरुद्ध अपने-अपने खड्ग बाहर खींच न लें। इस सम्भावना को निर्मूल करने के लिए उन्होंने तत्काल स्वयंवर स्थगन की घोषणा कर वातावरण को सर्द बना डाला।

स्वयंवर में जरासंध, शिशुपाल जैसे अनेक राजाओं ने भाग लिया था। कृष्ण को किसी ने उपस्थित होने का आमन्त्रण नहीं दिया था। फिर भी वे बिना बुलाये आ गये थे। जरासंध और शिशुपाल उन्हें देखकर अनिवार क्रोध तथा ईर्ष्या से भड़क उठे।

जरासंध ने आवेश में आकर विदर्भराज भीष्मक से सीधा प्रश्न पूछा—इस कंस के हत्यारे को यहां किसने आमन्त्रित किया? यह तो राजाओं का स्वयंवर है। इसके पास तो कोई भी राज्य नहीं है। फिर यह हमारी पंक्ति में आकर बैठने की कैसे धृष्टता कर सकता है?'

इस प्रश्न ने उपस्थित राजाओं में खलबली मचा दी वे सब अपने-अपने सिंहासन से उठकर जरासंध का समर्थन करने लगे। विरोधी राजाओं ने कृष्ण को बाहर निकालने के लिए राजा भीष्मक को अपना आदेश सुनाया। किन्तु घर आये अतिथि का अपमान करने की प्रथा विदर्भ में नहीं थी। वे इस संकट को टालने का उपाय सोचने लगे।

तभी राजसभा में उपस्थित एक कृष्ण-मित्र राजा क्रथकौशिक ने आगे बढ़कर कहा—'मैं इसी क्षण अपना सम्पूर्ण राज्य और सिंहासन कृष्णार्पण करता हूं। आप सब राजा-महाराजाओं के सम्मुख मैं अभी उनका राज्याभिषेक भी किये देता हूं।'

राजा क्रथ कौशिक की चमत्कारिक घोषणा सुनकर स्वयंवर मण्डप में विस्मय की लहरें छा गयीं। उन्होंने मण्डप में एक ओर खड़े राजपुरोहित के हाथ में थमे स्वर्णथाल में से कुंकुम-अक्षत लाकर कृष्ण के माथे पर लगा दिया और अपना राज मुकुट उतारकर उन्हें पहना दिया।

इस अप्रत्याशित घटना ने जरासंध के क्रोध में घृत की आहुति डाली। इससे शिशुपाल के आत्म सम्मान को भी धक्का पहुंचा। वे दोनों प्रस्थान करने के लिए खड़े हो गये।

जरासंध ने द्वेषपूर्ण वाणी में कहा 'कपट-नाटक रचने में चतर इस बहुरुपियों के साथ बैठना हम अपना घोर अपमान समझते हैं। भीख लेकर कोई राजा नहीं बनता उसके लिए परंपरागत पराक्रम के संस्कार होने चाहिए राजा भीष्मक; आपने देवकी पुत्र का स्वागत करके हमें नीचा दिखाया है। इसके विरोध में हम इस स्वयंवर का बहिष्कार करते हैं।'

जरासंध तथा शिशुपाल के साथ कई राजा स्वयंवर मंडप छोड़कर चले गये। ऐसी स्थिति में विदर्भ राज के पास स्वयंवर स्थगित करने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं था। स्वयंवर स्थगन से सबसे अधिक प्रसन्न था राजकुमार रुक्मी और इस घटना से सबसे अधिक अप्रसन्न थी राजकुमारी रुक्मिणी।

:o: :o: :o:

रुक्मी वास्तव में अपनी बहन का विवाह शिशुपाल से ही करना चाहता था। परन्तु रुक्मिणी मन ही मन कृष्ण को वर चुकी थी। वह नहीं जान पायी कि कब और कैसे उसके मन-मन्दिर में, गोकुल में रास रचानेवाले गोपाल कृष्ण की सांवली-सलोनी छवि आकर स्थिर हो गयी थी। बालपन से ही उसने कृष्ण की विविध लीलाओं तथा पराक्रम-पौरुष की रोमांचक कहानियां अपनी सखी-सहेलियों के मुंह से सुनी थीं। उसे यह भी ज्ञात हो चुका था कि उसका भाई कृष्ण का कट्टर विरोधी है। उसने अपने मन की गोपनीय बात अपनी प्राणप्रिय सखी विदुला को ही बतायी थी।

विदुला ने ही उसे बताया था कि स्वयंवर के लिए कृष्ण को निमन्त्रण-पत्रिका भेजी नहीं गयी। पत्रिका भेजने का काम तो उसके भाई ने सम्पन्न किया था। वह भला अपने शत्रु को क्यों बुलाता? तथापि न जाने क्यों उसका मन कह रहा था कि द्वारकाधीश बिना बुलाये ही अवश्य आयेंगे। रुक्मिणी की आर्तपुकार सुनकर ही कृष्ण वहाँ आये थे, ऐसा प्रतीत होता था। उसने कृष्ण को प्रत्यक्ष नहीं देखा था। किन्तु उनकी अनेक छवियां प्राप्त करके उनके व्यक्तित्व से परिचय कर लिया था।

कुछ दिनों के पश्चात उसे मालूम पड़ा। कि उसके भाई रुक्मी ने उसके

विवाह की तैयारियां आरम्भ कर दी हैं, तब वह गहन विषाद में डूब गयी। वह मर्माहत हो उठी। यह सोचकर कि किसी ने भी उसकी सम्मति लेना उचित नहीं समझा। जैसे वह कोई प्राणहीन वस्तु हो। परिवार के इस निर्णय का विरोध करने के लिए उसने अन्न-जल ग्रहण न करने का संकल्प किया। अपने महल के बाहर जाना-आना भी उसने छोड़ दिया। वह अपनी शय्या पर ही दिन-रात लेटी रहती।

राजकन्या द्वारा विवाह के विरोध में अन्न-जल त्याग देने की बात राजधानी में सर्वत्र फैल गयी। राजा सहित राज-परिवार के सभी सदस्य चिंतातुर हो गये। राजमाता ने बेटी को अपना हठ छोड़ देने का अनुरोध किया। भीष्मकराज जानते थे कि दोनों भाई-बहन हठ पूरा करने में किसी के सामने पराजित होने वाले नहीं हैं। उन्होंने विदुला के माध्यम से रुक्मिणी को समझाने का सर्वोत्तम उपाय समझा।

राजाज्ञा से विदुला को मंत्रणा कक्ष में उपस्थित किया गया। महाराज को अभिवादन कर वह बोली—'महाराज की आज्ञा सुनने के लिए सेविका तत्पर है।'

'हमें तुम्हारी सहायता चाहिए, विदुला। तुम ही हमें उबार सकती हो।'

'आज्ञा दीजिये, महाराज।'

'तुम तो जानती हो कि राजकुमार रुक्मी ने राजा शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह निश्चित किया है। उसके अनुसार सभी को निमंत्रण पत्रिकाएं भी भेजी जा चुकी हैं। यदि हमने अपना वचन भंग कर दिया तो राजा जरासंध अपने मित्र के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए हम पर आक्रमण कर देंगे। उनके पास विशाल सेना है। हम उनका सामना नहीं कर सकेंगे। हमारे राज्य के साथ हमारे कुल-वंश का गौरव भी मिट जायगा। क्या रुक्मिणी यही चाहती है? तुम उसे समझा सकती हो। तुम्हारी बात वह नहीं टालेगी।'

'मैं प्रयत्न करती हूं।'

'माता जगदम्बा तुम्हें सफलता प्रदान करें।' विदर्भराज ने प्रस्थान के लिए उद्यत विदुला को आशीर्वाद देने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया। महाराज को अभिवादन कर विदुला चली गयी।

(शेष पृष्ठ १०७ पर)

चल-चित्र

असीम चक्रवर्ती

फिल्मों से जुड़े नेताजी सुभाष बोस

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस फिल्मों को जन-जागरण का सबसे अच्छा और सुलभ साधन समझते थे इसलिए फिल्मी कलाकारों ने जब भी उनकी मदद चाही, उन्होंने सहयोग किया। उन्होंने हमेशा उनकी पुकार पर गौर किया। प्रसिद्ध निर्माता निर्देशक धीरेन्द्रनाथ सरकार और हिमांशुराय के साथ उनके संबंध अत्यंत घनिष्ट थे, लेकिन, इन दो फिल्मी हस्तियों से घनिष्टता के कारण फिल्मों में सुभाष बाबू की दिलचस्पी बढ़ी-यह सोचना गलत है। दरअसल, सच बात तो यह है कि, नेताजी फिल्म को आजादी की लड़ाई का एक महत्वपूर्ण साधन समझते थे और इसका ठीक ढंग से उपयोग करना चाहते थे। इस कारण, उन्होंने फिल्मों के प्रति दिलचस्पी दिखाई।

बात सन् १९३३ की है। बम्बई की कुछ ख्याति प्राप्त फिल्म निर्माण संस्थाओं ने राष्ट्रपिता महत्मा गांधी पर बहुत सी छोटी-छोटी फिल्मों का निर्माण किया। ये सभी फिल्में बोलती थीं। तब तक बोलती फिल्मों का दौरा शुरू हो चुका था। इनमें से कई फिल्मों में गांधीजी की खुद की आवाज भी थी। इन छोटी-छोटी फिल्मों को फिल्म निर्माण संस्थाओं ने अपनी नियमित फिल्मों के साथ प्रदर्शित करने की व्यवस्था की थी। इन सभी फिल्मों में गांधी जी की तत्कालीन गतिविधियों को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया था। इन निर्माण संस्थाओं के मालिकों को पूरा विश्वास था कि, ये फिल्में आजादी की लड़ाई में सहायक होंगी और यह सोचकर जनवरी १९३३ के द्वितीय सप्ताह में, उन्होंने दिल्ली प्रदेश में, अपनी नियमित फिल्मों के साथ इन फिल्मों के प्रदर्शन शुरू किया, लेकिन, १४ फरवरी १९३३ में समाचार पत्रों में प्रकाशित एक प्रेस स्पष्टीकरण ने सब किए धरे पर पानी फेर दिया। यह प्रेस-विज्ञप्ति तत्कालीन चीफ कमिश्नर ने निकाली थी जिसमें इस तरह की फिल्मों के प्रदर्शन पर पाबन्दी लगा दी थी।

बस, यही बात नेता जी को अच्छी नहीं लगी। १५ जनवरी, १९३३ को वे गरज उठे, उनका कहना था,

;गांधीजी के इन चित्रों को सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए रोक कर अंग्रेज सरकार ने ठीक नहीं किया है। यदि वे ऐसा करके यह सोचते हैं कि, गांधी जी को छवि जनता में धूमिल कर रहे हैं, तो यह उनका बहम है। उनकी लाख नाकाम कोशिशों के बावजूद जनता गांधी जी के पीछे है। इन फिल्मों को प्रदर्शन की अनुमति न देकर सरकार हमारी स्वाधीनता संग्राम की आँग को ठंडा नहीं कर सकती, बल्कि इस तरह के प्रयत्नों में यह आँग और भी भड़केगी।

उन्हीं दिनों हालीवुड की एक अंग्रेजी फिल्म कलकत्ता में प्रदर्शित हुई। इस अंग्रेजी फिल्म में भारत में ब्रिटिश शासन के संस्थापक लार्ड क्लाइव का जीवन-चरित्र पेश किया गया था। इस फिल्म में भारत विरोधी प्रचार था। इस कारण, नेता जी के साथ कई स्वाधीनता आन्दोलनकारियों ने इस फिल्म का भरपूर विरोध करने के बावजूद अंग्रेज सरकार बाज नहीं आई और इस फिल्म का प्रदर्शन चलता रहा।

उत्तर कलकत्ता का पहला आधुनिक सिनेमाघर 'चित्रा' था। यह सिनेमाघर बोलती फिल्मों के निर्माण के कुछ समय बाद ही बना था। इस सिनेमा घर के निर्माता थे प्रसिद्ध निर्माता निर्देशक वीरेन्द्र नाथ सरकार। इस चित्रगृह का उद्घाटन उन्होंने नेताजी के द्वारा करवाया था। उद्घाटन के बाद नेताजी ने इस चित्रगृह के कर्ता-धर्ताओं से अनुरोध किया था कि, वे सभी लिखित कार्य भारतीय भाषाओं

में ही करें।' वीरेन्द्रनाथ सरकार ने उनकी बात नहीं टाली। फलतः 'चित्रा' सिनेमा के टिकट तक भारतीय भाषा में छपने लगे।

सन् १९३२ में 'न्यू थियेटर' वालों ने कवि गुरु को सम्मानित करने के लिए कार्यक्रम का आयोजन किया। इस कार्यक्रम में कवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के संदेश के साथ-साथ शांति-निकेतन की सांस्कृतिक संस्था द्वारा एक नाटक भी प्रस्तुत किया जाना था। कविगुरु के आगमन से तीन-चार दिन पहले एक दिन अचानक सुभाष बाबू 'न्यू थियेटर' में आ धमके। बिना पूर्व सूचना के वे कहीं भी नहीं जाते थे इसलिए उन्हें यकायक सामने देखकर सबको आश्चर्य हुआ। स्टूडियों में मौजूद सभी व्यक्तियों तक यह बात पहुंचते देर नहीं लगी। अपने आस-पास जमा होती भीड़ को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा-मेरे लिए आप सब परेशान न हों'। कविगुरु यहाँ आने वाले है,

इसलिए यह देखने आ गया कि, उनके स्वागत की क्या व्यवस्था की गई है?' उसके बाद नेता जी ने स्वागत व्यवस्था का निरीक्षण किया और वे उससे बहुत प्रसन्न हुए।

'बंबई टाकीज' की 'अछूत कन्या' सुभाष बाबू को बहुत अच्छी लगी थी। यह फिल्म उन्होंने हिमांशुराय तथा काजी जनरुल इस्लाम के साथ देखी थी। इस फिल्म को देखकर वे इतना प्रसन्न हुए थे कि, उन्होंने एक संक्षिप्त से संदेश में

तत्कालीन निर्माता, निर्देशकों से अनुरोध किया था कि, वे ऐसी सामाजिक चेतना-पूर्ण फिल्मों का निर्माण करें।

फिल्मों के प्रति उनकी कितनी दिलचस्पी थी, यह बात तब और स्पष्ट हो गयी जब उन्होंने 'आजाद हिन्द सरकार' की नीव रखी। अन्य विभागों के अलावा इसमें एक सांस्कृतिक-विभाग भी था। इस विभाग की एक शाखा को विशेष रूप से यह कार्य सौंपा गया था कि, वे 'आजाद हिन्द सरकार' की कार्यप्रणाली तथा उसकी सेना के लड़ाई के दृश्यों को फिल्मबद्ध करें। इस शाखा ने बड़ी सफलता के साथ यह कार्य किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने इस फिल्म को किसी तरह हासिल करके, लघु चित्र के रूप में, सम्पूर्ण भारत में इसका प्रदर्शन किया था। सात हजार फुट लम्बी इस फिल्म का शीर्षक दिया गया-'नेताजी सुभाष'। फिल्म के निर्माणकर्ता में सरदार बल्लभ भाई पटेल का नाम दिया गया था।

बाद में, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन-चरित्र तथा उनके आदर्शों को लेकर कई फिल्में बनीं। इनमें से कुछ फिल्में ऐसी थीं, जिनमें स्वयं नेताजी को दिखाया गया था। और कुछ में उनके चरित्र को किसी अभिनेता ने निभाया था। छोटी-छोटी लघु फिल्मों की बात न करके नेताजी पर बनी बड़ी फीचर फिल्मों का जिक्र करना आवश्यक है। इस प्रसंग में 'न्यू थियेटर' की 'पहला आदमी' विशेष उल्लेखनीय है। इस फिल्म में कुछ देर के लिए स्वयं नेताजी दिखाई दिये थे। यह दृश्य किसी और फिल्म से लेकर जोड़ा गया था। लेकिन इसका प्रस्तुतीकरण काफी अच्छा हुआ। इस कारण, ये दृश्य फिल्म का एक महत्वपूर्ण अंग बन गये थे। फिल्म के निर्माता थे

स्वर्गीय बिमलराय, जो नेताजी से हमेशा बहुत प्रभावित रहे।

लेखक- निर्देशक रमेश सहगल ने नेताजी के चरित्र को अपनी एक फिल्म 'समाधि' में अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया था। यह फिल्म भी काफी चर्चित हुई थी। ढेर सारी फिल्में और भी आयीं, जिनमें नेताजी के जीवन-चरित्र तथा उनके आदर्शों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से छोटे-छोटे अंशों में दिखाया गया। नेताजी पर जो बड़ी फीचर फिल्म बनी, वह नेताजी के व्यक्तित्व को सम्पूर्ण रूप से उजागर नहीं कर सकीं। हाँ, बांगला भाषा में एक फिल्म बनी थी 'सुभाषचन्द्र'। इस फिल्म ने कुछ हदतक नेताजी के व्यक्तित्व को सुन्दर ढंग से चित्रित किया था। लेकिन, आज भी नेताजी पर भारतीय दर्शकों को किसी ऐसी फिल्म की प्रतीक्षा है, जो उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विशिष्ट रूप से प्रस्तुत कर सके और भारतीय दर्शकों के लिए एक निधि बन जाए।००

द्वारा-श्रीमती मीना चक्रवर्ती, ३४, मोतीलाल रोड, इलाहाबाद-२११००२

दिशा-सूचक !

'नाक मनुष्य का अत्यन्त संवेदनशील अंग होने के साथ साथ एक दिशा-सूचक (कम्पास) भी है, जिसका उपयोग करना हम भूल गए हैं।' यह रहस्योद्घाटन ब्रिटेन के तीन प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने किया है।

ब्रिटेन के मैनचेस्टर विश्वविद्यालय से सम्बन्धित जैनिस मेथर, जान कैनफ और राबिन बेकर नाम के वैज्ञानिकों का कहना है कि 'शिरानाल में पाई जाने वाली प्राकृतिक चुम्बकीय शक्ति की वजह से मरू जनजाति के लोगों में दिशा तलाश करने की अद्भुत क्षमता थी।' इन्होंने अपने प्रयोगों में सात खोपड़ियों के विभिन्न भागों का हड्डियों का चूर्ण बनाकर उसे सशक्त चुम्बकीय क्षेत्र में डाला और यह देखने के लिए चुम्बक को हटा लिया कि उसमें चुम्बकत्व मौजूद है या नहीं। ऐसा करने पर पाया गया कि चार खोपड़ियों के शिरानालें, की हड्डियां अत्यधिक चुम्बकाकृत थीं जबकि एक खोपड़ी के शिरानाल में लोहे का अंश नहीं था।

इन तीनों वैज्ञानिकों का मत है कि 'रक्त में लोहा होता है। और नासिका की चुम्बक इसी से लोहा प्राप्त करती है। पक्षियों में कबूतर आदि भी अपने ठिकानों पर जाने और विचरण करने के लिए मस्तिष्क में स्थित चुम्बक का प्रयोग करते हैं।' ००

● बा० सु० गिरि
ई—३५, सिद्धार्थ बस्ती, जंगपुरा, नई दिल्ली—११००१४

(पृष्ठ ८६ का शेष)

लेखों के अनुवाद की प्रस्तावना में पहले ही किया था। प्रथम विदेशी माल का उच्चाटन और उसके पीछे-पीछे क्रमप्राप्त विदेशियों के उच्चाटन का वर्णन उन्होंने उस प्रस्तावना में किया है।

इंग्लैंड तथा अंडमान के अपने निवास काल में सावरकर क्रांति संघटना, ग्रन्थ-लेखन, व राजबन्दियों के अधिकारों के संरक्षण, शुद्धि कार्य में वे व्यस्त रहे। रत्नागिरि की स्थानबद्धता की स्थिति में भी उन्होंने सामाजिक सुधार, अस्पृश्यता निवारण, भाषा-शुद्धि, लिपि-शुद्धि, हिन्दू संगठन आदि आंदोलनों के साथ ही वे स्वदेशी आंदोलन भी चलाते रहे।

वे केवल प्रज्ञा निष्ठ नहीं थे। उनके काम करने का ढंग शास्त्रीय था। एक प्रश्नावली तैयार कर और स्वयंसेवकों को घर-घर में भेजते हुए रत्नागिरि में घरों में किन विदेशी वस्तुओं का प्रयोग होता है। कौन-कौन सी विदेशी वस्तुएं खरीदी जाती हैं इनकी जानकारी प्राप्त की। स्वदेशी वस्तुओं का 'मार्केट सर्वे' सावरकर जी ने प्रत्यक्ष कर दिखाया था। स्वदेशी आंदोलन के व्यवहारिक पक्ष की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया था। स्वदेशी वस्तुएं कहां प्राप्त हो सकती हैं इसकी जानकारी न हो तो इच्छा होने पर भी स्वदेशी वस्तुएं खरीदी न जा सकेंगी इस तथ्य को उन्होंने ठीक प्रकार से पहचाना था। रत्नागिरि नगर की कौन सी दूकानों पर स्वदेशी वस्तुएं उपलब्ध हैं इस सामान्य से दिखने वाले विषय पर भी उन्होंने एक लेख लिखा था। युवावस्था में ही स्वातंत्र्य समर का इतिहास' लिखने वाला व 'जगन्नाथ का रथोत्सव' रचने वाला मैं। ऐसे क्षुद्र-विषयों पर क्या लिखने बैठा हूं ऐसा विचार भी सावरकर जी के मन को न छू पाया। व्रतों का विचार करते समय स्त्रियों ने स्वदेशी का व्रत ग्रहण करना चाहिये। ऐसा उन्होंने आग्रहपूर्वक प्रतिपादित किया था।

रत्नागिरि में रहते समय सावरकर जी स्वयं स्वदेशी वस्तुओं को हाथठेले पर बेचने जाते और दूकानदारों को स्वदेशी वस्तुएं अपनी दूकान में रखने के लिए आग्रह करते, छोटा ही क्यों न हो पर प्रत्यक्ष कार्य को वे विशेष महत्वपूर्ण मानते थे। 'पुरुषार्थ' मासिक के लिये हिन्दू बलिदानियों पर एक लेख लिखने के लिए पं० साहवलेकर जी ने सावरकर जी को एक पत्र लिख कर आग्रह किया था। उस पत्र का उत्तर देते हुए सावरकर जी ने उन्हें लिखा था कि ऐसा लिखने का कार्य मैं पहले कर चुका हूं। वह महत्व का है इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु इस समय लेख लिखने की अपेक्षा माचिस की एक डिबियां बेचना मैं अधिक उपयुक्त समझता हूं। (बापट ना० स०-स्मृति पुष्पे, पुणे १९७९ पृष्ठ १४) स्वदेशी माचिस की डिब्बियां बेचने के लिये वे प्रखर धूप में भी घूमते-फिरते थे, ऐसा संस्मरण श्री ना० स० बापट ने

लिखा है। विद्यार्थी वस्तु भंडार का भी वे मार्गदर्शन करते।

दूसरे महायुद्ध के समय सावरकर जी ने हिन्दुओं के सैनिकीकरण के साथ-साथ देश के औद्योगीकरण पर भी बल दिया था।

दूसरे महायुद्ध के कारण शस्त्रास्त्र नौका, विमान, रसायन, कागज का देश में उद्योग प्रारम्भ हुआ। इस बात का उल्लेख उन्होंने १९४० के मदुरा में संपन्न अ० भा० हिन्दू महासभा के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए किया था, कोई भी राजनीतिक दल इतनी औद्योगिक प्रगति करने में समर्थ नहीं था यह विचार उन्होंने अपने भाषणों में प्रकट किया था। महायुद्ध का लाभ लेकर हमारे उद्योगपतियों को स्वनिमित्त स्वदेशी वस्तुओं से सारे बाजारों को पाट देना चाहिये यह उनका आग्रह था। साथ ही विदेशी उद्योगों में रहने वाले आर्थिक अनुशासन को भी हमें अंगीकार करना चाहिये ऐसा वे आग्रहपूर्वक प्रतिपादित करते थे।

सावरकर जी के स्वदेशी आंदोलन का विचार करने पर उनकी अनेक विशेषताओं का परिचय मिलता है। विषय वस्तु का अध्ययन, आंदोलन का भावनोद्दीपक परन्तु तर्कशुद्ध प्रचार आंदोलन के व्यावहारिक पहलू पर भी दृष्टि व स्वयं कष्टों को झेलते हुए प्रत्यक्ष निरलस कार्य करनें की भावना आदि सावरकर जी की विशेषतायें हमारे सामने प्रकट होती हैं। समाज सेवा के किसी भी क्षेत्र में काम करने वाले कार्यकर्ता के लिये सावरकर जी की ये विशेषताएं प्रेरणादायक एवं मार्गदर्शक होंगी।

अनुवादक-प्रणवेश

मृत्यु : स्तनान्तर मात्र

से जे मातृपाणि
स्तन हते स्तनान्तरे लइनेछे टानि,
स्तन हते तुले निले शिशु कनदे डेर,
मुहुर्त्त आश्वास पायगिये स्तनान्तरे।

● रवीन्द्रनाथ ठाकुर

—मौत क्या है ? मां की ममता का हाथ ही तो, जिससे वह ममतामयी हमें दुग्ध पान कराते हुए बीच-बीच में हमारा मुंह अपने एक स्तन से छुड़ाकर अपने दूसरे स्तन से संलग्न कर देती है। भले ही हमारे मन का अज्ञान एक पल के लिए इस व्यवधान के कारण, स्तनान्तर से भीत तथा फिक्रमंद हो जाता है लेकिन दूसरे ही क्षण जब हमारे मुंह को मां के दूसरे स्तन का दूध सुलभ हो जाता है तो उसे आश्वस्ति भी प्राप्त हो जाती है।

अनु०-व० त्रि०

● जयप्रकाश भारती

सोना देने वाली गाय

किसी नगर में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसके परिवार में उसकी स्त्री और एक कन्या थी। उनका धन्धा केवल भिक्षा मांगना था। जो कुछ मिल जाता, उसी से उनकी गुजर चलती।। लड़की जब सयानी हुई, तो ब्राह्मण को उसके विवाह की चिन्ता हुई, परंतु घर में तो भूंजी भांग भी न थी।

ब्राह्मण देवता और तो कोई धन्धा जानते न थे। भीख मांगने में कुशल थे, पर भिखमंगों और हट्टे-कट्टे मुफ्तखोर साधु सन्यासियों की आये दिन भरमार के कारण अपनी घटती आमदनी से बेचारे पूरा न डाल पाते थे, भागवत की टूटी फूटी कथा कह लेते थे, परन्तु कोई उनकी कथा सुनता ही न था, क्योंकि देश में सब कहीं नास्तिकता बढ़ती जा रही थी।

एक दिन ब्राह्मणी ने उनसे कहा- "ऐसे कैसे काम चलेगा? कन्या सयानी होती जा रही है। किसी गांव में जाकर कथा बांचो, तो कुछ मिल जायेगा।

स्त्री के हठ करने पर ब्राह्मण देवता जंगल गये और वहां वन के देवी-देवताओं को सम्बोधित कर कथा बांचना प्रारम्भ कर दिया। कोई भी तो उसकी कथा सुनने न आता, फिर चढ़ौती होती, तो कहां से?

जब कथा पूरी हो गयी और चढ़ौती कुछ भी नहीं हुई तो ब्राह्मण देवता बड़े जोर से रोने लगे, क्योंकि उन्हें एक बड़ा डर था कि घर जाकर पत्नी को क्या कमाई देंगे। पत्नी से उन्हें भारी डर था, क्योंकि वह उनके सात पुरखों की खबर लेती थी।

जंगल में कथा बांचने इसलिए बैठे थे कि आसपास के गांवों में कई बार यों ही भटक चुके थे। उन्हें दृढ़ विश्वास था

कि जब चढ़ौती का समय आयेगा, कोई न कोई तो उस मार्ग से निकलेगा।

ब्राह्मण का रोना सुनकर चार सियार वहां आये और ब्राह्मण से रोने का कारण पूछने लगे।

ब्राह्मण देवता ने अपनी गरीबी और महीना भर कथा कहने के एवज में कुछ भी चढ़ौती न मिलने की बात कह सुनायी।

सियारों ने आपस में सलाह की, और कहीं से एक गाय लाकर ब्राह्मण को दे दी। सियार बोले—"लो महाराज, यह गाय आपको पांच सेर दूध और एक तोला सोना नित्य देगी।" अब तो ब्राह्मण के पैर धरती पर न पड़ते थे।

गाय की सेवा करके थोड़े ही दिन में ब्राह्मण माला-माल हो गया। उसने

कहानी

बढ़िया मकान बनवा लिया, और बड़े ठाठ से बेटी का विवाह कर दिया। नित्य एक तोला सोना पाकर उसने अपना घर भर लिया। बेटी-दामाद को भी मालामाल कर दिया, और भैया-भतीजे भी सब उसका यश गाने लगे। पण्डितानी पीछे पड़ी रहतीं कि उसके मायके वालों को अधिक हिस्सा मिलना चाहिए, क्योंकि सलाह तो उन्होंने ही दी थी। ब्राह्मण ने साले-सलहज को भी खूब धन उलीचा।

जब इस तरह खैरात बटने लगी—"अन्धा बांटे रेवड़ी, चीन-चीन अपनों को दे"; तो पास-पड़ोस के और

दूसरी जाति वाले ईर्ष्या करने लगे। गाय के सोना देने की चर्चा भी छिपी न रही। राजा के मुंह में पानी भर आया। राजा ने तुरन्त ही उस ब्राह्मण को गाय सहित बुला भेजा। ब्राह्मण के पहुंचने पर राजा ने उससे कहा—'शुकुल जी, वह गाय तुमने कहां से पायी? गाय हमको दे दो, नहीं तो हम जबरदस्ती छीन लेंगे।"

हाथ लग जाने पर कोई भी तो अपनी चीज आसानी से छोड़ने को तैयार नहीं होता। ब्राह्मण देवता भी भला इतना भारी त्याग कैसे कर सकते थे।

राजा ने नौकरों को हुक्म देकर गाय छीन ली, और ब्राह्मण को भगा दिया। ब्राह्मण का कुछ वश न चला, तो मरना विचार कर जंगल में फूट-फूट कर रोने लगा। उसके रोने की आवाज सुनकर वे चारों सियार फिर आ खड़े हुए, और बोले अब क्यों रोते हो, महाराज। अब तो तुमसे जितना घर भरते बना भर लिया, जितनी मौज कर सकते थे, मौज मारी, और साले-ससुर, दामाद समधी सबको भी मन चाहा मालामाल कर दिया। क्या बात हुई, राजा ने गाय ले ली—दुधारू है, सो दूध तो देगी, पर अब सोना न देगी। वह जितना बरसना था, तुम्हारे घर बरस चुकी।"

ब्राह्मण बोला—"सोना न दे, तो कोई बात नहीं, पर अब तो गाय मेरे लिए शान की बात बन गयी है। सियार बोले—"महाराज, यह झूंठी शान छोड़ो। समझ लो, गाय इतने दिन के लिये ही तुम्हारे पास आयी थी।" ब्राह्मण बोला—"भला, यह कैसे समझूं! आंखों से देखते राजा ने मेरी गाय मुझसे छीन ली—मुझे उससे ममता भी तो हो गयी है। गाय न मिली तो मैं रो-रोकर प्राण त्याग दूंगा।"

सियार बोले—"महाराज। लोभी तो पक्के हो, पर हम अपने जंगल में ब्रह्म-हत्या का पाप न लगने देंगे। जाओ, राजा से कहो कि पंचायत जोड़ लें?"

ब्राह्मण ने कहा—"मैं पंचायत भी जोड़ूं, तो कौन मेरी-सी कहेगा। सब राजा-जैसी कहते ठहरे, और अब जब नीयत साफ न हो, तो कोई लाख सिर पटके जिसके हाथ शक्ति है उसकी सब सुनेगा।"

सियार बोले—"इसकी तुम चिन्ता न करो। तुम्हारी तरफ से पंच हम रहे। हम तुम्हें गाय दिला देंगे।"

ब्राह्मण लौट कर राजा के पास गया, और बोला—"महाराज, हमारी गाय दे दीजिए या पंचायत जोड़ ली जाय। पंच जो फैसला देंगे, वह मैं मान लूंगा।"

राजा भी राजी हो गया और उसने अपने मुसाहिबों को पंच बना दिया। उसने ब्राह्मण से अपने पंच लाने को कहा। ब्राह्मण जंगल में गया और रोने लगा। उसका रोना सुनकर चारों सियार फिर आ गये। ब्राह्मण ने कहा—"चलो पंचायत में चलकर हमारी गाय दिला दो।"

सियार बोले बस्ती में हम पैदल तो जा नहीं सकते, क्योंकि हमें कुत्तों का डर है—हमें अपनी चादर में बांध कर ले चलो और इसी तरह पहुंचा जाना।

ब्राह्मण देवता राजी हो गये। चारों को पोटली में बांधकर वे सीधे राजदरबार में पहुंचे। राजा ने कहा—"तुम्हारे पंच नहीं आये ?"

ब्राह्मण बोला—"एक दो नहीं, चार हैं" और उसने अपनी पोटली खोल दी, जिसमें से चार सियारों को निकलते देखकर सभी दंग रह गए।

राजा ने भी अपने पंच बुला लिए। पंचायत प्रारम्भ हुई। राजा की पंचायत ने कहा—"गाय राजा की है, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि यह गाय सोना देती है, और जितनी विचित्र वस्तुएं हैं उन पर राज्य का अधिकार होता है।"

राजा के पंचों की बात सुनकर एक सियार ऊपर की ओर मुंह करके बैठ गया। दूसरा राजा की आंखों से आंखें मिलाकर बैठ गया। तीसरे ने जमीन की तरफ देखना शुरू किया, और चौथा राजा को पीठ देकर बैठ गया।

राजा ने ब्राह्मण से कहा—"अब तुम्हारे पंच फैसला दें।" सियार कुछ न बोले। तब राजा ने ऊपर की ओर देखने वाले सियार से कहा—

"तुम उधर क्या देख रहे हो ?" सियार बोला—"मैंने सुना है, पंचों में परमेश्वर आते हैं। यदि यह पंचायत धर्म की होगी, तो परमेश्वर अवश्य आयेंगे। मैं उन्हीं को देख रहा हूं।"

दूसरे सियार से पूछने पर वह बोला-"मैं आपकी आंखों की तरफ इसलिए टकटकी लगाए हूं कि अधर्म करते हुए भी आप की आंखें झपकती हैं या नहीं।

तीसरे सियार से पूछने पर उसने कहा—"मैं जमीन की तरफ इसलिए देख रहा हूं कि पंचायत तो अधर्म की हो रही हैं कहीं जमीन तो नहीं फटेगी।

चौथे सियार से पूछने पर वह बोला-"मैं अधर्मियों का मुंह नहीं देखता, इसलिए पीठ दिए बैठा हूं।"

राजा इतना बेशरम न था। चारों सियारों की बातें उसे लग गयी, और उसने ब्राह्मण को उसकी गाय सौंप दी।

चारों सियार और पांचवे उनके सरदार ब्राह्मण देवता खुशी-खुशी दरबार से चले। सियारों को पोटली में बांधकर वे जंगल में छोड़ आये। उस दिन से गाय ने सोना देना तो बन्द कर दिया, पर सुकुल जी दूध पीकर ही सन्तोष कर बैठे।००००

एक विप्लवी शहीद के उद्‌गार

'रोक्ते अमार लगेछे आज,
शरबो नाशेर नेशा।'

—हमारे खून में आज सृष्टि का सब कुछ नष्ट कर डालने का नशा उबल उठा है।

(पृष्ठ ६१ का शेष)

'वंश चाहे अखंड हो चाहे न हो, पर मातृभूमि ! हमारे उद्देश्य पूरित हों। प्रज्वलित अग्नि में माता के बन्धन तोड़ने के लिए अपना सर्वस्व जलाकर हम कृतार्थ हो गए हैं। प्यारी भावज ! इस तरह सोचकर अपने कुल की सफलता समझिए। श्री पार्वती जी ने हिमगिरि की चोटियों पर तप किया है और कई राजपूतानियां हंसते-हंसते प्राणों की आहुति दे चुकी हैं। प्यारी भावज ! भारतीय ललनाओं में वह तेज बल आज भी नष्ट नहीं हुआ है, इस बात को प्रमाणित करने के लिए, भावज ! तुम्हारा समस्त व्यवहार वीरांगना की तरह होना चाहिए। देवि, यहां से मेरा तुझे यही सन्देश है, तेरे वत्सल चरणों को यहींसे प्रणाम करता हूं। मेरा प्रेमपूर्वक प्रणाम स्वीकार करो। मेरी प्यारी पत्नी को आलिंगन कह देना। आज तक का इतिहास जिसको प्रकट रूप से दिव्य-ज्ञान कहता है उसी सत्तीव्रत-को, प्यारी भावज ! हमने सोच-समझकर स्वीकार किया है।०

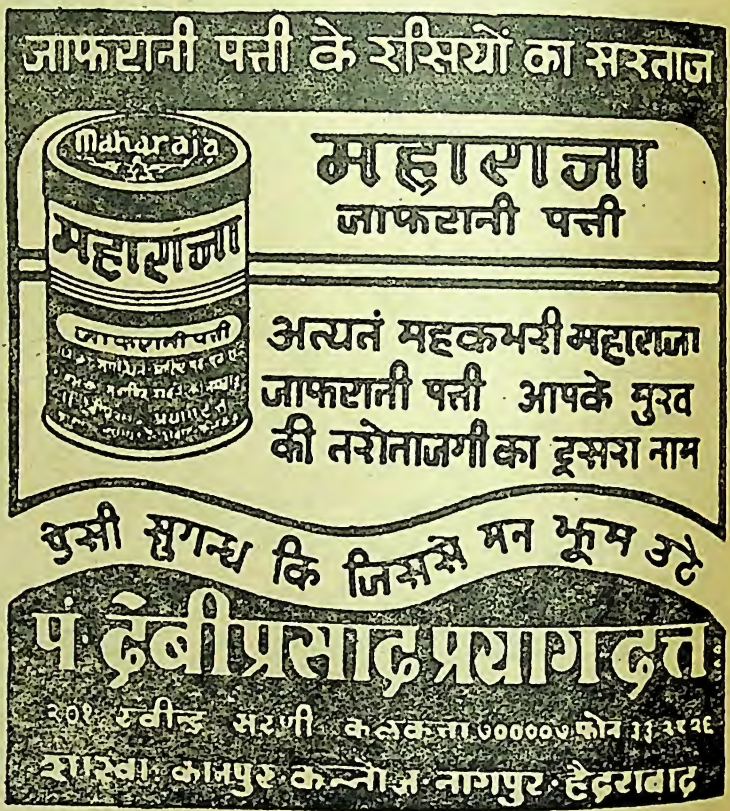

(पृष्ठ ९५ का शेष)

:०: :०: :०:

विदुला महाराज का संदेश लेकर रुक्मिणी के महल में आयी। उसने द्वार पर पहरा देने वाली प्रतिहारिणी को वहां से हट जाने का संकेत किया। रुक्मिणी के शयनागार में प्रवेश करके द्वार भीतर से बन्द कर लिया। वह दबे पांव रुक्मिणी के पलंग के पास पहुंच कर उस पर बैठ गयी। उसे देखते ही रुक्मिणी ने अपना मस्तक उसकी गोद में डाल दिया।

ममता से उसके सिर पर हाथ घुमाते हुए विदुला ने कहा—'राजकन्या होकर तुम राजनीति भूल गयी हो।'

'तुम क्या कहना चाहती हो?'

'तुम्हें भेद-नीति का, छल-कपट का नाटक खेलना ही होगा।'

'तुम साफ-साफ क्यों नहीं कहती?'

'सबसे पहले तुम्हें अपना अनशन भंग करके यह भ्रम उत्पन्न करना होगा कि तुम शिशुपाल के साथ विवाह करने को तैयार हो। दूसरी ओर कृष्ण को पत्र लिख कर सहायता के लिए बुलाना।'

'क्या वे समझेंगे नहीं कि मैं निपट लज्जाहीन हूं?'

'अरे, इसमें लज्जा कैसी? जिसे तुमने अपना सर्वस्व मान लिया, उसके सामने क्या मान, क्या अपमान? वे तो तुम्हारे जीवन-प्राण हैं, पराये थोड़े हैं।'

'पत्र लिखने में मुझे लज्जा तो आयेगी ही। तुम ही क्यों नहीं लिख देती?'

'वाह री चतुरा! प्रेम तुम करो और पत्र मैं लिखूं? तुम मुझसे अधिक बुद्धिमान हो।'

'ठीक है, लिखूंगी।'

'लेकिन ध्यान में रखना। इस प्रेम-पत्र की बात एकदम गुप्त रहे। मैं जाती हूं। तुम्हारे लिए फलाहार भेजने के लिए दासीको आज्ञा देती हूं।'

इतना कह कर विदुला चली गयी।

:०: :०: :०:

राजमहल पर मंडराने वाले संकट के बादल छट गये। सबने सुना कि राजकन्या रुक्मिणी शिशुपाल के साथ विवाह करने के लिए अब राजी हो गयी है। नयी उमंग तथा नये उत्साह के साथ मंद पड़ी विवाह की गतिविधियां तेज हो गयीं। राजमहल में मुक्त हास्य की किलकारियां फिर गूंज उठीं।

निर्धारित दिवस पर रुक्मिणी ने अन्तःपुर की वाटिका के एकांत में विदुला के हाथ में प्रेम-पत्र दिया। विदुला पढ़ने लगी। उसमें लिखा था—

'मेरे सर्वस्व के स्वामी!

मैंने एक भयंकर अपराध किया है। आप से बिना पूछे मैंने आपकी नयनाभिराम मूर्ति को अपने मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित कर लिया। मैंने अपने कुलदेवता की साक्षी में आपको अपना पति परमेश्वर चुन लिया है।

जब मैं आपको वर चुकी हूं; तब

शिशुपाल के साथ कैसे विवाह कर सकती हूं। मेरा भाई बलपूर्वक मेरा विवाह करने पर तुला है। मैं घोर संकट में हूं। आगामी पूर्णिमा के दिन आप मध्याह्न के उपरान्त कौण्डिन्यपुर में देवी के मन्दिर के दक्षिण द्वार पर रथ लेकर पहुंच जायेंगे।

आप समय पर नहीं पहुंचेंगे तो मैं प्राण त्याग दूंगी।

आप की दासी
रुक्मिणी।'

विदुला ने पत्र पढ़ कर एक लम्बी सांस खींची।

'कैसा है पत्र ?'

'पत्र नहीं, प्रणय की पुकार है। इसे पढ़ कर तो द्वारकाधीश सिर के बल दौड़े चले आयेंगे। लेकिन वहां जाकर मुझे भूल मत जाना।'

'अरी, मैं तो तुझे भी अपने साथ ले जाऊंगी। नहीं तो ये लोग मेरे पीछे तुझे जीवित नहीं रहने देंगे।'

'यह पत्र कृष्ण तक पहुंचाने वाले दूत को ढूंढना होगा। लेकिन उसे देने के लिए...।'

'अभी यह मुक्तामाला उसे दे देना और कहना कि कार्य पूरा हो जाने के बाद मुंहमांगा पुरस्कार दिया जायगा।'

:o: :o: :o:

कौण्डिन्यपुर में मां जगदम्बा का बड़ा प्राचीन मन्दिर था। उस मन्दिर के पुरोहित से विदुला के पिता की घनिष्ठता थी। इसलिए वे विदुला को बेटी के समान मानते थे।

देवी की सायंकालीन आरती समाप्त करने के बाद राज पुरोहित अपने विश्राम कक्ष में विश्राम कर रहे थे। विदुला को अचानक आते देख वे बोले—'ऐसे असमय आयी बेटी ?'

'आपसे एक आवश्यक कार्य है, ताऊ जी।'

'बड़ी-सहमी-सहमी दिखती हो ? क्या बात है ?'

'यहां नहीं, भीतर के कक्ष में चलिये।'

विदुला ने भीतर के कक्ष में पहुंचते ही उसकी कुंडी बन्द कर दी।

'द्वार क्यों बन्द करती हो ?'

'मेरे शब्द बाहर न जा सकें, इसके लिए।'

'क्या राजा के विरुद्ध मुझे उभाड़ना चाहती हो ?'

'राजकन्या के प्राण बचाने हेतु आप से सहायता मांगने आयी हूं।'

'क्या हुआ उसे ?'

'यदि उसका विवाह कृष्ण के साथ नहीं हुआ तो वह प्राण त्याग देगी। किसी भी तरह आप यह पत्र द्वारकाधीश तक पहुंचा दें। उपहार में यह मौक्तिक माला लायी हूं।'

'मुझे राजसत्ता के विरुद्ध खड़ा करना चाहती हो ?'

'राजसत्ता के नहीं, आततायी रुक्मी के विरुद्ध जो अपनी बहन का विवाह बलपूर्वक करना चाहता है।'

'यह बात यदि राजकुमार को मालूम हो जायगी तो वे मुझे हाथी के पांवों तले

कुचल देने का दण्ड देंगे ।'

'और यदि आपने मेरा काम नहीं किया तो आप पर दो कुमारियों के आत्म-घात का पाप लग जायगा। मैं कल प्रातःकाल ही आत्मदाह कर लूंगी। मैंने राजकन्या को वचन दिया है कि प्राण देकर भी मैं तेरी मनोकामना पूरी करूंगी।'

'तुमने तो मुझे बड़े धर्म-संकट में डाल दिया है, विदु ?'

'मैं इतना जानती हूं कि आप पर मां जगदम्बा की असीम कृपा है। आप का कोई भी अहित नहीं कर सकता। कल मां जगदम्बा सपने में आकर कहने लगी कि तुम क्यों रोती हो, बेटी ? अपने ताऊजी के पास जा। सब ठीक हो जाएगा।'

'क्या तुम सच कह रही हो ?'

'तुम मां से ही क्यों नहीं पूछ लेते?'

'जब उसकी ही यह इच्छा है तो फिर मैं कैसे ना कह सकता हूं। मां से आज्ञा लेकर मैं प्रस्थान करूंगा। तुम जाओ।'

विदुला ने पुरोहित को प्रणाम किया। वे बोले—'मां जगदम्बा, तुम्हारी और राजकन्या दोनों की रक्षा करें।'

:o: :o: :o:

किसी को जरा भी भनक नहीं मिल सकी की विदुला ने अपनी प्राणप्रिय सखी को संकट से बचाने के लिए कौन सा खेल खेला ? सभी अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे। कौण्डिन्यपुर की प्रजा भी अपनी राजकुमारी के विवाह को धूम-धाम से मनाने के लिए सभी प्रकार की तैयारियां कर रही थी।

फाल्गुन पूर्णिमा के दिन विवाह का मुहूर्त्त निर्धारित किया गया था। राजधानी में सर्वत्र उल्लास बिखरा था। रुक्मिणी भी बड़ी प्रसन्नचित दिखायी दे रही थी उसे गुप्त रीति से कृष्ण का संदेश प्राप्त हो गया था कि तुम निर्भय रहो। आखिर विवाह का दिन आ ही गया। प्रातःकाल से ही रुक्मिणी के हृदय का स्पन्दन तीव्र होने लगा। कभी-कभी अशुभ आशंका से उसके तन में कम्पन की लहरें चमक उठती थीं। परन्तु कृष्ण का स्मरण करते ही उसमें नूतन चेतना का संचार होने लगता।

पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार रुक्मिणी अपनी सहेलियों और दासियों के साथ देवी के दर्शन के लिए निकली। राजकुमारी के रथ के आगे-पीछे पचास सशस्त्र सैनिक चल रहे थे। रथ धीरे-धीरे मां जगदम्बा के मन्दिर के सामने आकर रुक गया।

दासियों के पास पूजा के सामान से भरी सोने की थालियां थीं। वे भी राज-कन्या तथा विदुला के पीछे-पीछे मन्दिर की सीढ़ियां चढ़ कर भीतर गयीं।

मन्दिर के मुख्य प्रवेश द्वार पर ही रथ रोक दिया गया था। रथ के निकट सैनिक पहरा दे रहे थे। मन्दिर के भीतर जाकर रुक्मिणी और विदुला ने देवी के दर्शन किये। उन दोनों नें मां से वरदान

मांगा कि उन पर कोई आंच न आने पाये।

दासियों को पुजारी के पास बैठने की आज्ञा देकर दोनों मन्दिर की प्रदक्षिणा करने लगीं। आठवीं प्रदक्षिणा करते समय दासियों ने उन दोनों को बराबर देखा था। किन्तु नौवीं परिक्रमा के समय दोनों भी नहीं दिखीं।

रुक्मिणी और विदुला विद्युत गति से दक्षिण द्वार से निकल कर दूर खड़े रथ के पास पहुंच गयीं। कृष्ण वहां पहले ही आ गये थे। वे योद्धा की वेशभूषा में सज्जित थे। वे जानते थे कि आज युद्ध किये बिना रुक्मिणी को सुरक्षित ले जाना कदापि सम्भव नहीं होगा।

कृष्ण को देखते ही रुक्मिणी उनके चरणों पर गिर पड़ी। उसे दोनों हाथों से ऊपर उठाते हुए कृष्ण ने कहा—'राजकुमारी, मेरे चरण छूने का यह समय नहीं है। युद्ध की बेला है। तुम शीघ्र रथ पर चढ़ कर मेरे अश्वों की रास संभालो। मैं पीछे तुम दोनों की रक्षा के लिए धनुष-बाण लेकर खड़ा रहता हूं।'

एक क्षण का भी विलम्ब न करते हुए कृष्ण अपने रथ के सामने गये। उन्होंने चारों अश्वों की पीठ थपथपा कर उन्हें आंखों से इशारा किया और दौड़ कर रथ पर चढ़ गये।

इतने में ही 'पकड़ो-पकड़ो; मारो-मारो!' की ध्वनियों से आकाश गूंज उठा। कृष्ण के रथ के पीछे रुक्मी के सैनिक दौड़ रहे थे। उनके घोड़े समीप आते देख कृष्ण ने धनुष पर बाण चढ़ा-कर एक-एक को धराशायी करना आरम्भ कर दिया।

कुछ पलों तक यह छोटा युद्ध चलता रहा। बाद में कृष्ण ने देखा कि पूर्वाकाश धूल के बादलों से पीत होने लगा है। उन्हें समझने में देर नहीं लगी कि रुक्मी अपनी नयी सेना लेकर प्रतिकार करने चला आ रहा है। कृष्ण ने पीछे दृष्टि घुमाकर रुक्मिणी से कहा—'तुम्हारा लाड़ला भाई अपनी सेना लेकर मुझे पकड़ने आ रहा है।'

रथ में बैठी दोनों नारियां भयाक्रान्त होकर कह उठीं—'अब क्या होगा?'

'जब तक मेरे हाथ में सुदर्शन चक्र है, तब तक तुम्हें कोई छू भी नहीं सकता। तुम निश्चिन्त बनी घोड़ों की बागडोर पकड़े रहो। मैं तुम्हारे भाई को मजा चखाता हूं।'

कृष्ण ने बाणों की वर्षा करके रुक्मी के रथ के चक्र तोड़ डाले। उसके द्रुत गति अश्वारोहियों को बाणों से छलनी बना कर यमलोक पहुंचा दिया। कई कोसों तक पीछा करने के बाद रुक्मी समझ गया कि कृष्ण को पकड़ पाना कदापि सम्भव नहीं है। उसने अपनी सेना को वापस लौटने का आदेश दिया।

राजकन्या रुक्मिणी को लेकर कृष्ण सकुशल द्वारका पहुंच गये। उसके प्रत्येक राजमार्ग पर कृष्ण का स्वागत करने के लिए प्रजाजन खड़े थे। वे रथ पर पुष्प वर्षा करते हुए 'द्वारकाधीश गोपाल कृष्ण की जय' की घोषणा कर रहे थे।

कहानी

कंजूस की मुहरें

टालस्टाय
अनु०-प्रेमचंद

कहा जाता है कि अत्यन्त कंजूस और स्वार्थी मनुष्य चांदनी रात में अकेला कहीं जा रहा था। मार्ग में उसे प्राचीन मकानों के खण्डहर मिले। वह अपनी धुन में मस्त चला जा रहा था। सहसा उसके पैर किसी वस्तु से टकरा गए। टकराते ही वह खनखनाती हुई वस्तु और आगे लुढ़क गई। उसने गौर से देखा.....सोने की मुहरों से भरा हुआ घड़ा आगे लुढ़का हुआ पड़ा है।

उस अपार धन-राशि को पाकर वह आनन्द विह्वल हो गया। कहीं कोई देख न ले, इस भय से वह उन मुहरों को छिपाने के लिए सोचने लगा। उसके पास एक थैला था। उसने उन मुहरों को थैलों में भरकर कंधे पर रख लिया और जंगल की ओर किसी सुरक्षित स्थान में छिपाने के लिए शीघ्रता से आगे बढ़ा।

वह कंजूस मन ही-मन प्रसन्न होता हुआ जंगल की ओर बढ़ता ही गया। जंगल के मध्य में पहुंचकर उसने मुहरों को छिपाने के लिए एक सुरक्षित स्थान देखा। जब उसने थैला खोला तो मुहरों को न पाकर आश्चर्य में पड़ गया। उसे अत्यन्त गहरी निराशा हुई।

कुछ देर तक वह चिन्तित बैठा रहा। पुनः ध्यानपूर्वक देखने से उसे पता चला कि थैले में एक छोटा-सा सूराख है जिससे मुहरें एक-एक करके गिर गई। उसने एकत्रित करने के विचार से वह शीघ्र ही उठा और जिधर से आया था उधर ही लौट पड़ा।

मार्ग में गिरी हुई मुहरें उसे दिखाई दीं और वह जब उन्हें पृथ्वी पर से उठाने के लिए झुका, तो सोने की मुहरें न मिलीं परन्तु जहां-जहां मुहरें गिरीं थीं, वहां-वहां पीले-पीले फूल मिले जो कालांतर में गेंदे के फूल कहलाये।

वह कंजूस अपार धनराशि को खोकर दुखी होने लगा और उन पुष्पों की ओर देखने से उसे अरुचि होगयी।

लोगों को ऐसा लगा कि गेंदे के फूल अपनी मधुर गंध व सौंदर्य से सभी को प्रफुल्लित करते हैं, परन्तु स्वार्थी और कंजूस मनुष्य उसे देखकर हर्षित नहीं होते।०

जब ईसाई प्रचार के लिए २७० साल पहले

मद्रास के निकट ट्रांक्वाबार क्षेत्र में आज से २७० वर्ष पूर्व एक प्रिंटिंग प्रेस लगाया गया था। इस हाल्ले, जो अब जर्मन जनवादी गणतंत्र में है, के रिफार्म चर्च के प्रचार केन्द्र द्वारा यूरोप से भारत भेजा गया था। इस केन्द्र के आयोजक थे आउगुस्ट हरमन्न फ्राके, जो शहीद मार्टिन लूथर के सक्रिय रिफार्मड चर्च के एक रूढ़ भक्तिवाद के संस्थापक भी थे। १६९० में, फ्राके पहले प्राच्य भाषाओं के और फिर धर्मशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त किए गए। उन्होंने 'फिदाय' प्रचार के महान कार्यक्रम के जरिए लूथरीय धर्मशास्त्र को विश्व में फैलाने की कोशिश की। इस सिलसिले में उन्होंने १७०२ में 'कालेजियम ओरियंटाले थियोलाजीकम' की स्थापना की। इस संस्थान में अरबी, इथियोपियाई, चैल्डियन, हिब्रू और अनेक यूरोपीय भाषाएं पढ़ाई जाती थीं।

डेनमार्क के सम्राट फ्रेडरिक चतुर्थ ने फ्रांके से अनुरोध किया कि वह मद्रास के निकट की डेनिश बस्ती ट्रांक्वाबार में शिक्षक तथा मिशनरी भेजे। १७०५ में, बार्थोलोम्युस जीगेनबाल्ग तथा हाइनरिख प्लूटशाऊ हाल्ले से ट्रांक्वाबार के लिए रावाना हो गए। पढ़ाते समय इन्हें महसूस हुआ कि स्थानीय भाषा तमिल की जानकारी बहुत जरूरी है और १७०७ से उन्होंने तमिल में ही पढ़ाना शुरू कर दिया। उन्होंने धर्म प्रार्थनाओं तथा अन्य पुस्तकों का अनुवाद किया, जिसकी प्रतियां तैयार करने के लिए नकल से गुजारा करना पड़ता था। उन्होंने तमिल, पुर्तगाली तथा डेनिश भाषाओं के शिक्षण के लिए भी स्कूल खोला। जीगेनबाल्ग ने बाइबल का तमिल में अनुवाद (१७०८-१७११) में किया और इसे ट्रांक्वाबार में छापने के लिए यूरोप से एक प्रेस प्राप्त किया। प्रेस के साथ हाल्ले से तीन मुद्रक योहान्न बर्लिन, योहान्न गोट्टलीब एडलर तथा उसका भाई भी आया। इसके साथ ही हाल्ले में तैयार किया गया तमिल का टाइप भी आया। उन्होंने १७१२ में तमिल पुस्तकें छापनी शुरू कर दी थीं।

यूरोप वापिस पहुंचने के बाद जीगेनबाल्ग ने तमिल व्याकरण लिखी, जिसे १७१६ में हाल्ले में छापा गया।

१७१८ में हाल्ले से एक और ग्रुप ट्रांक्वाबार आया। इनमें बेंजामिन शुल्जे, योहान्न हाइनरिश किस्टबमाखेर और निकोलस डाल थे। इसके एक वर्ष बाद जीगेनबाल्ग की मृत्यु हो गई।

शुल्जे ने शीघ्र ही तमिल तथा तेलुगु सीख ली और इन दो भाषाओं में अनुवाद

मद्रास में जर्मन प्रेस लगा

करना शुरू कर दिया वे भाषा विज्ञानी थे १७२५ में उसने लैटिन तथा संस्कृत भाषाओं के अन्तः सम्बन्धों का अध्ययन किया और १७४५ में हाल्ले में 'ग्रामेटिका हिंदुस्तानीका' प्रकाशित का। उसके बाद उसने उर्दू का व्याकरण लिखा तथा बाइबिल का उर्दू में अनुवाद भी किया।

VIRI PLUR. REVERENDI

BENJAMINI SCHULZII

MISSIONARII EVANGELICI

GRAMMATICA HINDOSTANICA

COLLECTIS

IN DIUTURNA INTER HINDOSTANOS COMMORATIONE IN JUSTUM ORDINEM REDACTIS AC LARGA EXEMPORUM LUCE PERFUSIS REGULIS CONSTANS ET MISSIONARIORUM USUI CONSECRATA.

EDIDIT

ET DE

SUSCIPIENDA BARBARARUM LINGUARUM CULTURA

PRÆFATUS EST

D. JO. HENR. CALLENBERG

THEOL. ET PHILOS. PROF. PUBL. ORD.

HALÆ SAXONUM

IN TYPOGRAPHIA INSTITUTI JUDAICI

MDCCXXXXV.

१७४५ में बेनामिन शुल्जे लिखित 'ग्रामेटिका हिन्दोस्तानी का' मुखपृष्ठ

इन्हीं वर्षों में एक प्रथम भारतीय ने हाल्ले विश्वविद्यालय का दौरा किया। 'क्रोनिकल आफ हाल्ले' में १६३३ के बारे में लिखा है: 'गुजरात के मालवा प्रांत से एक विशिष्ट भारतीय सुल्तान गुन अश्मत महामहिम फान अन-हाल्त-सेरवस्त का सिफारिशी खत लेकर आया। सुल्तान मैट्रिकुलेट हैं और उसने दर्शन शास्त्र तथा गणित का अध्ययन शुरू कर दिया है...'।

हाल्ले तथा भारत के बीच २९० वर्ष पुराने सम्पर्कों की परम्परा का पालन आज भी हाल्ले विश्वविद्यालय में किया जा रहा है। मिशनरियों द्वारा ट्रांक्वावार में करीब १०० वर्ष की अवधि के भीतर तैयार की गई अनेक रिपोर्टें हाल्ले में हैं और भारत तथा जर्मन जनवादी गणतंत्र द्वारा वैज्ञानिक अध्ययन के संयुक्त प्रयासों का इन्तजार कर रही हैं। ००

युगारम्भ (नव वर्ष) और विक्रम-संवत् की बात

नव वर्षारम्भ या नये साल का प्रथम दिन अर्थात् वर्ष-प्रतिपदा क्या सृष्टि का पहला दिन है? इसका उत्तर दक्षिण के 'उगादि' उत्सव में समाहित है, मुखरित। तेलगु तथा कन्नड़—भाषी समाज चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से यह पर्व मनाते हैं और इसे नववर्ष का उत्सव मानते हैं। दक्षिण का यह 'उगादि शब्द वस्तुतः 'युगादि' का विकृतरूप है, अपभ्रंश। इसे युगारम्भ कहना समीचीन होगा। ज्योतिषाचार्य हेमाद्रि भी लिखते हैं,

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्म, ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु तथा सूर्योदयेसति॥

हेमाद्रि वर्षारम्भ सौर-काल मान से न मानकर चान्द्र-काल-मान से मानते हैं तथा 'उगादि' भी चान्द्र-काल-मान से निर्णीत होता है। हमारे यहां नववर्षारम्भ सौर-काल-मान से तय करते हैं। जो हो; चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही वर्षारम्भ मान्य है। इसी दिन से विश्वावसु भी शुरू हो जाता है। आन्ध्र में 'उगादि नववर्ष का ही द्योतक है।

यह वर्ष प्रतिपदा हमारी महान विजयों का भी स्मरण कराती है, ५७ ईसवी पूर्व विक्रमादित्य ने शकों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में विक्रमसंवत् का प्रवर्त्तन किया था, शकों को उज्जयिनी से मार भगाया था। विक्रमादित्य ने एक विराट् गण-संघ भी गठित किया था जिसमें अवन्ती, सौराष्ट्र, राजस्थान, मालवा तथा मध्यभारत सम्मिलित थे। उस जमाने में यौधेय, मालव, मद्र, आर्जुनायन, शिवि, उत्सव संकेत, वृष्णि, शूद्र, औदुम्बर, महाराज—जनपद सरीखे गणराज्य विद्यमान थे। सिन्धु और 'धाकर' का भी नाम था. विख्यात थे।

विक्रम संवत् को पहले कृत, पश्चात् मालव संवत् कहलाते थे। इन विक्रमादित्य के पिता का नाम गर्दभिल्ल लिखा मिलता है परन्तु यह भी विवाद है कि गर्दभिल्ल उनका वास्तविक नाम नहीं था।

सम्पादक द्वारा

महादेवी जी, रिश्वत दीजिए !

उस शाम के अखबार का पन्ना, एक समाचार सामने था—'महादेवी वर्मा से भी रिश्वत मांगी। बिहार में भ्रष्टाचार इस कदर व्याप्त है कि वहां के शिक्षा विभाग के एक अधिकारी को प्रख्यात कवियत्री महादेवी वर्मा से भी रिश्वत के रूप में ५० हजार रु० मांगने में हिचकिचाहट नहीं हुई।

प्रयाग महिला विद्यापीठ की परीक्षाएं तमाम देश में होती हैं, जिनसे हजारों लड़कियां अपना भविष्य बनाती हैं। इस वर्ष ३१ दिसम्बर के बाद बिहार सरकार ने इस परीक्षा को मान्यता नहीं दी। महादेवी जी ने बताया कि उनसे ५० हजार रुपये मांगे गये हैं कि इसके बाद मान्यता मिलेगी। महादेवी जी ने कहा—'मैं इतने रुपये कहां से लाऊं?' समाचार पढ़कर सचमुच धक्का लगा। माना कि यहां सब रिश्वतखोर हैं लेकिन एक घर तो डाइन भी छोड़ देती है। लेकिन हमारे रिश्वतखोर तो इस मामले में पूरे लोकतन्त्रीय हैं। रिश्वत लेने के मामले में इनके लिए सब बराबर हैं। कोई छोटा-बड़ा नहीं। कितना पतन हो गया है प्रशासकों का। ऐसा तो नहीं है कि वे महादेवी वर्मा को नहीं जानते। खून और पसीने से जीवन भर सींची उनकी संस्था 'प्रयाग महिला विद्यापीठ को' नहीं जानते। यह नहीं जानते कि इस संस्था ने १९४२ के आंदोलन में कितना सक्रिय हिस्सा लिया था। कितने लोग वहां पनीह पाते थे। सब जानते हैं। साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में महादेवी के अनुदान को, उनके उज्जवल, निर्भीक, तपःपूत, गरिमामय चरित्र को सब जानते हैं। लेकिन अपने 'कमीनेपन' से मजबूर हैं।

किस अधिकारी ने पचास हजार रुपये रिश्वत की मांग की, यह समाचार में नहीं था। लेकिन समाचार पढ़कर डा० जगन्नाथ की सरकार, यदि उसमें जरा भी पानी शेष है, इसका पता लगा सकती है। लेकिन डा० जगन्नाथ को इसकी फुर्सत नहीं है। इतने बड़े बीमार राज्य में वे अकेले डाक्टर हैं। खुदा हाफिज! सुना है कि महादेवी जी ने स्वयं उनको पत्र लिखा और इस घांधली की ओर उनका ध्यान दिलाया। इतना ही नहीं, राजनीति की दुनिया के कुछ प्रभावशाली लोगों ने भी उनसे इस मामले में हस्तक्षेप करने और विद्यापीठ की परीक्षाएं वैध करने के लिए कहा, लेकिन कोई असर नहीं हुआ। जब कोई सरकार भ्रष्ट अधिकारियों के पहिये पर चलती है और उसे ही अपनी नियति मान लेती है तो क्या कहा जा सकता है? वैसे अब कहने सुनने से भी कुछ नहीं होता। दिन पर दिन यह अहसास आम जनता को होता जा रहा है कि प्रशासन भय की भाषा ही समझ सकता है। तर्क की भाषा से उसे कोई मतलब नहीं। व्यंग्य की भाषा के लिए वह बिलकुल बहरा है।००

स० द० स०

सावरकर का अनूठा 'वायरलेस और पोस्टेज

● धनंजयवीर

अण्डमान की सेल्यूलर जेल में बन्द राजनैतिक कैदियों में से जो अधिक साहसी थे, उन्होंने अपने अधिकारों के लिए हड़ताल शुरू करने का संकल्प किया। इस हड़ताल में कई विशेष घटनायें हुई। अच्छे परिवार के एक खामोश और तन्दुरुस्त पंजाबी क्रांतिकारी को तेल पेरने के कोल्हू में जोत दिया गया; दोपहर के १० बजे के बाद उसने कोल्हू चलाना बन्द कर दिया और इत्मीनान के साथ स्नान किया; अपना खाना खाया। जेल के छोटे अफसरों (जमादार आदि) की गालियों की बौछार की उसने कतई परवाह नहीं की। स्थिति अपेक्षाकृत बर्दाश्त के बाहर हो गयी। मोटी तोंद वाला जेलर (बारी) अपने स्टाफ के साथ मौके से आ धमका।

कैदी ने उससे कहा कि मैं अपना भोजन वैज्ञानिक-रीति से चबा-चबाकर खा रहा हूं। बारी ने उसे सजा की धमकी दी, किन्तु उस पर कोई असर नहीं हुआ।

ऐसे विद्रोही राजबन्दियों को केवल चावल का माड़ ही खाने को दिया जाता उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण करने के लिए उन्हें जबर्दस्ती कुनै या दस्तावर दवाइयां पिलायी जाती थी इससे उनकी यातनायें और वेदनायें गयीं। इन असहनीय यातनाओं के बावजूद यह वीर क्रान्तिकारी नहीं झुका। आखिर बारी को समझौता करना पड़ा लगातार चार दिन काम करने के बाद उसे कठिन श्रम से मुक्त कर दिया गया। इस हड़ताल का नतीजा यह हुआ कि राजनैतिक बन्दियों को उनकी मांग के विपरीत बाहर काम पर भेज दिया गया वहाँ उन्हें कुछ बेतुके कठिन काम करने पड़े; परन्तु हर एक ने अफसरों की गाड़ियां खीचने से मना कर दिया और अपना स्वाभिमान बदस्तूर रखा।

सावरकर जी के बड़े भाई (श्री गणेश दामोदार सावरकर) कभी न झुकने वाले कैदियों में से थे। जेलर और वार्डर खुशामदी मातहत 'कुत्तों ने उन पर प्रकार का अत्याचार किया दुर्भाग्य

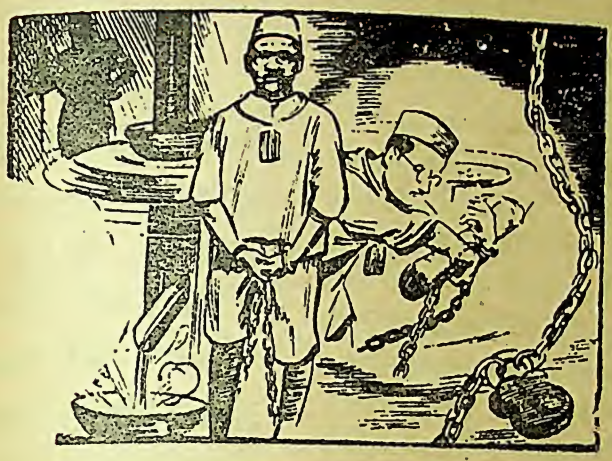

वीर सावरकर [कोल्हू पेरते हुए] और उनके बड़े भाई गणेश सावरकर
अण्डमान जेल में

कुछ रोगों ने उनके कष्ट को और भी बढ़ा दिया। उन्हें जब तब आधाशीशी का दर्द, नियादी बुखार और विशूचिका हो जाती थी; किन्तु दवा की एक बूंद भी उन्हें कभी नहीं दी गयी। दर्द के मारे वह भीषण रूप से कराह उठते थे। फिर भी उन्हें नारियल की जटा कूटनी पड़ती थी। बन्द कोठरी में कूड़े के ढेर पर विवशतः उन्हें पतले दस्त करने पड़ते थे और जब दरवाजा खुलता था, तो उसे अपने हाथों बटोरकर बाहर फेंकना पड़ता था। ऐसे अनिवार्य नियम-भंग पर भी उन्हें अक्सर अपार कष्ट दे खड़ी हथकड़ी में लटका दिया जाता था, उसी अवस्था में खड़े-खड़े पतले दस्त और पेशाब स्वतः होते रहते थे। मनुष्य ने मनुष्य को क्या बना डाला था। मानव का कैसा भीषण पतन! फिर भी फौलादी शरीर वाला यह महान वीर इतनी यन्त्रणायें और वेदनायें सहते हुये भी पूरी शक्ति से कोल्हू चलाता रहा। परन्तु रंचमात्र भी सुविधा खरीदने के लिए निज गौरव के प्रतिकूल न तो कोई कार्य किया और न तो अप्रतिष्ठा के आगे घुटने ही टेके। काफी दिनों तक दोनों भाइयों को एक दूसरे की झलक तक नहीं मिलने दी गयी। जब सावरकर ने अपने बड़े भाई की गम्भीर बीमारी के बारे में जेल के अफसरों से पूछा तो उन्हें बताया गया कि वे केवल अपने विषय में बोल सकते हैं। उन्होंने कहा कि नियमों से बंधे होने के कारण वे उनके (बड़े भाई के) बारे में किसी

कैदी से कुछ नहीं बता सकते।' आखिर कार सहानुभूति ने काम किया और बाबाराव ने अपने छोटे भाई को देख ही लिया वर्षों बाद अपने अनुज को देखकर बाबाराव चिल्ला पड़े-'तात्या! तुम यहाँ कैसे आ गये?' इस सीधे प्रश्न से सावरकर का हृदय विदीर्ण हो उठा। वह बोल पाते, उसके पहले ही दोनों भाइयों को बलात् खींचकर दूर कर दिया गया। अनन्तर एक गुप्त पत्र में बाबाराव ने अपने भाई को दुःखी हृदय से लिखा-'तुम भारतमाता की स्वतन्त्रता के लिए सतत् संघर्षरत हो, मात्र इसी विश्वास से मेरे हृदय को सांत्वना थी और मेरी यातनाएं हल्की हो जाती थीं। तुम्हारा कार्य कौन जारी रखेगा। तुम्हारी प्रतिभा और शक्ति अब व्यर्थ नष्ट हो जायेगी।' सावरकर ने सान्त्वना पूर्ण शब्दों में उत्तर भेजा-'मेरी शक्ति और क्षमता की अग्नि परीक्षा हो चुकी है। इसमें गौरव की यही बात है कि जो मैंने कहा, उस पर अमल किया और अग्रिम मोर्चे पर लड़ता हुआ गिरा। यह भी एक पावन कर्तव्य है कि काल कोठरी में सड़ते हुए उन लोगों के शापों के साथ यन्त्रणायें भोगे, जिनके लिए हम लड़ रहे हैं। अन्तिम विजय पाने के लिए इन कोठरियों में ये यंत्रणायें, आहें और बलिदान उतने ही आवश्यक हैं, जितना कि गौरवपूर्ण तूर्यनाद के साथ युद्ध करना।'

प्रशासन के क्रूर नखों को कुंण्ठित कर देने और अपने ऊपर होने

संकल्प

हम सब होते शांत बंधु, तो
हंस कर दीप-शिखा-से जलते
स्वतंत्रता के यज्ञ-कुंड में
समिधा से हम अर्पित होते।

वसुन्धरे! तेरी बलिवेदी पर
अपना जीवन, तन-मन-धन सब
देना परम भाग्य है, महा पुण्य है

विनायक दामोदर सावरकर

वाले अत्याचारों को घटाने के लिए राजनीतिक बन्दियों ने सावरकर जी के नेतृत्व में उपाय ढूंढ़ने प्रारम्भ किये बाहर से प्रशासन पर दबाव डलवाना अत्यावश्यक था। इस मृत्युभूमि पर शासन करने वाले अंग्रेज अधिकारी अपने सुखोपभोग करने के लिए एक दूसरे पर निर्भर थे, एक साथ खेलने, नाचने और आनन्द मनाने के कारण स्वभावतः प्रशासन में उनके हित परस्पर नहीं टकराते थे। अतः एक के विरुद्ध शिकायत पर दूसरा ध्यान नहीं देता था। इसलिए यह आवश्यक था कि भारत में नेताओं पर इन भीषण अत्याचारों के बारे में पता चले, किन्तु बिल्ली के गले में घंटी

बांधे। अतः होतीलाल जी वर्मा ने यह साहस किया गुप्त माध्यम के द्वारा उनका गोपनीय पत्र बंगाल के तत्कालीन यशस्वी संपादक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पास पहुंचा। उक्त पत्र में जेल-जीवन का विस्तृत विवरण दिया गया था। श्री सुरेन्द्रनाथ वर्मा ने उस पत्र को होतीलाल के हस्ताक्षरों उनकी जेल की कोठरी नंबर के साथ अपने 'बंगाली' पत्र में प्रकाशित किया। यह बम के एक भीषण धड़ाके की तरह था। यह सुनकर बारी आग-बबूला हो कोठरियों की ओर दौड़ा। वह होतीलाल पर गरजा-'खड़े हो जाओ, तुम बहुत बदमाश हो' बारी ने सावरकर को होतीलाल की शरारत के बारे में बताया और उसमें इतना झूंठ और जोड़ दिया कि 'जिस प्रेस में 'बंगला' छपता था उसे जब्त कर लिया गया है।'

अण्डमान में हर कोई यह जानने के लिए उत्सुक रहता था कि समुद्र-पार मातृ भूमि में क्या घटित हो रहा है। समाचार पाने के लिए ही अण्डमान में नये आने वालों का हार्दिक स्वागत किया जाता था। अन्य माध्यमों से भी समाचार प्राप्त करके उन्हें सब में प्रचारित किया जाता था। पंजाब के एक बड़े नेता का पुत्र पंजाब की ही जेल में अपनी सजा काट रहा था। वहाँ से आने वाले एक कैदी की टिकट के पीछे उस वीर ने सावरकर जी के नाम एक पत्र लिखा। कैदी उस पत्र को सावरकर जी तक ले आया और उसे कोई पकड़ न सका। विदेशी समाचार प्राप्त करने का साधन पुराने अखबारों के वे रद्दी टुकड़े थे जो अंग्रेज अफसरों के द्वारा पतनालों के बाहर फेंक दिये जाते थे या जिनमें कोई सामान बाहर से लपेटकर लाया जाता था। अनेक कैदियों से जेल से बाहर काम करने की सुविधा सिर्फ इसलिए छीन ली गयी, क्योंकि वे अखबारों के टुकड़े जेल के अन्दर ले आये थे। फिर भी समाचार एजेन्सी अबाध कार्य करती रही। राजनीतिक बन्दी ऐसे साहसी और निष्ठावान संदेशवाहकों को गुप्त रूप से अपनी भोजन सामग्री में हिस्सेदार बना लिया करते थे। बारी परेशान था। वह समाचारों को दबा पाने में अपने को असमर्थ पाकर किंकर्तव्यविमूढ़ था। उसने जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट से अनेक बार कहा कि 'यदि उसके स्थान पर शैतान होता, उसको भी जेलर बना दिया जाता तो उसके लिए भी इन बम फेंकने वालों तक समाचारों को पहुंचने से रोक पाना असंभव है। कभी-कभी रात को गश्त करते हुए बारी ने जेल के एक छोर से दूसरे छोर तक राजनैतिक बन्दियों द्वारा एक दूसरे को जंजीरों की विचित्र आवाज के माध्यम से संदेश भेजते हुए सुना। यदि कभी बेपढे वार्डर ने किसी प्रकार की शंका भी की, तो बन्दी उससे कह देते थे कि वे जंजीरों की ध्वनि पर अपने मन में प्रार्थनायें किया करते हैं। अण्डमान का 'यह 'वायरलेस' नगरी में बाबाराव सावरकर के द्वारा चलाया गया था।

अपनी वैसी ही हृदयहीनता के साथ

बारी ने एक बार सावरकर को सूचित किया कि उनके मित्र लाला हरदयाल भी अण्डमान में (बन्दी-रूप में) आने वाले हैं। अनेक प्रकार से गुप्त पूंछताछ के बाद सावरकर को पता चला कि हरदयाल जी वास्तव में अमरीकन सरकार की पकड़ से बाहर खिसक गये हैं। इसी प्रकार एक बार बारी ने उनके छोटे भाई नारायणराव सावरकर के विषय में बतलाया कि दिल्ली में लार्ड हार्डिञ्ज पर बम फेंकने के अपराध में वह भी (काले पानी के कैदी के रूप में) अण्डमान पहुंचने वाले हैं। 'सावरकर' और 'राजद्रोह' परस्पर पर्याय शब्द बन गये थे। चीफ कमिश्नर तक ने सावरकर को बताया कि एक बार स्टीमर पर श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से उनकी भेंट के दौरान उन्होंने उससे सावरकर के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की थी। सावरकर के हृदय में श्री सुरेन्द्रनाथबनर्जी के प्रति उच्च आदर भावना के अतिरिक्त और कुछ न था। एक बन्दी जर्मन अधिकारी के द्वारा बंगाल के बेताज बादशाह श्री बनर्जी का प्रोत्साहन भरा सन्देश पाकर और उनके द्वारा अण्डमान में बन्दी देशभक्तों के प्रति की गयी सहानुभूति और सहायता के लिए सावरकर ने अपनी श्रद्धा अर्पित की।

० ० ०

सावरकर यह जानने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे कि जार्ज पंचम के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में भारत की स्वतन्त्रता के लिए क्या प्रगति हुई है उन्हें ज्ञात हुआ है कि मामला ज्यों का त्यों है, बंगाल का विभाजन रद्द हो गया है। इससे सावरकर को प्रसन्नता हुई, अपने साथियों से बोले-'यदि किसी आदमी को एक बार यह सन्तोष हो जाय कि कुनैन खाने से मलेरिया बुखार जड़ से जाता रहता है, तो जब भी उसे मलेरिया होगा, वह कुनैन खा लेगा।' जैसा कि सावरकर' ने भविष्य वाणी की थी, भारत की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित होने जा रही थी परंतु उनका कहना था कि इतिहास, संस्कृति, राजनीति और भूगोल की दृष्टि से उज्जयिनी ही भारत की राजधानी बनायी जाने के योग्य है। २३ दिसम्बर १९१२ ई० का दिन राजधानी कलकत्ता से दिल्ली लाये जाने के लिए तय किया गया था। भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिञ्ज के पूरी-शान-शौकत से दिल्ली में राजसी-प्रवेश का स्वागत भीषण बम से किया गया। बम-विस्फोट से हाथी पर चांदी के हौदे में सवार हार्डिञ्ज घायल हो गया। हौदे पर उसके पीछे राजच्छत्र को पकड़े बैठा आदमी मारा गया। घावों से खून अधिक बह जाने के कारण हार्डिञ्ज मूर्च्छित हो गयाऔर उसके कई महीने में बाद जाकर ठीक हुए। ऐसा प्रतीत हुआ कि सम्राट की घोषणा क्रान्तिकारियों को सन्तुष्ट न कर सकी। ब्रिटिश सत्ता से मातृभूमि को मुक्त कराने के लिए वे पूर्ववत् जूझ रहे थे।

सेल्यूलर जेल के कठोर तथा अत्या-

ज्ञानमोल मोती

काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वा वापि निधिमग्रतः ।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थं मपेक्षते ।।

—हितोपदेश

काकतालीय न्याय से अचानक प्राप्त हुए खजाने को सामने देख कर भी भाग्य उसको स्वयं नहीं देता, पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है।

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तुतस्य ब्रूयात्सदाप्रियम् ।
व्याधो मृगवधं गन्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ।।

—चाणक्य

जिससे अपना काम कराने की इच्छा हो, उससे प्रिय वचन बोलो, क्योंकि बहेलिया श्रेष्ठ स्वर से गीत गाता-गाता ही मृग को मार लेता है।

तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ।
ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ।।

—लिंगपुराण

हजारो जप यज्ञों से ध्यान यज्ञ को श्रेष्ठ कहा गया है। ध्यान यज्ञ सबसे विशिष्ट होता है। इससे श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं होता, क्योंकि यह ध्यान ही ज्ञान का साधन है।

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ।।

—वाल्मीकि

गो-हत्या करने वाले, शराब पीने वाले, चोरी और व्रत-भंग करने वाले के लिए तो सज्जनों ने प्रायश्चित का विधान किया है किन्तु कृतघ्न पुरुष के लिए कोई प्रायश्चित नहीं बताया गया है।

संसृतौ व्यवहाराय सारभूतं धनं स्मृतम् ।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै हि उपायसाहसैः ।।

—शुक्राचार्य

सांसारिक व्यवहारों के लिए धन ही सारवस्तु है। इसलिए मनुष्य को युक्ति एवं साहस के साथ उसकी प्राप्ति के लिए उद्योग करना चाहिए।

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमातृप्तिः अहिंसैका सुखावहा ।।

—वेदव्यास

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष देने वाली है और एक मात्र अहिंसा ही सुख देने वाली है।

वियतनाम का हिन्दू-राज्य

आज का विएतनाम कभी दक्षिण-पूर्वी एशिया में हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का केन्द्र था। लगभग पन्द्रह सौ वर्षों तक इस भूभाग पर हिन्दू राजा राज्य करते रहे और अबाध रूप से हिन्दू धर्म-पताका फहराती रही। पूर्वी द्वीप-समूहों में फैले भारतीय वीरों की कुछ टोलियां ईसा की पहली शताब्दी में इस द्वीप पर उतरीं। उस समय दक्षिण विएतनाम का यह भू-भाग घने वनों तथा बर्बर जंगली जातियों से आच्छादित था। भारतीयों को समुद्री व्यापार के लिए यह स्थान बहुत उपयुक्त लगा अतः देखते ही देखते सुवर्ण द्वीप (पूर्वी द्वीप-समूह) से लाखों की संख्या में भारतीय यहाँ आकर बसने लगे। उन्होंने यहाँ के घने वनों को काटकर अनेक सुन्दर नगरों का निर्माण किया। पर, यहाँ उनके सामने सबसे प्रमुख समस्या उन जंगली और बर्बर जातियों की थी, जो निरन्तर भारतीयों पर आक्रमण करती रहती थीं। पर, अनेक वर्षों के निरन्तर प्रयास से यह समस्या भी सुलझ गई और इन वीर जंगली जातियों को हिन्दू-संस्कृति के रंग में रंग दिया गया। इस भू-भाग का भारतीय वीरों ने नाम रखा—चम्पा।

धीरे-धीरे सम्पूर्ण चम्पा में भारतीय फैल गये और वनों को काटकर नई भूमि प्राप्त करते गये। आज दक्षिण विएतनाम में जो मीकोंग नदी बहती है, उसे उस समय माँ गंगा कहा जाता था। माँ गंगा नदी के पश्चिम की ओर एक दूसरा हिन्दू राज्य था—कम्बुज। इसी प्रकार उत्तर में अनाम तथा चीन के राज्य, दक्षिण में श्याम की खाड़ी तथा उत्तर में प्रशान्त महासागर था। दूसरी शताब्दी के आरम्भ तक चम्पा एक संगठित हिन्दू-राज्य का स्वरूप ग्रहण कर चुका था और निरन्तर शक्तिशाली हो रहा था। १३७ ई० में दस हजार चम्पावासी हिन्दुओं ने चीन पर आक्रमण कर दिया और उसके एक बड़े भू-भाग पर, जहाँ हिन्दू बसते थे, अधिकार कर लिया। चीन ने इस भू-भाग को पुनः प्राप्त करने का सतत् प्रयत्न किया, पर वह असफल रहा। १९३ ई० में चम्पा के श्रीमार राजा ने चीनी सेनापति को एक बार फिर परास्त किया। श्रीमार ही चम्पा का प्रथम हिन्दू राजा था।

अजीत दलाल

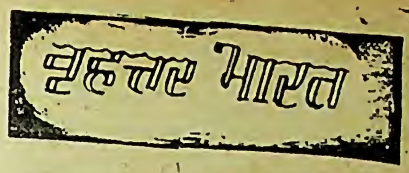

चम्पा निरन्तर प्रगति करता जा रहा था। इस समय के राजाओं में महाराजा भद्रवर्मा (३४०-५१३ ई०) का नाम चम्पा के इतिहास में सदा अमर रहेगा। यह काल चम्पा का 'स्वर्ण-युग' था। इस काल में चम्पा का राज्य दूर-दूर तक फैल गया। राजा भद्रवर्मा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और उन्होंने कई संस्कृत के ग्रन्थों की रचना भी की थी। चम्पापुरी के निकट उन्होंने भद्रेश्वर स्वामी के नाम से एक अत्यन्त भव्य शिव मन्दिर का निर्माण कराया।

आज चम्पा का नाम कोई नहीं जानता। इसके प्राचीन नगरों के नाम भी अब बदल दिये गये हैं, जैसे 'पाण्डुरंग' को 'फानरंग', 'अमरावती' को 'क्वागनाम' कहा जाने लगा है।

आठवीं शताब्दी के बाद चम्पा को अनेक विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा। राजा सत्यवर्मा के समय, ७८२ ई० में, यव द्वीप (जावा) के लोगों ने पाण्डुरंग नगर पर भीषण आक्रमण किया और इसके मन्दिरों से करोड़ों की सम्पत्ति लूटी। लुटेरे अपने साथ भद्रेश्वर स्वामी की मूर्ति भी ले गये। राजा सत्यवर्मा ने जलमार्ग से उनका पीछा किया। जब लुटेरों ने देखा कि वे पकड़े जाने वाले हैं, तो उन्होंने बहुत-सा सामान और मूर्तियां सागर में फेंक दी। राजा ने सागर से अनेक मूर्तियां निकलवा तो लीं, पर भद्रेश्वर स्वामी की मूर्ति उन्हें नहीं मिली।

राजा हरिवर्मा [१८००-१८२० ई०] ने बिखरे हुए देश को एक सूत्र में संगठित किया और उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा उसे प्रदान की। उन्होंने चीन के विशाल साम्राज्य पर आक्रमण कर उसके दो प्रान्तों—'होआन' तथा 'अई' को अपने राज्य में मिला लिया। इस विजय से दूर-दूर तक चम्पा की धाक जम गई।

ग्यारवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक परम तेजस्वी युवक हरिवर्मा चतुर्थ गद्दी पर बैठा। इस तरुण राजा ने अनाम को करारी मात दी। इसके पूर्व अनाम तीन बार चम्पा की सेना को परास्त कर चुका था। फिर उसने कम्बुज (कम्बोडिया) को भी युद्ध में करारी मात दी, जिसने चम्पा के संकट के समय अवसरवादिता का परिचय दिया था। राजा हरिवर्मा ने पिछले युद्धों में

और अनेक नये मन्दिरों का निर्माण कराया। इस प्रकार, सात वर्षों के शासन काल में उसने चम्पा को उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा प्रदान की। १०८० ई० में राजा हरिवर्मा की मृत्यु हो गई।

इसी वंश के एक अन्य राजा जयेन्द्र वर्मा चतुर्थ भी बहुत प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अपने पड़ोसी राज्यों तथा चीन के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। पर उन्होंने एक विचित्र कार्य किया। अरब व्यापारी चम्पा के मार्ग से चीन के साथ व्यापार करते थे। चम्पा नरेश उनसे किसी बात पर रुष्ट हो गये और उन्होंने उन व्यापारियों की सारी सम्पत्ति लूट लेने का आदेश दे दिया। लूट की इस अथाह सम्पत्ति में से कुछ राजा जयेन्द्र वर्मा ने चीन के सम्राट् को उपहार के रूप में भेज दी। इतनी प्रचुर मात्रा में भेंट सामग्री देखकर चीन सम्राट् आश्चर्यचकित रह गये। इसी बीच रोते-चिल्लाते अरब व्यापारी भी वहां पहुंच गये और सारी बात सम्राट् को सुना दी। सम्राट् इससे बहुत रुष्ट हुए और भेंट सामग्री रखने में आनाकानी करने लगे। पर, सामन्तों के यह समझाने पर कि इससे चम्पा से वैर हो जाएगा सम्राट् ने भेंट स्वीकार कर ली।

अब, राजा ने कम्बुज-विजय का निश्चय किया और अनाम के राजा को भेंटें भेजकर तटस्थ रहने के लिए राजी कर लिया। १६७० ई० में जयेन्द्र वर्मा एक प्रचण्ड सेना लेकर कम्बुज नरेश त्रिभुवनादित्य पर आक्रमण कर दिया। त्रिभुवनादित्य ने जमकर चम्पा का मुकाबला किया और लम्बे समय तक युद्ध चलते रहने के बाद भी कम्बुज अजेय रहा और हारजीत का फैसला नहीं हो सका। इस प्रकार सफलता की आशा न देखकर जयेन्द्र वर्मा ने जल-मार्ग से कम्बुज पर आक्रमण कर दिया। इस अचानक किये गये आक्रमण में कम्बुज की हार हुई और चम्पा के सैनिकों ने कम्बुज की राजधानी को बुरी तरह लूटा। पर, कम्बुज ने शीघ्र ही इस पराजय का बदला लिया। ११८२ ई० में चम्पा के सेनापति सूर्यवर्यदेव ने चम्पा पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। ३२ वर्षों तक चम्पा कम्बुज के अधीन रहा पर राजा जयपरमेश्वर (१२२६-५३) ने फिर चम्पा को स्वतन्त्र करवा लिया। उसी समय अनाम ने भी चम्पा को दुर्बल जानकर उस पर आक्रमण किया; किन्तु युद्ध में राजा जयपरमेश्वर ने ही उसे परास्त किया।

शीघ्र ही चम्पा पर विपत्ति के बादल मंडराने लगे। मंगोल बहुत शक्तिशाली होते जा रहे थे और उनके नेता कुबलई खान ने चीन विजय कर मंगोल साम्राज्य को और विस्तृत करने के लिये चम्पा पर आक्रमण की धमकी दी। पर, तत्कालीन वृद्ध राजा इन्द्रवर्मा ने मंगोल राजा की अधीनता स्वीकार कर ली और अपने यहां मंगोल

राजा का प्रतिनिधि रखना स्वीकार कर लिया। लेकिन राजा इन्द्रवर्मा के पुत्र हरजीत वर्मा को यह अपमान सहन नहीं हुआ। उसने मंगोल अधिकारियों को चम्पा से भगा दिया और चम्पा को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इससे मंगोल राजा चिढ़ गया और उसने अपनी विशाल सेना चम्पा विजय के लिये भेज दी। राजा इन्द्रवर्मा ने मंगोल सेना के साथ छापामार युद्ध करने की नीति अपनायी। इस युद्ध में, चम्पा के वीहड़ वनों और पहाड़ों से परिचित न होने के कारण मंगोल सेना पराजित होकर लौटी।

सारे यूरोप और एशिया को पद-दलित कर देने वाला कुबलई खान, इस पराजय से बहुत चिढ़ गया और स्वयं अपनी विशाल सेना लेकर चम्पा-विजय के लिये चल पड़ा। लेकिन इस अभियान में स्थल-मार्ग से चम्पा पहुंचने के लिए अनाम बाधक था। खान ने अनाम नरेश न्होंनतोंन से चम्पा पहुंचने के लिये रास्ता मांगा। अनाम नरेश ने इसके लिये स्पष्ट इनकार कर दिया। अब कुबलई खान ने चम्पा के साथ अनाम का नाश करने का भी निश्चय किया। लाल नदी के मुहाने पर मंगोल और अनाम सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ जिसमें मंगोलों को करारी हार का सामना करना पड़ा। इस प्रकार चम्पा एक भयकर संकट में फंसने से बच गया। चम्पा नरेश जयसिंह वर्मा ने इस सहायता के बदले अनाम को चम्पा के दो प्रान्त भेंट

—'भ्रष्टाचार का आरोप बेहूदा है। डाक्टरों की तरह क्या नेता प्राइवेट प्रेक्टिस नहीं कर सकते ?'

में दे दिये। वास्तव में जयसिंह वर्मा की यह एक भयंकर भूल थी जो आगे चलकर चम्पा के विनाश का कारण बनी।

जयसिंह वर्मा की मृत्यु १३०७ ई० में हुई। उसके बाद उसका पुत्र महेन्द्र वर्मा गद्दी पर बैठा। उसने इन दो प्रान्तों पर अनाम का प्रभुत्व मानने से इनकार कर दिया। इस घटना से अनाम और चम्पा के सम्बन्ध बिगड़ गये और १३१२ ई० में अनाम सम्राट् ने चम्पा के विरुद्ध एक सेना भेजी। कुछ समय तक युद्ध भी हुआ पर, थोड़े दिनों के बाद ही भयंकर रक्तपात से डरकर चम्पा के राजा महेन्द्र वर्मा ने आत्म समर्पण कर दिया।

पुनः हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा

इसके लगभग ८० वर्षों बाद तक चम्पा अनाम की अधीनता में ही रहा। १३६० ई. में राजकुमार जयसिंह वर्यदेव ने चम्पा को अनाम की दासता से मुक्त करा लिया और पुनः हिन्दू-राज्य की प्रतिष्ठा की। कुछ समय बाद जब अनाम ने फिर आक्रमण की धमकी दी तो चम्पा ने चीन-सम्राट् से सहायता मांगी। चीन-सम्राट् ने अनाम के राजा को चम्पा पर युद्ध न करने का आदेश दिया। पर, अनाम ने इसकी अवहेलना की और चम्पा पर आक्रमण कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अनाम की इस कार्रवाई से चीन-सम्राट् चिढ़ गया और अपनी विशाल सेना भेजकर अनाम के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में अनाम को बुरी तरह पराजित होना पड़ा।

१४४६ ई० अनाम ने फिर चम्पा-पर आक्रमण कर दिया और चम्पा नरेश महाविजय अपने भतीजे के विश्वासघात के कारण परास्त हुआ। यहीं से चम्पा का तेजी से पतन शुरू हुआ और धीरे-धीरे चम्पा का राज्य अनाम के अधीनहोता गया। बाद में इसीका संयुक्त नाम विएतनाम हो गया।

अतीत में, जहाँ चम्पा हिन्दू सभ्यता का केन्द्र रहा, आज वहां से हिन्दू सभ्यता लुप्तप्राय होती जा रही है। फ्रांसीसियों ने इसका रहा-सहा प्रभाव भी नष्ट कर दिया है। आज चम्पा का नाम कोई नहीं जानता। इसके प्राचीन नगरों के नाम भी अब बदल दिये गये हैं; जैसे 'पाण्डुरंग' को 'फानरंग', 'अमरावती को 'क्वांगनाम' कहा जाने लगा है।

०००

जरा उनकी सुनिये, जिनका अंधानुकरण आप करना चाहते हैं

अपने एक फ्रान्सीसी मित्र के साथ पेरिस घूमते हुए वहां की कांच के समान चिकनी और साफ सड़कें, विशाल और सुन्दर इमारतें, अपने शरीर का प्रदर्शन करती सुन्दरियों को देखकर भारतीय मित्र ने कहा—'मित्र तुम्हारी कृपा से मुझे विश्व के अद्वितीय सौन्दर्य पेरिस को निकट से देखने का सौभाग्य मिला। इसके लिए तुम्हें जितना धन्यवाद दूं, थोड़ा है और तुम्हारा जितना आभार मानूं कम ही है।'

इस प्रशंसा और कृतज्ञता की अभिव्यक्ति पर प्रसन्न होने के स्थान पर खिन्न होते हुए उस फ्रांसीसी मित्र ने कहा—'काश ! मैं तुमसे सहमत हो पाता। मेरे मित्र ! मैं भारत में दस वर्ष रहा हूं।' वहां चारों ओर बिखरी हुई शान्ति तथा हिमालय की उपत्यकाओं में छाया हुआ सौंदर्य यहां कहां उपलब्ध है ? भारत से विश्व को बहुत-सी आशायें हैं वहां की अध्यात्म गरिमा से सारा संसार पवित्र हो सकता है, किन्तु तुम भारतीय ही पश्चिमी चकाचौंध में भरमाये हुए हो। क्यों नहीं अपने देश के महान गौरव और वहां की गरिमा को पहचानते, अपने वैभव से संसार को चमत्कृत करने की बात क्यों नहीं सोचते ?'

खून के आंसू

'राष्ट्रधर्म' के मार्च अंक का मुख-पृष्ठ देखते ही पुस्तक के अन्दर की रचनाओं का अनुमान लगाना सहज हो उठा।

'आजाद की मां' संस्मरण पढ़कर तो दिल खून के आंसू रो उठा कि जिस व्यक्ति ने स्वयं को पूर्णरूपेण राष्ट्र के प्रति समर्पित कर दिया, उस वीर को जन्म देने वाली सौभाग्यवती, पुण्यवती और साक्षात् देवी की यह स्थिति भी हो सकती है ?

साथ ही 'वे आज भी याद आते हैं' तथा 'ऐसे थे गुरुजी'—वास्तव में अत्यन्त रोचक ज्ञानदायक और आनन्दप्रद लगे।

'आजाद की बलिदान कहानी' को तो कई बार पढ़ गई, पता ही नहीं चला।

अप्रैल अंक में 'काल कोठरी में भगतसिंह का वह हास्य' और 'क्या इसी वास्ते तड़पी थी भगतसिंह की लाश ?' वास्तव में रुला देने वाली रोचक सामग्री रही।

मुझे विश्वास तो नहीं है कि ये पत्र आप तक पहुंचेगा, फिर भी 'राष्ट्रधर्म' के इन अंकों को पढ़कर, लिखने से अपने आपको रोक न सकी। भविष्य में इसी प्रकार के अंकों का प्रकाशन होता रहेगा—इसी विश्वास के साथ···!

● सावित्री पुरोहित
भीमजी का मोहल्ला, जोधपुर (राज०)

ऐसा लेख प्रथम बार

फरवरी '८३ का 'राष्ट्रधर्म' बहुत ही महत्वपूर्ण लगा। 'दौड़ो मत, गिर पड़ोगे' लेख इस अंक में सर्वश्रेष्ठ लगा। अपनी तरह का पहला। आज आत्महीनत्व के काल से जो अपना देश गुजर रहा है, उसका कारण केवल यही पैर खीचनेवाली मनोवृत्ति है। कार्य में कहीं कोई अभाव नहीं है, बल्कि पंगु मानसिकता का ही जोर रहने के कारण आज शैथिल्य नजर आता है। मानसिकता को स्वस्थ बनाना ही होगा। जुझारू व्यक्तित्व का व्यक्ति, जीवन के कष्टों को पछाड़ डालता है, जबकि शिथिल व्यक्ति कष्टों का नाम सुनकर पिछड़ जाते हैं। इसके पीछे भी वही आत्महीनता का भाव है।

माननीय लेखक महोदय को हार्दिक धन्यवाद। ऐसे लेखों से ही मनःस्थिति बदली जा सकती है। 'राष्ट्रधर्म' का पुराना पाठक होने के कारण यह कह सकता हूं कि ऐसा लेख सचमुच 'राष्ट्रधर्म' के स्तर का है।

● उमेशकुमार बरनवाल

निराला छात्रावास, आर० आई० टी०, जमशेदपुर, ८३१०१४।

ऐसे ही अंक निकालें

मैं 'राष्ट्रधर्म' का नियमित पाठक हूं। 'राष्ट्र धर्म' का प्रत्येक अंक, जो अब तक मैंने पढ़ा है, बड़ा ही रोचक एवं प्रेरणास्पद रहा। फरवरी ८३ 'गणतंत्र दिवस' अंक में 'किराये पर कोख का धंधा,' विज्ञान के प्रेरक प्रसंग आदि स्तम्भ तथा 'जिस युद्ध में ७५ लाख सैनिक लड़ें' ऐतिहासिक स्तम्भ बहुत ही रोचक रहे हैं। कहानियां तो सभी मनमोहक लगीं।

आशा है ऐसी ही सामग्री 'राष्ट्रधर्म' के अंकों में पढने को मिलेंगी।

● अशोककुमार अयोध्यावासी

ग्राम—कोंहड़ार, पो०-कोहड़ार; जिला-इलाहाबाद (उ० प्र०)

० ० ० ०

सन् १९६७ से मैं 'राष्ट्रधर्म' का पाठक हूं साथ ही और भी पत्रिकाएं पढ़ता हूं। परन्तु भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर (इतिहास) की रक्षा का दायित्व निभाने वाले पत्रों में आप अग्रणी हैं। हमारा गौरवशाली इतिहास अंग्रेजी परस्त कांग्रेस सरकार की शिक्षानीति के कारण साधारण जनता के सम्मुख सही रूप में उपस्थित नहीं हो पाता। अतः गुलामी का इतिहास ही रो धोकर पढ़ना पड़ता है। धन्य है पं० दीनदयालजी उपाध्याय, जिन्होंने भारत वर्ष की अमूल्यनिधि की रक्षा करने के लिए ऐसे ('राष्ट्रधर्म', पाञ्जन्य, आर्गनाइजर) सजग प्रहरी की नियुक्ति कर अमर हो गये। हमें विश्वास है कि आप इसी तरह अतीत के घोर अन्धकार में छुपे हुए भाष्वित भास्कर की तरह 'इतिहास' की सत्य घटनाओं का प्रकाशन करते रहेंगे।

'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित जयदेवकपूर जी का संस्मरण पढ़ कर अधूरा लगा तृप्ति नहीं हुई अतः उनसे और लिखने का निवेदन हम पाठकों की ओर से कर तो बड़ी कृपा होगी।

● रामचन्द्र दुबे

'हाफा', विलासपुर [म० प्र०]

० ० ० ०

'राष्ट्रधर्म' के फरवरी अंक में इतिहास के अन्तर्गत श्री विनोदकुमार मिश्र का लेख बहुत ही सुन्दर लगा। आशा है भविष्य में भी इसी प्रकार इतिहास के लुप्त अध्यायों को प्रकाशित करते रहेंगे।

● मोतीलाल

मो० गनेशगंज, पूरनपुर (पीलीभीत)

प्रकाशित

प्रकाशित

आपकी चिरप्रतीक्षित पुस्तक

डा० हेडगेवार (चरित्र)

पृष्ठ संख्या ५२४ मूल्य रु० ५०-००

अब विक्रय हेतु प्रस्तुत

अग्रिम आरक्षणकर्त्ताओं को उनकी पुस्तकें भेजी जा चुकी हैं

जिन अभिकर्त्ता अथवा पुस्तक विक्रेता बन्धुओं ने अभी तक पुस्तकें प्राप्त नहीं की हैं वे उचित कमीशन पर पुस्तकें शीघ्र प्राप्त कर लें।

स्टाक सीमित। निराशा से बचने के लिये
आज ही अपना आदेश भेजें

अन्य सभी प्रकार की जानकारी हेतु सम्पर्क करें

विक्रय व्यवस्थापक

लोकहित प्रकाशन

पो० बा० २०७, राजेन्द्र नगर

लखनऊ–४

With Best Compliments From :—

Graphite India Limited

H. O. 31, Chowringhee Road
CALCUTTA-700 016

Manufacturers of :

CARBON & GRAPHITE PRODUCTS.

Phone no. 21-2541 (9 Lines)
Telex no. GIL-CA-3109

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए विनोदचन्द्र माहेश्वरी द्वारा प्रकाशित एवं कौशल प्रेस, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : वचनेश त्रिपाठी

राष्ट्रधर्म

दीपावली-परिशिष्ट

With Best Compliments From :-

KESORAM INDUSTRIES & COTTON MILLS LIMITED

9/1, R. N. Mukherjee Road
CALCUTTA—700 001

Manufacturers of

Cotton Textiles & Piece Goods, Rayon Yarn, Transparent Cellulose Film, Sulphuric Acid, Carbon-di-Sulphide, Cast Iron Spun Pipes & Fittings, Cement and Refractories etc. etc.

Sections:	*Mills ;*
Textile Sections	42, Garden Reach Road, Calcutta.
Rayon & T. P. Section	Tribeni, Dist. Hooghly
Spun Pipe Section	Bansberia, Dist. Hooghly
Cement Section	Basantnagar, Dist. Karimnagar (A.P)
Refractory Section	Kulti, Dist. Burdwan.

राष्ट्रधर्म का

अगला अङ्क चिरप्रतीक्षित 'संघ-संस्मरण-विशेषांक'

बहुधा लोग संघ-कार्य की अखंडता तथा कार्यकर्त्ताओं की निष्ठा देखकर चकित होते हैं किन्तु जिनके बल-बूते तथा त्यागमय जीवन से संघ-कार्य बढ़ा-पूरे देश में फैला, उनका अंतरंग जीवन कैसा था, क्या था उनका प्रेरणा स्रोत, इस प्रश्न के उत्तर उक्त विशेषांक के सच्चे और रोचक संस्मरणों में पढ़िये।

● भगवाध्वज की मौजूदगी में गांधीजी का भाषण ● गुरुजी व छागलाजी की भेंट-वार्ता (रज्जू भैया) ● संघ और रामवृक्ष वेनीपुरी ● 'मेरा प्रचारक न गंवा देना' ● गुरुजी : बहुत निकट से (डा० आवाजी थत्ते) ● सागर के पार भी हिन्दुत्व का पुनर्जागरण (लक्ष्मण श्रीकृष्ण भिड़े) ● गुरुजी के सान्निध्य में (अनन्तराव गोखले) ● उनकी भविष्यवाणी (ओंकार भावे) ● 'मुसलिम था तो क्या, मैं शाखा में जाता था।' ● नाई बंधु भी प्रचारक बने (नाना ढोबले) ● गुरुजी व सरदार पटेल की वार्ता (बापूराव वराडपांडे) ● वे स्मृतियां (चं०प० भिशीकर) ● माधवजी देशमुख [संस्मरण] (ल० श्री० भिड़े) ● ऊर्जामय वे यादें (ब्रह्मदेव) ● झण्डेवालां का वह दिन (प्रो० शक्ति शर्मा), ऐसे थे गुरुजी : वसंतराव भिड़े और सर्वश्री बाबासाहब घटाटे, जगदम्बीप्रसाद यादव, भगोदेव, प०सी० बड़िये, श्रीनिवास शुक्ल, एन०जी० अभ्यंकर, बालाराव दीक्षित, अप्पाजी शेंडे, बाबूराव वाघ, उत्तमचंद इसरानी, नाना लाभे, साधनचंद्र सेन, रा० ना० पेंढारकर, प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, अनन्तराव देवकुले, वसंतराव देवकुले, भोलानाथ झा वा०पु० तैलंग, ना० गो० टिकारे; मल्हारराव काले, छत्रसाल मुक्ता, श्याम गुप्त के प्रेरक अछूते संस्मरण तथा साथ में पढ़िये दो किस्तों में समाप्त होने वाली एक ऐसी सत्य-कथा जिसने पूरे महाराष्ट्र में सनसनी पैदा कर दी, इस कथा में सप्रमाण ये साक्ष्य संजोये गये हैं कि किस प्रकार एक ही आत्मा ने जन्म धारण करके एक ही व्यक्ति की पत्नी बनती रही और जब फिर उसका शरीरान्त हुआ तो किस प्रकार वायु रूप में विचरती हुई वह अपने पूर्व पति को नवीन जन्मांतर में भी घोर संकटों व आपदाओं में सहायता करती रही जब कि न तो वह पिशाच-योनि में थी न प्रेत योनि में—एवं सोमनाथ की चौलादेवी की धारा-वाहिक कथा भी।

● शीघ्र आदेश भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें। ● मूल्य ३ रु०

संपर्क : व्यवस्थापक, 'राष्ट्रधर्म' (नासिक), राजेन्द्र नगर (पूर्व), लखनऊ—४

राष्ट्रधर्म

वर्ष–१६ अंक–७
दिसम्बर, १६८२

राजेन्द्र नगर, (पूर्व)
पो० बा० २०७, लखनऊ–४
दूरभाष : ४२६०१

लेख

६ अमीर खुसरो बनाम दंगे — संपादकीय
१२ एक हजार वर्ष पूर्व यही स्थिति थी — बालासाहब देवरस
५६ हम इस लड़ाई में किसी भी सीमा तक··· — अटलबिहारी वाजपेयी
६० फूलन देवी पर ही फिल्म क्यों? — शारदा पाठक
७० दंगे क्यों और कब तक ? — वीरेश्वर द्विवेदी
७६ सुलगते प्रश्न — सत्यदेवसिंह
८० देश का बटवारा उसी का फल — पं० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
८४ कुछ हस्तलिखित बोलते दस्तावेज — जमनादास 'अख्तर'
६६ राष्ट्रपति के अधिकार क्या हैं ? — डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
१३५ राजनीति नहीं, संस्कृति — महादेवी वर्मा

कथा, संस्मरण और घटनाएं

१४ सपने शहीदों के — वचनेश त्रिपाठी
१६ चौलादेवी — संपादक द्वारा
२७ एक भारतीय आत्मा : फादर कामिल बुल्के — शकुंतला सिरोठिया
३६ वह कैदी — हरिदत्त
४२ सुनहरी देवी (असमिया कथा) — वीरेन्द्र भट्टाचार्य
५१ मां आनन्दमयी : उनकी शक्ति — नेमिशरण मित्तल

VEER BHAWAN

अनुक्रमणिका

सम्पादक
वचनेश त्रिपाठी
सहकर्मी
सोमदत्त शर्मा

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

Pustakyal.

५६ माँ के चमत्कार — शिवकुमार गोयल
८३ अंतिम संदेश
८८ उस दिन मथुरा में — क० मा० मुंशी
६२ अद्‌भुत योगी — डा० गोपीनाथ कविराज
६८ मंत्र — माखनलाल चतुर्वेदी
१०० 'हनुमान' नाम का रहस्य — श्यामनारायण वर्मा
११५ गणेश-लक्ष्मी — इन्द्रविक्रम विद्यार्थी
१३६ वतन की धरती — यशपाल जैन

कविताएं

१८ आओ फिर से दिया जलाएं — अटलबिहारी वाजपेयी
२६ 'भ्रष्टाचार का सिन्दूर' — शकुन्तला सिरोठिया
४६ चौराहे की बात — मिश्रीलाल जायसवाल
१०८ अंतर — अशोक श्रीवास्तव 'अमित'

साक्षात्कार

६४ जहाँ पटना का प्लेटफार्म बंधक रखा गया — श्रीनंद झा

बाल-बिहार

६६ बालक सनातन — सुदर्शनसिंह 'चक्र'

अन्य

५५ चुटकुले — विनयकुमार मिश्र एवं विनोद चतुर्वेदी

जब भी देश दंगों की फिजा में लहूलुहान होता है तो सहज ही उन मुसलिम महानुभावों की याद ताजा हो उठती है, जिन्होंने न केवल इस देश की मिट्टी से प्यार किया—वरन् यहां की भाषा, धर्म, दर्शन, संस्कृति, व्याकरण (संस्कृत), गणित, विज्ञान, तर्क शास्त्र तथा आम जैसे फलों की मुक्तिकण्ठ से अपने काव्य में प्रशंसा की—प्रसिद्ध सूफी कवि अमीर खुसरो का नाम उसी पंक्ति में प्रकाशमान है। पं० जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं कि 'मैं और कहीं ऐसी मिसाल नहीं पाता कि छह सौ साल पहले जो गीत खुसरो ने लिखे, वे अब भी आम पसंद हैं और लफ्जों की फेरफार के बगैर ज्यों का त्यों गाये जाते हैं।' (दि डिस्कवरी आफ इंडिया) नेहरूजी ने ठीक ही लिखा है। अमीर खुसरो आज भ्रान्त मुसलिम नागरिकों के लिए शुक्र तारे की तरह हैं, जो बता गये हैं कि इस देश में जन्म लेकर हम किस तरह यहां के अन्न-जल का, धर्म-संस्कृति का, माटी का कर्ज अदा कर सकते हैं! वे अपनी प्रसिद्ध कृति 'नूह सिपहर' में लिखते हैं, 'किश्वरे हिन्द अस्त बहिश्ती वजमी'—अर्थात् 'भारत संसार की जन्नत (स्वर्ग) है।' वे फारसी और संस्कृत के विद्वान थे। देश से, मातृभूमि से प्यार करना उनके लिए ईमान था। खुसरो खुद लिखते हैं:—'दीन ज रसूल अमदाह काइ जुमरहे दीं, हुब्बे वतन-

सम्पादकीय

हस्त ज ईमानोयकीं।' यह भावना हर भारतवासी, यहां जन्मे-पले-बढ़े मुसलमान में घर कर ले तो क्या उन्हें फिर कोई अन्य देश मजहब, जात-पांत या फिरके के नाम पर बहका-भरमा सकता है! इसीलिए मैं कहता हूं कि अमीर खुसरो के जीवनादर्श आज के भारतवासी मुसलिम के लिए पथ-प्रदर्शन के लिए जलती मशाल की तरह रोशन हैं। काश! वे खुसरो का अंतर्मन समझ सकते, उससे प्रेरणा ले सकते! खुसरो ने शताधिक पदों में भारत की भूरि-भूरि सराहना की है। यहां के पर्व, परम्पराएं, नगर-ग्राम, पशु-पखेरू, आबोहवा, संगीत-शैली, सरित्-सरोवर, जंगल-पहाड़ सभी कुछ खुसरो को प्रिय है, प्रेरणा देते हैं। फारसी की शायरी में वे शेखसादी या हाफिज से किसी कदर कम न थे परन्तु खुसरो खुद को 'तूती-ए-

अमीर खुसरो बनाम ढंगे

हिन्द' (हिन्दुस्तान का तोता) कहने में गर्व करते हैं और वे चाहते हैं, हर कोई उनसे हिन्दवी यानी हिन्दी में बातचीत करें'—अरबी में वार्ता करना उन्हें पसंद नहीं। कहते हैं,

तुर्के हिन्दुस्तानीम मन, हिन्दवी गोयम चु आब।
शक्करे मिस्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन॥

अर्थात् 'मैं भारतीय तुर्क हूं—हिन्दवी (हिन्दी) में उत्तर देता हूं। मेरे पास क्या कोई शक्कर-मिस्री रखी है जो अरबों की भाषा में बोलूं!' और जिन दिनों खुसरो ने यह कहा, वह जमाना कौन था! १४वीं सदी चल रही थी। देश में बर्फगान सुलतान तप रहे थे, हिन्दू का दमन हो रहा था, हिन्दुत्व-निष्ठा हेय मानी जा रही थी, एक अपराध बन गई थी। इसके बावजूद खुसरो ने शासन की परवाह न की, हिन्दी में लिखा, यहां के रस्मोरिवाज पर लिखा, उसकी तारीफ की। उन्होंने यहां तक कहने की हिम्मत की कि 'मुझे मुसलमानी की जरूरत नहीं है

क्योंकि मैं तो प्रेम का काफिर हूं।' उन्होंने सगर्व स्वयं को काफिर कहा। फारसी में लिखा:—

काफिरे इश्कम मुसलमानी मरा दरकार नेस्त।
हर रगे तार मश्त, हाजते जुन्नार नेस्त॥

—अर्थात् 'मैं जो प्रेम का दीवाना काफिर (हिन्दू) हूं, मुझे मुसलमानी दरकार नहीं। काफिर (हिन्दू) को जनेऊ की जरूरत होती है लेकिन मुझे उसकी आवश्यकता इसलिए नहीं क्योंकि मेरी तो हर रग में इश्क का खून रवां है, हर रग जनेऊ बन गई है।' स्पष्ट है, खुसरो जनेऊ से नफरत नहीं करते वरन् दावे के साथ कहते हैं कि उनकी रग-रग जनेऊ बन चुकी है इसलिए जनेऊ दरकार नहीं। उनके काव्य के अनुशीलन से लगता है कि उस युग में मुसलमानों ने उन्हें 'बुत परस्त' आदि कहकर चिढ़ाया होगा, जिसके जवाब में वे कहते हैं:—

खल्क मी गोयद कि खुसरो बुतपरस्ती मीकुनद।
आरे-आरे मी कुमम,या खल्को आलम कार नेस्त॥

'मैं तो प्रेम का काफिर हूँ,

—अर्थात् 'दुनिया मुझे बुतपरस्त कहती है, कहती है कि खुसरो बुतों को पूजता है। तो चलो, मैं मूर्त्ति का पुजारी सही—आखिर वह भी भगवान की उपासना का एक मार्ग है—फिर दुनिया के लोग उसमें बाधक क्यों बनते हैं? क्यों खलल डालते हैं?

आज यह कहना किसी के लिए भी इस देश में सरल हैं परन्तु खुसरो का जमाना नितांत प्रतिकूल था, उस समय डंके की चोट पर यह घोषित करना मामूली बात नहीं थी परन्तु अमीर खुसरो ने वह सत्साहस दिखाया—उन्होंने मानो भारतीय मुसलिमों के लिए एक रास्ता बनाया, उस रास्ते को अपने अमर काव्य से रोशन किया कि आने वाली पीढ़ियां उससे प्रकाश प्राप्त करें।

जिन्दाबाद की जगह 'जय' कहना-लिखना उन्हें भाया। निजामुद्दीन औलिया के वे शिष्य थे, हिन्दी में खुसरो जब उनकी वन्दना करना बैठे तो लिखा:—

जय-जय निजामुद्दीन जग-तारन, तोपर नैन प्रान करूं वारन।
खुसरो के प्रभो, अहम के पूत, तन-मन और धन करूं निसारन॥

हिन्दी शब्दों की क्या बानगी, बन्दगी की क्या भाषाई छटा है! धन्य

खुसरो ! धन्य उनका मानस ! धन्य उनकी लेखनी ! उस कलम का नमन ! देश में बेटियां सावन में ससुराल से विदा होती हैं—खुसरो सावन महीने की यह रस्म भूलते नहीं। 'अम्मा मोरे बाबा को भेजो जी, कि सावन आयो।—'हे मां, बाबा को मुझे विदा कराने भेजो, सावन आ गया है।' खुसरो की पंक्ति-पंक्ति भारतीय संस्कृति के रंग में सराबोर है, यद्यपि उन्होंने जीते जी यहां कई अफगानी सुलतानों के तेवर देखे थे परन्तु वे उनका मानस मलिन नहीं कर सके। कैसे करते, आखिर खुसरो उत्तरप्रदेश के एटा जनपद (पटियाली ग्राम) में जन्मे (सन् १२५३ में) थे, पटियाली में जहां गंगा बहती है। दिवंगत हुए यमुना-तट पर बसी दिल्ली में और यमुना-पुलिन में ही उनके शव को शयन कराया गया। अब भी वहीं कहीं बीराने में अस्तित्वान होगी अबुलहसन यमीनुद्दीन खुसरो की मजार। काश ! दीवाली की रात कोई वहां भी एक दिया जला देता !

भाषा, संस्कृति, साहित्य तथा संगीत के क्षेत्र में उनकी देन महान है, खुसरो ने ही सितार नाम के मशहूर वाद्य का आविष्कार किया, 'खालिक बारी' नाम का

मुझे मुसलमानी दरकार नहीं'

—खुसरो

उन्होंने अरबी-फारसी तथा हिन्दी का एक मिला-जुला कोश प्रदान किया। एक नमूना देखिये,

मश्को काफूर अस्त कस्तूरी कपूर, हिन्दवी आनन्द, शादी ओ सरूर

परन्तु खुसरो की सबसे बड़ी देन है, वह दृष्टि जो आज भी इस देश के इस्लाम मतानुयायी के लिए अपेक्षित है, महत्वपूर्ण है। यहाँ का मुसलमान वह नजरिया जीवन में स्वीकार कर ले तो यहां कभी दंगे न हों—हिन्दू, मुसलिम आपस में कभी रक्तपात न करें क्योंकि तब यहां के तीज-त्योहार, रस्मोरिवाज, धर्म, संस्कृति, भाषा, दर्शन, देवी-देवता मुसलमानों को भी अपने लगेंगे, आत्मीय अनुभव होंगे और ये सब चीजें उन्हें राष्ट्रीयता के मूल प्रवाह से जोड़े रखेंगी।

कभी यहाँ के प्रसिद्ध शासक मान्धाता ने इन्द्र से पूछा था कि 'यहाँ तो अनेक धर्मों के मानने वाले लोग हैं, उन्हें किस धर्म का पालन करना उचित होगा ?'

तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

इन्द्र ने कहा था,

यस्मिन देशे हि यो धर्मः सदाचारः स्व संस्कृतिः ।
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशनुपागतः ॥

—'जिस देश का जो धर्म हो, सदाचार—उसकी अपनी संस्कृति हो—उसी का परिपालन करना चाहिये ।' अमीर खुसरो, अब्दुर्रहीम खानखाना, रसखान पठान, आलम, ताज, मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन में इन्द्र का यही कथन हम चरितार्थ देखते हैं।

परमहंस रामकृष्णदेव ने एक बार केशवचन्द्रसेन से कहा था, 'केशवचन्द्र ! सिर्फ एक ही बात से परमात्मा को जानना-समझना हो तो मेरे पास आना चाहिये—अनेक वार्त्ताओं से समझने की इच्छा हो तो विवेकानन्द के पास जाओ ।'

खुसरो मानो अपने जीवन की साक्षी देकर कहते हैं, साम्प्रदायिक झगड़ों का, साम्प्रदायिक विद्वेष की एक दवा है और वह है वतनपरस्ती । इस देश से प्रेम करना । बाकी बातें गौण हैं और वे सब इस एक सद्गुण से संयुक्त हैं । अब्दुर्रहीम

'मेरा हिंदूकुश हुआ हिन्दू-कश'

—अश्फाकउल्ला खां

खानखाना से एक दफा संत कवि सूरदास ने पूछ पठाया कि, 'धूरि धरत नित सीस पर कहु रहीम केहि काज ?' अजीब प्रश्न था । भला सिर पर रोज धूल क्यों उंडेलता है ? रहीम ने उत्तर लिख भेजा सूरदास को कि 'जेहि रज ऋषि-पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज ।' 'जिस धूल से गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या, जो पत्थर की शिला बनकर रास्ते में पड़ी थी, लेकिन श्री रामचन्द्र जब वनवास में गये तो उनकी चरण-रज छूकर उसका उद्धार हो गया ।—उसी धूल को हाथी रोज खोजा करता है, इसी कारण अपनी प्रलम्ब सूंड से जमीन की धूल उठाकर अपने सिर पर उंडेला करता है कि शायद किसी दिन वह धूल मुझे भी मिल जाय और मैं तर जाऊँ !'

क्या दृष्टि है ! यह दृष्टि कितने हिन्दुओं को मिल पाई ? धन्य हैं रहीम जो सूर को यह उत्तर लिख भेज सके । यह उसका जवाब है जो बादशाह अकबर का सेनापति रहा था, उसके दरबार का प्रमुख अधिकारी । क्या वह हिन्दू हो

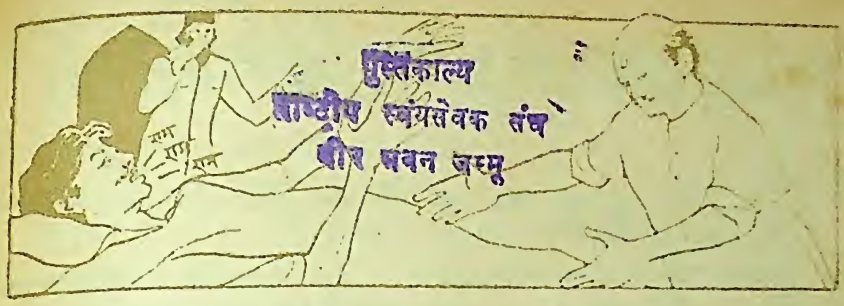
पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
केशव भवन जम्मू

—'विस्मिल' के आते ही अश्फाक की 'राम ! राम' की घबड़ाहट शांत हो गई।

गया था ? नहीं, उसका हृदय हिन्दुत्व-निष्ठ था। हिन्दुत्व-निष्ठा इस्लाम में बाधक नहीं। खुसरो, रहीम, जायसी, कुतबन, मंझन, आलम, ताज सब इस्लाम-मत में ही रहे परन्तु उनकी लेखनी से हिन्दुत्व-निष्ठा मह-मह महकती रही, गम-काती रही देश का आनन, कविता-कानन। रहीम का-सा ही उद्‌गार पं० राम-प्रसाद 'विस्मिल' के मित्र और साथी अश्फाकउल्ला खां हसरत वारसी प्रकट करते हैं, जब वे फांसी चढ़ने चले तो पूछा गया, 'अश्फाक ! आपकी आखिरी ख्वाहिश क्या है ?' अश्फाक ने कहा—

कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो ये है।
रख दे कोई जरा-सी खाके वतन कफन में॥

—कोई इच्छा नहीं। बस, एक अभिलाषा जरूर करता हूं कि कोई मेरी मातृभूमि की पवित्र धूल मेरे इस कफन में रख दे।

यहां पर रहीम और अश्फाक समानरूप से इस देश की मिट्‌टी की महिमा जीवन में चरितार्थ करते मिलते हैं, क्या इससे अश्फाक गैर इस्लामी हो गये ? बीमारी में अश्फाक 'राम-राम' कहकर बड़बड़ाते थे। एक ही शब्द उनकी जबान से निकलता था—'राम ! राम !' घरवाले बड़े दुःखी कि लड़का दीन से भी गया। यह तो 'कुफ्र' बकता है। घर वाले पक्के लीगी थे। 'राम ! राम !' सुन-कर उनके चेहरे फक हो गये। तभी किसी ने मर्म समझा। पं० रामप्रसाद 'विस्मिल' को बुलवाया। अश्फाक के हाथ में उनका हाथ आया तो वे शांत हो गये, आश्वस्त। प्रलाप बन्द हो गया। तब घर वालों ने भी 'राम ! राम' की रट का रहस्य समझा लेकिन देर से। ये अश्फाक भी मातृभूमि को, भारत को 'माता' कहते थे। वे स्वयं लिखते हैं। इसे जेल में रचा था और इसे कचहरी में सब साथी

(शेष पृष्ठ १२७ पर)

एक हजार वर्ष पूर्व यही स्थिति थी

एक हजार वर्ष पूर्व जिस तरह सांस्कृतिक रूप से एक होते हुए भी सामाजिक बिखराव के कारण हिन्दुस्तान गुलाम हुआ, वही स्थिति आज भाषा, प्रांत व राजनीति के नाम पर उत्पन्न हो रही है। यदि समय रहते समाज को संगठित नहीं किया गया तो उन्हीं स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है।

आज सत्ता-स्पर्धा की होड़ अलगाव को प्रोत्साहन दे रही है। उग्रवादी तत्व सिर उठा रहे हैं तथा रचनात्मक कल्पनाएं विध्वंस की ओर मुड़ रही हैं। देश में गुलामी के बादल छाने से पूर्व भी यही स्थिति थी। देश समृद्ध व शक्तिशाली होते हुए भी टुकड़ों में बंटा था और वह संकटों का मुकाबला नहीं कर सका। फिर वह स्थिति न आए इसीलिये रा०स्व०संघ ने हिंदुओं को संगठित करने का लक्ष्य रखा है क्योंकि हमारी धारणा है कि हिंदुओं का संगठन राष्ट्रीय आवश्यकता है। समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता व लोकतन्त्र का ध्येय तभी पूरा हो सकता है, जब यहां पर हिंदू समाज बहुसंख्यक हो अतः हिंदू के हित का विचार हिन्दुस्तान के हित का विचार है।

संघ—शाखाओं के कार्यक्रम स्वयं-सेवकों पर अच्छे संस्कार के साथ उन्हें संगठित करने व आपसी सहयोग के साथ काम करने के उद्देश्य से होते हैं। हिन्दू समाज को संगठित करने का अर्थ यह नहीं होता कि उसके सारे दोषों को भी स्वीकार करें। बिखराव से आई कुप्रथाएं व दोष दूर करना भी हमारा उद्देश्य है।

विघटनकारी शक्तियों ने अपनी गतिविधियां काफी तेज कर दी हैं जिससे राष्ट्र की अखण्डता को गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है।

राष्ट्र को सशक्त करने के लिए वर्तमान समय की आवश्यकता है कि छुआछूत तथा जातिगत मतभेदों की बुराइयों से मुक्त सशक्त हिन्दू समाज का निर्माण किया जाय।

जब भारत के पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान तथा चीन भारी मात्र में शस्त्रास्त्रों का जमाव कर देश के लिए खतरा उत्पन्न कर रहे हैं वहीं उस समय सक्रिय विघटनकारी शक्तियां देश की अखण्डता के लिए अधिक बड़ा खतरा सिद्ध हो रही हैं।

संघ राष्ट्र की अखण्डताको बरकरार रखने तथा विघटनकारी शक्तियों का

संघ-वार्ता

बालासाहब देवरस

प्रतिरोध करने के लिए हिन्दू समाज को सशक्त करने की कोशिश कर रहा है। इसलिए संघ पर साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देने का आरोप लगाना असत्य है। मुसलमानों तथा ईसाईयों के अन्तर-राष्ट्रीय सम्मेलनों से मुस्लिम रूढ़िवादिता तथा ईसाईयों के प्रभुत्व को बढ़ावा मिला।

विघटनकारी शक्तियां असम में सक्रिय हैं। मेरठ में साम्प्रदायिक दंगा तथा पंजाब में अकाली आंदोलन इस बात का संकेत है कि विघटनकारी शक्तियां किस प्रकार राष्ट्र को कमजोर करने कोशिश कर रही हैं।

वे दीर्घायु हों

रा० स्व० संघ के सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस ने विगत ५ नवम्बर को अपने आयुष्य के ६७ वर्ष पूर्ण कर ६८वें वर्ष में प्रवेश किया, इस प्रसंग पर 'राष्ट्रधर्म-परिवार' उनके दीर्घायुष्य की कामना करता है। एक समय पूर्व सरसंघचालक श्री गुरुजी ने कहा था, 'संघ-संस्थापक डा० हेडगेवारजी को देखना-समझना हो, तो बालासाहब को देखो।' गुरुजी का यह कथन आज भी अक्षरशः चरितार्थ हो रहा है। आत्म-प्रसिद्धि-परांङ्मुख इस सत्पुरुष को मात्र उनकी सामान्य शरीरयष्टि किंवा बहिरंग व्यक्तित्व देखकर नहीं समझा जा सकता—उसके लिए उनके अत्यन्त समीप, उनके अंतरंग जीवन तक पहुंचना होगा। तप-त्याग के प्रतीक तथा समाज-कार्य के प्रति समर्पित-प्राण इस महान साधक की निजी जिन्दगी जसी कोई चीज नहीं—समाज का स्वार्थ ही उनका स्वार्थ है और समाज-हित ही उनका परमार्थ। आज संघ के लाखों स्वयंसेवक उनसे कर्मण्यता की प्रेरणा तथा संकटों से जूझने की ऊर्जा प्राप्त कर अनुगृहीत हैं, उपकृत हैं। ००—सम्पादक

सपने शहीदों के

● वचनेश त्रिपाठी

'काकोरी केस' के अमर शहीद पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' तथा उनके अन्य तीनों शहीद साथी रोशनसिंह, अश्फाक और राजेन्द्र लाहिड़ी किसलिए फांसी चढ़े ? उनके क्या सपने थे ? आखिर वे किस किस्म की आजादी चाहते थे ? अपने देश तथा देश-वासी को किस रूप में देखने के अभिलाषी थे ? और आज यदि वे जीवित होते तो क्या सोचते, क्या करते ? अन्तिम प्रश्न का

अशफ़ाक़उल्ला खाँ

उत्तर यह है कि वे इस शासन को भी उलट देने की हर सम्भव प्रचेष्टा करते, इस हुकूमत को सहन नहीं कर पाते क्योंकि उनका स्वयं का विचार था कि 'देश में जो कुछ भी हो रहा है उसकी उत्तरदायी सरकार ही है। भारत वासियों के दुःख तथा दुर्दशा की जिम्मेवारी गवर्नमेन्ट पर ही है, अतएव सरकार को पलटने का प्रयत्न करना चाहिये। मैंने भी इस प्रकार के विचारों में योग दिया।' ये शब्द बिस्मिल के ही हैं। आज देश की दशा हर स्तर पर गिरावट पर है; भ्रष्टता की चरम सीमा।

वे देश में नशाखोरी हरगिज न चलने देते। उनके पिता पं० मुरलीधर को चरस पीने की लत लग गई थी—उसे बड़ी मुश्किल से बिस्मिल ने छुड़ाया। यद्यपि पिता अतीव क्रोधी थे, जरा-सी लापरवाही या भूल पर अपने बेटे रामप्रसाद को बुरी तरह पीटते। एक बार एक बाग से आड़ू तोड़ लेने पर रामप्रसाद को पिता ने इतना मारा कि दो दिन चारपाई से न हिल सके। इसी तरह पढ़ाई के समय खेलने लग जाने पर बेचारे को बन्दूक के गज से इतना मारा कि लोहे का वह गज ही बक्र हो गया। फिर भी बिस्मिल पिता के प्रति शिका-

दिसंबर महीने में देश के ४ महान क्रांतिकारियों सर्वश्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल,' अश्फाकउल्ला खां वारसी हसरत, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी तथा रोशनसिंह को फांसी दी गई थी तथा उनके कई साथियों को काले पानी व आजन्म कैद का पुरस्कार मिला था, उन चारों शहीदों की स्मृति में विनत होते हुए उन्हें हम अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं तथा यहां उनकी उन आशाओं-अपेक्षाओं के संदर्भ में भी कुछ सामग्री प्रस्तुत करते हैं कि वे किसी तरह की आजादी तथा स्वतंत्र भारत में भी किस प्रकार के मानस की कल्पना करते थे।

—संपादक

रामप्रसाद बिस्मिल

यत न रखकर लिखते हैं, 'शायद उस बचपन की मार से ही यह शरीर बहुत कठोर तथा सहनशील बन गया।' यानी नशे के व्यसनी पिता की मार की कोई आलोचना नहीं, वरन् उसमें भी अच्छाई देखने की आदत। स्पष्ट है कि वे ऐसे समाज की रचना के अभिलाषी थे जिसमें लड़के माता-पिता तथा गुरुजनों की अवज्ञा न करें, उनके प्रति सम्मान बरतें आजादी के बाद नई पीढ़ियां इस नाते विपथगामिनी बनीं, अपने मौज-मजे के लिए माता-पिता की अवमानना वे रोज ही करते हैं। उनके पिताजी व दादीजी चाहती थीं, 'रामप्रसाद की बहू आ जाये, शादी कर ले!' परन्तु उनकी मां का कहना था, 'शिक्षा पूर्ण हुए बिना ब्याह करना ठीक नहीं।' रामप्रसाद ने मां की बात गांठ बांध ली और छात्र-जीवन में शादी से बचे रहे। आज स्वयं छात्रगण दहेज देखते हैं और मां-बाप भी उसी पर लार टपकाते रहते हैं, शिक्षा जाये चूल्हे-भाड़ में। रामप्रसाद के सपनों का भारत कहां बन पाया?

तिलक उस जमाने में उग्रदली नेता थे, कांग्रेस नरमदली नेतृत्व के हाथ में

"देश में जो कुछ भी हो रहा है उसकी उत्तरदायी सरकार ही है। भारतवासियों के दुःख तथा दुर्दशा की जिम्मेवारी गवर्नमेन्ट पर ही है, अतएव सरकार को पलटने का प्रयत्न करना चाहिये। मैंने भी इस प्रकार के विचारों में योग दिया।"

थी। लखनऊ में एक बार कांग्रेस-अधिवेशन हुआ, शायद पहली बार। बिस्मिल तब ६वें में पढ़ते थे लेकिन शाहजहांपुर से चलकर वे भी लखनऊ-अधिवेशन में पहुंचे, कारण—उस उत्सव के सभापति थे लोकमान्य तिलक। बिस्मिल उन्हें देखने को लालायित थे, उनमें श्रद्धा करते थे। स्वागत-कारिणी समिति के प्रधान थे लखनऊ के पं० जगतनारायण। समिति में नरमदली लोगों का ही प्रभुत्व था और वे नहीं चाहते थे कि तिलक का ऐसा भव्य स्वागत हो जैसा कांग्रेस के अध्यक्ष का भी न हुआ हो। अतः उन्होंने तय किया कि तिलक का सिर्फ चारबाग स्टेशन पर ही स्वागत कर लिया जाय, जुलूस न निकले—न मार्ग में ही स्वागत सम्भव हो।

रोशनसिंह

नरमदली लोगों द्वारा निश्चय किया गया कि तिलकजी को एक गाड़ी में बिठाकर नगर के बाहर ही बाहर ले जाकर अधिवेशन में पहुंचा दिया जाय। बिस्मिल व उनके साथी अड़ गये कि 'हम जुलूस बनाकर ही 'तिलकजी को नगर के बीच से ले जायेंगे।' इन लोगों ने अभी कहीं से गाड़ी जुटा न पाई थी। अलबत्ता योजना थी कि 'तिलकजी को हम अपने घेरे में लेकर गाड़ी में बिठाल लेंगे और जुलूस जरूर निकालेंगे।' परन्तु ये लोग पास भी न पहुंचे कि कांग्रेस वालों ने तिलकजी को स्टेशन से लाकर अपनी कार में बिठाला और आगे बढ़ने ही वाले थे कि बिस्मिल कार के आगे लेट गये। कहा, 'बेशक कार मेरी देह के ऊपर से ले जा सकते हो।' आवेश से बिस्मिल रो उठे थे। कई और साथी भी उनके साथ सड़क पर लेट गये। तिलकजी ने कहा, 'होगा। जुलूस-फुलूस की जरूरत नहीं। जो करते हैं, करने दो।' 'बिस्मिल कब मानने लगे। कांग्रेस

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

वालों से कार मांगी कि तिलकजी को बिठाने के लिए दे दें—उन्होंने न दी यद्यपि वह गाड़ी आई तिलकजी के ही लिए थी पर वे भला जुलूस के लिए कब तैयार थे। तब बिस्मिल ने एक किराये वाली घोड़ा-गाड़ी ली, उसके घोड़े खोलकर अलग कर दिये और उनके साथी स्वयं घोड़ों की जगह जुत गये। फिर तिलकजी के पांवों में माथा रख-कर मनुहार की कि 'हमारा आग्रह स्वीकार करके गाड़ी में बैठ जायें।' एक छात्र ने कांग्रेस वाली गाड़ी का टायर चाक कर डाला। तिलकजी उन लड़कों का उत्साह देखकर घोड़ागाड़ी में आ बैठे। बिस्मिल और उनके साथियों ने खुद वह गाड़ी खींचकर जुलूस निकाला। बिस्मिल ने लिखा, 'लोगों के उत्साह का यह हाल था कि कहते थे, एक बार गाड़ी में हाथ लगा लेने दो, जीवन सफल हो जाये। लोकमान्य पर फूलों की वर्षा की जाती थी, उसमें से जो फूल नीचे गिर जाते थे, उन्हें उठाकर लोग पल्लू में बांध लेते थे। जिस स्थान पर लोकमान्य के

राजेंद्रनाथ लाहिड़ी

पैर पड़ते, वहां की धूल सबों के मत्थों पर दिखाई देती। कोई-कोई उस धूल को भी अपने रूमाल में बांध लते थे। इस स्वागत से माडरेटों की बड़ी भद्द हुई।'

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

"लोगों के उत्साह का यह हाल था कि कहते थे, एक बार गाड़ी में हाथ लगा लेने दो, जीवन सफल हो जाये। लोकमान्य पर फूलों की वर्षा की जाती थी, उसमें से जो फूल नीचे गिर जाते थे, वह उठाकर लोग पल्लू में बाँध लेते थे। जिस स्थान पर लोकमान्य के पैर पड़ते वहाँ के फूल सबों के मत्थों पर दिखाई देते। कोई-कोई उस धूल को भी अपने रूमाल में बांध लेते थे। इस स्वागत से माडरेटों की बड़ी भद्द हुई।"

गीत

अटल बिहारी वाजपेयी

आओ फिर से दिया जलायें

घनी दुपहरी में अंधियारा,
सूरज परछाईं से हारा,
अन्तरतम का नेह निचोड़ें, बुझी हुई बाती सुलगायें !
आओ, फिर से दिया जलायें !

हम पड़ाव को समझे मंजिल,
ध्येय हुआ आंखों से ओझल,
वर्तमान के मोह पाश में आने वाला कल न भुलायें !
आओ, फिर से दिया जलायें।

आहुति बाकी, यज्ञ अधूरा,
अपनों के विघ्नों ने घेरा,
अन्तिम जय का वज्र बनाने, नव दधीचि हड्डियां गलायें!
आओ, फिर से दिया जलायें !

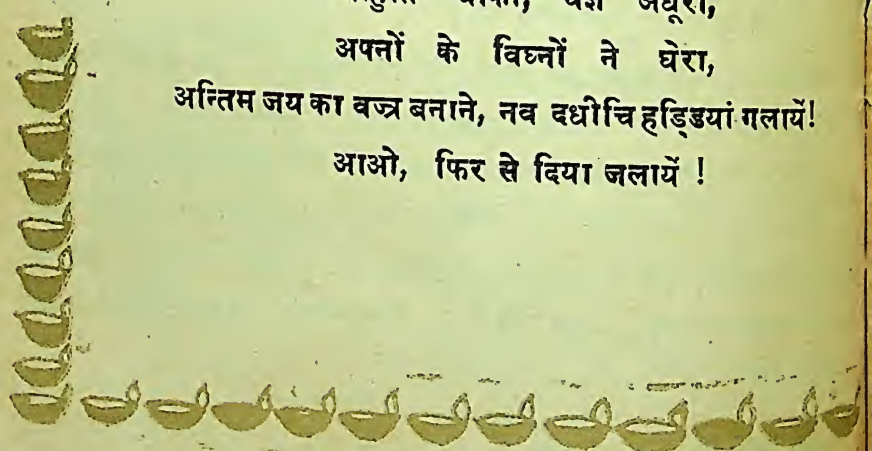

चौलादेवी

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
सम्पादक द्वारा
[illegible] भवन जम्मू

(४०वीं किस्त)

जब तक रैनसी, जैतसी तथा दूला आदि डाका-स्थल पर पहुंचे, भूपत अपने गिरोह के एक हिस्से के साथ रामशाह की हवेली पर जा धमका; परन्तु यह क्या—भूपत अपने ठीक द्वार के सामने ही रामशाह को शांत खड़ा देखकर चौंका-चकराया। क्यों ? क्या इसे मेरा भय नहीं ? यह तो मुख्य द्वार खोलकर खड़ा है जैसे इसे मेरे आने की प्रतीक्षा हो ! भूपत ने सामने पहुंचकर अपना सुतीक्ष्ण प्रलम्ब भल्ल धरती में हाथ के जोर से गाड़ दिया क्योंकि ऊपर धारदार नोक के साथ ही भल्ल के नीचे भी हाथ भर लम्बी तेज अनी थी। भूपत के साथी डाकू घोड़ों पर ही चढ़े खड़े रहे। भूपत गरजा,

'क्यों रे वणिक् ! कहां हैं तेरी वे सोने की इंटें ? मेरे सामने उन सबका ढेर लगा दे आज। तू तो मक्खीचूस कृपण ठहरा, तेरे किस काम आयेगा वह गाड़ी भर सोना ?'

रामशाह की निर्भय वाणी गूंजी। उन्होंने जवाब न देकर उल्टे उसीसे प्रश्न कर डाला, 'मैं तो कृपण सब ओर विख्यात हूं ही पर यह बता, तू भला वह सोना ले जाकर किस काम में लगायेगा ? कौन तुझे बेटी ब्याहनी है याकि कर्जा चुकावनी है ?'

भूपत फिर चौंका, हतप्रभ हुआ कि सैकड़ों डाके डाले—मुझे देखते ही बड़े-बड़े धन्नासेठों-नगरसेठों के चेहरे स्याह पड़ गये, उनके पसीना छूट गया लेकिन इस वणिक् का कैसा कलेजा है जो मेरे सामने सीधा, तनकर खड़ा है और इसकी आवाज में भी कहीं पर मेरे आतंक का कोई असर नहीं वरन पूरे वजनी स्वर में मुझसे ही सवाल कर रहा है। भूपत ने बिफर कर कहा, 'मैं भाड़ में झोकूं तेरा सोना—तुझे इससे क्या ? बोल कहां हैं तेरे वे सन्दूक ?'

'आ मेरे साथ !' बड़ी ही सहजता से रामशाह ने भूपत को अन्दर आने के लिए हाथ उठाया। भूपत अकेला रामशाह के साथ हवेली में घुसा। उसे स्वयं पर इतना भरोसा था कि समझता था कि वह अकेला ही सौ पर भारी है—फिर रामशाह तो बनिया ठहरा—इससे क्या जोखिम हो सकती है !

भूपत हवेली में अन्दर, और अन्दर प्रवेश करता चला गया। परिवार के सब लोग स्त्रियां-बच्चे और जवान गूंगे से इधर-उधर खड़े थे, भीत भी लग रहे थे। अकेले रामशाह भूपत के साथ ऐसे बरत

रहा था जैसे उस हिंस्र आदमी की उसे रत्ती भर भी चिन्ता न हो। रामशाह ने भीतर अलिन्द में खड़े होकर भृत्यों को आवाज दी। कहा—

'भू-गर्भित (तहखाने का) भण्डार खोलो।' भृत्यों ने घर की एक प्रौढ़ा स्त्री से लम्बी-सी चाभियों का गुच्छा लिया और ताले खोलकर तहखाने का द्वार अनावृत किया। भीतर घना अंधेरा था, रामशाह ने मशाल जलवाई और भूपत को तहखाने के अन्दर उतरने को कहा। भूपत क्यों हिचकने लगा, वह सेठ के साथ ही तहखाने में उतर गया। तब रामशाह ने अपने हाथों लोहे के भारी-भारी एक दर्जन सन्दूक खोलने शुरू किये, साथ ही कहते गये, 'भूपत! तैंने १० ही सन्दूक सुने होंगे, मेरे यहाँ ऐसे १२ सन्दूक हैं और सबमें ठोस सोने की ईंटें भरी हैं। ले, कितना सोना लेगा—जितना चाहे ले जा लेकिन मेरी एक बात मानेगा?'

सन्दूक खुलते गये और भूपत आंखें फाड़े हुए वह पुष्कल स्वर्ण देखता खड़ा रह गया, अवाक्। उसे उन ईंटों से भी अधिक आश्चर्य था सेठ की निर्भीकता तथा इतनी सहजता से अपना सोना किसी डाकू सरदार को दे डालने की तत्परता पर। कभी सोचता, यह सेठ इस तहखाने में लाकर मेरे साथ छल तो नहीं कर रहा लेकिन ऐसा करने पर क्या यह और इसका परिवार जिन्दा बच जायेगा? उसने भी पूछ लिया—'सेठिये, देखता हूं—तू विचित्र बनिया है। तुझे मेरा डर नहीं, खैर! यह बता, तुझे अपना यह सब सोना मेरे हवाले करते दुःख नहीं हो रहा है—?' भूपत का स्वर नरम था। भूपत के प्रश्न पर हंसा रामशाह। दो क्षण हंसता ही रहा। फिर बोला, 'भूपत! भला मुझे दुःख क्यों होगा रे! यह सोना मेरी कमाई का नहीं, पुरखों की धरोहर है। वे इसे ऐसे ही रखकर, इसे बिना खर्चे चले गये। कुछ वर्षों बाद मैं भी उसी रास्ते चला जाऊँगा—हो सकता है, आगे मेरे लड़के इसे खर्चें या वे भी इसे ऐसे ही अछूता छोड़कर विदा लें लेकिन उससे क्या, अब तो यह तेरे हाथ पड़ गया है, जो चाहे कर, मगर देख, मेरी एक बात रख ले।' कुतूहलवश "भूपत ने पूछा—'कह रे वणिक्! क्या कहना चाहता है, तू निराला ही सेठिया है।'

रामशाह ने धीर शांत स्वर में कहना शुरू किया, 'भूपत! मुझे इस धन का लोभ नहीं है रे! दुःख है इन गांव वालों का, जिन्हें तू लूट रहा है। देख, इन बेचारों का जेवर आदि तू लौटा दे और जो सोना तेरे सामने चमकता पड़ा है—यह उठवा ले जा। क्या इससे भी तेरा मन न भरेगा?'

'लेकिन रामशाह! उससे तेरा क्या लाभ होगा? ये लोग इसी लायक हैं। एक-दूसरे को दुःख पहुंचाते, परस्पर खेत-खलिहान जलाते, हत्या-खून करते इन्हें रंज नहीं होता। हर कोई चाहता है—पड़ोस का परिवार आपदा में रहे।

पड़ोसी की पकी फसल काटकर इन्हें संतोष होता है, उसकी भूमि हड़पकर ये उत्सव मनाते हैं—फिर मैं इन्हें लूटता हूं तो क्या पाप हो गया ? ये छोटे डाकू हैं—मैं जरा बड़ा लुटेरा हूं और जबकि यही मेरी जीविका है तो इन पर दया-माया करने से तो मेरा धन्धा चलेगा नहीं।'

रामशाह ने देखा, भूपत में भयानकता कितनी ही हो—कहीं पर इसके अन्तर्मन में भी वह मानवोचित मृदुता छिपी है जो इससे ऐसे शब्द कहला रही है—सम्भव है, यह भी कभी भला आदमी रहा हो और विपरीत परिस्थितियों ने इसे कुछ का कुछ बना डाला हो। इतनी देर हो चुकी—इसने परिवार के किसी आदमी पर अभी हाथ नहीं डाला, न कोई और क्रूरता ही अभी तक बरती। वस्तुतः रामशाह का स्वभाव था कि वे दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति में भी अच्छाई देखने की प्रचेष्टा करते। उसमें एक भी गुण उन्हें नजर आ जाते तो वे उसीको प्रमुखता से बखानने लगते—दोष देखना उनके संस्कारों में नहीं था। इसी कारण भूपत में भी उन्हें उसके जीवन के किसी पर्त्त में मानवता के जीवित बचे रहने की आशा बलवती हो उठी थी तो क्या आश्चर्य !

उन्होंने इस पर अधिक बल देकर भूपत से आग्रह किया, कहा—'जैसे भी हों, वे किसान हैं। अन्न उगाते हैं। श्रमशील हैं। बड़ी मुश्किल से कई वर्षों में कहीं एकाध कोई गहना परिवार के लिए

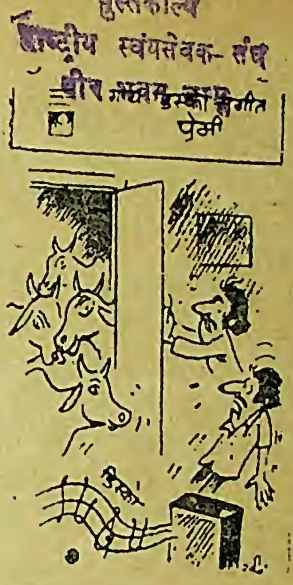

···मूर्ख···पहले संगीत बन्द कर···।

जुटा पाते हैं—वही उनकी निधि है। उसे तू मत छीन भूपत ! रामशाह का इतना सब सोना तू ले जाय तो भी वह भूखों नहीं मरेगा। गहनों की भी उसके यहां कमी नहीं। और मैं तो कहता हूं—स्वर्ण की इन ईंटों से भी तेरा मन न भरे तो तू मुंह भर खोल—मैं घर के स्त्रियों-बच्चों के जेवर उतरवाकर तुझे लदवा दूंगा। मेरे यहां हीरे-जवाहरात भी हैं—तू कहे तो वे भी निकलवा दूं। लेकिन बस, तू मेरी एक बात रख ले कि इस गांव के अन्य किसी परिवार को मत लूट !

'रामशाह !' इस बार बहुत विभ्रम में पड़कर कह उठा भूपत—'तू कैसा सेठिया है ? अपनी किसी सम्पदा के जाते दिल नहीं दुखता तेरा ? तू पीढ़ियों का

संजोया यह सब खजाना मुझे दिये डाल रहा है, क्यों न गांव के लूटे गये लोगों को तू अपनी सम्पत्ति से फिर से नये गहने बनवा देना। उसके बदले तू अपना सब सोना मेरे हवाले कर देने पर क्यों तुला है सेठ ?'

'भूपत ! यह बात ठीक-ठीक तू समझगा नहीं। मेरे बनवा देने से उन गहनों पर यह छाप लग जायेगी कि व उनके अपने द्वारा उपार्जित नहीं वरन किसी की दया-दान का परिणाम हैं—इससे उनमें अपने प्रति हीनता का भाव उपजेगा, जिससे वे गांव में सिर उठाकर न चल सकेंगे। भूपत ! यह संसार ही ऐसा है, इसकी माया के वशीभूत हो कौन है जो 'मेरे-तेरे' के अहंकार से बच पाये ? जिसे राम बचाये, वही बचे। आखिर तू भी तो इसी 'मेरे-तेरे' के मोह-जाल में पड़कर डाके डालता है, रक्त बहाता है—नहीं तो, कौन तू भी १०-५ हजार वर्ष जीने वाला है ! अगर तू जोड़कर रख भी गया तो कब वह तेरे काम आयेगा ? सच मान; मैं धन-समृद्धि में ही जन्मा, और पला-बढ़ा हूं परन्तु सोचता सदा यही रहा हूं कि जो मजा गरीबी में है, फकीरी में है—वह राज-वैभव में भी नहीं। आदमी धनी होने पर, राज-वैभव पाकर परमात्मा को बिसार देता है। तू ठीक ही कहता है कि तेरे समान डाकुओं और आज देश के अन्य लोगों के बीच बहुत कम अन्तर रह गया है। आदमी स्वार्थपरायण है, परमार्थ छूट गया उससे। उसके दुःख का कारण यही। गांव हो या नगर—सब निरानन्द है। तू जो डाकू बना, आखिर तू भी समाज का अंग था—तेरे डाकू बनने के अपराध में, पाप में हम भी भागीदार जरूर हैं। क्या जाने, जीवन में तूने कहीं किसी से भयंकर चोट खाई हो, ऐसा क्या हो-तभी तो तू नृशंसता बरतकर भी संतोष पाता है।' भूपत आज पहले भीषण दस्यु-जीवन में प्रथम बार, पस्त हो गया सहसा। लगा कि उसके हाथ-पैरों में कोई शक्ति नहीं रह गई है। मन गिर गया। डाका डालने का उत्साह जाने कहां उड़ गया। वह हारा-थका-सा निढाल खड़ा रहा उस अजीव-से तहखाने में। तभी ३-४ वर्ष की एक सुन्दर-सी बालिका दौड़ती-दौड़ती वहां आयी और रामशाह से लिपट गई। वह अश्रुपूरित अपने मोटे-मोटे नेत्रों से संत्रस्त-सी भूपत को अपलक निहार रही थी, रामशाह ने उसके सिर को थपथपाया तो जैसे उस बच्ची में कुछ साहस जागा। उसने देखा, डाकू उसके बाबा को मार नहीं रहा है, जैसा कि और बड़े बच्चों ने घर में उससे कहा था—उन्होंने कहा था, 'बाबा को डाकू नीचे पकड़ ले गया। अब वह उन्हें तलवार से मार डालेगा।' सुनकर बालिका कुछ देर वहीं खड़ी सिसकती रही कि शायद अब तक बाबा को डाकू ने मार डाला होगा तभी किसी बच्चे ने कहा, 'तू जा न, देख—डाकू क्या कर रहा है और बाबा कहां हैं ?' पहले तो

बालिका डरी-डरी वहीं खड़ी रही सबके साथ, फिर अकेले उस तरफ दौड़ पड़ी जिधर उस बाबा और डाकू को जाते देखा था। और अब वह देखकर आश्वस्त थी कि बाबा को डाकू ने मारा नहीं है। भूपत की नजर भी एकाएक बालिका पर जाकर स्थिर हो गई, बच्ची उसे बड़ी प्यारी लगी। कैसा भोला चेहरा! ममता-करुणा से लबालब भरी बड़ी-बड़ी आंखें, जैसे देवी हो याकि देवी-मंदिर की सप्राण प्रतिमा। भूपत का जाने कितने वर्षों बाद मन हुआ, बच्ची को गोद में उठा ले लेकिन यह उसे अपने सरीखे डाकू के लिए अस्वाभाविक लगा—यह भी सोचा कि बालिका कहीं डरकर भागे नहीं! भूपत उसे जितना ही देखता, उसका मन कोमल भावनाओं से आप्यायित हो उठता। कारण, कभी वह एक बच्ची का पिता था, सुन्दर पत्नी थी। हंसता-खेलता छोटा-सा परिवार था—पर फिर सब बदल गया। उधर बालिका की हिम्मत यह आभास पाकर बढ़ गई कि डाकू चुपचाप खड़ा भर है—तलवार नहीं उठा रहा, न बाबा को डाट ही रहा है। उसने धीरे-से पूछा, 'बाबा! डाकू तुम्हें मारेगा तो नहीं?'

बाबा ने उसे आश्वस्त किया उसे प्यार करके, उसका माथा चूमकर कि 'नहीं, तू डर मत। ये मारने नहीं, मुझसे बात करने आये हैं—तेरा घर देखने।'

तभी बालिका भूपत की आंखों में

पाठकों से निवेदन

'देश की राजनीति में भा० ज० पार्टी का स्थान' विषय पर इस अंक में लेख इसलिए नहीं दिया जा सका क्योंकि अगले महीनों में उसका प्रथम अधिवेशन हो रहा है, यह अधिवेशन स्वयं यह साक्षी संजो जायेगा कि यह पार्टी देश में कौन-सा स्थान रखती है, अनन्तर इस शीर्षक अंक' में का लेख छापेंगे :-सं०

झांकती रहीं, झांकती रही, फिर एकाएक दौड़कर उसके सामने आ गई—अपने मुंह में एक उंगली डालकर भूपत से बोली; 'बाबा को मत मारना। मैं तुम्हें अपना संदूक भी दे दूंगी।'

भूपत भूल गया कि वह कौन है! उसने लपककर उस गुड़िया को गोद में ले लिया। माथे से उसके घुंघराले रेशमी बाल हटाकर बोला, 'मेरी बेटी! नहीं मारूंगा तेरे बाबा को, बस। तू जो कहेगी, करूंगा। बोल; और क्या करूं?' अब बालिका तो बालिका, मित्र बनते कितनी देर लगती है। उसने दोनों नन्हें हाथ ऊपर उठाकर कहा, 'तो बाबा की तरह मुझे भी गोद में क्यों नहीं लेते? मुझे प्यार क्यों नहीं करते?'

भूपत ने उसे गोद में उठाया; छाती से चिपटाकर प्यार किया, लगा कि वर्षों बाद छाती जुड़ा गई है। जैसे कहीं गंगा-जल का शीतल स्रोत अनायास उस वज्र-

वक्ष से स्पर्श कर गया हो! ऐसा सुख डाकू-जीवन अपनाने के बाद कहीं भी, कभी भी एक क्षण के लिए भूपत को सुलभ नहीं हो पाया था। आज उसका मानो संचित ताप शांत हो गया, शीतल। रामशाह अब अन्दर से उमंग आया, सोचने लगा, स्नेह पारस है—पत्थर भी उसे छूकर सोना बन जाता है ठीक इसी भूपत की तरह। देखो, बालिका को इतनी निश्चितता से प्यार करते देखकर कौन कहेगा, यह इतना दुर्दान्त दस्युराज है—शताधिक हत्याएं करने वाला। प्रभु! तू ही कर्त्तार है, तू ही भर्त्तार! चाहे जिसको चाहे जो बनादे। रामशाह को तूने धनपति बना दिया और इस भूपत को इतना बड़ा डाकू! लेकिन अजब तेरी लीला! तू तो पत्थर में भी जोंक का पालनहार है प्रभु! तभी तो भूपत के मन में कहीं मानव-मोह-ममता का क्षीणतम स्रोत शेष छोड़ दिया, वह प्रतिफलित हो—यही कामना करता है तुझसे तेरा यह अधम सेवक गोपालधणी!'

तभी बाहर द्वार पर तुमुल कोलाहल सुनाई पड़ा—लगा कि लोग मारने-काटने पर तत्पर हैं। भूपत सजग हुआ किन्तु बालिका को गोद में ही लिए हुए रामशाह से बोला, 'चलो सेठ! बाहर चलो अन्यथा मेरे दल से कहीं गांव वालों का युद्ध न ठन जाय। कदाचित् कुछ अधिक लोग इकट्ठे हो गये हैं। सोने की ईंटें मशाल के क्षीण प्रकाश में यों ही चमकती रहीं, और रामशाह के सारे सन्दूक खुले के खुले छोड़कर भूपत के साथ तहखाने के बाहर लपके। परिवार वालों ने जब देखा, बालिका मजे से डाकू सरदार की गोद में चढ़ी प्रसन्नता से ताली पीट रही है तो वे बहुत चकित हुए कि इसने डाकू पर क्या जादू कर दिया है! यह हुआ क्या? डाकू सरदार तहखाने से कुछ लूटकर भी नहीं जा रहा और उसका भयानक चेहरा भी शांत-गम्भीर लग रहा है। इतनी जल्दी यह खूंखार आदमी बदल कैसे गया यानि रामशाह को कहीं पकड़कर ले जा रहा है! परिवार वालों की सब शंकाएं तो अभी निर्मूल नहीं हुई थीं—इतनी शीघ्र हो भी नहीं सकती थीं।

रामशाह ने द्वार पर जाकर देखा जैतसी अपने किसी मित्र के साथ भूपत के साथियों से उलझ रहा है, तलवारें खिंच गई हैं, दो डाकू घायल भी हो गये हैं, दूला की भुजा से रक्त रिस रहा है—शायद उसे भाले की चोट लगी है।

'ठहरो!' भूपत का घन-गर्जन-स्वर गूंजा! 'यही है भूपत, 'जैतसी आवेश में चिल्लाकर रैनसी को सचेत किया कि जिससे लड़ना है—वह मुख सरगना आ गया है। नरसी कृपाण सूतता उसके सामने बढ़ा, बोला—'धिक् तुझे! मर्द मानुष होकर तू निर्बलों को लूटता है। आ, देख मेरी खड्ग का पानी!'

परन्तु तभी जैतसी की दृष्टि उस बालिका पर पड़ी जो बड़े आनन्द

भूपत की गोद में सवार थी लेकिन अब तलवारें चलते देखकर परेशान-सी हो रही थी, भयभीत। भूपत की गोद में बच्चा! जैतसी ने उस भयानक दस्युराज के बारे में जो सुना था—उससे इस दृश्य की संगति नहीं बैठी। विभ्रम में पड़ गया कि बात क्या है! अभी तक रामशाह की हवेली लुटने से क्योंकर बची रह सकी? भूपत अकेले भीतर क्या कर रहा था और यह इतना डाकू दल बाहर ही क्यों खड़ा रहा?

उधर भूपत ने इस नये योद्धा को द्वन्द्व के लिए तैयार देखा तो सोचने लगा, लड़ूं या न लड़ूं! पहली बार उसका मन हुआ कि इस बच्ची के आगे रक्त बहाना उचित नहीं। यह डरेगी, जीवन में मानव-हत्या का दृश्य कभी भूल न सकेगी और उसका भी पाप मेरे ही सिर होगा।

फिर देखा, यह नया आदमी कुछ विलक्षण ही लगता है, उसका तेज ही

भूल-सुधार

प्रूफ की गलती से पृष्ठ ५६ पर 'मां के चमत्कार' शीर्षक की जगह 'मां के चत्कार, छप गया है। पाठक कृपया सुधारकर पढ़ें। —सम्पादक

अलग है। विशिष्ट पुरुष यह कोई तो किसका आदमी है यह?

'ताकता क्या है, उठा तलवार।' ललकारा रैनसी ने। : रामशाह ने बरजा बल्कि वह कूदकर दोनों दलों के बीच में आ खड़ा हुआ। बोला—'जैतसी ठाकुर! अपने आदमियों को मना करो, अब भूपत मेरा अतिथि है, स्नेही। कौन जाने वह अब डाकू रहा भी या नहीं?'

जैतसी चकित, अवाक्, कि रामशाह को हुआ क्या? गांव के लोग चिल्ला उठे—'नहीं, हम इन दुष्टों को यों न जाने देंगे। मारेंगे और मरेंगे। इन्होंने हमारे परिवार लूटें हैं—तुम्हारे मेहमान कब से हो गये?' (क्रमशः)

एक मृत जाति के पुनर्जीवन की कहानी
साहस एवं संकल्प की अपूर्व गाथा

'संघर्षरत इजरायल'

ले० डा० रामनाथ मल्ला
मूल्य रु० ३२.००
विशेष छूट
केवल रु० २०.०० भेजकर शीघ्र मंगाइये ● डाक व्यय मुफ्त

व्यवस्थापक
लोकहित प्रकाशन
पो० बा० २०७, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

उत्पादकता वर्ष १९८२

गत् एक वर्ष में किये गये हमारे प्रयासों के फलस्वरूप प्राप्त प्रगति के नये आयाम

- अप्रैल से अक्टूबर १९८२ की अवधि में गत वर्ष के ३९८९ मि० यू० विद्युत उत्पादन के विरुद्ध ४६७७ मि० यू० तापीय विद्युत उत्पादन अर्थात् १५ प्रतिशत अधिक उत्पादन।
- ओबरा, हरदुआगंज तथा पनकी के तापीय विद्युतगृहों द्वारा विद्युत उत्पादन में १९ प्रतिशत की अब तक की सर्वाधिक बढ़ोत्तरी।
- इस समय प्रदेश में उद्योगों पर कोई कटौती नहीं है जबकि गत वर्ष इसी समय पर उद्योगों पर ५० से लेकर ६६·६६ प्रतिशत की विद्युत कटौती लागू थी।
- आर्क फर्नेसों को लगभग १२ घण्टे प्रतिदिन की विद्युत आपूर्ति। गत वर्ष इन्हें केवल ८ से ९ घण्टे की विद्युत आपूर्ति ही की जा सकी थी।
- इस समय प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों को ९ से १० घण्टे तक की विद्युत आपूर्ति की जा रही है। पिछले वर्ष यह केवल ५ घण्टे प्रतिदिन थी।
- प्रदेश के शहरी क्षेत्रों को २४ घण्टे की विद्युत आपूर्ति की जा रही है जबकि गत वर्ष ३ से ६ घण्टे की विद्युत कटौती करनी पड़ रही थी।

उत्तर भारत के अन्य प्रदेशों में इस समय लागू विद्युत कटौतियां

(सितम्बर १९८२)

पंजाब	५० से १०० प्रतिशत
हरियाना	७० प्रतिशत
राजस्थान	२० से १०० प्रतिशत
मध्यप्रदेश	१० से ५० प्रतिशत
गुजरात	१५ से ५० प्रतिशत
महाराष्ट्र	१५ से ३० प्रतिशत
पश्चिम बंगाल	१५ प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	कोई कटौती नहीं

फिर भी हमें यदा-कदा तापीय इकाइयों में अचानक व्यवधान आ जाने के कारण आपातकालीन विद्युत कटौती करनी पड़ ही जाती है जिसके कारण उपभोक्ताओं को होने वाली असुविधा के लिये हमें खेद है।

प्रदेश के उपभोक्ताओं को पूर्ण सन्तोष न मिलने तक उपभोक्ताओं को बेहतर एवम् सुनिश्चित विद्युत आपूर्ति की दिशा में हमारे प्रयास चलते रहेंगे।

उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद्, शक्ति भवन,
१४ अशोक मार्ग, लखनऊ द्वारा निर्गत

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
नई दिल्ली

एक भारतीय आत्मा फादर कामिल बुल्के

संस्मरण

शकुन्तला सिरोठिया

लगभग २० वर्ष पूर्व की बात है। कलकत्ता के एक महिला डिग्री कालेज में 'हिन्दी साहित्य परिषद' के अधिवेशन में सदस्य के रूप में भाग लेने गयी हुई थी। हाल में लेखकों का परिचय दिया जा रहा था। एक लम्बी काया-श्वेत चोगा पहिने परिचय देने खड़ी हुई। ये थे डाक्टर फादर कामिल बुल्के। परिचय देकर तुरन्त ही हाल से बाहर चले गए। थोड़ी देर बाद ही जब मेरा परिचय क्रम समाप्त हुआ, मैं भी बाहर आ गयी। फादर बुल्के मिल गए, मैंने अपना परिचय दिया। उन्हें प्रणाम किया। मेरे दोनों हाथ पकड़ कर स्नेह से बोले 'मैं माइक पर आपका परिचय सुन रहा था। अब आप आयीं तो मुझे खुशी हुई। 'काफी देर तक खड़े-खड़े ही बात होती रही। मीटिंग का कार्यक्रम समाप्तप्राय था। कालेज के पास मेरे मेजबान का घर था। मैंने बुल्के साहब से भी घर चलने को कहा। वे तैयार हो गए। सड़क पर आकर मैंने दाएं-बाएं देख कर जैसे सड़क पार करने के लिए कदम बढ़ाए कि फादर ने लपक कर मुझे पकड़ लिया। बहुत खतरनाक जगह है कलकत्ता। ये बस, कार किसी को भी बेरहमी से कुचल देती हैं। मुझे एक बार ट्रक ने धक्का दे दिया था। साइकिल पर था गिर पड़ा, बेहोश हो गया। आठ दिन चारपाई पर पड़ा रहा। तब से बहुत डरता हूं राक्षस रूपी मोटर गाड़ियों से। अपने प्रति फादर की इस सुरक्षा और अभिभावक की भावना ने मुझे उनके प्रति श्रद्धा भाव से अभिभूत कर दिया। मेरा हाथ पकड़े-पकड़े ही वे घर तक आए।

१९६२ के फरवरी माह का प्रारम्भ था। इलाहाबाद में ठन्ड मजे की थी। मैं उस समय राज.शिशु-प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवक्ता थी। चपरासी ने आकर कहा—कोई अंग्रेजी साहब पादरी आए हैं कह कर मुझे चिट पकड़ा दी। फादर कामिल बुल्के। प्रसन्नता भरी मैं शीघ्र ही कालेज गेट की ओर बढ़ी। साइकिल पकड़े हुए फादर मुझे देखकर आगे बढ़े। मैंने प्रणाम किया। फादर बुल्के का यह आगमन अप्रत्याशित था।

उन्हें देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। दोपहर के २या२॥का समय था। ३ बजे कालेज की छुट्टी होती थी। मैंने प्रधानाचार्या से अनुमति ली और बुल्के साहब को लेकर घर चल दी। मैं रिक्शे पर वे साइकिल पर सीट पर बैठ कर फादर कितने लम्बे लगते थे। रिक्शे के साथ वह धीरे-धीरे चलते रहे। मैंने कहा— बुल्के साहब आज इतने दिनों बाद आप को देख कर अचानक मुझे बेहद प्रसन्नता हो रही है। आप इलाहाबाद कब आए ?

'कल ही तो आया हूं। आप के कालेज का पता लगाते हुए आप से मिलने आ गया।'

हम लोग घर पहुंचे। मेरा घर सड़क से एक घर छोड़ कर गली में है। फादर के साथ मुझे आया देखकर आस-पास के लोग आश्चर्य से देखने लगे। छःफीट से भी लम्बे गौर, स्वस्थ और सौम्य डा० कामिल बुल्के बड़े भव्य व्यक्तित्व के थे। चौड़ा मस्तक, नीली आँखें, ताम्रवर्णी केश, श्वेत दाढ़ी श्वेत चोगा के परिधान में उनको देखकर किसी का भी सहज ही उनकी ओर आकर्षित हो जाना अति स्वाभाविक था। मैंने पूछा—'मेरे साथ इतनी दूर साइकिल पर आए हैं थक तो नहीं गए ?'

'नहीं-नहीं, बिलकुल नहीं, अभी तो मैं ५४ वर्ष का जवान हूं।' कह कर बुल्के साहब थोड़ा सा मुस्करा दिए। वैसे वे बहुत गंभीर स्वभाव के ही थे। मैंने फिर पूछा फिर इस जवानी में ही दाढ़ी क्यों पक गयी ? सिर के केश तो श्वेत नहीं है आपके ?

सिर के बालों से कोई काम नहीं लेता, बेचारी दाढ़ी को काफी परिश्रम करना पड़ता है। खाना खाते समय बोलते समय या जोर से पढ़ते समय दाढ़ी को भी मेहनत करनी पड़ती है।

फादर कुछ अपने परिवार और देश के बारे में भी बताइए न।

'फादर की मुख मुद्रा गंभीर हो गयी। जैसे पूर्व स्मृति में खो गए हों फिर धीरे-धीरे बड़ी रुचि लेते हुए उन्होंने बताया।'

बेल्जियम निवासी कामिल बुल्के अपने माता—पिता की सबसे बड़ी सन्तान थे। तीन छोटे, भाई और थे। प्रारंभ से ही गंभीर प्रकृति के थे। २१ वर्ष की आयु में ही बी. एस. सी. तथा इन्जीनियरिंग की परीक्षा पास कर ली किन्तु नौकरी आदि में रुचि न ले कर कैथोलिक धर्म की पुरोहिती (पादरी) की दीक्षा ले ली अर्थात जीवन से संन्यास !

'आपने यह निर्णय क्यों लिया। इस प्रकार के जीवन की गंभीरता और शुष्कता का अनुमान क्या आपने उस छोटी आयु में ही लगा लिया था ?'

फादर ने कहा —अच्छी तरह समझ बूझकर ही संन्यास का निर्णय लिया था। जिस दिन दीक्षा ली थी उसकी पहली रात अपने निश्चय पर एकान्त में खूब रोया भी था। एक दिन अचानक

मुझे अध्यात्म ज्ञान का बोध भी हुआ। १९३५ में मैंने वेल्जियम छोड़ने और भारत आने का निश्चय किया। यह भी निश्चय किया कि अब फिर स्वदेश कभी लौट कर नहीं आऊँगा। मैंने उत्सुकता से पूछा ऐसा निश्चय करने का कोई कारण था क्या ?

'त्याग केवल शरीर का ही नहीं होता मन का भी होता है। किसी संकल्प को निभाने के लिए संयम और त्याग की आवश्यकता होती है। मुझे ऐसा निश्चय करने के बाद कुछ अहं भी हो गया था और भगवान किसी का गर्व सहन नहीं करते। मेरे कान में तकलीफ हुई जिसके इलाज के लिए मुझ अपना निश्चय तोड़ कर फिर देश लौटना पड़ा। कान का आपरेशन होना था मेरे भाई को भी कान की तकलीफ थी उसका आपरेशन हुआ वह ठीक हो गया किन्तु मेरा··· ।''

शून्य की ओर देखते हुए डा० बुल्के ने कुछ रुककर कहा —'आपरेशन करने से वेल्जियम के डाक्टर ने इन्कार कर दिया। कहा कि सफलता की कोई आशा नहीं है। ३/५ अंश तक भी सफलता की आशा होती तो हम कर देते। मैं बहरेपन का उपहार लेकर भारत लौट आया। लेकिन यह बहरापन मेरे लिए वरदान स्वरूप है। मेरे लिए 'एवरी क्लाउड हेज ए सिल्वर लाइन' हैं।

अध्यात्म चिन्तन, साहित्य अध्ययन लेखन आदि में इससे बहुत बल मिलता है।

'भ्रष्टाचार का सिन्दूर'

चुटकी भर भ्रष्टाचार का
सिन्दूर मांग में पिन्हाकर
शासन ने जनता को
सुहागन बना दिया।
बुजुर्गों ने आशीर्वाद दिया—
'दूधन नहाओ
पूतन फलो।'

शकुन्तला सिरोठिया

वधिर होकर मैं दुनिया के कोलाहल और आकर्षण से दूर होकर अपने जीवन के लक्ष्य में केन्द्रित हो गया।'

यहाँ भारत में आकर आप को कैसा लगा? भाषा के कारण कठिनाई लगी होगी?' मैंने पूछा, 'भारत मेरे लिए प्रारम्भ से ही आकर्षण का केन्द्र था। रामायण के राम में, जब में वेल्जियम में था, तभी से बहुत रुचि थी। भारत में आकर मैंने अनुभव किया कि बिना हिन्दी सीखे यहाँ के जीवन में सहज होना कठिन है अस्तु क ख ग सीखना शुरू कर दिया किन्तु हिन्दी सीखना ही पर्याप्त नहीं था। भारत की आत्मा को समझने के लिए संस्कृत सीख कर उसके प्राचीन ग्रन्थ पढ़ना मुझे बहुत आवश्यक लगा अस्तु संस्कृत पढ़ने लगा। अब इतना आ गया है कि कालीदास साहित्य भी पढ़ लेता हूं। हां, कभी-कभी कहीं अटक भी जाता हूं तब कोश देखने की जरूरत पड़ती है। हिन्दी और संस्कृत दोनों में मैंने एम. ए. पास कर लिया है। 'राम कथा' पर मैंने डाक्टरेट भी कर ली

है।'

मैं मन्त्र मुग्ध-सी उस अद्भुत जीवट और लगन के व्यक्ति को सुन रही थी। मेरी उत्सुकता और प्रशंसात्मक भाव जो मेरे चेहरे पर चढ़-उतर रहे थे उन्होंने डा. बुल्के के वर्णन को और बल प्रदान किया और बड़ी रुचि से वे अपनी बात कह रहे थे।

मैंने पूछा; 'बुल्के साहब आपको यहाँ की हिन्दी की कविता अच्छी लगती हैं ?'

'बहुत कम। सूर, तुलसी का गंगाजल पीने के बाद आज की सब कविता फीकी लगती हैं और यह नई कविता तो बिल्कुल नहीं ?'

'अरे! ऐसा क्यों? नई कविता पर तो विदेश का ही प्रभाव है', मैंने आश्चर्य से पूछा।

'तो क्या आप समझती हैं केवल भारत ने ही पागलपन का ठेका ले रखा है। काबुल में क्या गधे नहीं होते। जिस बात को हमारे योरुपवासी छोड़ देते हैं उसे यहाँ के वासी नया करके अपना लेते हैं। इसमें क्या कोई अर्थ लगता है आपको —

साँप आया,
दूध पिया,
चला गया,

मैंने फिर इस विषय को बढ़ाने में रुचि नहीं ली और पूछा-आज कल आप क्या लिख रहे हैं ?

'हिन्दी-इंगलिश कोश लिख रहा हूं।'

फिर कभी आप जन्म भूमि नहीं गए ?

'नहीं' कभी नहीं। जिस मां को मैं बहुत प्यार करता था, जिसे भारत आने पर शुरू-शुरू में हर पन्द्रह दिन में पत्र लिखता था, उसके मरने की खबर पाकर भी नहीं गया। कान की तकलीफ से तो मजबूरी में बेल्जियम गया था तब मेरे देशवासियों ने उमड़ कर मेरा स्वागत किया था।'

मुझे लगा कैसा सरल सहज और महान व्यक्ति मेरे सम्मुख बैठा है। क्या इसे अनुभव है कि कितना त्याग किया है इसने ? कितना संयम बरता है इसने अपने जीवन में ?

योरुप से बिलकुल भिन्न संस्कृति के इस भारत देश में आकर यह यहीं का होकर रह गया, यहाँ का अभिन्न अंग बन गया। भारत को इसने अपनी कर्म और साधना भूमि बना ली। अपनी काया पर रामनामी ओढ़ ली। समस्त जवानी राम-कथा का अध्ययन अध्यापन करके बिता दी। और अन्त में वृद्धावस्था को प्राप्त होकर भरत-भूमि की रज में ही चिर निद्रा में लीन हो गया।

कामिल बुल्के विदेशी मिट्टी से निर्मित तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, तुम्हारी आत्मा भारतीय थी तभी तो भारत ने तुम्हें इतनी दूर से खींचकर बुला लिया।

आज तुम नहीं हो किन्तु फिर आओगे मुझे ऐसा लगता है तुम्हारा और भारत का जन्म-जन्म का संबन्ध है।

[१०६, बाई का बाग, इलाहाबाद]

(पृष्ठ १७ का शेष)

और एक आज का युग है। कहां हैं ऐसे नेता ? और कहां है अनुयाई युवकों की वह श्रद्धा ? क्यों थी तिलक के प्रति यह आस्था ? क्योंकि वे स्वयं बम-पिस्तौलों के रास्ते पर न जाकर भी अंग्रेज जज को मार डालने के लिए जिस विप्लवी खुदीराम और प्रफुल्ल चाकी ने बम फेंका, उनको अपने 'केसरी' के सम्पादकीय में सराहा। मानो उस एक अकेले बम का स्वागत कर रहे हों। फलतः अंग्रेजों ने तिलक को वह संपादकीय लिखने के कारण ६ साल तक मांडले की जेल में सड़ाया। ऐसे थे तिलक। यह था उनका नैतिक साहस—इस सीमा तक वे युवा रक्त को रवानी दे सकते थे, समर्थन दे सकते थे। आज देश के अंग-भंग के लिए लोग बम का इस्तेमाल कर रहे हैं, देश-हित का बम से रिश्ता नहीं रहा। खुदीराम देश-विभाजन के विरोध में बम चलाते थे। सत्ता की वीथियों तक आज की राजनीति सीमित है, वहां कुर्सियों पर फूल चुनते हैं—कांटों से उनका वास्ता क्या ? तिलक ने कांटों को गले लगाया। हमारे आत्मानुवीक्षण में इन प्रसंगों की इन कांटों की भूलकर भी कहीं गुजर नहीं। 'हम' के अभिमान में हर चीज ये बौनी समझते हैं, इनके त्याग-बलिदान को प्रशंसो तो तुम इनकी नजरों में चढ़ सकते हो। एक तिलक थे कि खुदीराम बोस ने तिलक की तारीफ नहीं की थी, बम चलाया था गोरों की एक गाड़ी पर-उसे जज किंग्सफोर्ड की गाड़ी समझकर। आज इस हाथ दे, उस हाथ ले का दृश्य साकार है। कल विमान ले उड़े, आज विधायक हैं। राजनीति में अवढर दान चल रहा है। तिलक और खुदीराम, बिस्मिल और अश्फाक की याद कहां ? उनको पूजें या खुद को पुजवायें ? इन्हें खुद को ही, पुजवाने से फुर्सत नहीं। इसी वर्ष दूरदर्शन पर 'बिस्मिल' की फिल्म आयी, उसमें बिस्मिल के मुंह से फांसी के तख्ते पर साथियों के प्रति कहलाया गया कि,'अब, आगे कांग्रेस के रास्ते पर चलना। कांग्रेस में रहकर काम करना।' कितना बड़ा झूठ ! शहीदों के साथ कितना बड़ा फरेब ! वर्ना सरकार ऐसी फिल्मों के लिए धन कैसे दे ! मैं चुनौती देता हूं ऐसी फिल्में बनाने-दिखाने वालों को कि बिस्मिल तो क्या उनके किसी अन्य शहीद साथी के दस्तावेजों में से ही कहीं ये शब्द पेश किये जायें ! सम्भव न होगा। यह है सरकार का शहीदों के प्रति प्रेम-आदर ! चन्द्रशेखर आजाद पर केन्द्र सरकार ने डाक-टिकट अभी तक न निकाला, निकाला गया लार्ड माउन्टबेटन पर, जिन्होंने कभी शिमला में पं० नेहरू के समक्ष विभाजन के सन्दर्भ में यह प्रस्ताव रखा था 'अगर किसी प्रदेश की जनता चाहे, तो भारत और पाकिस्तान—दोनों में से किसी के भी साथ मिलने से इन्कार कर दे, चाहे तो अपने प्रदेश को एक स्वतंत्र राज्य भी बना सकती है।' नेहरूजी ने यह मसौदा पढ़कर उसी रात कृष्णमेनन से कहा था—

'खत्म ! सारा खेल खत्म ! डूब गई लुटिया।' फिर एक तीखा पत्र माउन्टबेटन को लिखा था, भले वे उनके गहरे दोस्त थे कि, 'यह योजना भारत में आंतरिक संघर्ष, अव्यवस्था, और फूट को जन्म देगी। इसका मसौदा पढ़ने से ही डरावना लगता है। यदि इसे कांग्रेस के सामने रखा गया, तो पार्टी का एक-एक सदस्य बुरी तरह बौखलाएगा और इसे सख्त नापसन्द करेगा।' गनीमत हुई कि नेहरूजी पर माउन्टबेटन की मित्रता का जादू इस सीमा तक कारगर न हुआ, अन्यथा भारत के सैकड़ों टुकड़े करा डालते माउन्टबेटन। उसी अंग्रेज पर भारत सरकार ने डाक-टिकट छापकर आदर व्यक्त किया किन्तु चन्द्रशेखर आजाद पर डाक-टिकट निकालने से इन्कार कर दिया स्टीफन साहब ने ! कैसी विडम्बना है ! हम कितने कृतघ्न हैं कि जिन शहीदों की कमाई खाते हुए हम सरकार में बैठे हैं—उनकी इस कदर उपेक्षा करते जरा भी शर्म नहीं आती ! कहां है उन महान शहीदों के सपनों का भारत, वह शासन-व्यवस्था और आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता और आत्म-सुरक्षा की दृष्टि से पूर्ण सक्षम, सशक्त और गर्वोन्नत हिन्दुस्तान ! इस सरकार ने अभी भी भारत को ब्रिटिश कुनबे (कामनवेल्थ) से बांध रखा है, किसलिए ? क्या यह अपमानास्पद नहीं ? हजारों हजार शहीदों को याद करके क्या कोई सरकार भारत को एक दिन के लिए भी ब्रिटिश कुनबे में बांधे रखना चाहेगी ?

आज देशभक्ति एक तमाशा बन गई है, नेतागिरी एक व्यवसाय। स्वातंत्र्य-पूर्व का युग भिन्न था। उत्तरप्रदेश में कुछ लोगों ने एक क्रान्तिकारी दल बनाया। उसके नियमादि बनाये, जिनमें एक नियम यह था कि 'जो सदस्य दल का सर्वकालिक कार्यकर्त्ता हो; उसे महीने में कुछ निश्चित पैसा दल दे।' ये नियम जब पं० रामप्रसाद बिस्मिल को दिखाये गये तो उन्होंने विरोध किया। कहा, 'जो सब समय दल के ही कार्य में लगे, उसे सिर्फ गुजारे भर का पैसा तो देना ठीक है, फिर भी वह पेट-पालन के लिए भी कुछ अन्य काम जरूर करे, न कि सिर्फ दल के पैसे पर निर्भर रहे; मासिक पैसा उसे दिया तो फिर तो वह भाड़े का टट्टू बनेगा।' तब उन लोगों ने तय किया कि 'अच्छा ऐसा न सही, परन्तु यह हो कि डाकों में जो धन मिले—उसका आधा पैसा दल के कामों में खपे और आधा सदस्यों के लिए एक कोष में जमा हो।' बिस्मिल ने इसका भी विरोध किया—कहा, 'डकैतियों का पैसा किसी के लिए उसके निजी खर्च में नहीं दिया जा सकता और न उस सदस्य को ही देना ठीक है जो दल के अलावा भी कोई धन्धा करता हो !' तब उनसे पूछा गया, 'फिर दल के काम के लिए धन आये कहां से ?' बिस्मिल ने कहा, 'मैनपुरी षड्यंत्र केस में हम लोग यह करते थे कि या तो निज के खर्चों में से निकाल-

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
जीर्ण जम्मू

कर या फिर मां-बाप से पैसा लाकर दल को देते थे, उसी से काम होता था और ऐसा करके हम खुश होते थे किन्तु दल का धन अपने निजी खर्च में लगाना पाप मानते थे।' परन्तु उन लोगों को बिस्मिल का विचार रास न आया, फलतः बिस्मिल उस दल से दूर रहे बल्कि उससे सतर्क रहने लगे। क्योंकि जो पहले पैसे को ही प्रमुखता दे, वह जीवन-मरण के खेल में कब कमजोरी दिखा बैठे, कुछ ठीक नहीं। ऐसे थे वे लोग और आज? आज जो राजनीतिज्ञ सरकार में हैं—उनका पारिवारिक स्वार्थ सर्वोपरि। जिसे देखो, अपने बेटे, भाई-भतीजों को सत्ताधीश बनाने में संलग्न है। शेख अब्दुल्ला ने जीते जी ही अपने लड़के डा०फारुख अब्दुल्ला को शासन का भी वारिस बना डाला, वही आज जम्मू-कश्मीर के मुख्यमन्त्री हैं। क्यों? शासन की विरासत तो कभी इस देश में रजवाड़ों में चलती थी, लोकतन्त्र में इसकी गुंजायश कहां? परन्तु यह रस्म चल निकली है। मिनिस्टर का बेटा मिनिस्टर है, तो कहीं मंत्री का भाई मुख्यमंत्री भी है—डा० जगन्नाथ मिश्र किस त्याग-बलिदान के प्रतीक हैं? कोई बिहार के शहीद फुलेनाप्रसाद के तबाह-बर्बाद परिवार से पूछे। राजीव गांधी को क्या हक है जनता पर हावी होने का; आखिर पंडित नेहरू के त्याग की कमाई कितनी पीढ़ियां खायेंगी? बिस्मिल, आजाद और भगतसिंह की परम्परा को यह कहां गवारा हो सकता था। कहां है उनके सपनों की राज्य-व्यवस्था?

देश-भक्ति व्यवसाय नहीं है। बिस्मिल के साथी किस दारुण हालत में काम करते थे, स्वयं उन्हीं की साक्षी देता हूं:—'कोमल हृदय नवयुवक मेरे चारों ओर बैठकर कहा करते— 'पंडितजी अब क्या करें?' मैं उनके सूखे-सूखे मुख देखकर बहुधा रो पड़ता कि स्वदेश-सेवा-व्रत लेने के कारण इनकी फकीरों से भी बुरी दशा हो रही है। एक-एक कुर्ता तथा धोती भी ऐसी न थी जो साबित होती। लंगोट पहनकर दिन व्यतीत करते थे। अंगोछा पहनकर नहाते थे, एक समय धर्म-क्षेत्र (दान-क्षेत्र) में भोजन करते थे, एक समय दो-दो पैसे के सत्तू खाते थे। मैं भी सबके साथ बैठकर सत्तू खा लेता था। क्या करूं, कुछ समझ में ही न आता था। अंत में धैर्य धारण कर दृढ़तापूर्वक कार्य करने का निश्चय किया।' इन्हीं विषम परिस्थितियों में बिस्मिल के दल ने काकोरी के पास ट्रेन रोककर सरकारी खजाना लूटा ताकि दल का कार्य आगे बढ़ सके और अंग्रेजों को चुनौती भी दी जा सके।

चरैवेति ; चरैवेति ! वे फिर भी चलते रहे। तब आई यह आजादी। बड़ी महंगी कीमत देनी पड़ी है इस देश के छात्रों को, नवनिहालों को। कहां अब विरासत में गद्दियां रिजर्व की जाती हैं ! शहीदों की भावना से कितनी प्रतिकूल दिशा में खेयी जा रही है राजनीति की नौका, नतीजे सामने हैं।

देश की व्यवस्था में वे जनता के समानाधिकार के पक्षधर थे। 'बिस्मिल' ने लिखा है—'अपने लिए मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति शीघ्र ही पुनः भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती सम्बन्धी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूंगा क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर यही उद्देश्य रहेगा कि मनुष्यमात्र को सभी प्राकृतिक पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हों। कोई किसी पर हुकूमत न करे। सारे संसार में जनतंत्र की स्थापना हो। वर्तमान समय में भारतवर्ष की बड़ी शोचनीय अवस्था है—अतएव लगातार कई जन्म इसी देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक भारत के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतंत्र न हो जायेंगे, परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे ताकि मैं उसकी पवित्र वाणी, वेदवाणी का अनुपम घोष मानवमात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूं।' यह थी उनकी भावना।

चाँदनी पत्ती
व
मैलाणा
जाफरानी पत्ती के निर्माता

पेश करते हैं अपनी नवीनतम भेंट

पान शेखा

पिक

छाप

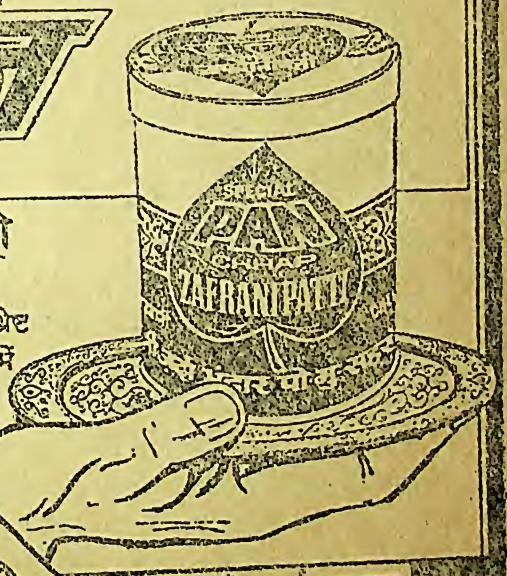

जाफरानी पत्ती

सुगन्ध, स्वाद व ताज़गी से भरपूर खाने का सर्वश्रेष्ठ खुशबूदार तम्बाकू पान में सदा प्रयोग करें।

निर्माता

केसरवानी जर्दा भण्डार

पो० मु० सहमो, ज़िला इलाहाबाद

[अंतिम किस्त]

वह कैदी

हरिदत्त

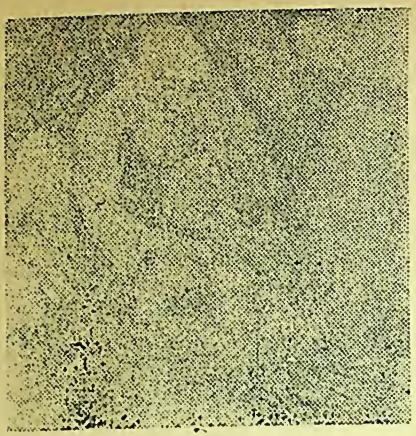

अपनी जीवन-संध्या में कर्नल चोपड़ा संन्यासी सेवादास के रूप में

नाकामी……और फिर कामयाबी

लाहौर में रिव्यू कोर्ट के सामने अपील लंदन में प्रीवी कौंसिल के सामने अपील, लाहौर हाईकोर्ट में हैबियस कॉर्पस की अर्जी और ब्रिटिश सम्राट् को दया की अपील—ये सभी तो रद्द हुईं लेकिन भगवान के किये को कौन टाल सकता है। उसने कर्नल चोपड़ा के कच्चे धागे से लटके हुए प्राणों की मानो खुद रक्षा की। कानूनी चाराजोई, परिवार का मानसिक संताप और जस्टिस नरुला की असाधारण कोशिशें आखिरकार रंग लाईं। इनसे जो समय और मिला उससे कर्नल चोपड़ा के जीवन को बचाने में बहुत सहायता मिली। इस बीच देश की राजनीतिक स्थिति बहुत तेजी से बदल रही थी।

आइये श्री वेदराज की कहानी का सूत्र फिर पकड़ें।

'तब हमने फैसला किया कि पं० जवाहरलाल नेहरू से मिला जाये। उस समय पंडितजी रिहा हो चुके थे और देश में आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को लेकर एक नया आन्दोलन खड़ा कर रहे थे।

'मैं पंडितजी को मिस्टर इफ्तखारुद्दीन की कोठी पर संक्षिप्त रूप से मिला। उन्होंने मुझे यह आश्वासन दिया कि दिल्ली जाने के बाद वे इस दिशा में जरूर कुछ करेंगे।

'योग फिर दिल्ली गया। वहां वह श्री रघुनन्दनसरन, जो उस समय आजाद हिन्द फौज डिफैन्स कमेटी के कन्वीनर थे, के निवास स्थान पर पंडितजी से मिला। पंडितजी ने चाहा कि हमारा वकील इस मुकदमे के सभी कानूनी और संवैधानिक पहलुओं के बारे में उनको सारी स्थिति बताये। इस पर मलिक जीवनलाल कपूर लाहौर से दिल्ली आये और उन्होंने पंडितजी को

सत्य-कथा

तार से सारा मामला समझाया। उनको सुनने के बाद पंडितजी ने वाइसराय को एक संक्षिप्त लेकिन सख्त चिट्ठी लिखी। इस चिट्ठी का सारांश यह था कि अगर हमारे वीरों को ऐसा न्याय दिया गया तो भारत अंग्रेजों को कभी माफ नहीं करेगा। उन्होंने कर्नल चोपड़ा को दी गई सजा के विरोध में समाचार-पत्रों में भी एक बयान दिया।

'उस समय हालात कुछ इस किस्म के थे कि पंडितजी के बयान और चिट्ठी के तीन-चार दिनों के अन्दर-अन्दर मुझे एक कांग्रेस कार्यकर्त्ता जिसका नाम कुमारी खुर्शीदबेन था, से तार मिला कि वाइसराय ने कर्नल चोपड़ा की फांसी की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया है।'

जघन्य अपराधियों के बीच

अब कर्नल सुखचैननाथ चोपड़ा को आजीवन कारावास की सजा भुगतने के लिए लाहौर सेन्ट्रल जेल में भेज दिया गया। उनका भाई बेदराज जब जेल में उनसे मिलने गया तब कर्नल चोपड़ा बहुत बीमार लग रहे थे और उनके हाथों में हथकड़ियाँ और पांवों में बेड़ियां थीं।

उस समय वे 'सी' श्रेणी के कैदी थे जिनको कोई आराम या सुविधा नहीं दी जाती। लेकिन उनसे जो सलूक किया जा रहा था उस पर उनको जरा भी रोष नहीं था। लाहौर सैन्ट्रल जेल के सुपरिटेंडेंट कर्नल बेनीचन्द कटोच उनको अच्छी श्रेणी दे नहीं सकते थे क्योंकि कर्नल चोपड़ा इसके लिए खुद अर्जी देने को राजी नहीं थे। कर्नल कटोच ने कर्नल चोपड़ा के मित्रों और रिश्तेदारों से बार-बार प्रार्थना की कि वे कर्नल चोपड़ा से कहें कि उनकी उच्च शिक्षा और समाज में परिवार के स्थान को दृष्टिगत करके उनको जेल में अच्छी श्रेणी दी जा सकती है।

[अंग्रेज सरकार कर्नल चोपड़ा को बहुत ही खतरनाक व्यक्ति मानती थी इस कारण गिरफ्तारी के बाद उन पर 'शत्रु-दूत १९४४' के अन्तर्गत एक गुप्त अदालत में मुकदमा चलाया गया। जिसमें कर्नल चोपड़ा को फांसी की सजा दी गयी। सजा के बाद कर्नल चोपड़ा की मनःस्थिति और सजा के कारण उनके वकील व परिवारीजनों की व्याकुलता का परिचय आप गत अंक में पढ़ चुके हैं। इस समापन किस्त में हम विद्रोही कर्नल चोपड़ा के संत सेवादास हो जाने तक वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं—संपादक]

मैं कर्नल चोपड़ा को १९४५ में लाहौर जेल में मिलने गया। जब मैं कर्नल वेनीचन्द से मिला तो उसने मुझसे एक प्रकार से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि मैं कर्नल चोपड़ा को कहूं कि वे अच्छी श्रेणी के व्यवहार की मांग करें। कर्नल कटोच ने बताया कि उनको रात को नींद नहीं आती क्योंकि कर्नल चोपड़ा जैसा साधु इंसान जघन्य अपराधियों के बीच रह रहा है।

जब मैंने सुखचैन से यह बात कही तो उसने बिल्कुल ही नये प्रकार का तर्क मुझे दिया। उसने कहा, 'मैं यहाँ बहुत प्रसन्न हूं। भगवान ने मुझे इन लोगों की सेवा करने का एक अवसर दिया है। मेरे साथ कैदियों का बर्त्ताव अब काफी बदल गया है और मुझे तो इनके साथ रहने में अब बहुत आनन्द आ रहा है।' उसने मुझसे विनती की कि मैं इस मामले में उस पर और दबाव न डालूं।

कर्नल चोपड़ा की उपस्थिति से पुराने-पुराने कैदियों यानी कि जिन्होंने जघन्य अपराध किये हुए थे, की जिन्दगी में काफी फर्क आया था और वे अब और प्रसन्न दीखते थे। उनकी आदत गन्दी भाषा बोलने की थी और वे कहीं भी थूकते, पेशाब कर देते थे। उनके कपड़े इतने गन्दे होते थे कि उनसे बदबू आती थी। सुखचैन चुपचाप उनको साफ कर देता था और फिर जो भी काम उसके हाथ में होता उसे चुपचाप करता रहता था। सिर्फ यही नहीं, वह रोज सुबह उठकर सबके पड़े धो डालता, उन्हें सूखने के लिए फैलाता, कमरे को साफ करता और फिर संध्यावंदन में लीन हो जाता।

उसकी इस प्रकार की दिनचर्या ने सभी कैदियों का मनमोह लिया था। अब न सिर्फ वे उसका आदर करने लगे थे बल्कि खुद भी वैसा ही करने लगे थे। अब वे भी सुबह नहा-धोकर अपनी कोठरियां साफ करते और उसके बाद मिलकर भगवान को याद करते-अल्लाह और ईश्वर में कोई अन्तर किये बिना।

कुछ समय बाद कर्नल चोपड़ा के परिवार ने उसे जेल में बेहतर श्रेणी दिलाने के लिए पंजाब सरकार के जेल-मन्त्री, सर मनोहरलाल को एक अर्जी दी। यह अर्जी बिना किसी मुश्किल के स्वीकार कर ली गई। अब कर्नल चोपड़ा की खुराक, उसका वातावरण और उसके साथ किये जाने वाला सारा बर्त्ताव बदल गया था और इससे उसकी सेहत में बहुत सुधार हो रहा था; उसके चेहरे की रंगत लौट आयी थी।

जेल से रिहाई और संन्यास

जब पंडित जवाहरलाल नेहरू की अन्तरिम सरकार बनी तो सुखचैन जैसे कैदियों को रिहा कर दिया गया। वह अपने पिता से भी मिलने नहीं गए। उन्होंने रामकृष्ण मिशन के एक आश्रम में संन्यास ले लिया और गांवों में सेवा का काम शुरू कर दिया।

उन्होंने अपना नया नाम सेवादास रखा था जिसका अर्थ ही है सेवकों का

वक। उन्होंने रामकृष्ण मिशन के अन्य
धुओं की तरह अपने संन्यासी नाम के
थ आनन्द का प्रत्यय नहीं जोड़ा। वह
क ऐसा संन्यासी था जिसे अपनी मुक्ति
ी चिन्ता नहीं थी। वह सारे संसार की
वा करना चाहता था।

स्वामी सेवादास के तौर पर वह
से पहले गोरखपुर के उसी गांव, बस-
ीव में गये जहां उन्होंने सेवा का काम
अपनी गिरफ्तारी से पहले शुरू किया
ा। वहां कुछ वर्ष उन्होंने देहातियों के
बीच काम किया।

उसके बाद वे भक्ति मार्ग की ओर
मुड़े और वृन्दावन में रहने लगे या उत्तरा-
खंड जाने लगे। वे यमुना के कूलों पर
कभी-कभी सारी-सारी रात आनन्दमग्न
होकर नाचते रहते या अपने राधा और
कृष्ण को ढूंढ़ने के लिए बावलों की तरह
इधर से उधर और उधर से इधर भागते
रहते। कृष्ण की वंसी उनके कानों में
सदा गूंजती रहती।

वृन्दावन से वे डलहौजी आये क्योंकि
वहां उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था
और हवा पानी का बदलना जरूरी था।
१९५० के अन्त तक वे कांगड़ा की वादी
में आ गये और कुछ महीने चौमुंडा देवी
के प्रसिद्ध मंदिर में रहे।

इसी बीच उनके मित्र अमरनाथ
शर्मा सेना से मेजर जनरल बनकर रिटा-
यर हुए और अपनी पत्नी के साथ स्वामी
जी को खोजते-खोजते कांगड़ा में आये
और डाढ़ के डाक बंगले में ठहरे। यहीं

फिर से दोनों मित्रों का मिलाप हुआ। डाक बंगले से कुछ दूर एक स्थान स्वामीजी को बहुत सुरम्य लगा। इस स्थान पर एक पहाड़ी नदी सदा कल-कल नाद करती हुई बहती है। स्वामीजी उसी नदी की किसी बड़ी शिला पर बैठ जाते और समाधि में लीन हो जाते। जनरल शर्मा ने डाढ का वह स्थल खरीद लिया।

स्वामी सेवादास को यह स्थान इतना अच्छा लगता था कि उन्होंने वहाँ राधा-कृष्ण का एक मंदिर बनाया और साथ ही अपने रहने के लिए एक छोटी-सी कुटिया। यह सारा काम उन्होंने अपने हाथों से खुद किया था हालांकि उनके कुछ सेवकों ने कुछ सहायता जरूर की थी। बाद में वहाँ जनरल शर्मा ने कुछ और झोपड़ियाँ बनवा दीं।

स्वामीजी एकान्त प्रेमी थे। इसलिए उन्होंनें वह स्थान लगभग दो साल वहां रहने के बाद छोड़ दिया और नगरोटा के पास एकान्त में एक कुटिया बनाकर

रहने लगे। उनका बाकी का सारा जीवन मुख्यतः यहीं कटा।

सेवक लोग उनसे कुछ समय के लिए ही मिल पाते थे। कई बार वे खुद ऐसे लोगों के पास चलकर आते जिन्हें उनकी जरूरत होती। वे अक्सर दाढ़ी गांव में जाया करते थे। वे वहाँ इसलिए जाते थे कि दाढ़ी के निवासी भी स्वामीजी से उतना ही आनन्द ग्रहण करते थे। उन्होंने कांगड़ा की वादी को इसलिए नहीं चुना था कि वहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य बहुत है या जलवायु स्वच्छ और ठंडा है बल्कि इसका मुख्य कारण यह था कि वहाँ के लोग भोले भाले, मासूम और निर्व्याज किस्म के थे जो स्वामीजी के उपदेशों को मानते थे और उनकी उपस्थिति से आनन्द में लीन हो जाते थे।

१९६१ में एक दिन स्वामीजी धर्मशाला जाने को निकले—धर्मशाला कांगड़ा जिला का हेडक्वार्टर है। लेकिन वहाँ न जाकर वे बिना किसी प्रोग्राम के अपने पिता के पास दिल्ली आ गये। संन्यासी होते हुए भी उन्होंने अपने पिता को उस दिन एक पुत्र के रूप में ही नमस्कार किया और फिर कुछ समय तक उनसे बातें की। दीवन बंसीलाल की जिन्दगी का यह आखिरी दिन था क्योंकि उनका उसी शाम अचानक स्वर्गवास हो गया।

स्वामीजी को उन घटनाओं का पता लग जाता था जो होने वाली होती थीं। जब भी कभी उनके किसी सेवक या जान-पहचान के आदमी पर कोई कष्ट आता तो वह मीलों चलकर उसके पास पहुंच जाते और उसे शारीरिक; मानसिक और आध्यात्मिक सहारा देते। उनके शांत और उदात्त व्यक्तित्व के निकट होने पर कष्ट में पड़े व्यक्ति को बहुत सकून मिलता। कई बार मौत के मुँह में जा रहे सेवकों को वे खुद भगवान का नाम सुनाते जिनसे उनको बहुत शांति मिलती।

जल समाधि

जब १९७७ की गर्मियों में [illegible] के स्थान पर मेरी मुलाकात उनसे हुई थी तो उन्होंने कहा था कि अब इस शरीर का बोझ और नहीं ढोया जाता। पार्किन्सन रोग से उनके हाथ बुरी तरह कांपने लगे थे। 'क्या लाभ ऐसे शरीर का जो अपनी देखभाल भी कर सके?' उन्होंने कहा था। तब मुझे क्या मालूम था कि यह इस बात का संकेत था कि अब हम दोबारा नहीं मिलेंगे।

मार्च १९७८ में दाढ़ी के अपने एक गोरखा सेवक जिसका नाम थापा है, के साथ स्वामीजी हरिद्वार गये। गंगामाता ने स्वामीजी को वहां लुभाया। वहां उन पर एक ऐसा बेखुदी तारी होता कि वे समाधि में खो जाते। वे हमेशा अपने इष्ट राधा और कृष्ण की मूर्ति अपने साथ रखते थे। इस मूर्ति को वे गंगा के तट पर प्रस्थापित कर उसकी पूजा करते थे। लेकिन इस बार क्या हुआ कि इस प्रकार अपने इष्ट की पूजा

तल्लीन थे तो गंगा की एक लहर आयी और राधा-कृष्ण की मूर्ति को अपने साथ बहा ले गयी। जब ऐसा हुआ तो स्वामी जी ने थापा को किसी छोटे-मोटे काम पर भेज दिया। कुछ समय बाद थापा लौटा तो वहां स्वामीजी की खडाऊँ के सिवा कुछ भी नहीं था। निश्चय ही स्वामीजी गंगा में लीन हो गये थे।

संन्यासी बनकर आदमी सभी कुछ त्याग देता है—अपने माता-पिता, अपने बीवी-बच्चे, अपने इष्ट-मित्र और यहां तक कि अपना शरीर भी। अब जो शरीर होता है वह एक साधन होता है मुक्ति की मंजिल को पाने का। स्वामी सेवादास जैसे लोग जो हर चीज में भगवान की पूजा करते हैं, शरीर को सभी जीवों की सेवा के साधन के सिवा कुछ भी नहीं मानते। जब यह साधन सेवा करने में असमर्थ हो जाता है तो संन्यासी उसे त्याग देता है।

यही नहीं, शास्त्रों में इस बात का विधान भी है कि जब कोई संन्यासी अपनी देह त्यागे तो उसका विसर्जन गंगा में किया जाये। स्वामीजी ने यह पद किसी और व्यक्ति को कष्ट दिये बिना ही प्राप्त कर लिया। जीवन-भर स्वामी जी दूसरों को देते ही रहे, उसने लिया कुछ भी नहीं।

यह एक करिश्मा नहीं तो क्या है कि जिस प्राणी ने सब प्रकार के कष्टों और पीड़ाओं को झेला वह उनसे सदा अछूता रहा। बचपन में उनकी माता का

जिस तरह नेत्र की पुतलियां प्रकाश के प्रति संवेदनशील होती हैं, उसी तरह मानव-हृदय ईश्वर के प्रति संवेदनशील है।

सूफीसंत रूफस जोंज

देहान्त हुआ; शुरू से ही उन्होंने अपने ऊपर कठिन अनुशासन रखा; कुछ समय विवाहित भी रहे; विदेशों में जाकर अध्यापन जैसा उच्च कर्म भी किया; दूसरे विश्वयुद्ध के बवंडरों में राजनीतिक गतिविधि से घिरे रहे। मौत को सामने पाकर भी उन्होंने सच्चाई का दामन नहीं छोड़ा और जब जेल से मृत्युदण्ड और आजीवन कारावास से बचकर निकले तो उन्होंने अपना शरीर दरिद्रनारायण की सेवा में लगा दिया और अन्ततः उनकी आत्मा ब्रह्मानन्द में लीन हो गयी।

बहुत सादा, नम्र, तुच्छ भावना से पूर्ण, अहं से दूर वह व्यक्ति ऐसा था कि जिसने एक बार जो प्रण लिया उसे अडिगता से निभाया और सदा सच्चाई के रास्ते पर चला मानो कि भगवान स्वयं उसका हाथ थामे उसका मार्गदर्शन करते रहे। अन्त समय भी अपनी इच्छा शक्ति से ही उसने गंगा माता की छाती में अपने प्राणों को त्यागा।

इस प्रकार यह भागवत कैदी जिसने ब्रिटिश साम्राज्य की जेलों और मृत्युदंड की परवाह नहीं की, अन्त में माया की कैदी से आजाद हो गया। ०००

असमिया कहानी

वीरेन्द्र भट्टाचार्य

यात्रियों ने चंद्र के निमंत्रण को मन से तो स्वीकार लिया, पर उसके घर जाने के लिए तैयार न हो सके। कामाख्या का युवा-पण्डा—जिसके घर वे सब ठहरे हुए थे— तो चाहता था वे चंद्र के घर चले जायें, पर बूढ़े तीर्थ-यात्रियों ने उसकी बात नहीं मानी। चंद्र के घर जाने से यात्रा का पुण्य जो घट जाता!

अब चंद्र के पास कामाख्या जाकर गांव के तीर्थ यात्रियों से मिलने के सिवा कोई चारा नहीं था। मजबूरन उसे पहाड़ पर पहुंचने के लिए बस पकड़नी ही पड़ी।

यात्रियों में उसकी चाची भी थी। सुवानी। बरसों बीत चुके जब चंद्र ने चाची को देखा था। उसके परिवार में अब चाची के अलावा और बचा ही कौन था। पर शादी के बाद से वह चाची को मिल ही नहीं पाया था। पुरखों के गांव में जाने की कल्पना से ही उसे शरम-सी आने लगती थी। फिर उसकी पढ़ी-लिखी आधुनिका—पत्नी भी गांव में कैसे जा सकती थी! वह तो चाहता था कि किसी तरह यह भी भूल जाये कि वह कभी गांव में पैदा हुआ था।

पर, आज उसने पैंट-कमीज की जगह धोती-कुरता पहना था। तीर्थ-यात्रियों से मिलने जो जा रहा था। चंद्र को इन कपड़ों में देखकर पत्नी को भी आश्चर्य हुआ; पर जब उसने पत्नी से किराये के लिए दस रुपये मांगे, तो बिना बताए ही वह सब समझ गयी।

"आप अकेले क्यों जा रहे हैं? तीर्थ स्थान पर कोई अकेले भी जाता है— मैं भी साथ चलूंगी।"

इस बात से चंद्र के चेहरे पर झलकी परेशानी सुभद्रा से छिपी नहीं, उसकी आंखों में चमक-सी आ गयी। चंद्र ने हमेशा उसे एक गुड़िया की तरह रखा है— जिंदा गुड़िया की तरह, कहीं आस-पास की गंदगी उसे छू न जाये! सुभद्रा की रुचियों और उसके शहरी तौर-तरीकों के डर से चंद्र उसे अपने बाप—

दादों के गांव ले जाने से डरता रहा था।

"पर मैं आज़ा पर थोड़े ही जा रहा हूं। मैं तो चाची का कर्जा चुकाने जा रहा हूं," चंद्र ने जवाब दिया।

"कर्जा?" सुभद्रा ने आश्चर्य से पूछा, "कैसा कर्जा?"

चंद्र बात को टाल-सा गया और किराये के पैसे लेकर तेजी से घर से बाहर चला गया। पत्नी को उसका यह व्यवहार समझमें नहीं आया, पर इससे उसे आश्चर्य नहीं हुआ। चंद्र ने हमेशा यही कोशिश की है कि सुभद्रा और उसकी चाची एक दूसरे से न मिलें। उसने सुभद्रा को बस इतना ही बता रखा था कि उसकी पढ़ाई का सारा श्रेय चाची को है, जिसने बरसों कड़ी मेहनत करके उसे पढ़ाया है। पर, सुभद्रा इतनी-सी बात से कभी संतुष्ट नहीं हुई। हमेशा ऐसे उत्तर से उसके होठों पर व्यंग्य-भरी मुस्कान खेल जाती थी। चंद्र इसे समझता था। सुभद्रा ने कई बार कहा कि वह गांव देखना चाहती है। कभी उसने फर्ज की दुहाई दी और कभी सिर्फ मौज करने की बात कही। लेकिन, चंद्र ने हमेशा टाल दिया। पर अपनी ही जड़ों से इस प्रकार से कटने के प्रयास से उसके चेहरे पर झलक आयी निराशा व पीड़ा के चिह्न सुभद्रा से कभी छिपे नहीं।

लोक-नृत्य आदि के कार्यक्रमों में चंद्र जब भी गया—और अक्सर जाता रहता था—उसे वे दिन याद आ गये, जब वह भी ऐसे ही नाचा-गाया करता था। और,

ये पुरानी यादें उसे दर्द दे जाती थीं। यह देखकर सुभद्रा ने उसे कई बार गाँव चलने के लिए कहा था। पर, चंद्र कभी नहीं गया।

...पर गाँव की वे यादें! उसे वे सारे दृश्य रह-रहकर याद आते थे। पर, सुभद्रा गाँव के तालाब पर नहाना कैसे पसंद करेगी, अधनंगे रहने वाले रिश्तेदारों से वह कैसे निभाएगी; खेतों में काम करती औरतों के बारे में क्या सोचेगी। फिर उनमें से कई तो उसके नजदीक के रिश्तेदार होंगे! और हाल यह थी उनके बारे में, कि सुभद्रा से बात करते भी उसे शर्म आती थी। सुभद्रा से अगर बहुत कोशिश करे, तब भी उनके साथ ज्यादा से ज्यादा रिश्ते ही निभा सकेगी, उन जैसी तो नहीं बन सकती थी। क्या पता उनके खुरदरे हाथ, अक्खड़ भाषा और गंदे कपड़े उसके आभिजात्य संस्कारों को झकझोर दें। वह एक दिन के लिए भी धनी-मानी घर की लड़की के साथ गाँव में नहीं रह सकता था।

और, अब तो उसका अपना छोटा-सा साफ-सुथरा घर था। और, वे अपने दो सुन्दर बच्चों के साथ बड़े प्यार से रह रहे थे।

अब, उसकी प्यारी चाची यात्रा पर गयी हुई थी—प्रयाग, गया, पुरी की यात्रा पर। उसे लगने लगा था कि वह उससे मिले बिना नहीं रह सकता। बूढ़ी चाची को देखने की इच्छा बलवती ही होती गयी; चंद्र को पालने-पोसने वाले हाथ अभी जिंदा थे। और यही नहीं, चाची उससे सिर्फ तीन मील दूर थी। चाची ने उसे पढ़ाने-लिखाने के लिए अपना सब कुछ लगा दिया था; और उसकी सारी आशाएं चंद्र पर ही थीं। पर वह अब तक चाची की एक भी आशा को पूरा नहीं कर सका था। अब जब वह लंबी यात्रा पर थी; चंद्र को कर्जा चुकाने का अवसर मिला था, और शायद यह अंतिम अवसर था।

टेढ़े-मेढ़े पहाड़ी रास्ते पर बस बढ़ी जा रही थी। कामाख्या का मंदिर भी दिखाई देने लगा था। उसने अपना दायाँ हाथ जेब पर रखा। वह चार सौ रुपयों का बोझ महसूस कर रहा था। उसने सारा हिसाब लगा लिया था कि चाचीने उसकी पढ़ाई पर कितना खर्च किया है। ब्याज-ब्याज का हिसाब लगाकर रकम पूरे चार-सौ रुपये होती थी। अब वह सारा कर्ज चुका कर मुक्त हो सकेगा,

"मैं सोचती थी शहर में रहकर तुम आदमी बन गये हो।" चाची ने लंबी सांस लेते हुए कहा, "पर अब देख रही हूं, यह तो उल्टा हो हो गया। तुमने तो मेरी सेवाओं की भी कीमत लगा दी!"

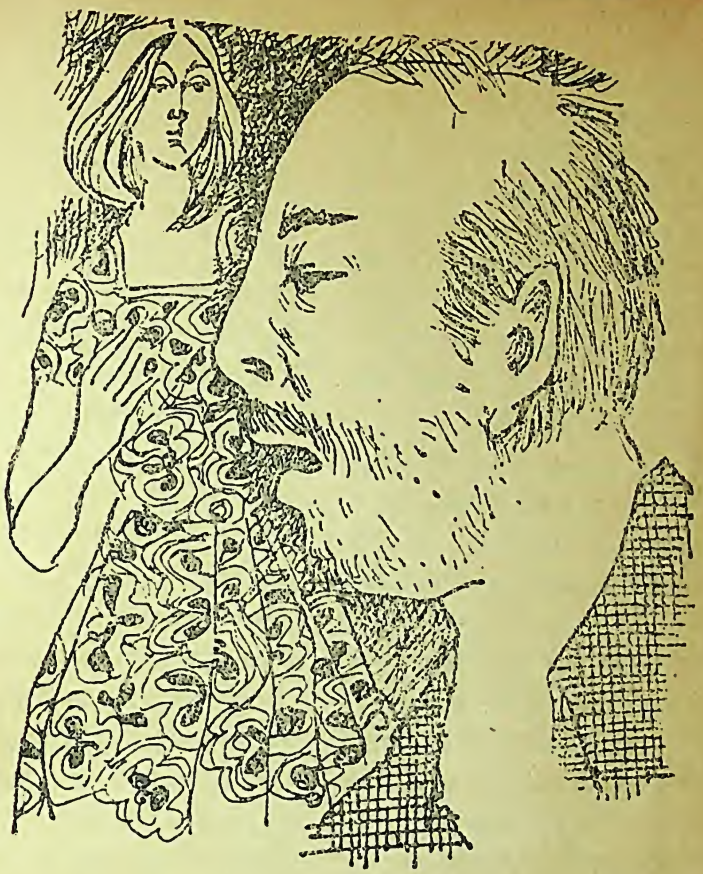

उसने सोचा।

चाची के सामने वह खुश रहना चाहता था। पर, वह सचाई नहीं होगी। सचाई तो यह है कि उसका वैवाहिक जीवन बहुत सुखी नहीं हैं। वासना उसे अंधा-बहरा बना देती थीं। और सुभद्रा ने अक्सर उसके व्यवहार का विरोध किया। कई बार तो वह सुभद्रा को इतनी जोर से भींच लेता था कि उसकी चीख-सी निकल जाती थी। वह चंद्र का मधुर-स्पर्श चाहती थी। पर, चंद्र के पास इतना धैर्य कहाँ था। अक्सर सुभद्रा ने शिकायत की, 'तुम गंवार हो।'

और, यह बात उसके दिल तक चुभ जाती थी; तीर की तरह। वह चाहता था पीड़ा से चिल्ला पड़े; पर अपने बचाव में उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकलता था। शारीरिक विजय के क्षणों में भी वह बुरी तरह से टूट जाता था।

हाँ, वह सुखी नहीं था। फिर भी उसे चाची के सामने दुनियां के सबसे संतुष्ट आदमी की तरह जाना है। नहीं तो वह लोगों की निगाहों में गिर जायेगा, और सच तो यह है कि वह अपनी ही निगाहों में गिर जायेगा।

सुभद्रा उसे अंदर तक जानती थी।

क्या हुआ था ? अब यह माया-मोह छोड़ दो,' गांव के पण्डित ने भी मंडल का समर्थन करते हुये कहा।

पर अब तक चाची ने अपने आपको संभाल लिया था, 'क्या पुण्य इतना कमजोर है कि छोटी-छोटी बातों से बनता बिगड़ता रहता है ? और फिर भतीजे के घर जाने से ही पुण्य खतम हो जायेगा ? चाची ने दृढ़ स्वर में कहा।

पण्डित को लगा जैसे उसका अपमान किया गया है। 'तो फिर पंड़े से ही पूछ लो। मैं तो सबकी बात ही कह रहा हूं कि यात्रा का यह नियम नहीं है,' उसकी आवाज में झुंझलाहट थी।

पंडे से पूछा गया। पहले पंड़े ने चाची और भतीजे के मुँह को बड़े ध्यान से देखा, और फिर मुस्कराते हुये बोला, मां तुम जा सकती हो, पर वहां कुछ खाना-पीना निषिद्ध है। सुबानी का चेहरा खिल गया। वह सबसे विदा लेकर चन्द्र के साथ चल पड़ी।

रास्ते में बातों के बीच चंद्र ने जेब से चार सौ के नोट निकाल कर चाची की ओर बढ़ा दिये।

"यह क्या ?"

"चाची, यह मैं आपके लिए लाया था।"

"इन्हें पास ही रखो। मैं तुमसे एक पैसा भी नहीं ले सकती," चाची ने नोटों की तरफ देखे बिना ही कहा।

"नहीं चाची, यह तो आपको लेने ही पड़ेंगे, चंद्र ने विनय-सी करते हुए कहा," यह आपके ही हैं। आपने मुझे पढ़ाने के लिए क्या कुछ नहीं किया।

चाची के चेहरे पर पीड़ा उभर आयी "यदि मैंने तुम्हारे लिए कुछ किया है तो बदले में कुछ लेने की भावना से नहीं,' चाची के स्वर की गंभीरता से चंद्र सहम गया।

फिर टैक्सी-स्टैंड तक दोनों में से कोई नहीं बोला। वहाँ पहुंचते-पहुंचते चाची का गुस्सा शायद ठंडा हो गया था।

"यह दूकानदारों जैसा व्यवहार कहाँ से सीख गये हो ?" उन्होंने प्यार और उलाहना-भरे स्वर से कहा, "मेरी तो अब एक ही इच्छा शेष रह गयी है। बस मैं बहू को देख लूँ। पैसा अपने ही पास रखो। अगर मुझे कभी जरूरत पड़ी तो मैं जरूर मांग लूँगी।"

अब चंद्र को लग रहा था, चाची कितनी महान है।

"अरे यह तो इन्द्र का महल है, घर मे घुसते ही चाची ने कहा, फिर अचानक चन्द्र की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा, "पूजा घर कहाँ है ?"

"मैं भगवान जैसी किसी चीज में विश्वास नहीं करता, "चन्द्र ने धीरे से जवाब दिया।"

"हाँ, ठीक ही है, वणिक-वृत्ति लेकर तुम भगवान के सामने जा भी कैसे सकते हो, चाची मुस्करायीं।

चंद्र को पसीना आ गया। यह उसकी नयी-नयी शान—शौकत पर सीधी चोट थी।

थोड़ी ही देर में चाची बहू और बच्चों में घुल-मिल गयी। "क्या नाम है इनके ?" बच्चों को चूमते हुए चाची ने बहू से पूछा।

सुभद्रा ने जिस आवाज में जवाब दिया— उसने चंद्र को हैरत में डाल दिया। वह ऐसे व्यवहार कर रही थी, जैसे उस पर कोई जादू हो गया हो।

बातचीत करते-करते चाची ने बहू को सर से पैर तक देख लिया था। उनकी आँखों में बहू के लिए प्रशंसा साफ झलक आयी थी। "मैं कब से तुम सब को देखना चाहती थी अब कहीं मेरी इच्छा पूरी हुई है अब मैं संतोष के साथ काशी जा सकती हूं", चाची ने धीरे-धीरे कहा, और फिर सुभद्रा की ओर देखती हुई बोलीं, 'पर तुम लोग एक बार भी मुझे देखने नहीं आ सके ?'

सुभद्रा को लगा वह झूठ नहीं बोल सकेगी।

'मैंने कई बार आपके पास आना चाहा इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है, मैं अकेली कैसे आती? कहते-कहते सुभद्रा ने चाची के पैर पकड़ लिये थे।

चाची जोरों से हँस पड़ी।

"क्यों; तुम तो शहर की पढ़ी-लिखी लड़की हो। अकेली नहीं आ सकती ?" उन्होंने हंसते हुए ही कहा।

सुभद्रा के पास इसका कोई जवाब नहीं था। चाची उसकी कठिनाई समझ गयीं, "खैर आदमियों को गाँव और शहर का कह कर तो नहीं बाँटा जा सकता। आखिर हैं तो वे सभी आदमी ही" उन्होंने कहा।

अब चाची ने चंद्र की तरफ देखा- 'चंद्र, यह हर चीज को पैसों से तौलने की आदत छोड़ो। वह चार-सौ रुपये तुम बच्चों के लिए रख लो।'

सब चुप थे। बच्चे भी ऐसे खड़े थे जैसे मूर्ति हों।

'मैं सोचती थी शहर में रहकर तुम आदमी बन गये हो;" चाची ने लंबी सांस लेते हुए कहा, "पर अब देख रही हूं;

चौराहे की बात

वे और ये

वे
देश देश रट कर
झूल गये
ये
तख्त पर बैठ कर
देश को
भूल गये।

कुर्सी

कुर्सी
नये नये गुल
खिलाती है
चारों ओर
अंधेरा फैला कर
बिजली की तरह
चली जाती है।

मिश्रीलाल जायसवाल

यह तो उल्टा ही हो गया। तुमने तो मेरी सेवाओं की भी कीमत लगा दी!"

चंद्र का मुख पीला पड़ गया। उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी कि वह कुछ जवाब दे।

"आप एक प्याला चाय तो पी ले।' सुभद्रा ने कहा।

"इंद्र के महल-सा तुम्हारा यह मकान है, इस घर में मेरी जगह कहाँ है?" चाची ने चाय के लिए मना करते हुए कहा; "अब इन चीजों को छोड़ो। मैंने तुम लोगों को देख लिया— मुझे तो सब कुछ मिल गया। मेरे लिए इससे बड़ी और क्या खुशी हो सकती है?"

बूढ़ी चाची जब तक वहाँ रही, वह को आशीष देती रहीं। उन्होंने चंद्र के बचपन की भी बहुत-सी बातें सुनायीं। चाची ने बताया कि जब चंद्र के पिता मरे तो यह बहुत छोटा था। इसको मुझे देते हुए कहा था मेरे बेटे को आदमी बनाना।'

चंद्र को बात का मतलब समझते देर नहीं लगी। उसने सुभद्रा की आँखों में आयी चमक भी देखी। शायद सुभद्रा को भतीजे पर किया गया चाची का व्यंग्य अच्छा लगा था।

और जब तक अंधेरा गहरा नहीं हो गया, चाची वहीं रही।

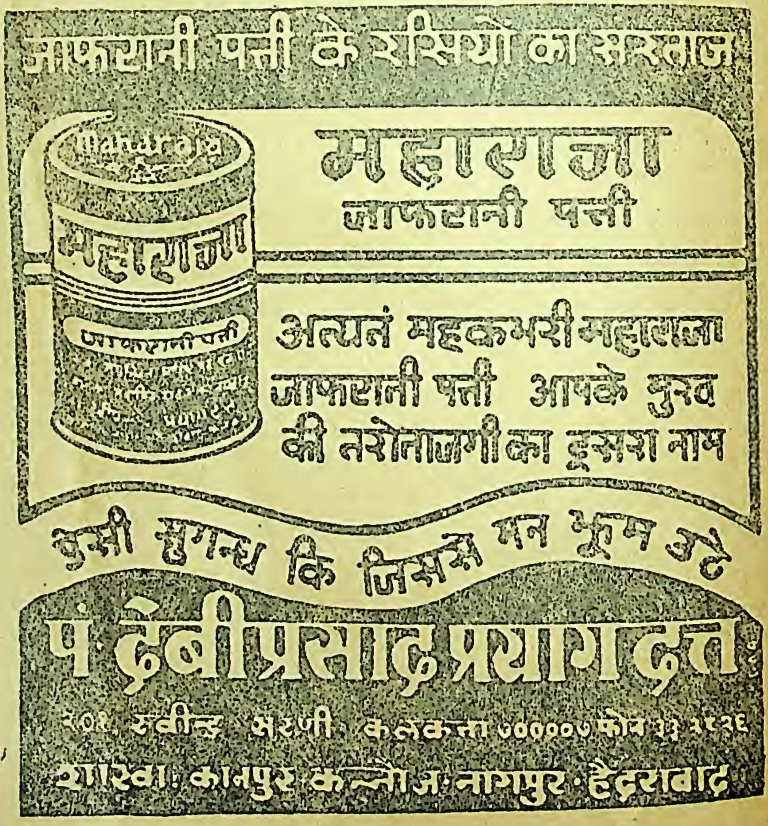
जाफरानी पत्ती के दाँतों का मंजन
महाराजा
जाफरानी पत्ती
अत्यंत महकभरी महाराजा
जाफरानी पत्ती आपके मुख
की तरोताजगी का दूसरा नाम
इसी सुगन्ध के जिसमें मन झूम उठे
पं. देवीप्रसाद प्रयाग कृत
शाखा: कानपुर कन्नौज नागपुर हैदराबाद

उनकी शक्ति

नेमिशरण मित्तल

स्वयंसेवक संघ

मां आनन्दमयी

मां आनन्दमयी का जन्म बंगला-देश के त्रिपुरा जिले के अन्तर्गत खेओड़ा गांव में काश्यप ब्राह्मण कुल के महर्षि विपिन बिहारी भट्टाचार्य के के घर में ३० अप्रैल १८९६ को हुआ था। उनके पिता मूलतः विद्याकूट के निवासी थे और उनकी माताजी मोक्षदा सुन्दरी देवी समीप के ही सुलतानपुर के तपस्वी भारद्वाज कुल में जन्मी थीं।

मां आनन्दमयी के पिता एक तपस्वी पुरुष थे। मां की दादी त्रिपुरा सुन्दरी भी काली-मां की उपासिका थीं। एक दिन वह घर से छह मील दूर कसवा के काली मन्दिर में पूजा करने गयीं। वहां उनके मन में यह भाव आया कि काली मां से एक पोता मांग लूं। लेकिन जैसे ही वे पूजा के लिए बैठीं, उनमें भावावेश हो आया और बजाय पोता मांगने के वे काली मां से कह उठीं कि मां तू मुझे सुलक्षणा पोती दे। मां आनन्दमयी उसी प्रार्थना का फल थीं।

मां आनन्दमयी के जन्म से पहले उनकी माताजी मोक्षदा सुन्दरी देवी को भगवान विष्णु, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश, राम, कृष्ण, बुद्ध और महाप्रभु चैतन्य जैसे देवी-देवताओं और अवतारों के दर्शन होने लगे। उन्हें ऐसा लगता जैसे वे सब बारी-बारी से उनके शरीर में आते-जाते रहते हैं। उसी अवस्था में उन्हें अपनी कोख की बच्ची का दर्शन भी हुआ जिसे जन्म के बाद उन्होंने पहचान लिया।

माँ आनन्दमयी का जन्म का नाम निर्मला सुन्दरी देवी रखा गया। मां जन्म से ही आनन्द की मूर्ति थीं। उन्हें कभी किसी ने रोते नहीं देखा। एक बार किसी ने पूछा कि जन्म के समय हर बालक रोता है, आप क्यों नहीं रोयीं? मां आनन्दमयी ने उत्तर दिया—'मैं क्यों

रोती, मैं तो खिड़की से बाहर आम के पेड़ को देखती रही थी।'

निर्मला सुन्दरी देवी जब केवल १२ वर्ष और दस मास की थीं तभी उनका विवाह आटपाड़ा गांव के श्री रमणि मोहन चक्रवर्ती के साथ कर दिया गया। वह पुलिस में काम करते थे, लेकिन असाधारण रूप से संयमी और भक्त पुरुष थे। उन्होंने तत्काल पहचान लिया कि निर्मला सुन्दरी भले ही उनकी पत्नी हैं, वास्तव में वह स्फटिक जैसी निर्मल और गंगा जैसी पवित्र है। उन्होंने उनके साथ भोग का जीवन बिताने का एक बार भी आग्रह नहीं किया और उन्हें जग-ज्जननी मां के रूप में स्वीकार कर लिया।

अन्ततः ३ अगस्त, १९२२ को पूर्णिमा के दिन मां आनन्दमयी का असली रूप प्रकट हो गया और उनके पति ने देखा कि मां देवी तेज से परिप्लावित हो उठी हैं। उसी स्थिति में मां ने स्वयं को दीक्षा प्रदान की और अपने पति को भी गुरु-भाव से दीक्षा प्रदान कर दी। अब श्री रमणि मोहन उनके पति नहीं शिष्य हो गये। मां उन्हें भोलानाथ नाम से पुकारने लगीं।

मां अधिक समय भाव की अवस्था में रहने लगीं। वह जब जहां मन करता, वहीं चल देती थीं। १९२४ में वह ढाका पहुंचीं और वहां शाहबाग में ठहरीं। वहीं एक दिन एक उच्च सरकारी अधिकारी श्री ज्योतिषचन्द्र राय उनके प्रथम दर्शन से ही मां के अनन्य भक्त हो गये और जीवन भर मां की सेवा में रहे। मां के भक्तों में वह भाई जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक दिन भाईजी मां के सामने हाथ कर बैठे और उनसे पूछा—'मां, आप सचमुच कौन हैं, बतलाइये न!' मां ने हंसते-हंसते कहा—'मैं पहले जो थी, अभी वही हूं, आगे भी वही हुंगी। तुम किस समय जो चाहो, जो सोचो, वही मैं हूं। फिर भी यह सत्य जानना कि इस शरीर का जन्म प्रारब्ध भोग के लिए नहीं हुआ है, तुम यही समझना यह शरीर भावों की मूर्तिमान स्वरूप है। तुमने इसकी अभि-लाषा की और इसलिए पाया। अब इसके साथ लीला करते चलो।'

मां ने अपने ही श्रीमुख से अपने बारे में सब कुछ कह डाला। मां के भक्त इस सत्य से भली भांति परिचित हैं कि मां देवी शक्ति का लीला अवतार रहीं। उनका कोई प्रारब्ध भोग न था। छोटी-सी उम्र में ही उनका हाथ से खाना छूट गया था। उन्होंने जीवनघर न कभी खाना मांगा, न कभी यह कहा कि यह खाऊंगी या यह नहीं खाऊंगी। कभी अपने हाथ से खाया भी नहीं।

मां जब भावावेश की अवस्था में होतीं तो महाप्रभु चैतन्य देव की भांति कीर्तन, नृत्य व अचेतना की स्थिति में पहुंच जातीं। एक बार उनसे पूछा गया—'मां जब आपको भावावेश होता है तब आपके सामने किसी देवी देवता का

आविर्भाव होता है क्या ?' मां ने कहा—
मेरा लक्ष्य कहीं भी केन्द्रित नहीं है।
इसका मुझे प्रयोजन भी नहीं है। तुम
लोग भावावेश के लक्षण देखना चाहते
हो, इसी कारण कभी-कभी इस शरीर में
वह प्रकाशित हो जाते हैं।

जब मां ने नमाज पढ़ी

मां जिन दिनों शाहबाग (ढाका)
में ठहरी हुई थीं, कलकत्ता के आयकर
विभाग के सहायक आयुक्त निरंजन
भट्टाचार्य और ज्योतिषचन्द्र राय अपने
मित्र मौलवी जैनुद्दीन हुसैन के साथ मां
के दर्शनों के लिए गये। मां भीतर
से निकलीं। रात का समय था
और कई भक्त साथ में लालटेन लेकर
चल रहे थे। मां ने मौलवी साहब को
देखा और तेजी से उस ओर चल दीं
जिधर एक मुसलमान फकीर की कब्र है।
वे कब्र पर पहुंचकर जोर-जोर से कुरान
शरीफ की आयतें बोलकर विधिवत नमाज
पढ़ने लगीं। मौलवी साहब यह देखकर
दंग रह गये कि मां का उच्चारण तो
शुद्ध था ही, नमाज के समय हावभाव
भी एकदम ठीक थे। मां ने बाद में
बताया कि जिस फकीर की समाधि उस
कब्र में है, उसके सूक्ष्म शरीर को मां ने
नरसिंह में कई साल पहले देखा था।
मां ने फकीर के रूप रंग का जो विवरण
दिया, वह एकदम सही था।

मां का प्रार्थना शक्ति में अटूट
विश्वास था। वह कहा करती थीं कि
प्रार्थना की शक्ति अमोघ है। जिस समय

७८२ ईसाई पुनः हिन्दू धर्म में

श्रीकाकलम जिले के विरागकम क्षेत्र के ६ गांवों के २०३ ईसाई परिवारों ने पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार किया। विश्व हिन्दू हरिपद के महामन्त्री श्रीसोम याजुलु की सूचनानुसार इन परिवारों के सदस्यों की कुल संख्या ७८२ है। ये हरिजन ईसाई थे।

हृदय में जो आए वह बताना तथा सरल और व्याकुल हो उनके प्रति शरणगति की प्रार्थना करना।

रहस्यवादी नहीं दैवी शक्ति

कुछ लोग मां आनन्दमयी को रहस्यवादी संत कहते हैं। वास्तव में मां दैवी शक्ति से सम्पन्न भावमूर्ति रहीं। उनकी निर्मल आत्मा में भूत, वर्तमान और भविष्य शीशे में पड़ी परछाई की तरह प्रतिबन्धित होते थे। एक दिन मां बातों-बातों में ही बोलीं—इटली क्या ? और बात यहीं समाप्त हो गयी। दो दिन बाद ही इटली के एक प्रोफेसर···शाहबाग आये। उन्होंने मां से अंग्रेजी में कुछ पूछा। मां के आसपास के लोग माँ के आदेश के बिना बीच में दखल नहीं करते थे। मां ने अंग्रेजी प्रश्न का अर्थ

किसी से बंगला में नहीं पूछा और स्वयं धाराप्रवाह संस्कृत में प्रश्न का सही उत्तर दे डाला। जबकि सत्य यह है कि मां न एक अक्षर अंग्रेजी पढ़ी थीं और न संस्कृत।

नया नाम

मां उन दिनों शाहबाग में ठहरी हुई थीं। अचानक एक दिन मां ने ज्योतिष चन्द्र राय को उनके कार्यालय से बुलवा कर कहा कि सिद्धेश्वरी आसन में चलो। मां, उनके पति भोलानाथजी और ज्योतिषचन्द्र राय वहां पहुंचे। माँ बहुत प्रसन्न थीं। सहसा ज्योतिष ने भोलानाथ जी से कहा—'पिताजी आज से मां को हम सब श्री श्री आनन्दमयी मां कहेंगे।' वह बोले—'अच्छा ऐसा होगा।'

बाद में जब ज्योतिषचन्द्र राय ने मां से कहा कि मां आपने मुझे आफिस से क्यों बुला भेजा, कहीं नौकरी में कुछ गड़बड़ हो गई तो? तब मां ने हंसकर कहा—'सिद्धेश्वरी न जाते तो इस शरीर का नामकरण कैसे होता।' और यह कहकर खूब हंसने लगीं।

राजनीति और मां

मां का व्यक्तित्व जितना श्रद्धास्प रहा है उतना ही विवादास्पद भी। के प्रति प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गां का गुरुभाव रहा है। आनन्दमयी मां इन्दिराजी को एक माला दी। यह सही है कि इन्दिराजी के प्रति मां ममता एक माँ जैसी ही रही। ले यह सही नहीं है कि माँ के मन में तरह पक्षपात रहा है। मां का आशी हमेशा सबके लिए समान था। वह बालकों में भेदभाव नहीं करती अन्तर केवल यह रहा कि जिन्होंने पर श्रद्धा ही नहीं रखी, वे पा ही सकते थे।

मां एक महान आध्यात्मिक वि रही हैं। तावीज, गंडों और जादू-टो उनका विश्वास नहीं था। वह शुद्ध में विश्वास करती थीं। मां की एक माँग थी—सरल हृदय और शुद्ध भाव।

रूस में ऋग्वेद की ऋचाओं के शिलापट्ट

'ताम' (रूसी सरकारी सूचना-पत्र) में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसा रूसी अभिलेख-रक्षकों को रूस के कजाकिस्तान नामक राज्य दक्षिण पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में अब से तीन हजार वर्ष पूर्व, ऋग्वेद की मुख्य-मु शिक्षाएं पर्वत-शिलाओं पर कलात्मक रूप में चित्रित हुई मिली हैं।

इनके अतिरिक्त रथों आदि की दर्शनीय वस्तुएं भी प्राप्त हुई हैं जो अ पण के लिए अलमा अट्टा नगर के अभिलेखागार में लाई गई हैं, जिसमें अब १४, १५ हजार वर्ष पूर्व की वस्तुएं संगृहीत हुई हैं।...

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

चुटकुले

●संकलन कर्त्ता: विनयकुमार मिश्र

एक गंजा आदमी सिर पर घास रखे चला जा रहा था। रास्तेमें बच्चों के एक झुण्ड ने देखा तो उसे चिढ़ाना शुरू कर दिया और उसके पीछे चल पड़े, यह कहते हुये कि 'देखो! गंजे के सिर पर घास उगी, गंजे के सिर पर घास उगी।' गंजे ने भी जैसे को तैसा जवाब दिया, कहा, "और तभी तो गधे पीछे चले आ रहे हैं।'

० ० ०

एक बार दो चोरों ने रात में एक गृह चोरी की और माल उठाकर भागे। जब जंगल में पहुंचे तो एक चोर ने दूसरे चोर से कहा 'आओ, थोड़ा रुककर यह देखें कि नोट कितने हैं और जेवर कितने हैं?' तब दूसरे ने पलट कर उत्तर दिया— 'अभी देखने की क्या जरूरत है! कल अखबार में देख लेना।'

० ० ०

एक बार एक आदमी पार्क में टहल रहा था। वहीं पर एक गधा भी घास चरता हुआ जा रहा था। इतने में एक सिपाही आया और उसने उस आदमी से पूछा, कि 'क्या यह गधा आपका है?' आदमी ने कहा "आपने यह कैसे जान लिया कि यह गधा मेरा है?"

सिपाही ने कहा, 'क्योंकि यह गधा आपके पास खड़ा है।'

"मेरे पीछे तो आप भी खड़े हैं!" आदमी ने उत्तर दिया।

० ० ०

एक आदमी ने अपने पड़ोसी से कहा—, 'देखा; कार कितनी तेजी से गई इधर से' पड़ोसी ने मजाक में कहा 'क्या कार आपके ऊपर से गुजर गयी?'

'मेरे ऊपर से तो हवाई जहाज भी गुजर जाते हैं।' उस आदमी ने उत्तर दिया।०

२५७/१०५ शंकरदयाल रोड,
ऐशबाग, लखनऊ

० ० ०

एक महिला ने अपने इंश्योरेंस-एजेंट को फोन पर सूचित किया कि उसके कागज़ात में कुछ हेर-फेर करना, होगा क्योंकि हाल ही में उसे जुड़वां बच्चे हुए हैं।

एजेंट को सुनने में थोड़ी कठिनाई हुई। उसने महिला से कहा—'बहनजी; क्या आप फिर से दोहराने की कृपा करेंगी?'

'हाय राम, आप यह क्या कह रहे हैं!' उत्तर मिला।

●बिनोद चतुर्वेदी

'हम इस लड़ाई में किसी भी सीमा तक जाने के लिए तैयार हैं'

बिहार का प्रेस-विधेयक केन्द्र सरकार का शिशु है। नई दिल्ली प्रेस को नियंत्रित और प्रेस की स्वतंत्रता को अवरुद्ध करने पर तुली हुई है। विहार के आज्ञाकारी मुख्यमंत्री डा० जगन्नाथ मिश्र ने विकृत 'विहार प्रेस-विधेयक' के रूप में परीक्षण के लिए एक गुब्बारा उड़ाया है··· पत्रकारों के अतिरिक्त सभी विरोधी दल, युवा-संगठन मजदूर संघ, बुद्धिजीवी तथा दलित वर्ग समान रूप से 'विहार-विधेयक' के विरुद्ध हैं। सत्तारूढ़ दल के अन्धा बनाने वाले विशेषज्ञ प्रेस की दृष्टि छीनने, लोगों के मुंह पर ताला लगाने और हर प्रकार के विरोध को कुचल देने पर आमादा हैं।

आपात-स्थिति के दौरान प्रेस का मुंह पूरी तरह बन्द कर देना भुलाया नहीं जा सकता। प्रेस के विरुद्ध प्रधानमंत्री के

अटलबिहारी वाजपेयी

राष्ट्र

प्रधानमंत्री का योजनाबद्ध अभियान

योजनाबद्ध अभियान को हम लोग गौर से देखते रहे हैं। काँग्रेस (इं) संसदीय दल की प्रायः हर बैठक में प्रधानमंत्री प्रेस पर बरसती रही हैं। प्रेस की स्वतंत्रता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता कभी भी प्रामाणिक नहीं रही।

मैं उन सभी लोगों, विशेषकर पत्रकारों को बधाई देता हूं जो बिहार-विधेयक के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। जब कभी राष्ट्र के क्षितिज पर खतरे के निशान दिखाई दिए हैं, बिहार ने साहस और धैर्य के साथ उनका सामना किया है। 'बिहार-प्रेस-विधेयक' स्वयं में प्रमाण है कि बिहार के पत्रकार बिकाऊ नहीं हैं अन्यथा डा० मिश्र उनको थोक में खरीद लेते। बिहार के पत्रकारों को सिर ऊँचा करके चलने का अधिकार है। मैं उन सभी का हृदय से अभिनन्दन करता हूं।

भारतीय जनता पार्टी, प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जो आन्दोलन चल रहा है, उनके साथ अपनी एकजुटता प्रकट करने की दृष्टि से एक राष्ट्र-व्यापी अभियान संगठित करेगी। स्थान-स्थान पर बिहार के प्रेस-विधेयक के विरुद्ध सभा, धरना, प्रदर्शन आदि आयोजित किए जायेंगे और विधेयक के विरुद्ध प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रपति से यह मांग की जायेगी कि विधेयक पर वे अपनी स्वीकृति प्रदान न करें।

बिहार में इस काले विधेयक के विरुद्ध छिड़े धर्मयुद्ध में यदि हम पराङ्मुख हो गए, तो अन्य राज्यों में भी ऐसे विधेयक लाएँगे और लोकतंत्र का गला घोट दिया जायेगा। अतः भारतीय जनतापार्टी इस लड़ाई में किसी भी सीमा तक जाने के लिए तैयार है। पत्रकार बताएँ कि वे किस रूप में हमारा सहयोग चाहते हैं? हमारी पार्टी इस विधेयक की वापसी के लिए बड़ी चोटी से संघर्ष करेगी।

यदि अखबारों का गला घोटा गया.....

प्रेस की स्वतंत्रता लोकतंत्र की की व्यवस्था का अनिवार्य अंग है, जिस पर किसी भी तरह का अंकुश नहीं लगना चाहिए। अब यह स्पष्ट हो गया है कि बिहार में प्रेस की जबान पर ताला लगाने का षड्यंत्र दिल्ली के इशारे पर किया गया है। बिहार के मुख्यमंत्री को इस विधेयक की आवश्यकता

इसलिए पड़ी कि यहां के समाचार-पत्रों ने भागलपुर के अन्धाकरण का, उनकी सरकार की विफलताओं का एवं राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार का, पिछले दिनों साहस-पूर्वक भंडाफोड़ किया है। पत्रकारों ने अपनी जान का खतरा मोल लेकर भी ऐसे षड्यंत्रों एवं दुष्कर्मों का पर्दाफाश किया। यदि अखबारों का गला घोंटा गया तो विरोधी दल भी अपनी सही भूमिका नहीं निभा पायेंगे।

बिहार में इस काले विधेयक के विरुद्ध छिड़े धर्म-युद्ध में यदि हम पराङ्-मुख हो गए, तो अन्य राज्यों में भी ऐसे विधेयक लाए जाएंगे और लोकतंत्र का गला घोट दिया जायेगा। अतः भारतीय जनता पार्टी इस लड़ाई में किसी भी सीमा तक जाने के लिए तैयार है। पत्रकार बताएँ कि वे किस रूप में हमारा सहयोग चाहते हैं? हमारी पार्टी इस विधेयक की वापसी के लिए एड़ी-चोटी से संघर्ष करेगी।

यह प्रेस-बिल डा० जगन्नाथ मिश्र द्वारा जनता को मूक और बधिर बनाने की चेष्टा है, और उनकी यह साजिश कभी सफल नहीं होगी। बिहार में छिड़ी प्रेस की आजादी की यह लड़ाई निर्णायक लड़ाई सिद्ध होगी और इसमें सभी विरोधी दलों को अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग करना होगा। बिहार में एक उभार आ रहा है, एक लहर आ रही है, डा० जगन्नाथ मिश्र इसे रोक नहीं पायेंगे। ईश्वर उन्हें सुबुद्धि दे कि वे प्रेस-विधेयक को शीघ्र वापस ले लें।

मां के चत्कार

सन् १९२२ की बात है। श्रावण पूर्णिमा की आधी रात का समय था। ढाका के काली मन्दिर में एक युवती निर्मला सुन्दरी मां काली की आराधना में लीन थी। अन्य भक्तगण भी साधना कर रहे थे।

अचानक निर्मला सुन्दरी के शरीर से नैवेद्य, फल-फूल तथा अन्य सामग्री झड़ने लगी। बांह तथा शरीर के अन्य भागों में कुंकुम से अंकित मंत्र उभर गए। उसका चेहरा अलौकिक आभा से दैदीप्यमान हो उठा। पास में बैठे श्री रमणि-मोहन चक्रवर्ती तथा अन्य भक्तजन इस दृश्य को देखकर चकित हो उठे।

श्री रमणिमोहन चक्रवर्ती निर्मला सुन्दरी के पति थे। वह जान गये कि उनकी पत्नी कोई साधारण युवती नहीं, अपितु मां काली का साक्षात्कार करने वाली दिव्य विभूति है। उसी क्षण उन्होंने अपने को 'पति' की जगह शिष्य स्वीकार कर लिया तथा अपना नाम भी भोलानाथ रख लिया।

निर्मला सुन्दरी भी कुछ समय बाद मां आनन्दमयी के नाम से विख्यात हुईं।

सुहरावर्दी को चेतावनी

मां आनन्दमयी ने भारत विभाजन के दौरान ढाका छोड़ने से पूर्व तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगलादेश) के नेता सुहरावर्दी को चेतावनी दी थी—'यदि महिलाओं को निर्वस्त्र कर उनका जुलूस निकालना बन्द नहीं किया गया तो मातृ-शक्ति का यह उत्पीड़न उनके लिए घातक सिद्ध होगा।'

सुहरावर्दी ने उन दिनों एक पत्र में स्वीकार किया था कि 'उन्हें रात को सपने में मां आनन्दमयी चेतावनी देती दिखाई दी हैं।'

बाद में जब सुहरावर्दी की हत्या कर दी गई तो 'ढाका टाइम्स' ने इस घटना को प्रकाशित किया था।

तंत्र शास्त्र के महान ज्ञाता महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज माँ आनन्दमयी के काशी स्थित आश्रम में अनेक वर्षों तक रहे। एक बार एजेल्फ जेक्स वेन्ट्रोब नामक एक विदेशी जिज्ञासु तंत्र के विषय में जानकारी लेने कविराजजी के पास पहुंचा। पंडितजी ने उससे कहा—'तुम तंत्र के बारे में कुछ जानना चाहते हो या उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति का चमत्कार देखना चाहते हो?'

'यदि प्रत्यक्ष चमत्कार देखने को मिल जाये तो क्या कहनें'—उसने कहा।

पंडितजी ने उसे माँ आनन्दमयी के पास भेज दिया। माँ के पास बैठते ही जैसे वह सब कुछ भूलकर समाधिस्थ हो चला। माँ ने स्वतः ही उसके प्रश्नों का उत्तर देना शुरू कर दिया। साथ ही यह भी बता दिया कि वह अपना देश किन कारणों से छोड़कर आध्यात्मवाद की शरण में आया है। ००

● शिवकुमार गोयल

शारदा पाठक

एक अजीब विरोधाभास। उत्तर प्रदेश सरकार फूलन देवी को पकड़ने के फेर में है लेकिन मध्य प्रदेश सरकार उसके समर्पण की चर्चा चला रही है, उधर बम्बई में अशोकराय इस दस्यु महिला पर फिल्म बनाये बैठे हैं जबकि फूलन की फोटो कहीं भी मयस्सर नहीं। प्रश्न है, ऐसी फिल्में क्या समाज में नये डाकू नहीं पैदा करेंगी ? डाकुओं को हीरो मानने की प्रवृत्ति को ऐसी फिल्में बढ़ावा देंगी ? यहाँ प्रस्तुत है 'फूलन देवी' फिल्म के बारे में स्वयं फूलन का रुख याकि धमकी।

—संपादक

फूलनदेवी पर ही फिल्म क्यों?

खूँखारी की दुनिया में बेमिसाल एक चेहरा है, जिसे बिरले ही पहचानते हैं। उसकी अपनी तसवीर मिलती नहीं, इसलिये पिछले डेढ़ साल से पत्र-पत्रिकाएं उसकी बहन की तसवीर छाप रही है। यह अनजाना चेहरा है अशोकराय की फिल्म की चरित्रनायिका 'फूलन देवी' का।

फूलनदेवी ने एक पत्र में अशोकराय को चेतावनी दी है कि फिल्म में उसके बारे में अगर कोई ऐसी-वैसी बात हुई तो समझ लें कि उनके साथ कैसा सलूक हो सकता है। चेतावनी एक और वजह से बहुत गम्भीर मानी जा रही है। फिल्म पूरी हो चुकने पर उसे चलाकर परदे पर देखने के लिए पिछले अगस्त के अन्त में 'प्रोजेक्शन' के कार्यक्रम आयोजित किये गये। इन अवसरों पर देखा गया कि प्रोजेक्शन रूम में अंधेरा हो जाने के बाद एक अनजान महिला चुपचाप आकर आगे की कुरसी पर बैठ जाती थी और फिल्म खत्म होने से पहले ही उठ कर चली जाती। कौन थी वह महिला किसी को पता नहीं।

अशोकराय [के सामने अब यही रास्ता रह गया है कि वह समझदारी से काम लें। फिल्म सावधानी से देखकर वे अंश निकाल दें, जिन पर फूलन को आपत्ति होने की कोई गुंजाइश हो सकती है। और यही वे कर भी रहे हैं।

फूलन देवी इस मामले में सचमुच भाग्यशाली कही जायेगी कि अपने जीवन

पर बनी फिल्म वह अपनी आंखों से देख लेगी। इतनी जल्दी फिल्म पहले कभी किसी डाकू पर नहीं बनी । पुतलीबाई पर फिल्म तब बनी थी जब वह दुनिया छोड़ चुकी थी।

डाकुओं को चरितनायक बनाकर फिल्म बनाना दरअसल बम्बई के फिल्म निर्माताओं का पुराना शगल है। राज-कपूर की 'जिस देश में गंगा बहती है', दिलीप कुमार की 'गंगा यमुना' और सुनीलदत्त की 'मुझे जीने दो' ने डाकू सम्बन्धी फिल्मों को नये सिरे से लोक-प्रियता की बुलन्दियों पर पहुंचाया। इसके बाद हर दूसरा निर्माता डाकुओं के कथानक के पीछे पड़ गया।

सामाजिक फिल्मों के मुकाबले डाकू

सम्बन्धी फिल्मों पर सेंसर की नजर भी कम लगती है।

दस्युरानी फूलनदेवी पर फिल्म बनाने का विचार निर्माताओं को तब आया, जब फरवरी १९८१ में उत्तर प्रदेश के बहमउ गांव में बाइस व्यक्तियों को एक साथ निर्ममतापूर्वक मौत के घाट उतारकर फूलन के गिरोह ने देश भर में सनसनी फैला दी और उसका नाम दुनियाभर में उछल गया।

अशोकराय पहले भी दस्युरानी पुतलीबाई पर फिल्म बना चुके थे जो व्यापारिक दृष्टि से काफी सफल रही।

के अवसर नहीं मिले तो वह गुजराती फिल्मों में चली गयी। वहां उसका सितारा जगमगाया और वह गुजराती सिनेमा की रेखा या जीनत अमान बन गयी।

नायिका के रूप में रीता की पहली हिन्दी फिल्म है 'कहानी फूलन की'।

फिल्म में नायक की भूमिका निभा रहा है सुरेश ओबराय। अन्य प्रमुख कलाकार हैं—जय मुखर्जी, प्रेमा नारायण, अभिजीत सेन, रजा मुराद आदि। संगीत रवीन्द्र जैन का है। रवीन्द्र जैन ब्रज क्षेत्र के रहने वाले हैं जो फूलन देवी के इलाके

कहानी फूलन की

नाम का पंजीयन हो जाने पर जैसे ही अशोकराय ने 'कहानी फूलन की' बनाने की घोषणा की कि उनका विरोध शुरू हो गया। लोगों ने कहा कि जब समाज फूलन को स्वीकार नहीं करता तो फिल्म बनाकर उसे व्यापक प्रचार प्रदान करना कहाँ तक जायज है?

'कहानी फूलन की' जाहिर है कि नायिका प्रधान फिल्म है। फूलन की प्रमुख भूमिका के लिए अशोक राय ने कोमल और सलोने चेहरे वाली रीता भादुड़ी को लिया जो एक अरसे तक हिन्दी फिल्मों में बहन की चरित्र भूमिकाएं करती रहीं। हिन्दी फिल्मों में आगे बढ़ने

से लगा हुआ है। छायाकार हैं वरुण मुखर्जी, जो रीता के बहनोई भी हैं। इस तरह फिल्म की यूनिट में बंगालियों की खासी तादाद हैं जो शायद इसलिए भी जरूरी है क्योंकि फिल्म हिन्दी के साथ-साथ बंगला में भी बनी है।

फिल्म की शूटिंग अशोक राय ने पिछले साल बरसात के दिनों में शुरू की थी। पहले उन्होंने फिल्म की लम्बाई के लगभग एक चौथाई वे हिस्से निपटाये जिनका फिल्मांकन स्टूडियों में होना था। फिर वे आउटडोर के लिए निकले। आउटडोर के लिए वे जाना तो चाहते थे वास्तविक स्थानों पर, लेकिन गये नहीं।

उत्तर प्रदेश में उन्हें फूलन और उनके साथियों का डर था। चंवल के बीहड़ों में 'पुतलीबाई' बनाते समय उन्हें अच्छा सबक मिल चुका था। वहाँ के लोगों और डाकुओं ने उन्हें इतना परेशान किया था कि कई बार जान पर आ बनी थी। इस कारण उन्होंने इन्दौर और उसके आस-पास का इलाका पसन्द किया जहाँ वे सुरक्षित रहकर के अपना काम सुचारु रूप से कर सकते थे। पिछले साल १८ सितम्बर को साठ सदस्यों की यूनिट देवास जिले में पहुंची और फिर महीने भर तक बागली, पिपरी और उदयनगर के जंगल दौड़ते घोड़ों की टापों और बन्दूकें चलने की आवाजों से गूंजते रहे। सेक्स का पुट लिये एक मुजरे की शूटिंग के लिए इन्दौर के भूतपूर्व शासक घराने ने उन्हें फूठी कोठी के नाम से प्रसिद्ध अपना एक महल उपलब्ध कराया जिसका निर्माण रियासती जमाने में इन्दौर नरेश ने अपनी राग-रंग की महफिलों के लिए कराया था।

अशोक राय का कहना है कि फिल्म का निर्माण शुरू करने से पहले उन्होंने फूलन देवी की जिन्दगी और उसके चरित्र का हर पहलू से गहरा अध्ययन किया है। अपनी फिल्म में उन्होंने उसे एक साधारण औरत के रूप में प्रस्तुत किया है और इस पक्ष को उभारा है कि उसने आम औरत की घरेलू जिन्दगी अपनाने की बजाय हाथ में बन्दूक क्यों उठा ली ?

फिल्म जल्दी से जल्दी प्रदर्शित कर देने की तैयारी में लगे हैं अशोक राय

लेकिन सबसे बड़ी उलझन है कहानी के अन्त की। उन्होंने फिल्म के दो अन्त तैयार किए हैं। एक में फूलन पुलिस की गोली से मार दी जाती है, दूसरे में अदालत उसे जेल भेज देती है। उनका इरादा था कि फिल्म प्रदर्शित होने के समय तक इन दोनों में से जो भी बात हो जायेगी, उसे लेकर ये फिल्म प्रदर्शित कर देंगे।

भाग्य की बात कि फिल्म पूरी हो भी गयी और फूलन अब भी आजाद घूम रही है। इस हालत में कहा नहीं जा सकता कि किस तरह का अन्त पसन्द करेगी फूलन अपने ऊपर बनी फिल्म की कहानी का। अशोक राय द्वारा दिखाया अन्त अगर उसे पसन्द नहीं आया तो···? चेतावनी वह दे ही चुकी है। ०००

जहां पटना का प्लेटफार्म बंधक

हाल ही में एक प्रमुख राष्ट्रीय साप्ताहिक का मुख्य शीर्षक था, 'जगन्नाथ मिश्र जा रहे हैं।' जानकार लोगों का कहना है कि कोई चमत्कार हो जाए तो और बात है, नहीं तो अब बिहार के मुख्यमंत्री को कोई बचा नहीं सकता। पटना नागरिक सहकारी बैंक के कुख्यात मामले में जिसकी सुनवाई सर्वोच्च न्यायालय में हो रही है, उनका हाथ बताते हैं। इस मुकदमे के परिणामस्वरूप मिश्र जी का पतन हो सकता है। ये बातें सभी जानते हैं, लेकिन शिवनंदन पासवान के बारे में लोगों को पता नहीं जो अकेले ही पिछले तीन साल से यह मुकदमा लड़ रहे हैं।

शायद और कोई व्यक्ति जगन्नाथ मिश्र के विचारों से उतना परिचित नहीं जितने कि श्री पासवान। ये दोनों मुजफ्फरपुर के लंगटसिंह कालेज में थे; जहां से श्री मिश्र ने अर्थशास्त्र में एम०ए० किया। श्री मिश्र, श्री पासवान से एक वर्ष आगे थे। श्री पासवान सरकारी कर्मचारी थे और उन्होंने १९७७ में इस्तीफा देकर राजनीति में कदम रखा। तब से श्री पासवान बिहार विधान सभा के सदस्य हैं।

श्री पासवान का व्यक्तित्व बड़ा रोचक है। उन्होंने इस मामले पर उससे कहीं अधिक परिश्रम किया है, जितना कि मदाम क्यूरी ने रेडियम की खोज में किया होगा। उनके जान पहचान वाले सभी स्थानों पर है। सरकार में शासक दल में और विरोध पक्ष में। वे इस मुकदमे के बारे में सभी सरकारी आदेशों की प्रतियां कहां से ले आए यह कोई नहीं जानता। वे हंसी में कहते हैं, 'पटना के बाजार से।' वे उन मित्रों के बारे में भी कुछ नहीं बताते जो बिहार में फैले व्यापक भ्रष्टाचार के विरुद्ध उनके जिहाद के लिए धन जुटा रहे हैं। शिवनंदन

आठ लाख रुपए का ऋण डॉ० मिश्र के भानजे जीवनाथ झा को दिया गया। पटना का गांधी मैदान और पटना स्टेशन के प्लेटफार्म नंबर एक को कर्ज की जमानत के रूप में बंधक रख दिया गया। १९७२ में रिजर्व बैंक ने इस बैंक का हिसाब देखा तो इस प्रकार की गई अनियमितताओं व गबनों का पता चला।

देखा गया

साक्षात्कार

श्रीनंद झा

पासवान को शर्लाक होम्स (प्रसिद्ध जासूस) कहा जा सकता है।

देखने में वे बड़े निरीह चुपचाप और भले लगते हैं, लेकिन कुछ बातें दिखाई कुछ देती हैं और होती हैं कुछ और। हाल ही में मैंने उनसे भेंट की तो पता चला कि वे कितने जागरूक और सिद्धहस्त राजनीतिज्ञ हैं। खादी का कुरता पायजामा पहने पासवानजी ने काफी समय तक जगन्नाथ मिश्र के बारे में बातें कीं। यह बताया कि मिश्र जी की राजनीतिक शैली कैसी है और स्वयं पासवान इस मामले में कैसे आए। उन्होंने यह स्वीकार किया कि पिछले तीन वर्षों में इस मामले में वे इतने व्यस्त रहे हैं कि उन्हें कुछ और करने की फुरसत ही नहीं मिली। मामले का परिणाम क्या होगा. इस बारे में वे झिझक रहे थे लेकिन जगन्नाथ मिश्र पर उन्होंने खुलकर वार किए।

प्रश्न : आप बताएँगे कि पटना नागरिक सहकारी बैंक के मामले में डा०जगन्नाथ मिश्र का क्या हाथ है ?

उत्तर : वे इस बैंक की स्थापना से ही इससे संबद्ध रहे हैं। वे पटना आए तो उन्हें केवल इस बात की चिन्ता थी कि किस प्रकार शीघ्रतिशीघ्र पैसा बनाया जाए। वे अर्थशास्त्र में एम० ए० हैं। उन्होंने ही यह बैंक प्रारम्भ करने की योजना बनाई और इस काम के लिए अपने मित्र नवलकिशोर सिंह का इस्तेमाल किया।

प्रश्न : आपका मतलब है कि वे प्रारम्भ से ही धोबाधड़ी कर रहे हैं ?

उत्तर : निश्चय ही। वे अपने को डाक्टर कहते हैं। सच तो यह है कि उन्होंने इस उपाधि के लिए जो शोध निबंध लिखा वह किसी और के निबंध से अक्षरशः चुराया हुआ है। जिन दिनों इस बैंक की स्थापना हुई, श्री मिश्र सहकारिता मंत्री थे। उन्होंने नवल किशोर सिंह को धन जुटाने में सहायता की। बैंक की स्थापना छोटे उद्यमों और उद्योगपतियों को सहायता देने के लिए की गई थी. लेकिन वास्तव में हुआ यह कि काल्पनिक व्यक्तियों को ऋण दिए गए। आठ लाख रुपए का ऋण डा०मिश्र के भानजे जीवनाथ झा को दिया गया।

पटना का गाँधी मैदान और पटना स्टेशन के प्लेटफार्म नम्बर एक को कर्ज की जमानत के रूप में बंधक रख दिया गया। १९७२ में रिजर्व बैंक ने इस बैंक का हिसाब देखा तो इस प्रकार की गई अनियमितताओं व गबनों का पता चला।

प्रश्न : क्या यह पहला अवसर था, जब ऐसी अनियमितताओं का पता चला?

उत्तर : जी हाँ, लेखा परीक्षक की रिपोर्ट राज्य सरकार को भी दी गई। बिहार के सहकारिता विभाग ने भी लेखा परीक्षण किया तो पता चला कि ३५ लाख रुपये की रकम बही खातों से इस आधार पर निकाल दी गई कि इस राशि के ऋण डूब गए हैं। इस पर बिहार विधान सभा में शोर मचा। मामला प्राक्कलन समिति को सौंपा गया तो उसने सिफारिश की कि बैंक अधिकारियों के विरुद्ध फौजदारी कार्रवाई की जाए। सहकारिता विभाग ने भी मामले की जाँच करने के बाद सुझाव दिया कि बैंक के अध्यक्ष नवल किशोर सिंह, सचिव के. पी. गुप्ता, एम. हायदमी (प्रबंधक) और अध्यक्ष के निजी सहायक तथा कोषाध्यक्ष के विरुद्ध फौजदारी मुकदमे दायर किए जाएँ। मुकदमा दायर करने के लिए तैयार हो गया और कागज सहकारी अभियोक्ता को भेज दिए गए। लेकिन जगन्नाथ मिश्र ने, जो अब्दुल गफूर के मंत्रिमंडल में सिचाई मंत्री थे, फाइल वापस मंगवा ली। उसके बाद अब्दुल गफूर के पैर उखड़ने का आंदोलन चलाया तीन महीने बाद जब अब्दुल गफूर ने त्यागपत्र दिया, मिश्रजी इस फाइल को अपने पास रखे रहे।

जब वे मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने फाइल निकाली और आदेश जारी कर दिया कि नवलकिशोर सिंह के विरुद्ध गबन का कोई आरोप नहीं और मुकदमा न चलाया जाए। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि जिन लोगों ने बैंक से ऋण लिया है, उनके विरुद्ध वसूली की कार्रवाई की जाए। लेकिन वास्तविकता यह है कि ऋण दिए ही काल्पनिक व्यक्तियों को थे और पैसा मिश्र, सिंह और अन्य लोगों की जेब में गया था। पैसा वापस कैसे मिल सकता था? श्री मिश्र से एक भूल हो गई। उन्होंने फाइल मंगवा कर पुराने आदेश के ऊपर नया आदेश चिपका दिया। बाद में जब बिहार में राष्ट्रपति शासन हुआ तो राज्यपाल जगन्नाथ कौशल ने इस मामले की पूरी जाँच करने का आदेश दिया, तब सतर्कता विभाग ने अल्ट्रा वायलट किरणों की सहायता से यह पता लगा लिया कि पुराने आदेश में जिस पर नया आदेश चिपकाया था, क्या था?

प्रश्न: पासवान जी, आप जो जिहाद के समान यह मामला चला रहे हैं। क्या अन्य दल आपको समर्थन दे रहे हैं?

उत्तर: बात यह है कि मुझे इस मामले की वास्तविकता का पता है। मैं जानता हूं कि जगन्नाथ मिश्र ने क्या घोटाला किया है। मैं १८ वर्ष तक सरकारी सेवा में रहा। मैं बिहार सिविल

सर्विस का सचिव था। जब मुझे पता चला कि श्री मिश्र ने मंत्रिमंडल को यह मामला वापस लेने का आदेश दिया है तो मैंने संघर्ष करने की सोची। इसीलिए मैं यहाँ सर्वोच्च न्यायालय में हूं। आप हैरान होंगे, लेकिन यह मुकदमा मैं अकेले ही लड़ रहा हूं। मुझे किसी राजनीतिज्ञ से कोई सहायता नहीं मिल रही है। कुछ मित्र मेरी सहायता अवश्य कर रहे हैं। एक बात मैं कहूंगा और वह यह कि यह मामला देश के लिए बड़े महत्व का है। यह अंतुले से भी अधिक गंभीर मामला है।

प्रश्न: आपके वे मित्र कौन हैं ?

उत्तर: अभी उनके नाम नहीं बता सकता। मुकदमा खत्म होने के बाद बताऊँगा, अभी नहीं।

प्रश्न: क्या आपको विश्वास है कि आप मुकदमा जीत जाएँगे ?

उत्तर: हर मुकदमेबाज का अपनी जीत का विश्वास होता है। लेकिन मैं तो यह मुकदमा देश की खातिर लड़ रहा हूं, यह कोई व्यक्तिगत झगड़ा नहीं है। जगन्नाथ मिश्र को हानि पहुंचाकर मुझे अपना कोई उल्लू सीधा नहीं करना है।

प्रश्न: क्या मिश्रजी ने आपको अपने पक्ष में करने की कोशिश की है।

उत्तर: (जोर देकर) निस्संदेह। कई बार कोशिश की है। पहले श्री मिश्र को इस मामले की गंभीरता का पता नहीं था। लेकिन अब चल गया है। जब मामला अदालत में गया तो उन्होंने ५० लाख रुपए देकर मुझे खरीदना चाहा। उसके बाद भी उनके आदमी मुझसे संपर्क बनाए हुए हैं। कई प्रकार के प्रलोभन मुझे दिए गए हैं। मार डालने की धमकी भी दी गई है। एक बार पटना में कुछ गुण्डों ने मुझ पर आक्रमण किया। मेरे घर वालों को भी बार-बार धमकी दी गई है। मुझे काफी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है, लेकिन मुझे ऐसी धमकियों की परवाह नहीं है। मैं समझता हूं कि मुझे इस देश से गरीबी मिटाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, चाहे वह कितना क्षुद्र प्रयत्न ही क्यों न हो ?

प्रश्न: आप सरकारी कागज पत्र हथियाने में कैसे सफल हुए ?

उत्तर: (मुस्कराते हुए) मेरे मित्र सभी स्थानों पर सभी दलों में हैं। सरकार में भी जान पहचान है। मेरा सौभाग्य है कि मेरे मित्रों को मुझ से सहानुभूति भी है और प्यार भी। मैंने ये कागज पटना के बाजार से खरीदे हैं।

प्रश्न: क्या जगन्नाथ मिश्र से आपको कोई व्यक्तिगत शिकायत हैं ?

उत्तर: नहीं वे तो एक समय मेरे मित्र थे। हम दोनों मुजफ्फरपुर के एक कॉलेज में साथ ही पढ़े हैं। मेरी उनके स्वर्गीय भाई ललितनारायण मिश्र से भी मित्रता थी। मैं बहुत समय से उन्हें जानता हूं। मुख्यमंत्री बनने के बाद श्री मिश्र ने अपने को भ्रष्टाचार के सागर में डुबो लिया है। सत्ता भ्रष्ट बनाती है और निरंकुश सत्ता निरंकुश भ्रष्टाचार

पुस्तकालय
राष्ट्रीय प्रशासनिक संस्थान
बीर [illegible] मसूरी

को जन्म देती है।

प्रश्नः लेकिन शासक दल के हाई कमान की नजरों में वह अभी तक चढ़े हुए हैं।

उत्तरः यह इसलिए कि वे केन्द्र को पैसा देते हैं। यह बात सभी को मालूम है।

प्रश्नः स्वर्गीय के. पी. गुप्ता कांड के बारे में कुछ कहेंगे। अफवाह है कि उन्हें विष देकर मार दिया गया।

उत्तरः शायद आपको मालूम नहीं कि श्री मिश्र से मुलाकात होने तक श्री गुप्ता चौथी श्रेणी के कर्मचारी थे और श्री मिश्र के पास आकर कुछ ही वर्षों में वे करोड़पति बन गए। लेकिन उनके गरीब से धन्नासेठ बनने की कहानी में मुख्य भूमिका जगन्नाथ मिश्र की थी। फिर इन दोनों में अनबन हो गई। श्री गुप्ता ने अदालत में यह कबूल किया था कि बैंक ने ५० लाख रुपए काल्पनिक नामों से जगन्नाथ मिश्र को दिए हैं। लेकिन उनकी अचानक मृत्यु एक रहस्य है, जिसकी जाँच आवश्यक है। आप इस पर कुछ समय लगाएँ तो बड़ी अच्छी जानकारी मिल सकती है।

प्रश्नः उच्च न्यायालय ने आपकी याचिका रद्द क्यों की थी?

उत्तरः उच्च न्यायालय के फैसले से मैं सहमत नहीं हूं।

प्रश्नः पासवानजी आप बहुत समय से इस मामले में लड़ रहे हैं। आपका उद्देश्य क्या है?

'उपासना का सार है गहन विस्मय और सुधबुध भुला देने वाला अतिशय विस्मय का ऐसा समागम, जो आत्मा का उन्नयन और उद्धार करता है।'

दार्शनिक जेराल्डहर्ड

उत्तरः यदि जगन्नाथ मिश्र हार जाते हैं तो उन्हें सजा होगी और फिर वे राजनीति में समाप्त हो जाएँगे।

प्रश्नः उससे आपका या आपके दल को कोई लाभ होगा?

उत्तरः इससे जनता को लाभ होगा देश को होगा। मुझे कुछ नहीं मिलेगा। मैं तो जनता के भले के लिए मुकदमा लड़ रहा हूं।

प्रश्नः आप अपने लिए कैसे राजनीतिक भविष्य की कल्पना करते हैं?

उत्तरः मेरी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं नहीं हैं। मैं तो ईमानदारी से अपना काम करना चाहता हूं।

प्रश्नः जगन्नाथ मिश्र के राजनीतिक भविष्य के बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तरः मैं यही कहूंगा कि जगन्नाथ मिश्र में रत्ती भर भी नैतिकता होती तो जिस दिन मुकदमा दायर हुआ उसी दिन त्यागपत्र दे देते।

प्रश्नः राज्य के राजनीतिक नेतृत्व में कोई परिवर्तन होगा? वह अच्छा होगा या बुरा?

उत्तरः अच्छा ही होगा, क्योंकि जगन्नाथ मिश्र से बुरा कोई हो ही नहीं सकता।

● सुदर्शनसिंह चक्र

बालक सनातन

केवल ग्यारह वर्ष का बालक था सनातन। उड़ीसा के एक निर्धन दम्पति के दो बच्चे थे। उसमें सनातन ग्यारह का था और दूसरा उससे छः वर्ष छोटा था। अचानक देश में अकाल पड़ गया।

सूर्योदय के पूर्व ही सनातन का पिता घर से निकल पड़ता। सूर्यास्त तक कहीं कुछ भी काम मिल जाय और उससे दो मुट्ठी अन्न प्राप्त हो जाय, तो वह दिन भाग्यशाली समझा जाता। एक बार कई दिनों तक सनातन के पिता को लगातार कुछ काम नहीं मिला। घर में जो टूटे-फूटे बर्तन भी थे, पेट की ज्वाला में आहुति देने को बिक चुके थे। कोई उपाय नहीं था। सनातन के पिता ने, एक दिन, रात्रि में चुपचाप घर त्याग दिया। कोई नहीं जानता कि वे कहाँ गये। अपने नेत्रों के सामने अपनी सन्तान को भूख से तड़पते न देख सकने के कारण वे कहीं चले गये।

पिता गये, तो असहाय परिवार को यदा-कदा दो मुट्ठी अन्न मिलने की आशा भी गयी। आखिर कितने दिन केवल जल पीकर कोई जीवित रह सकता है? नारी खाट पर पड़ गयी। ४ वर्ष का नन्हा बालक मरणासन्न हो गया। कंकालप्राय ग्यारह वर्ष का बालक सनातन अन्त में पिता की लाठी का सहारा लेकर निकला। अनेक दिन के उपवास के कारण उसे बार-बार चक्कर आ रहे थे। बार-बार मूर्च्छित होकर वह गिर पड़ता था, किन्तु उसे चलना चाहिये—इसलिए वह चलता गया।

'मैया! थोड़ा-सा भात!' किसी वृद्धा नारी को मरणासन्न बालक सनातन पर दया आ गयी। उसने थोड़ा भात दे दिया।

अकाल में भूख से व्याकुल मनुष्य अपने बच्चे तक बेच डालता है। माता अपने मरते बच्चे के हाथ से छीनकर अन्न खा लेती है। किन्तु मानव में ही देवोपम नहीं, देव-दुर्लभ आत्मायें भी अवतीर्ण होती हैं। ग्यारह वर्ष का नन्हा बालक, अनेक दिनों के उपवास से बार-बार मूर्च्छित होता, गिरता, चलता रहा। उसके हाथ में भोजन था, किन्तु मुख में एक दाना नहीं डाला उसने।

छोटा भाई चीखता दौड़ता आया तो उसके मुख में एक ग्रास अन्न दे दिया सनातन ने, और फिर उसकी चीख की भी उपेक्षा करके खाट पर क्षुधा से अशक्त अर्धमूर्च्छिता माता के पास बढ़ गया—'माँ! भात लाया हूं।'

'बेटा! कल्याण हो तेरा।' उस नारी का आशीर्वाद। किसी तपस्वी, ऋषि, देवता, लोकपाल का आशीर्वाद उस माता के आशीर्वाद की समता करने में समर्थ हो सकता था? ००

दंगे क्यों और कब तक?

इतिहास साक्षी है कि आज से ७६ वर्ष पूर्व १ अक्टूबर १९०६ को आगा खाँ के नेतृत्व में मुस्लिम प्रतिनिधि मण्डल के द्वारा वायसराय लार्ड मिन्टो से मिलकर पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की माँग मनवा लेने के बाद एक अधिकारी ने लेडी मिन्टो को लिखा था, 'आज एक बहुत बड़ी घटना घटित हो गई है। आज राजनीतिज्ञता का एक ऐसा कार्य हो गया है जो कि भारत तथा भारतीय इतिहास को एक लम्बे समय तक प्रभावित करेगा। छह करोड़ से भी अधिक लोगों को राजद्रोहियों की श्रेणी में मिलने से बचा लिया गया है।' उस अधिकारी का यह अनुमान कितना सही था, स्वतंत्रता के बाद निरन्तर घटने वाली साम्प्रदायिक घटनाओं के आधार पर यह समझना विषमता नहीं है। १९४७ में देश का विभाजन करके एक बार हम उस राजनीतिक अदूरदर्शिता की कीमत दे चुके हैं। और आज भी जिस तरह भारत में साम्प्रदायिक वैमनस्य का बवंडर उठता जा रहा है इसे देखकर भारत के एक और विभाजन की आशंका से मन कांप जाता है।

मुस्लिम सांप्रदायिकता का इतिहा

इतिहास के अध्येता यह जानते कि—मुस्लिम लीग की स्थाप का निर्णय ३० दिसम्बर १९०६ ढाका में लिया गया था। इसके कु समय बाद ही नवाब विकार-उल-मुल्क अलीगढ़ में भाषण दिया जिसमें मुस्लि सम्प्रदाय के राजनीतिक इरादों स्पष्ट झलक मिलती है। उसमें कहा गया- खुदा न करे, अगर भारत में अंग्रेजी रा का खात्मा हो गया, तो उसके ब हिन्दुओं का प्रभुत्व हो जाएगा औ हमारी जिन्दगी, जर-जमीन और इज्ज सब कुछ हमेशा के लिए खतरे में प जायेगा। मुसलमानों के लिए इस खत से बचने का एक ही उपाय है कि ह ब्रिटिश राज्य को कायम रखने में मदद गार हैं। अगर मुसलमान सच्चे दिल से अंग्रेजों के साथ रहेंगे, तो उनकी हुकूमत यकीनन बनी रहेगी। मुसलमानों को खुद को अंग्रेजी फौज समझना चाहिए, जो

हिन्दू-मुस्लिम एकता की गहरी साज़िश

वीरेश्वर द्विवेदी

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

कि ब्रिटिश राज के लिए अपना लहू देने और अपनी जिन्दगी कुरबान करने के लिए लिए तैयार है।'

ये विषाक्त उद्‌गार

महात्मा गांधी के प्रशंसक कहे जाने वाले मौलाना मोहम्मद अली का यह कथन भी आंख खोलने वाला है:—'हाँ, अपने मजहब और वसूलों के मुताबिक मैं एक बदचलन व गये गुजरे मुसलमान को भी श्री गाँधी से बेहतर समझता हूं'। एक अन्य अवसर पर तो मौलाना मोहम्मद अली ने यहाँ तक कहा था कि—'एक भारतीय मुसलमान के लिए एक दीगर मुसलमान के खिलाफ लड़ना वाजिब नहीं है, भले ही वह एक गैर मुल्की हमलावार ही क्यों न हो।'

किन्तु हमारे नेताओं ने न तो इस तरह के विष भरे कथनों की गम्भीरता पर ध्यान दिया और न ही अंग्रेजों की इस चाल को समझ पाए कि वे मुसलमानों को हिन्दू राष्ट्रीयता के विरुद्ध एक सन्तुलन के रूप में खड़ा करना चाहते हैं। अतः उन्होंने इस मृगमरीचिका में फँसकर कि—'हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना स्वतंत्रता असम्भव है'—'मुसलमानों का सहयोग लेने के लिए खिलाफत के प्रश्न को भी स्वराज्य के साथ जोड़ दिया। परन्तु घटनाएं बताती हैं कि मुसलमान एक मुसलमान के रूप में ही कांग्रेस में आया जिसका हृदय वस्तुतः तुर्की साम्राज्य एवं खिलाफत के प्रति प्रेम से अधिक ओतप्रोत था और स्वराज्य के प्रति कम।

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति एवं खिलाफत के उन्मूलन (तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा द्वारा) के उपरान्त हिन्दू-मुस्लिम एकता का ढाँचा एकदम लड़खड़ा गया। खिलाफत खत्म होने का गुस्सा हिन्दुओं पर उतारा गया। मलाबार के मोपलों ने हिन्दुओं पर अवर्णनीय अत्याचार किए, बहुत से स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए। महात्मा गांधी ने २१ दिन का उपवास किया, जिसके बाद दिल्ली में एक एकता सम्मेलन हुआ।

मज बढ़ता गया····

एकता सम्मेलन ने साम्प्रदायिक एकता के लिए १५ सदस्यीय समिति गठित की, परन्तु इस रोग की जड़ें इतनी गहरी थीं, कि समिति उसके लिए सक्षम नहीं हुई। उसी वर्ष बम्बई में सर्वदल सम्मेलन बुलाया गया। इसमें स्वराज्य के लिए तथा विधान मंडलों एवं अन्य निर्वाचित संस्थाओं की समस्त जातियों के प्रतिनिधित्व के लिए योजना बनाने हेतु उप-समिति नियुक्त की गई।

करते रहने के बावजूद भी वे अपने को राष्ट्रवादी होने का दावा करते रहे। इस सम्बन्ध में 'हिन्दू दृष्टिकोण क्या है इसका खुलासा हिन्दू महासभा के प्रतिनिधि लाला लाजपतराय ने इस प्रकार किया है:—'जो लोग देश की समस्त प्रतिनिधि संस्थाओं में पृथक् निर्वाचक मण्डलों के साथ साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांग करते हैं, उनको ईमानदारी के साथ यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे राष्ट्रवाद में अथवा अखण्ड भारत में

[यह वही मानसिकता है जो वंदे मातरम् का विरोध करती है, भारत पर विदेशी हमला होने पर सरकार की परेशानी पर कहती है कि 'इस देश की बागडोर उन्हीं के हाथों में क्यों नहीं सौंप देते जिन्होंने (मुसलमानों ने) हजार साल हिन्दुस्तान पर शासन किया है।' वही मानसिकता श्री छागला ऐसे राष्ट्रवादी मुसलमान की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव का विरोध करती है, हमीद दलवई जैसे सुधारक पर हमला करती है, नरगिस जैसी अभिनेत्री को उसके पति की इच्छा के विरुद्ध दफन करती है (तथा दफन के पूर्व उसके माथे का सुहाग-सिंदूर पोंछती है) तथा खेलों में भारत द्वारा पाकिस्तान को परास्त करने पर शोक मनाती है।

किन्तु मुसलमानों के इस आग्रह के कारण बैठक असफल हो गई कि 'पृथक् निर्वाचक-मण्डल कायम रहने चाहिए, मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रान्तों में उनको 'वेटेज' मिलते रहना चाहिए तथा पंजाब व बंगाल में उनका पूर्ण बहुमत रहना चाहिए। जिन्ना ने इसका समर्थन किया। लुत्फ यह कि इतना सबके विश्वास नहीं रखते।···यदि आप एक बार पृथक निर्वाचिक-मण्डलों के साथ साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मान लेते तो यह गृह-युद्ध का कारण बने बिना न रहेगा।' लालाजी की उक्त भविष्यवाणी आगे सत्य सिद्ध हुई, पाकिस्तान बन जाने के बाद भी गत दिनों मेरठ और बड़ौदा में गृह-युद्ध की फिजा दृष्टिगोचर हुई

मेरठ के दंगे

भले वह कितनी ही सीमित हो। हिन्दुओं के मन्दिर के घण्टे की आवाज तथा श्रीराम, दुर्गाजी, गणेशजी के जुलूस के बाजों पर आज भी इन्हें आपत्ति होती है। मेरठ के दंगे इसी मानसिकता की उपज है। वहाँ शाहघासा में सन् १९१७ से पिपलेश्वर महादेव का मन्दिर है। हिन्दुओं व मुसलमानों की संयुक्त बैठकों में मुसलमानों द्वारा साफ तौर पर यह कहा गया कि 'हमें मन्दिर के घण्टे की आवाज पर एतराज है।' उन्होंने वहाँ मजार होने की बात उठाई। कुछ मुस्लिम राजनीतिज्ञों और दिल्ली के शाही इमाम ने हवा दी और मेरठ को दुःखद स्थिति में झोंक दिया।

मेरठ बार एसोसिएशन की रिपोर्ट

इस संदर्भ में ६ अक्टूबर को मेरठ में जो संसदीय प्रतिनिधि मण्डल आया था—उसे 'मेरठ बार एसोसिएशन' ने जो विस्तृत ज्ञापन दिया—उसमें कहा गया है :—

दिनांक ३-९-८२ को शाही इमाम अब्दुल्ला बुखारी (जामा मस्जिद) देहली मेरठ आये, सर्किट हाऊस में उनका विशेष सरकारी मेहमान की तरह स्वागत हुआ जहाँ पर उन्होंने अधिकारीगण एवं जन समुदाय के प्रतिनिधियों से बातचीत की। ३-४ सितम्बर की रात को दो मस्जिदों में मांस के टुकड़े फेंकने के आरोप में पुलिस एक मुस्लिम युवक को बन्दी बना चुकी थी। ५-९-८२ को फिर से बुखारी साहब मेरठ आये और विवाद-ग्रस्त स्थल पर भी गये। वहां पर मुस्लिम समुदाय द्वारा उनका जुलूस बनाकर स्वागत किया गया और राष्ट्र-विरोधी नारे लगाये, जिससे आस-पास का बाजार बन्द हो गया, भगदड़ मच गई और आतंक फैल गया किन्तु प्रशासन ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। परिणामतः ६।७ सितम्बर, १९८२ की रात्रि को पूर्व निश्चित योजनानुसार रामभोले पुजारी, जो धर्मस्थल पर पूजा कराने का कार्य करता था, का कत्ल हुआ, इससे सारे शहर में सनसनी फैल गई परन्तु उसके लिये जिम्मेदार व्यक्तियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई और शहर के कुछ स्थानों पर कर्फ्यू लगा दिया गया, जिससे स्थिति असामान्य हो गई। दिनांक ८-९-१९८२, को कर्फ्यू में कुछ ढील दी गई तो मुस्लिम इलाकों में पुलिस पर हमले हुए। '८ और ९ सितम्बर को पुलिस पर अनेक स्थानों पर

आक्रमण किया गया। चाहिए तो यह था कि प्रशासन इस समय कड़ा पग उठाता किन्तु प्रशासन ने उन मोहल्लों की जहां से पुलिस एवं पी०ए० सी० पर हमला हुआ था, तलाशी तक नहीं ली। हिन्दू मोहल्लों की ओर से किसी भी घटना की पहल न होने पर भी नगर-विधायक और सांसद को प्रसन्न करने के लिए अनेकों निर्दोष हिन्दुओं को बन्दी बनाकर जेल भेज दिया। इसके विरोध में ५०० महिलाओं ने थाने पर प्रदर्शन भी किया।'

खास संकेत के साथ पुलिस पर बमबाजी

इसी दौरान पी० ए० सी० को मुख्य संवेदनशील स्थानों से किन्हीं कारणों से हटा लिया गया, जिसका यह परिणाम हुआ कि २६-६-८२ की रात्रि में करीब २४-२५ मोहल्लों से मुस्लिम समुदाय के व्यक्तियों ने सुनियोजित ढंग से विशेष सिगनल (संकेत) के साथ समुदाय के मोहल्लों पर, पी० ए० सी० के जवानों पर तथा पुलिस चौकियों पर बम, गोली, तेजाब व ईंट पत्थरों से हमले किये, जिससे शहर में पूर्ण रूप से आतंक फैल गया।

ऐसी दशा में प्रशासन को कड़ा कदम उठाने की आवश्यकता थी लेकिन दंगाइयों के खिलाफ कोई उचित कार्यवाही न होने के कारण उनके हौसले बढ़ते चले गये और उन्होंने १ अक्तूबर को भूमिया पुल के पास जिलाधिकारी, अतिरिक्त जिलाधिकारी, एस० एस० पी० व अन्य अधिकारियों की गाड़ियों पर बम फेंके।

वास्तव में, नाजायज शस्त्र, बम, तेजाब व अन्य विस्फोटक सामान काफी मात्रा में जमा है, जो दबिश दिये जाने पर निकल रहा है और बाहर का काफी आदमी दंगा करने मेरठ आया हुआ है। प्रशासन द्वारा ऐसे बाहरी व्यक्तियों व नाजायज शस्त्रों के बारे में कोई छानबीन व उन्हें निकालने की कोशिश पहले नहीं की गई, जिसके कारण वस्तुस्थिति काबू से बाहर हो गई।'

नगर के दो पुलिस अधिकारियों एस० पी० सिटी श्री प्यारेलाल तथा सी० ओ० सिटी श्री एल० पी० मिश्रा ने इस दंगे में अपने पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण जनता के बीच अपनी साख खो दी। इसका अनुभव तब हुआ, जब कुछ गधों पर लोगों ने लिख दी कि 'मेरा नाम प्यारे लाल एवं एल० पी० मिश्रा है।' १६ सितम्बर को दूकानदारों के जुलूस में भी इन्हीं दोनों अधिकारियों के विरुद्ध नारे लगाए गए। भाजपा अध्यक्ष श्री अटलबिहारी वाजपेयी से जनता ने इन दोनों अधिकारियों के बारे में खुलकर रोष व्यक्त किया।

इस बीच अधिकांश राजनीतिक दलों के नेता मेरठ आये। परन्तु, अपवाद स्वरूप भाजपा को छोड़कर सभी ने 'वोट-बैंक' की खातिर तुष्टीकरण की नीति का ही अवलम्बन किया। वे केवल

मुस्लिम मोहल्लों में ही गए और उन्होंने पी० ए० सी० की आलोचना की जब कि पी० ए० सी० व पुलिस फोर्स पर आक्रमण करने वालों की निन्दा तक नहीं की।

फिलहाल मेरठ में शांति दिखती है। किन्तु बड़े नरसंहार के बाद सवाल है क्या हर बार ही ऐसी ही कुर्बानी देनी होगी ? क्या धर्मान्धता की आग में देश का अमन-चैन हमेशा झुलसता रहेगा ? यदि नहीं, तो क्या इस देश के ८५ प्रतिशत हिन्दू समाज को मन्दिरों के घण्टे बजाने बन्द करने या उतार देने होंगे ? और हमें यह सब क्या अल्पसंख्यकों के विशेषाधिकार के नाम पर बहुमत के मूलाधिकारों का हनन करते हुए करना होगा ? क्या सत्ता की दौड़ में शामिल राजनीतिज्ञों में से 'खबरदार' की तर्जनी उठाने वाले भी खड़े होंगे जो राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखकर यह कह सकें कि बहुमत हो या अल्पमत—किसी के भी विशेषाधिकार राष्ट्रहित के विपरीत नहीं हो सकते तथा सभी को राष्ट्रहित की धारा के साथ ही चलना होगा। हमारा विश्वास है कि यदि हिन्दू जनमत के जागरण की लहर गतिमान होती गई तो निकट भविष्य में वह दिन भी आएगा, जब देश के सत्ता-सूत्रधार सच्ची राष्ट्रभावना को आधार बनाकर सर्व धर्मसमभावानुसार प्रगति-रथ को आगे बढ़ाएँगे और देशवासी शांति व सुव्यवस्था के साथ खुली सांस ले सकेंगे। ०००

गुण-पूजा

किसी रास्ते के निकट दो आम के वृक्ष थे। एक छोटा, एक बड़ा। छोटे आम के नीचे लोगों की भीड़ जमी रहती थी। बड़े की ओर कोई भूलकर भी नहीं जाता था। बड़ा अपनी अवज्ञा के कारण मन ही मन बड़ा दुःखी रहता था।

एक दिन प्रसंगवश उसने छोटे से कहा : 'क्यों भाई, मैं उम्र में तुमसे बड़ा हूं। फल भी तुम से अधिक देता हूं फिर भी लोग मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। तुम सब बातों में मुझसे छोटे हो, जब कि मान तुम्हारा मुझसे अधिक है। इसका कारण क्या है ?'

'मेरी मधुरता ही इसका रहस्य है !' छोटे आम ने सहज उत्तर दिया, उम्र और ऊँचाई से किसी की पूजा नहीं होती, पूजा होती है गुण से। तुम बड़े होकर भी खट्टे हो, इसीलिए अप्रिय हो। मैं छोटा जरूर हूं, किन्तु गुणों में मधुर हूं। इसीलिए सबका प्रिय पात्र बन गया हूं।'

बड़ा आम मौन रह गया।

सन्तोष व्यास

ज्वलंत प्रश्न

भारतीय जनता युवा मोर्चा के अध्यक्ष श्री सत्यदेवसिंह से आर० जे० शुक्ल 'यदुराय तथा रवीन्द्र श्रीवास्तव की एक वार्ता

भारतीय जनता पार्टी से सम्बद्ध युवा संगठन 'भारतीय जनता युवा मोर्चा' का अखिल भारतीय अधिवेशन विगत २, ३ एवं ४ अक्तूबर को इलाहाबाद में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, के प्रांगण में हुआ। विभिन्न प्रान्तों से आये हुए लगभग आठ हजार प्रतिनिधियों ने 'बेरोजगारी की समस्याओं' से लेकर 'छात्र-समस्या' 'सामाजिक-समता' और 'राजनीतिक' स्थिति पर बहस की और प्रस्ताव पास किये। इस प्रतिनिधि-द्वय ने मोर्चा के अखिल भारतीय अध्यक्ष श्री सत्यदेवसिंह से विस्तृत चर्चा की। यहां प्रस्तुत है देश की वर्तमान स्थिति पर श्री सिंह के विचार।

'आज देश की राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियां निरन्तर बिगड़ती जा रही हैं। सामाजिक और आर्थिक विषमतायें निर्बाध गति से बढ़ी है। अशिक्षा, अज्ञान तथा बेरोजगारी की समस्या ने युवकों को जीवन में भीषण तनाव तथा भविष्य के प्रति घोर नैराश्य की स्थिति में उसे दिशाविहीन, हताश व हिंसक बना दिया है।

देश आज इतिहास के चौराहे पर खड़ा है। असम में विदेशी नागरिकों की समस्या वर्तमान सरकार द्वारा राष्ट्रीय हित में निर्णय लेने की अक्षमता के कारण जटिल बनी हुई है। पूर्वांचल का मणिपुर व मिजोरम क्षेत्र विदेशी शक्तियों की साजिश के परिणामस्वरूप हिंसा से ग्रस्त है। पंजाब में खालिस्तान की मांग करने वाले सिक्ख का महान गुरुओं के आदर्श, त्याग व स्नेह सिद्धान्त के विपरीत राष्ट्र विरोधी का आचरण तथा भृत्य चिन्ता का विषय है। जम्मू-कश्मीर विधान सभा द्वारा पारित पुनर्वास-विधेयक राष्ट्रीय हित में कितना बाधक है, इसका अनुमान राज्यपाल श्री बी०के नेहरू द्वारा विधान सभा को उक्त विधेयक पुनर्विचार के लिए प्रेरित पत्र से सरलता पूर्वक लगाया जा सकता है।

सत्तारूढ़ कांग्रेसी नेताओं की वोट-लिप्सा के परिणामस्वरूप बंगाल व बिहार में असम जैसी समस्या बंगलादेश से आयातित घुसपैठियों के कारण उत्पन्न हो गयी है।

देश में कानून एवं शान्ति व्यवस्था की स्थिति कितनी बदतर स्थिति में

युवा-जगत

पहुंच चुकी है इसका अनुमान काँग्रेस शासित राज्यों से लगाया जाना चाहिए, जहां चारों ओर साम्प्रदायिक दंगे, जातीय विद्वेष तथा संघर्ष की स्थिति ने आम नागरिकों के बीच भय का वातावरण पैदा कर दिया है।

जनता पार्टी के परस्पर मतभेद ने सिर्फ पार्टी को ही तोड़ा था परन्तु इन्दिरा कांग्रेस के नेताओं का आपसी द्वन्द्व देश की एकता और अखंडता को ही खंडित करने पर तुला है।

लोकतंत्र में अल्पमत की सरकार नहीं चल सकती किन्तु कितनी विडम्बना है कि बहुमत में होते हुए भी कांग्रेस के शासन में स्थायित्व का कहीं नामो-निशान नहीं है। मुख्यमंत्रियों की कुर्सी कितनी अस्थिर है कि मुख्यमंत्री को अनुमान नहीं हो पाता कि उसे कब किस समय कुर्सी से नीचे ढकेल दिया जायेगा। परिणामस्वरूप मंत्री अपनी कुर्सी बचाने के फेर में दिन-रात दिल्ली का चक्कर लगाते हैं। राज्य की बिगड़ती स्थिति पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। केन्द्र की स्थिति और भी विचित्र है। जहाँ १९८० से अब तक शिक्षा विभाग में तीन बार और रेल, रसायन, जहाजरानी एवं परिवहन मन्त्रालयों में चार बार फेरबदल किया जा चुका है।

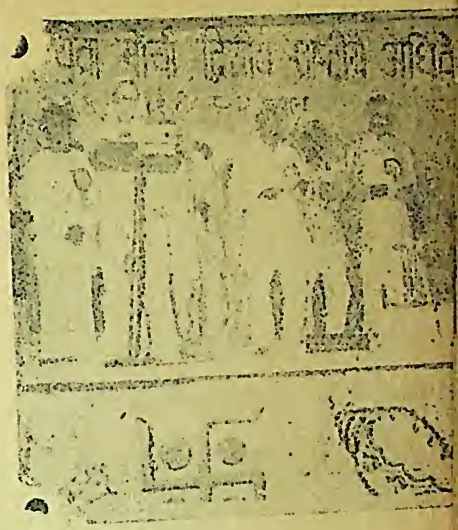

राजमाता सिंधिया युवकों को दहेज-विरोधी शपथ दिलाते हुए। श्री सत्यदेव सिंह (राष्ट्रीय-अधिवेशन शब्द के बीच में) चश्मा लगाये तथा अन्य लोग विभिन्न प्रांतों के शोर्चों के अधिकारी।

बिहार, उत्तर-प्रदेश और मध्य प्रदेश प्रान्तों के कई भूभागों पर अपराधियों एवं डाकुओं की समान्तर सरकारें चल रही हैं तथा प्रशासन को इन अराजक तत्वों से समझौता करना पड़ा है। लोकतांत्रिक व राजनीतिक मूल्यों में निरन्तर ह्रास होने के कारण गुण्डों और डकैतों को राजनीतिक प्रतिष्ठा मिली है। एक ओर उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने डाकुओं के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया, वहीं मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री

श्री अर्जुनसिंह ने डाकू तुष्टीकरण नीति अपना कर डाकुओं के आत्मसंमर्पण को अपनी कार्य कुशलता का मापदंड बनाया है।

हरिजनों एवं निर्बल वर्गों पर अत्याचार, वनवासियों का आर्थिक और शारीरिक शोषण, महिलाओं पर लगातार हो रहे अत्याचार, दहेज की बलिवेदी पर चीत्कार कर रही ललनाओं की करुण पुकार आदि हिंसक-दारुण देश को रसातल में पहुंचा देंगी।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी सभी लोकतांत्रिक मूल्यों एवं राजनीतिक सिद्धान्तों को योजनाबद्ध ढंग से नष्ट करके अधिनायकवाद की राह की ओर बढ़ रही हैं तथा वे परिवारवाद की स्थापना करना चाहती हैं। बिहार राज्य-प्रेस-विधेयक ला कर अभिव्यक्त की स्वतंत्रता पर सीधा आघात किया गया है।

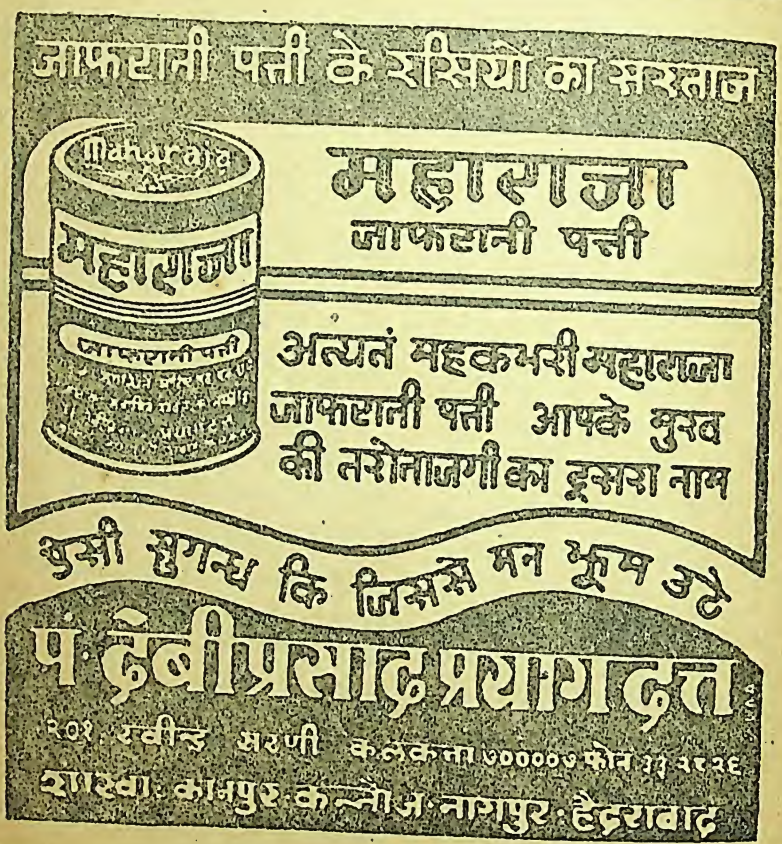
जाफरानी पत्ती के शौकीनों का अरमान
महाराजा
जाफरानी पत्ती
महाराजा
जाफरानी पत्ती
अत्यंत महकभरी महाराजा
जाफरानी पत्ती आपके मुख
की तरोताजगी का दूसरा नाम
ऐसी सुगन्ध कि जिससे मन झूम उठे
पं. देवीप्रसाद प्रयागदत्त
२०१, रवीन्द्र सरणी कलकत्ता ७०००७३ फोन ३१ ४२ २६
शाखा: कानपुर कन्नौज नागपुर हैदराबाद

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
दीनदयाल उपाध्याय भवन, जयपुर

किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं दिया जा रहा है। खेतिहर, भूमिहीन मजदूरों की हालत दिनों दिन गिरती जा रही है। महँगाई के मार से परेशान ग्रामीण युवक अपने घर-बार छोड़कर शहरों की ओर रोजगार की तलाश में सतत् दौड़ लगा रहा है, परन्तु वह उसके लिए मृग-मरीचिका सिद्ध हो रहा है। गाँवों में पेयजल, चिकित्सा, शिक्षा और बाढ़, सूखा जैसी दैवी आपदा से उत्पन्न विषमताओं के निराकरण की ओर सरकार आँख बन्द किये बैठी है।

औद्योगिक श्रमिकों की स्थिति भी बदतर है। औद्योगिक नीति गाँधीवादी सिद्धांतों से भटक कर विपथमें चली गयी है। इससे समाज का सबलवर्ग निरन्तर धनवान और कमजोर निरन्तर निर्धनता की गर्त में गिरता जा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के नियमों ने भारतीय आर्थिक नीति पर विपरीत प्रभाव डाला है। नयी आयात नीति उधार पर नियंत्रण, बहुराष्ट्रीय निगमों का देश में निवेश, आरक्षित वस्तुओं पर प्रतिबन्ध हटाने से रोजगार के अवसरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

निरुद्देश्य शिक्षा के परिणामस्वरूप देश में लगभग ६ करोड़ नवयुवक बेरोजगार हैं। नौकरियों में भी लगे ५० प्रतिशत लोग अपनी योग्यता से नीचे कार्य करने के लिए विवश है। देश के ५४३ बेरोजगार कार्यालय की सार्थकता मात्र

बेरोजगार पंजीकरण संस्था, सिद्ध हुई है। इन कार्यालयों में मात्र १० प्रतिशत पंजीकृत युवक ही रोजगार पाने में सफल होते हैं, जबकि प्रतिवर्ष ५० लाख नवयुवक रोजगार की तलाश में बेरोजगार कार्यालय के पंजीकरण-पंक्ति में खड़े हो जाते हैं।

इन विषम परिस्थितियों में जहाँ आज के नवयुवकों को इस दूषित व्यवस्था से सचेत होने की आवश्यकता है, वहीं उसे सामाजिक समता के लिए भी संघर्ष करना पड़ेगा। हमारा समाज आजादी के ३५ वर्ष बाद आज भी वर्ण जाति, जन्म, व्यवसाय और लिंग के आधार पर बंटा है। ऊँच नीच, अस्पृश्यता तथा उपेक्षा की दीवारें अपनी जड़े मजबूत कर रही हैं। गरीबी और अज्ञानता इन बुराइयों को समूल नष्ट करने की दिशा में बाधक तत्व है, जिसे नष्ट किये बगैर किसी प्रकार का सुधार संभव नहीं है। राजनीतिक आजादी की पुर्णता आर्थिक और सामाजिक आजादी प्राप्त करने में ही हो सकती है। ०

देश का बटवारा अनोखा फल

मैं १९४८ की गर्मियों में मंसूरी रहा। एक दिन शाम को घूमने निकले, तो परिवार के एक बालक की तबियत खराब थी। हमने टोकरी वाला एक पहाड़ी किशोर ले लिया। जहाँ परिवार ने चाय पीं, उसे भी पिलाई, जहाँ चाट खाई, उसे भी खिलाई, उसके साथ बात चीत भी आत्मीयतापूर्ण रही। लौटकर उसे बारह आने की जगह एक रुपया दिया। जाने के थोड़ी देर बाद वह एक प्रौढ़ पुरुष के साथ लौटा, वह उसका चाचा था। उसने कहा –'यह विधवा माँ का पुत्र है। कई जगह नौकरी पर लगाया, पर दूसरे दिन हटा दिया गया। यह कहता है, आपका परिवार बहुत अच्छा है, मैं आपके ही साथ रहूंगा।' हमें पूरे सीजन रहना था, उसे रख लिया। उसे नये कपड़े खरीदकर दिये, साबुन दिया। दूसरे दिन वह नहाया, तो देखा दाहिनी पिंडली पर बड़ा ऐक्जिमा। उसी के कारण उसे हटाया होगा दूसरों ने। डाक्टर से इलाज कराया, ठीक हो गया।

एक दिन मैं बाल कटाने गया, तो वह भी साथ चला गया। दुकान के शीशों को भौंचक देखता रहा। उसके लिए तो यह इन्द्र महल था। अचानक उसने एक नाई के सामने पूरे सिर पर हाथ फेर कर पूछा – 'कितना लेता है?' मतलब था पूरे बाल। उत्तर मिला —'आठ आने।' तब उसने कान के पास से पीछे गुद्दी तक उंगली फेर कर पूछा?' 'और तन्नक-तन्नक?' अर्थ था-:'और थोड़े-थोड़े?' उसका मतलब था- अंग्रेजी बाल काटने के क्या लेता है? उत्तर मिला —'एक रुपया।' वह कुर्सी से उछल पड़ा -'हाय बाप, यह कैसा शहर, पूरे बाल काटने के आठ आने और तन्नक तन्नक का एक रुपया?" हम सब उसके भोलेपन पर हंस पड़े।

स्वागत-अधिकारी का उत्तर था—"अण्डा लन्दन में डाक्टर के लिखने पर ही किसी को मिलता है। एक गरीब आदमी को डाक्टर के निर्देश पर दो दिन चार-चार अण्डे मिले। उसने किसी लार्ड को उन्हें भारी कीमत लेकर बेच दिया।

चरित्र चिन्तन

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
जी. मू.

पं० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

जब हम घर लौटे, तो वह भी जिद कर साथ आ गया। घर आते ही मैंने अपना मरेली पंखा चलाया, तो उसकी मीठी सांय-सांय को सुनकर वह बोला — 'बाबू जी, पानी!' बड़ी देर में समझा कि इसने पहाड़ी झरनों की सांय-सांय सुनी है। यह समझता है कि पंखे में कहीं पानी बह रहा है। कई बार बन्द किया, चलाया, तब वह समझा कि पँखे की आवाज है, पानी की नहीं। १५ दिन बाद ही उसने अंग्रेजी बाल कटा लिये। तीन महीने के बाद वह एक दिन चुपचाप कहीं चला गया और फिर नहीं लौटा। कोई दो महीने बाद रास्ते में मिला। शराब पिये हुए था। कहीं होटल में काम करता था। उसे क्या कहता। मन दुःख से भर गया। नाम था महीसुर।

मैं कुछ दिन बाद पं० जवाहरलालजी से मिला, तो महीसुर की बात उन्हें सुनाई। आरम्भ में खूब हंसे, अन्त में गम्भीर हो गये। आजादी की लड़ाई के पूरे युग का साथ था। सब तरह की बातें हो जाती थीं। मैंने कहा — "बहुत सोचकर महीसुर की बात आपको सुनाई है। महीसुर भारत की जनता का श्रेष्ठ प्रतिनिधि है। सौभाग्य की बात है कि आपको ऐसी भली और भोली जनता मिली है कि आप अपने शासन के प्रचार-प्रशिक्षण को व्यवस्थित कर उसे जो चाहें पढ़ा सकते हैं, पर यह खतरा भी है कि देश के कर्णधार उपेक्षा करें, ध्यान न दें, समय खो दें, तो कोई दूसरा जो चाहे, उसे पढ़ा ले जाए। इसलिए भारत में भीड़-नियंत्रण की एक नई कला, नई व्यवस्था का आविष्कार होना चाहिए; क्योंकि भीड़ बन जाना और फिर भड़क उठना हमारा स्वभाव हो गया, देश का बटवारा भड़की हुई भीड़ का ही फल है"। जवाहरलाल जी सहमत थे, जैसे कि हर सचाई से सहमत हो जाते थे, पर यह सचाई भी एक अच्छी बात बनकर ही रह गई, जैसे हमेशा रह जाती थी।

१९४६ में भारतीय अन्तरिम सरकार के श्रम मन्त्री बन्धुवर जगजीवनराम एक श्रम सम्मेलन के सिलसिले में लन्दन गये। १९३९-४५ के दूसरे महायुद्ध के कारण लन्दन टूटा-फूटा पड़ा था, १०-१० हजार जर्मन हवाई जहाजों ने उस पर बम्बार्डमेंट किया था। सब मुर्गी खाने टूट गये थे, अंडा दुर्लभ था। जगजीवनराम जी नाश्ते में अंडा लेते हैं। उनका स्वागत-अधिकारी तीन दिन तक प्रयत्न करने पर भी उनके लिए अण्डा नहीं जुटा पाया। जगजीवनराम जी ने उससे पूछा —'अण्डे की इस दुर्लभता में अण्डे का ब्लैक जरूर होता होगा ?' स्वागत अधिकारी का उत्तर था —"अण्डा लन्दन में डाक्टर के लिखने पर ही किसी को मिलता है। एक गरीब आदमी को डाक्टर के निर्देश पर दो दिन चार-चार अण्डे मिले। उसने किसी लार्ड को उन्हें भारी कीमत लेकर बेच दिया। मुहल्ले वालों को पता चल गया। उन्होंने उसे इतना धिक्कारा कि उसे रहने के लिए दूसरे मुहल्ले में जाना पड़ा। बस, फिर कभी अण्डे का ब्लैक नहीं हुआ।

आत्मानुशासन की बात

दूसरा अनुभव इससे भी मार्मिक है। जगजीवनराम जी को लंदन में इधर-उधर आने-जाने के लिए सरकार ने एक टैक्सी दी। पैट्रोल पर कन्ट्रोल था। उन्हें एक कूपन बुक दी गई कि वे किसी भी पैट्रोल पम्प पर कूपन देकर जितना चाहें पैट्रोल

ले सकते हैं। हिन्दुस्तान लौटने के समय उनके पास पांच कूपन बाकी थे।

उन्होंने उस टैक्सी ड्राईवर से कहा 'लो ये तुम ले लो।'

ड्राइवर तीखा हो उठा-'मुझे सरकार से टैक्सी के लिए जितना पैट्रोल मिलता है, मैं उससे ज्यादा कसे खर्च कर सकता हूं ? आप इन्हें स्वागत-अधिकारी को लौटाइये !!' और उसने बड़ी करारी चोट की-'क्या आपके देश में नागरिक सरकारी नियमों का पालन नहीं करते ?' लन्दन से लौटकर जब ये संस्मरण उन्होंने मुझे सुनाये, तो उनका मन अंग्रेजों के प्रति प्रशंसा से भाव-विभोर था। बोले—"भाई जी, हमारे देश में भी ऐसा ही आत्मानुशासन कायम हो तो काम चलेगा।'

अंतिम संदेश

बहुत पुरानी कहानी है। चीन देश में कन्फ्यूशियस नाम के एक सुप्रसिद्ध महात्मा और दार्शनिक हुए हैं। वे बड़े योग्य, अनुभवी और विद्वान थे। धर्म और उपदेश की अनेक बातें इस प्रकार सहज भाव से समझा दिया करते थे कि किसी के मन में शङ्का के लिए गुंजाइश नहीं रह जाती थी।

जब वे मृत्यु के निकट थे और प्राण निकलने में कुछ क्षण ही शेष थे उन्होंने अपने शिष्यों को पास बुलाकर अपने जीवन का अन्तिम सन्देश देने के उद्देश्य से धीरे-धीरे कहा—"मेरे प्यारे शिष्यो, जरा मेरे मुँह के भीतर झांककर देखो तो कि जीभ है या नहीं?"

एक शिष्य ने मुंह के अन्दर झाँककर देखा और उत्तर दिया "गुरुदेव, जीभ तो है!'

इसके बाद उन्होंने एक अन्य शिष्य की ओर संकेत करते हुए दूसरा प्रश्न पूछा —'मेरे मुंह में दाँत हैं या नहीं?"

"गुरुदेव, आपके मुंह में दाँत एक भी नहीं है" दूसरे शिष्य ने उत्तर दिया।

महात्मा कन्फ्यूशियस ने आगे पूछा- 'पहले दाँत का जन्म हुआ या जीभ का?'

"गुरुदेव, जीभ का।" इस बार सब शिष्यों ने एक साथ उत्तर दिया।

"ठीक!" कहकर महात्मा कन्फ्यूशियस ने अपने शिष्यों से पूछा, "शिष्यो, जीभ जो दाँत से उम्र में बड़ी है, अब भी मौजूद है, किन्तु दाँत जो जीभ से उम्र में छोटे हैं नष्ट क्यों हो गये?"

इस प्रश्न को सुनकर सब शिष्य एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। किसी से भी उत्तर देते न बना। तब गुरुदेव ने उन्हें समझाया — "सुनो, जीभ सरल और कोमल है, इसीसे अभी तक मौजूद है। दाँत क्रूर और कठोर हैं, टेढ़े-मेढ़े हैं, इसी से शीघ्र नष्ट हो गये।"

और उन्होंने अपनी आँखें सदा के लिए मंद लीं।

सिख हिन्दू हैं या नहीं ? इस प्रश्न पर मैं किसी बहस में पड़ना नहीं चाहता। किसी से कोई बात जबर्दस्ती स्वीकार करायी नहीं जा सकती परन्तु इस बात से कोई कैसे इनकार कर सकता है कि, गुरुओं ने हिन्दू-धर्म की ही रक्षा के लिये धार्मिक और सैनिक स्तर पर संघर्ष किया था। किसी भी गुरु ने कभी नहीं कहा कि वह हिन्दू नहीं। गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं कहा था कि, उनके पिता गुरु तेगबहादुरजी ने 'तिलक और जनेऊ' की रक्षा के लिये अपने प्राणों का बलिदान किया था।' उन्होंने स्वयं कहा कि, 'वे हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये युद्ध कर रहे हैं।'

पांच सतियां

बहुत पुरानी घटना तो नहीं सरदार खुशवन्तसिंह ने अप पुस्तक 'Sun Set on the Sik Empire' में लिखा है कि, महाराज रणजीत सिंह और उनकी चिता पर होने वाली उनकी पांच रानियों अस्थियां हरिद्वार में गंगा-जल में प्र के लिये भेजी गयी थीं। तेरह दिन क्रियाकर्म भी किया गया। २ सितम्ब १८३९ को जब राजकुमार खड़गसि को गद्दी पर बिठाया गया तो शास्त्रों लिखित रीति के अनुसार हरिद्वार गंगा-जल मंगवाया गया और सात दू पवित्र नदियों का जल भी मंगवाया गय खड़गसिंह ने इस जल में स्नान किय दरबार में गद्दी पर बैठने पर पुरोहित नव-ग्रह की पूजा करायी और राजकु के मस्तक पर केसर का तिलक लगाय इसके बाद भाई रूपा और लाहौर द वार के तीन प्रमुख ग्रंथियों—भाईरामसि

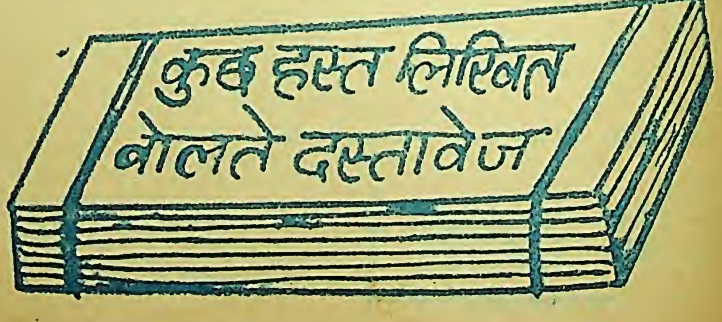

- सिख गुरुओं की गंगा-यात्रा
- गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह के पुरोहित
- देवी से साक्षात करने के लिये यज्ञ

भाई गोविन्दराम और भाई गुरुमुखसिंह ने केसर के पानी से तिलक लगाया।

जब महाराजा दिलीपसिंह गद्दी पर बैठे तो उनकी माता ने अपने ब्राह्मण कुल पुरोहित को बुलाया जिसने तिलक लगाया। इसी ब्राह्मण ने अंग्रेज के विरुद्ध विद्रोह में भाग लिया था।

पंथ के अधिकार—एक प्राचीन रीति

सरदार खुशवन्त सिंह ने इसी पुस्तक के पृष्ठ ४५ पर फुटनोट में लिखा है कि, गुरु गोविन्द सिंह ने पंथ को शासन का अधिकार दिया था। पहले पांच प्यारों को दीक्षा देने के बाद उनसे कहा था कि, वह उन्हें पंथ में प्रवेश के लिये दीक्षा दें। सरदारजी ने लिखा है कि:

'पंजाब में यह कोई नयी बात नहीं थी। योद्धयों, अर्जनुयों और दूसरे प्रजातंत्रों के सिक्कों पर समस्त कौम के लिये विजय की प्रार्थना की गयी है। जैसे कि 'जय योद्धये गणास्यु।'

अर्थात् गुरु गोविन्दसिंह ने पंजाब के प्राचीन हिन्दू शासकों की परम्परा को अपनाकर जीवित किया और 'पंथ की फतह' का नारा लगाया।

चण्डी महायज्ञ—एक परम्परा

भाई केसरसिंह छिब्बर ने अपनी पुस्तक 'बंसावलीनामा दसां पादशाहियां का' में, भाई सन्तोखसिंह ने 'श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ' में, गुरु गोविन्दसिंहजी के दरबारी कवि सेनापति ने अपनी पुस्तक 'श्री गुरु शोभा' में और भाई सुखासिंह ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गुरु विलास' में लिखा है कि मुगलों के विरुद्ध युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये गुरु गोविन्दसिंहजी ने चण्डी महायज्ञ कराया था और देवी ने प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और तलवार दी। इस बयान पर गत ६०-७० वर्षों में काफी वाद-विवाद रहा और कई सिख नेताओं ने कहा कि, ऐसी कोई घटना नहीं हुई। परन्तु, इस बात से तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि, गुरुजी महाराज ने तलवार को भगवती अर्थात् शक्ति की प्रतीक करार दे कर अरदास को इस तरह आरम्भ किया कि —

'प्रथम भगवति सिमरिये'

इससे पहले विदेशियों के हमलों का मुका-

वला करने के लिये ब्राह्मणों ने आबूपर्वत पर इसी तरह का यज्ञ करके 'अगनि कुल राजपूत' को जन्म दिया था और क्षात्र-धर्म की परम्पराओं को जीवित किया था। यह राजपूत कौन थे ? इनमें ब्राह्मण भी थे और वह शूर वीर भी थे, जिन्हें क्षत्रियों के अंग नहीं बल्कि विदेशी समझा जाता था। गुरु गोविन्दसिंहजी ने भी इसी तरह महायज्ञ कराया और ऊंच-नीच का भेद-भाव खत्म करके 'खालसा' अर्थात 'शुद्ध समाज' की नींव रखी। इस तरह उन लोगों को जिन्हें क्षत्री नहीं समझा जाता था, अपना स्तर ऊंचा करने और शत्रुओं का मुकाबला करने का अवसर मिला।

निश्चय ही अपनी जीत करूं
जब आद की औघ निधान बने
तब ही अति रण में जूझ मरूं

तीर्थ-यात्रा और पुरोहित

सच्चे हिन्दू अवश्य ही अमृतसर, लखतारन, केशगढ़, आनन्दपुर साहिब, पटना साहिब और नान्देड़ साहिब आदि स्थानों को अपने भी तीर्थ स्थान समझते हैं। कीरतपुर के साथ बहने वाली नदी उनके लिये भी पवित्र है। सिख इन पवित्र स्थानों की यात्रा करते हैं और इनके सरोवरों में स्नान करते हैं। हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, प्रयाग आदि भी इसी तरह पवित्र तीर्थ स्थान हैं। यह कहना ठीक नहीं कि सिख-पंथ में तीर्थ-यात्रा के

अंग्रेजों ने तो एक व्यक्ति को "सर" की उपाधि देकर दरबार साहब में गुरु गद्दी पर भी बिठाने का षड्यंत्र रचाया था, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। उसके एजेन्टों ने जलियांवाला बाग में सैकड़ों भारतीयों के घातक जनरल डायर को दरबार साहिब में 'सिरोपा' दे कर घोषणा कर दी थी कि "जनरल 'सिख बन गया है।"

गुरुजी ने दावा किया कि महाराज दशरथ और महाराज राम उनके पूर्वज थे। और वह सूर्यवंशी क्षत्री हैं। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश गीता में दिया था उसी को एक तरह से दोहराते हुए गुरुजी ने भगवान शिव से प्रार्थना की:—

'देहि शिवा वर मोहि यहै,
शुभ कर्मन से कबहू न टरौं
जब जाय लड़ूँ अरि से रण में

लिये कोई स्थान नहीं।

गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर और पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के डॉ० गण्डासिंह, डॉ० फौजासिंह और प्रोफेसर मदनजीत कौर ने अपनी पुस्तकों और लेखों में हरिद्वार और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थस्थानों के पण्डों की हस्तलिखित बहियों में गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह की हस्तलिखित स्मृतियों के हवाले दिये हैं।

पंजाबी विश्वविद्यालय ने 'हुक्मनामे' शीर्षक से डॉ० गण्डासिंह की एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें गुरु साहिबान के इन हस्तलिखित दस्तावेजों के फोटो दिये गये हैं। डॉ० फौजासिंह ने गुरु तेगबहादुर के जीवन पर अपनी पुस्तक 'Guru Tegh Bahadur : Martyr and Teacher' में इन दस्तावेजों के हवाले दिये हैं। यह पुस्तक पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला ने १९७५ में प्रकाशित की थी। गुरुनानक विश्वविद्यालय अमृतसर की प्रोफेसर मदनजीत कौर ने अपने कई लेखों में इन दस्तावेजों के हवाले देकर स्वयं भी टीका-टिप्पणी की है। इन दस्तावेजों से बहुत से भ्रम दूर करने में सहायता मिलती है।

प्रोफेसर मदनजीत कौर ने डॉ० गण्डासिंह की पुस्तक 'हुक्मनामे' के हवाले से लिखा है कि, 'गुरु गोविन्दसिंह फाल्गुन सुदी' २, संवत १७६१ में कुरुक्षेत्र के तीर्थ स्थान को गये। उन्होंने अपने कुल पुरोहित पण्डित मनीराम को एक हुक्मनामा लिखकर दिया। यह हुक्मनामा गुरुमुखी लिपि में निम्नलिखित है—

एक ओंकार जी

'सिरी वहि गुरु जी दी आज्ञा हैं। सरबत नूं मेरा हुकम है। जो सिख वाहगुरु का होवे सो मनीराम पुरोहित कुलखेतर का इस वो मनण। मेरी खुशी है दूओ गुरु जी का पुरोहित है सो सरबत का

पुरोहित है। जो सिख मनेगा सो निहाल होवेगा जी। संमत १७६२ मिती फागुन शुदी दूजा २। सतरां ६।'

अनुवाद:—

एक ओंकार वाहि गुरुजी

—श्री वाहगुरुजी (अर्थात परमात्मा) का यह आदेश है। तमाम संगत के लिये मेरा यह हुक्म है। वाहगुरुजी के तमाम सिख कुरुक्षेत्र के कुल पुरोहित पण्डित मनीराम का सम्मान करें। मुझे यह घोषणा करते हुए प्रसन्नता होती है कि यह गुरुजी का पुरोहित है इसलिये तमाम संगत का पुरोहित है। जो सिख इसका सम्मान करेगा उसे आशीर्वाद मिलेगा। संवत १७६१, फाल्गुन सुदी दूज, २, छ लकीरें।'

प्रोफेसर मदनजीत कौर ने लिखा है कि, इस हुक्मनामे में गुरु

(शेष पृष्ठ १०७ पर)

उन दिन मथुरा में

क० मा० मुंशी

रंगरेज की दूकान के सामने एकत्र जन समुदाय त्रिवक्रा कुब्जा की विकृतियों के सौम्य रूपान्तर को परम आश्चर्य से देख रहा था। इतने में कुछ दूरी पर भांति-भांति की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगीं। घोड़ों की टाप, लोगों पर पड़ते कोड़ों की मार और घायल व्यक्तियों के आर्त्तनाद से वातावरण गूंज उठा। कोई घुड़सवार बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा था और अपने मार्ग में आने वाले सभी लोगों को कोड़े लगाकर दूर हटा रहा था।

बलराम शीघ्र उत्तेजित नहीं होता था, परन्तु एक बार क्रोधाग्नि भड़कने पर यह अल्पभाषी बालक रौद्र-रूप धारण कर लेता था। उसने लपक कर घोड़े की लगाम पकड़ी और तेजी से आगे बढ़ते हुए वेगवान घोड़े को अपने हाथों पर रोक लिया। घुड़सवार ने क्रोधित होकर कोड़ा चलाया, परन्तु वह उसे वापस उठा सके, इसके पहले तो कोड़ा बलराम के हाथ में था और घुड़सवार जमीन पर!

मथुरा की जनता ने सत्ताधीशों का इस प्रकार प्रतिकार होते कभी देखा नहीं था। वे लोग इस पराक्रमी बालक को आश्चर्य-विमुग्ध हो निहारने लगे और बलराम की जय-जयकार करने लगे। बलराम ऊँचे कद और डीलडौल का था, परन्तु उसमें इतनी प्रचंड शक्ति होगी, यह किसी को खयाल भी नहीं हो सकता था। उसने न केवल वेगवान अश्व को रोका, बल्कि उसे पीछे भी धकेल दिया। अश्व ने अपना सारा जोर आगे के दो पैरों पर लगाकर आगे बढ़ने की कोशिश की किन्तु वह व्यर्थ रही। बलराम उसे पीछे धकेलता-धकेलता, पीछे आ रहे रथ रथ में जुते बैलों तक ले गया।

पिछले पैरों पर आ रहे अश्व को देखकर तथा लोगों के कोलाहल से रथ के बैल भड़क उठे। रथ में बैठी हुई दो स्त्रियाँ चीख पड़ीं। उनमें से एक तो प्रायः पचीस वर्ष की सुन्दर स्त्री थी; दूसरी सोलह वर्ष की लावण्यमयी बालिका। अश्वारूढ़ सवार कोई राजकुमार लगता था। अपने वदन पर लगी धूल झाड़कर वह उठ खड़ा हुआ और रथ के पीछे आ रहे दो सवारों को पुका-

एक पौराणिक कथा

रने लगा। परन्तु रथ के बीच में आ जाने से रास्ता बन्द हो गया था। अश्वारोही राजकुमार बलराम की ओर बढ़ा। इतने में कृष्ण ने उसका गला धर दबाया। राजकुमार गुस्से से लाल हो रहा था। पीछे मुड़कर वह चिल्लाया, 'मूर्ख! जानता है, मैं कौन हूं! विदर्भ का राजकुमार- रुक्मी—तेरे स्वामी कंस का मेहमान!'

'जब तूने अपना परिचय स्वयं ही दिया है, तो क्यों नहीं पहचानूंगा?' कृष्ण ने अविचलित स्वर में कहा, 'पीछे जा! तेरे साथ जो स्त्रियाँ हैं, उनको संभाल और लोगों को हैरान करना बन्द कर!'

'दुष्ट!' रुक्मी ने म्यान से तलवार खींचते हुए कहा। परन्तु तलवार म्यान में से निकले इससे पहले ही कृष्ण ने उसे

धराशायी कर दिया। रथ की दिशा में धकेलते हुए, कृष्ण ने उसे उठाकर अनाज के बोरे की तरह रथ में फेंक दिया। अन्दर बैठी हुई दोनों स्त्रियाँ आवेश में आकर चिल्ला रही थीं। उनमें से उस रमणीय कन्या ने कहा !, 'दुष्ट ! मेरे भाई को छोड़ !'

कृष्ण ने अपनी वही सुविख्यात हृदयहारी मुस्कान बिखेरते हुए कहा, यह आपका भाई है ? राजकुमारी, आपको चाहिए कि इसे राजाओं के योग्य व्यवहार करना सिखायें !'

'ओह ! क्या दशा कर दी है तुमने मेरे भाई की !' राजकुमारी रो रही थी।

परन्तु कृष्ण की आँखों में एक अजीब मस्ती और मोहिनी थी। 'चिन्ता न करो, सुकन्ये !' उसने कहा, 'आपके भाई का केवल घमन्ड ही टूटा है और सब सही-सलामत है। अब यह विवेक से काम लेना सीखेगा—आपके प्रति भी अधिक विनयशील होगा।'

यह कहकर कृष्ण हंस पड़ा। कृष्ण की जादूभरी चितवन किसे प्रभावित नहीं करती ? विदर्भ की इस राजकन्या की आँखों में तो अश्रु थे पर होठों पर एक हल्की-सी मुसकान आये बिना नहीं रही।

त्रिवक्रा अब सीधी चल सकती थी। उसके हर्ष का पार नहीं था। उसके जीवन का स्वप्न आज परिपूर्ण था। उसके हृदय में उमड़ती आनंद और आभार की भावना छिपी नहीं रही। अपने बगल में खड़े व्यक्ति के कान में उसने कहा, "यही तो है देवकी का आठवाँ पुत्र ! आखिर नारद की भविष्यवाणी सच ठहरी !"

इसके बाद कृष्ण बैलों के पास गया। वे अब भी भड़के हुए थे और भागने का प्रयत्न कर रहे थे। कृष्ण मानवों को वश में करने के साथ-साथ पशुओं को वश में करने की कला भी जानता था। वह निर्भय होकर आगे बढ़ा और स्नेह से बैलों को पुचकारा।

कुछ मीठे शब्द, कुछ हल्की-सी थप-थपाहट—और बैल शांत हो गये। कृष्ण बैलों के गले पर बड़े प्रेम से हाथ फेरने लगा। बैलों का भय दूर हुआ। थोड़ी देर बाद उन्हें रास्ते पर यथास्थिति खड़ा कर रास, रथ चलाने वाले की ओर फेंक कर कहा, 'ध्यान रखना इनकी बड़ी सुन्दर जोड़ी है!' फिर उसने राजकुमारी की ओर देखकर अपनी मोहक मुसकान बिखेरी। रथ रवाना हुआ तो उसके पीछे-पीछे रुक्मी भी नम्र होकर चला गया।

विराट् जन मेदनी इन दो भाइयों का पराक्रम देखकर आश्चर्यचकित रह गयी थी और अपूर्व आदर से उन्हें निहार रही थी। उन्होंने त्रिवक्रा की विकृतियाँ दूर कीं; वेगवान अश्व को खिलौने की तरह उठा लिया; कंस के मेहमान को धराशायी किया और बोरे की तरह उठाकर फेंक दिया; भड़के हुए बैलों को शांत किया। त्रिवक्रा अब सीधी चल सकती थी। उसके हर्ष का पार नहीं था। उसके जीवन का स्वप्न आज परिपूर्ण था। उसके हृदय में उमड़ती आनन्द और आभार की भावना छिपी नहीं रही। अपने बगल में खड़े व्यक्ति के कान में उसने कहा, 'यही तो है देवकी का आठवाँ पुत्र! आखिर नारद की भविष्यवाणी सच ठहरी!' ०००

शब्दमूर्त्ति योगी

स्वामी योगव्रयानन्दजी संन्यासी नहीं थे। इन्होंने अपना सारा साधनामय जीवन गृहस्थ रहकर ही बिताया था। कर्म, ज्ञान तथा भक्ति के गूढ तत्वों को इन्होंने इसी आश्रम में आयत्त किया था। योगव्रयानन्द के नाम से उनकी प्रसिद्धि का यही रहस्य था। इस लोक प्रदत्त उपाधि के साथ इनकी साधक देह की संज्ञा शिवराम किंकर जुड़ी रहती है। यह नाम इनका अपना रखा हुआ था अवश्य गुरुदेव श्री शिवराम किंकर की अनुमति से। इसमें इनकी अगाध गुरुनिष्ठा निहित थी

जिन्हें महाशून्य से आये योगी ने पढ़ाया

गुरुदेव संन्यासी थे-उनके सर्वतोभावेन अनुगत होने के कारण तद्रूपता प्राप्त कर ये भी स्वामी हो गये।

मेरे आध्यात्मिक जीवन के विकास में इनका अपूर्व योगदान रहा है। आर्यशास्त्र प्रदीप को पढ़कर किस प्रकार मेरे मन में इनके दर्शन की अभिलाषा जागी और कितने वर्षों की निरन्तर खोज के बाद इनके चरणों तक मैं पहुंच सका इसका वृतान्त ऊपर दिया जा चुका है। इनके विषय में जितनी बातें उल्लेख योग्य हैं, उनमें से कुछ नीचे दे रहा हूं।

शिवरामकिंकर महाशय का जन्म हावड़ा जिले के वाली ग्राम में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया रविवार १२६६ बंगाब्द (१८६० ई०) में हुआ था। यह स्थान बराह नगर के पश्चिम गंगातीर पर है। ये श्री रामजीवन सान्याल और विश्वेश्वरी देवी के पुत्रों-शशिभूषण, देवेन्द्रनाथ और राजेन्द्रनाथ में सबसे बड़े थे। इनकी पदमावती और भुवनमोहनी दो बहनें भी थीं। इनके तीसरे भाई देवेन्द्रनाथ ने बाल्यावस्था में ही संन्यास ग्रहण कर लिया था और पीछे ब्रह्मचारी रामेश्वरानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

पिता ने विद्यारम्भ संस्कार के पश्चात् स्थानीय प्रारम्भिक पाठशाला में इन्हें पढ़ने के लिए भेजा। सालभर स्कूल आते-जाते रहे। प्रथम भाग की क्रमशः ३० पुस्तकें नष्ट करके भी ये वर्ण-परिचय न प्राप्त कर सके। एक दिन पिता ने पास बुलाकर इनसे 'अनशन' शब्द लिखने को

महामहोपाध्याय
डॉ० गोपीनाथ कविराज

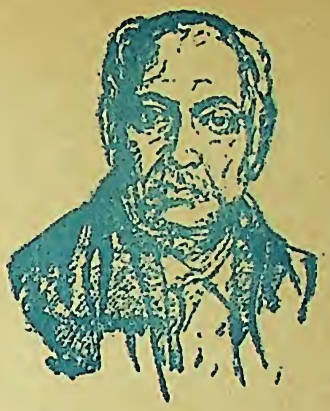

विद्वान लेखक

कहा। ये मूक होकर बैठ गये। पुत्र की इस मूर्खता पर क्रुद्ध होकर उन्होंने एक थप्पड़ मारा। शशिभूषण ग्लानि से गड़ गये। इनकी आंखों से प्रवाहित अश्रुधारा के साथ सारी जड़ता बह गयी। इनके ज्ञान नेत्र खुल गये। पढ़ाई में वे मन लगाने लगे। स्कूल न जाकर घर पर ही अध्ययन करने लगे। थोड़े ही दिनों में इन्होंने बंगला तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब ये १२ वर्ष के थे बाली ग्राम में शिवराम नाम के एक संन्यासी आये। इनकी अद्भुत प्रतिभा और संस्कार सम्पन्न व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने दीक्षा दे दी। कुछ दिन वहां निवास करके इन्हें साधन-पथ का निर्देश किया, फिर चले गये।

जिन्हें महाशून्य से आये योगी ने पढ़ाया

विवाह के उपरान्त गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुये एक दिन इनके घर में कोई बीमार पड़ा। ये उसे लेकर डाक्टर के पास गये। डाक्टर ने फीस और दवा के रुपये मांगे। इनके पास एक पैसा भी न था। उसने दवा नहीं दी-रोगी को देखा भी नहीं। घर लौटने पर उसकी मृत्यु हो गयी। इस घटना का इनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने उसी समय डाक्टरी सीखने का संकल्प किया। आयुर्वेद की एक पुस्तक कहीं से ले आये और उसे देखकर जड़ी बूटी एकत्र कर घर पर ही दवा बनाने लगे। इस काम में इनका मन इतना लग गया कि रात दिन आयुर्वेद ग्रन्थों के अध्ययन और दवा बनाने में व्यस्त रहने लगे। इसके फलस्वरूप कुछ ही समय में ये आयुर्वेद निष्णात हो गये। चारों ओर एक कुशल वैद्य के रूप में इनकी प्रसिद्धि हो गयी। असाध्य रोगों से पीड़ित आर्त लोग उन्हें सदैव घेरे रहते थे। संयोगवश एक दिन जिस डाक्टर ने इनका तिरस्कार किया था, वही अपने मृत्यु शय्या पर पड़े हुये पुत्र की जीवन-रक्षा के लिये इन्हें बुलाने के लिए आया। इन्होंने जाकर उसके पुत्र को देखा। निःशुल्क दवा दी। वह अच्छा हो गया। इसके बाद इन्होंने बायोकेमिक होमियोपैथी तथा एलोपैथी चिकित्सा पद्धतियों का भी अनुशीलन किया शल्य चिकित्सा सीखने के लिये छः मील पैदल चलकर ये

शब्दमुक्तयोगी

स्वामी योगव्रयानन्दजी संन्यासी नहीं थे। इन्होंने अपना सारा साधनामय जीवन गृहस्थ रहकर ही बिताया था। कर्म, ज्ञान तथा भक्ति के गूढ तत्वों को इन्होंने इसी आश्रम में आयत्त किया था। योगव्रयानन्द के नाम से उनकी प्रसिद्धि का यही रहस्य था। इस लोक प्रदत्त उपाधि के साथ इनकी साधक देह की संज्ञा शिवराम किंकर जुड़ी रहती है। यह नाम इनका अपना रखा हुआ था अवश्य गुरुदेव श्री शिवराम किंकर की अनुमति से। इसमें इनकी अगाध गुरुनिष्ठा निहित थी

जिन्हें महाशून्य से आये योगी ने पढ़ाया

गुरुदेव संन्यासी थे-उनके सर्वतोभावेन अनुगत होने के कारण तद्रूपता प्राप्त कर ये भी स्वामी हो गये।

मेरे आध्यात्मिक जीवन के विकास में इनका अपूर्व योगदान रहा है। आर्यशास्त्र प्रदीप को पढ़कर किस प्रकार मेरे मन में इनके दर्शन की अभिलाषा जागी और कितने वर्षों की निरन्तर खोज के बाद इनके चरणों तक मैं पहुंच सका इसका वृतान्त ऊपर दिया जा चुका है। इनके विषय में जितनी बातें उल्लेख योग्य हैं, उनमें से कुछ नीचे दे रहा हूं।

शिवरामकिंकर महाशय का जन्म हावड़ा जिले के बाली ग्राम में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया रविवार १२६६ बंगाब्द (१८६० ई०) में हुआ था। यह स्थान बराह नगर के पश्चिम गंगातीर पर है। ये श्री रामजीवन सान्याल और विश्वेश्वरी देवी के पुत्रों-शशिभूषण, देवेन्द्रनाथ और राजेन्द्रनाथ में सबसे बड़े थे। इनकी पदमावती और भुवनमोहनी दो बहनें भी थीं। इनके तीसरे भाई देवेन्द्रनाथ ने बाल्यावस्था में ही संन्यास ग्रहण कर लिया था और पीछे ब्रह्मचारी रामेश्वरानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

पिता ने विद्यारम्भ संस्कार के पश्चात् स्थानीय प्रारम्भिक पाठशाला में इन्हें पढ़ने के लिए भेजा। सालभर स्कूल आते-जाते रहे। प्रथम भाग की क्रमशः ३० पुस्तकें नष्ट करके भी ये वर्ण-परिचय न प्राप्त कर सके। एक दिन पिता ने पास बुलाकर इनसे 'अनशन' शब्द लिखने को

महामहोपाध्याय
डॉ० गोपीनाथ कविराज

विद्वान लेखक

कहा। ये मूक होकर बैठ गये। पुत्र की इस मूर्खता पर क्रुद्ध होकर उन्होंने एक थप्पड़ मारा। शशिभूषण ग्लानि से गड़ गये। इनकी आंखों से प्रवाहित अश्रुधारा के साथ सारी जड़ता बह गयी। इनके ज्ञान नेत्र खुल गये। पढ़ाई में वे मन लगाने लगे। स्कूल न जाकर घर पर ही अध्ययन करने लगे। थोड़े ही दिनों में इन्होंने बंगला तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब ये १२ वर्ष के थे बाली ग्राम में शिवराम नाम के एक संन्यासी आये। इनकी अद्भुत प्रतिभा और संस्कार सम्पन्न व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने दीक्षा दे दी। कुछ दिन वहां निवास करके इन्हें साधन-पथ का निर्देश किया, फिर चले गये।

जिन्हें महाशून्य से आये योगी ने पढ़ाया

विवाह के उपरान्त गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुये एक दिन इनके घर में कोई बीमार पड़ा। ये उसे लेकर डाक्टर के पास गये। डाक्टर ने फीस और दवा के रुपये मांगे। इनके पास एक पैसा भी न था। उसने दवा नहीं दी-रोगी को देखा भी नहीं। घर लौटने पर उसकी मृत्यु हो गयी। इस घटना का इनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने उसी समय डाक्टरी सीखने का संकल्प किया। आयुर्वेद की एक पुस्तक कहीं से ले आये और उसे देखकर जड़ी बूटी एकत्र कर घर पर ही दवा बनाने लगे। इस काम में इनका मन इतना लग गया कि रात दिन आयुर्वेद ग्रन्थों के अध्ययन और दवा बनाने में व्यस्त रहने लगे। इसके फलस्वरूप कुछ ही समय में ये आयुर्वेद निष्णात हो गये। चारों ओर एक कुशल वैद्य के रूप में इनकी प्रसिद्धि हो गयी। असाध्य रोगों से पीड़ित आर्त लोग उन्हें सदैव घेरे रहते थे। संयोगवश एक दिन जिस डाक्टर ने इनका तिरस्कार किया था, वही अपने मृत्यु शय्या पर पड़े हुये पुत्र की जीवन-रक्षा के लिये इन्हें बुलाने के लिए आया। इन्होंने जाकर उसके पुत्र को देखा। निःशुल्क दवा दी। वह अच्छा हो गया। इसके बाद इन्होंने बायोकेमिक होमियोपैथी तथा एलोपैथी चिकित्सा पद्धतियों का भी अनुशीलन किया शल्य चिकित्सा सीखने के लिये छः मील पैदल चलकर ये

नित्य कलकत्ता के कैम्पवेल हास्पिटल जाते थे। अनवरत स्वाध्याय एवं कठिन परिश्रम के द्वारा इन्होंने चिकित्सा-विज्ञान में असामान्य दक्षता प्राप्त कर ली। और इस रूप में बारहनगर में ही नहीं कलकत्ता में भी बहुधा विख्यात हो गये।

एक बार कलकत्ता के प्रसिद्ध सर्जन डा० सुरेशप्रसाद सर्वाधिकारी के पिता किसी भीषण रोग से आक्रान्त होकर बेहोश हो गये। इस स्थिति में वे तीन महीने तक पड़े रहे। रोग के निदान के लिये उनके घर पर नित्य मेडिकल-बोर्ड बैठता था। जब वह किसी प्रकार काबू में न लाया जा सका तो सर्वाधिकारी महोदय शिवरामकिंकरजी के पास बराहनगर गये और उनसे चलकर अपने पिता को देखने की प्रार्थना की। इन्होंने कहा, आपके यहाँ एलोपैथी के धुरन्धर चिकित्सक हैं, उनके रहते जो रोग दूर न किया जा सका, उसे मैं कैसे हटा सकूंगा, सर्वाधिकारी जी बोले, 'आप चलें अब रोगी की स्थिति उन लोगों के वश से बाहर है।' शिवरामजी ने उनका अनुरोध टाला नहीं, आने की तिथि निश्चित कर दी। ये नियत समय पर सर्वाधिकारी जी के घर पहुंचे। उस समय वहाँ पाँच अंग्रेज डाक्टर बैठे हुए थे। सर्वाधिकारी जी से इनके आने का समाचार पाकर उन लोगों ने कहा रोगी की हालत बहुत नाजुक है। इस स्थिति में उसे नीम हकीम को सौंपना ठीक नहीं है। सर्वाधिकारी महाशय को इनकी दक्षता पर अगाध विश्वास था, इसलिये उनकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया। शिवराम किंकर जी ने उन्हें अलग बुलाकर कहा जिस समय मैं रोगी को देखूंगा उस समय तुमको छोड़कर वहाँ और कोई अन्य व्यक्ति नहीं रहेगा। सर्वाधिकारी जी ने वैसी व्यवस्था कर दी

'जब वे जाने लगीं तो चुपके से एक लिफाफे में १००० रु० के नोट बाबाजी के आसन के नीचे रख दिये। वे अभी पालकी पर नहीं बैठी थीं कि स्वामीजी को इसका पता चल गया। उन्होंने तत्काल एक सेवक द्वारा रानी साहिबा को वापस बुलाकर उनसे पूछा, 'यह रुपया आपने कैसे रख दिया?' रानी साहिबा ने कहा, 'मैं आपकी लड़की हूं। बच्चों के लिये ले आयी थी।' स्वामी जी ने कहा—"अभी इसे अपने पास रखे रहो। बच्चों को जब आवश्यकता होगी—चला आयेगा।" यह कहते हुए उन्होंने लिफाफा रानी सहिबा को लौटा दिया।

और फिर इन्हें पिता के कमरे में ले गये। इन्होंने ज्यों ही रोगी के मस्तक पर हाथ रखा उसने आंखें खोल दी और बोला-यह कौन है ? सुरेश बाबू ने कहा यह वही हैं जिन्होंने मेरी बहन की चिकित्सा की थी उनके पिता जी इसका संशोधन करते हुये बोले, अरे क्या कह रहे हो ? चिकित्सा की थी ? इन्होंने तो उसे प्राणदान दिया था। उस समय शिवराम किंकर जी के पास स्टेथस्कोप नहीं था अतः इन्होंने उनकी छाती पर हाथ रखकर ही श्वास प्रक्रिया की परीक्षा करके बताया 'इनके दाहिने फेंफड़े में रुपये के बराबर रन्ध्र हो गया है। यह संज्ञाशून्यता उसी का परिणाम है। सुरेश बाबू ने कहा आपको ही इसका इलाज करना होगा'। वे बोले इनकी आयु मात्र तीन महीने शेष है। सुरेश बाबू के अनुरोध से इन्होंने चिकित्सा की और १५ दिनों के भीतर ही उनके पिता चलने फिरने लगे। इसके बाद एक बार सुरेश बाबू अपने भाई देव प्रसाद सर्वाधिकारी (जो बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने) के साथ बराहनगर जाकर शिवराम किंकर जी से कहा, हम लोग वायु परिवर्तन के लिए पिताजी को मधुपुर भेजना चाहते हैं। इसके लिये आपकी स्वीकृति लेने आये हैं इनकी इच्छा नहीं थी कि उन्हें बाहर भेजने की अनुमति दें किन्तु उन लोगों के अनरोध पर स्वीकृति दे दी साथ ही यह भी चेतावनी दे दी कि उनकी नित्य खबर लेते रहना। मधुपुर

(शेष पृष्ठ १०६ पर)

'जूठी पत्तलें उठाऊँगा'

इतिहास में नेतृत्व का सबसे अच्छा उदाहरण भगवान श्रीकृष्ण का बताया जाता है। पाँडवों को चक्रवर्ती बनाने का काम भगवान श्रीकृष्ण के कारण ही हुआ था। लेकिन जिस समय पांडवों के यहां राजसूय यज्ञ हुआ, तब की घटना है। इतना बड़ा समारोह था, उसमें तरह-तरह के विभागों को संभालने की आवश्यकता थी। पांडवों ने सबसे पूछा कि, 'भाई, तुम कौन-सा विभाग देखोगे ?' हर एक ने अपनी-अपनी इच्छा का विभाग ले लिया।

श्रीकृष्ण से जब पूछा गया तो उन्होंने कहा कि, 'भोजन होने के पश्चात् जूठी पत्तलें उठाने का काम मैं करूंगा।' अर्थात् चक्रवर्तियों का नेतृत्व करने वाला पुरुष जूठी पत्तलें उठाने का काम स्वयं मांग लेता है।

दत्तोपन्त ठेंगड़ी

राष्ट्रपति के अधिकार क्या हैं?

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

भारतीय संविधान के प्रावधानों को शब्दशः लिया जाये, तो राष्ट्रपति का पद राजकीय सत्ता और अधिकार का मूर्तिमान स्वरूप लगता है। संविधान में व्यवस्था है कि राष्ट्रपति संघ के प्रशासनिक अधिकारों का या तो स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा संविधान के अनुसार प्रयोग करेगा। इसी प्रकार संविधान के अनुसार संघ की रक्षा सेनाओं की सर्वोच्च कमान राष्ट्रपति में निहित है। आपात्कालीन स्थिति में राष्ट्रपति के अधिकारों की परिधि अत्यंत व्यापक हो जाती है। किन्तु हमारा संविधानिक संगठन ब्रिटेन की संसदीय पद्धति पर आधारित है और इसलिए उसकी वास्तविकता को समझने के लिए शब्द और स्वरूप की पृष्ठभूमि में जाकर प्रथाओं और परम्पराओं का प्रश्रय लेना अनिवार्य है।

एक ओर तो हमारे संविधान में राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों और अधिकारों की विशद चर्चा है; दूसरी ओर प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् का उल्लेख गौण रूप में किया गया है। बात यह है कि संगठन की दृष्टिसे ब्रिटेन का इतिहास वहाँ के उदाहरण और वहाँ की सांविधानिक शब्दावली हमारे लिए सुगम थी और इसीलिए हमने न केवल संसदीय पद्धति का मूल स्वरूप ही उनसे ग्रहण किया, बल्कि उस पद्धति की प्रथाओं। रीतियों और उनकी कानूनी परिकल्पनाओं को भी हमारे संविधान ने मान्यता दी। यही कारण है कि हमारा संविधान समग्र प्रशासनिक अधिकार राष्ट्रपति को सौंपता है, यद्यपि इन अधिकारों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् के हाथों में होता है। सामान्यतः राष्ट्रपति का पद एक प्रतीकात्मक पद है, प्रतिष्ठा की दृष्टि से सर्वोच्च किन्तु अधिकारों की दृष्टि से मंत्रिपरिषद पर आश्रित। मंत्रिपरिषद के प्रभाव का आधार मूलतः संविधान के अनुच्छेद ७४ और ७५ मिलता है; जिनके अनुसार संविधान के अन्तर्गत

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

राजनीति

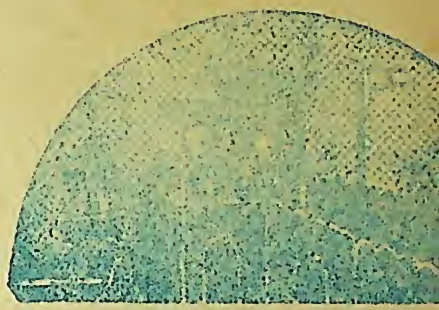

राष्ट्रपति को अपने कार्यों के निष्पादन में कार्य और सलाह के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मंत्रिपरिषद की व्यवस्था है। और इस सिद्धान्त की भी मान्यता है कि मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। लोकसभा को बजट पारित करने का अधिकार प्राप्त है और यह वित्तीय शक्ति लोकसभा को हमारे संविधान-संगठन में केन्द्रीय महत्ता प्रदान करती है। लोकसभा के प्रति मंत्रिपरिषद के सामूहिक उत्तरदायित्व का अभिप्राय यह होता है कि मंत्रिपरिषद् को लोकसभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त हो। यही कारण है कि लोकसभा या विधानसभा में मंत्रिपरिषद् के प्रति अविश्वास का

राजनीतिक संकट के समय में राष्ट्रपति की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। हमारे संविधान ने राष्ट्रपति को कौन-कौन से अधिकार प्रदान किये हैं? इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी का यह लेख एक प्रामाणिक और तर्कयुक्त विश्लेषण करता है।

प्रस्ताव पारित हो जाने पर मंत्रिपरिषद् के लिए त्यागपत्र देना अनिवार्य हो जाता है।

ब्रिटेन में प्रधानमंत्री का पद और इतिहास का संयोग

प्रारंभ में ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद् सम्राट् के मनोनयन पर निर्भर करती थीं और संसद उसे संदेह की दृष्टि से देखती थी। कालांतर में मंत्रिपरिषद् संसद का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व करने लगी। जैसा कि ब्रिटेन में वालपोल ने एक बार कहा था—"मैं जो कुछ कहता हूं वह सम्राट् के नाम पर कहता हूं, किन्तु सदन की ओर प्राप्त अधिकारों के बल पर कहता हूं।' पहले सम्राट् मंत्रिपरिषद् की बैठकों का सभापतित्व किया करते थे। किन्तु इतिहास का संयोग कहिए कि ब्रिटेन में हनोवर के जर्मनभाषी सम्राट् के सिंहासनासीन होने के बाद सम्राट् को जब मंत्रिपरिषद् की कार्यवाही को अंग्रेजी तथा लैटिन में समझने में कठिनाई होने लगी तो उसने मंत्रिपरिषद् के वरिष्ठ सदस्यों को इन बैठकों में सभापतित्व करने का काम सौंपा। इसी ऐतिहासिक संयोग में

(शेष पृष्ठ १०३ पर)

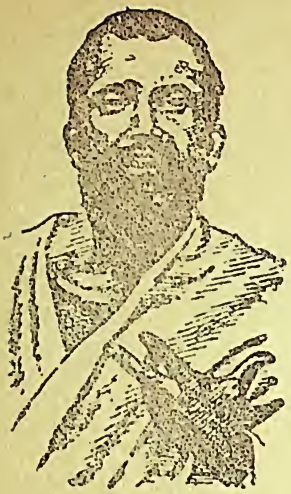

माखनलाल चतुर्वेदी

मंत्र

लघु कथा

किसी ने रामकृष्ण परमहंस से जिज्ञासा प्रकट की, "महाराज, मंत्र क्या चीज हैं, क्या कोई भी व्यक्ति, किसी ग्रन्थ से मंत्र चुन ले और रटने लगे, तो क्या वे लाभदायक होंगे ?'

'न' रामकृष्ण परमहंस ने कहा-"मन्त्र तो तब अपना काम आरम्भ करते हैं, जब वे अधिकारी के पास पहुंचते हैं" और इसका निदर्शन है यह कहानी।

एक राजा था। एक दिन वह गया अपने प्रधान मन्त्री के यहाँ वे जप कर रहे थे। राजाजी ठहर गये। जब प्रधान लौटा, तो राजा ने पूछा— "क्यों जी, कौन-सा जप कर रहे थे ?"

प्रधान ने कहा— "गायत्री-जप कर रहा था महाराज!"

"राजा ने कहा—" हमें भी गायत्री जप सिखा दो।"

प्रधान ने कहा – न महाराज, मैं ऐसा नहीं कर सकता ! 'नहीं कर सकते? राजा ने कड़ककर कहा —"क्यों नहीं कर सकते ?"

कुछ दिन बाद राजा ने किसी ब्राह्मण को खरीदकर, वह जप याद कर लिया और प्रधान को सुनाकर पूछा —'अब यह तो बता दो कि यह शुद्ध तो है !'

प्रधान ने कहा —"मन्त्र तो वही है, पर उसमें उसका स्वभाव नहीं है।'

राजा ने कहा -"भला समझाओ तो, जब मन्त्र वही है, तो प्रभाव वह क्यों

नहीं है ? कैफियत दो, कैफियद देनी होगी ! "जो आज्ञा महाराज" । प्रधान ने कहा ।

राजमहल में काम करने वाला एक हुक्म-बरदार छोकरा वहीं खड़ा था। प्रधान ने उसे निकट बुलवाया और हुक्म दिया कि बादशाह सलामत के गाल पर चपत लगाओ । उसे एक बार, दो बार, कितनी ही बार प्रधान ने हुक्म दिया पर उसने हुक्म का पालन नहीं किया । राजा ने अपने मन्त्री से ऐसी आज्ञा की कभी उम्मीद न की थी । वह गुस्से से जल उठा । उसने उसी लड़के से कहा —"इस प्रधान के गाल पर चपत लगाओ" और उस छोकरे ने प्रधानमन्त्री के गालों पर तड़ातड़ चपत जड़ दिये ।

प्रधान हँसा, उसने कहा—"महाराज, बस यही आपके सवाल की कैफियत है ।"

"कैसे ?" चकित राजा ने पूछा ।

प्रधान ने कहा —"मेरी आज्ञा भी वही है, जो आपकी है, उसका पालने वाला व्यक्ति भी वही है, किन्तु अधिकार पूर्ण वाणी मुझसे बड़ी है । जब मैंने आज्ञा दी, तब उन शब्दों का उस लड़के पर कोई असर न हुआ; पर उन्हीं शब्दों में जब आपने आज्ञा दी, तब उस लड़के ने उस आज्ञा का तुरन्त पालन कर दिया । मन्त्रों की भी यही हालत है, वे अधिकारी पाकर ही कार्य करते हैं ।००

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

पारिश्रमिक का चेक

इंग्लैण्ड के धन-कुबेर मोटर उद्योगपति लार्ड नेफील्ड अपनी कार प्रदर्शनी के सिलसिले में एक छोटे कस्बे में गए, तो वहाँ के एक पत्रकार ने उनसे भेंट की । और, इंग्लैण्ड के कार-उद्योग पर एक छोटा लेख लिख देने का अनुरोध किया ।

नेफील्ड सहमत हो गए और उन्होंने लेख लिख दिया । संपादक उतने बड़े लेख का पारिश्रमिक पंद्रह पौंड देते थे, सो लेख छपने पर उन्होंने वह राशि चेक से भेज दी ।

चेक प्राप्ति के धन्यवाद सहित नेफील्ड के सेक्रेटरी ने संपादक को लिखा—'लार्ड महोदय, इस चेक को पाकर इतने प्रसन्न दीखते हैं, जितने वे पहले कभी दिखाई नहीं दिए । आपका चेक उन्होंने भुनाया नहीं वरन् शीशे में मढ़ाकर रख लिया है और हर किसी को दिखाते हुए कहते हैं—'अब मैंने लेखन-कला सीख ली और अपनी निज की कुशलता बढ़ाकर इतने रुपये कमाए हैं । अब तक तो मैं दूसरों की योग्यत और मेहनत से ही धन कमाता रहा । इसलिए इतना आनन्द भी पहले कभी अनुभव नहीं किया । ०००—'डा० वंशी'

प्राचीन कथा

श्यामनारायण वर्मा

एक दिन अपने बच्चे को घर छोड़कर माता अंजना कहीं फल लाने के लिए चली गयीं। बच्चे के पिता केसरी पहले से ही बाहर गये थे। बालक घर पर अकेला था। उसे भूख लगी तो इधर-उधर देखा, पर खाने को कुछ न मिला। उसकी दृष्टि प्रातःकाल उदय हो रहे सूर्य पर पड़ी। उसने सोचा यह तो बड़ा सुन्दर लाल-लाल फल है। उसे खाने की इच्छा से बालक ने सूर्य तक पहुंचने की चेष्टा की। वायु ने पहले ही उसे

तो उनकी दिव्यदृष्टि से बालक की महत्ता छिप न सकी। उन्होंने समझा कि स्वयं शंकर भगवान ही वानर बालक के वेश में आ रहे हैं। उन्होंने यह समझ लिया कि पितृ तुल्य वायुदेव के आशीर्वाद से ही इस बालक का जन्म हुआ है और वे स्वयं भी उसकी रक्षा करने के लिए आ रहे हैं। अतः सूर्य ने भी अपनी किरणें शीतल कर दीं। वह बालक सूर्य के रथ पर पहुंच गया और उसके साथ खेलने लगा।

उसी दिन सूर्यग्रहण भी था। अपने

'हनुमान' नाम का रहस्य

उड़ने की शक्ति दे दी थी।

बालक आकाश में उड़ता जा रहा था। देवता, दानव, यक्ष आदि सभी चकित थे। वायु को यह शंका हुई कि यह नन्हा-सा बालक सूर्य की ओर भागा जा रहा है; कहीं ऐसा न हो कि मध्यान्हकाल में तरुण सूर्य की प्रखर किरणों से जल जाय। उन्होंने हिमालय और मलयाचल की शीतलता इकट्ठी की और अपने पुत्र के पीछे चलने लगे। सूर्य ने देखा

समय जानकर सूर्य को ग्रसने के लिए राहु सूर्य पर टूट पड़ा। परन्तु बालक के कठोर हाथों ने उसे पकड़ लिया। राहु भयभीत होकर किसी प्रकार अपने को छुड़ाकर वहां से भाग खड़ा हुआ। वह सीधा इन्द्र के पास पहुंचा और बोला- 'आपने सूर्य को ग्रसने का अधिकार तो मुझे ही दिया है फिर वहाँ पर किसी दूसरे का अधिकार कैसा ?' इन्द्र की समझ में यह बात नहीं आयी। उन्होंने राहु को डांट

र सूर्य के पास फिर से भेज दिया। ारा राहु के जाने पर उस बालक को नी भूख की याद आ गयी और राहु ो खाने की वस्तु समझकर उस पर टूट ड़ा। राहु उस बालक के तेज से डर या और अपनी रक्षा के लिए इन्द्र को ारने लगा।

इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर उसकी क्षा के लिए दौड़े। ऐरावत को देखते ी बालक ने राहु को छोड़ दिया। और उसे उससे भी अधिक अच्छा फल समझ-कर पकड़ने के लिए दौड़ा।

इन्द्र ने डरकर अपना वज्र बालक की ओर फेंका, जिससे उसके बायीं ओर की हनु (ठुड्डी) टूट गयी। बालक घायल होकर पहाड़ पर गिर पड़ा और वेदना से छटपटाने लगा। वायुदेव बालक को उठाकर गुफा के अन्दर ले गये। साथ ही उन्हें इन्द्र पर इतना क्रोध आया कि उन्होंने अपनी गति भी बन्द कर दी। वायु के बन्द होते ही सबकी सांस बन्द होने लगी। देवता लोग घबरा गये। तीनों लोकों में हाहाकर मच गया। इन्द्र दौड़े हुए ब्रह्मा के पास गये। उसी क्षण ब्रह्मा पर्वत की उस गुफा में आये जहां वह बालक अचेत पड़ा हुआ था। ब्रह्मा ने अपने हाथों से बालक को स्पर्श करके उसे जीवित कर दिया। बालक

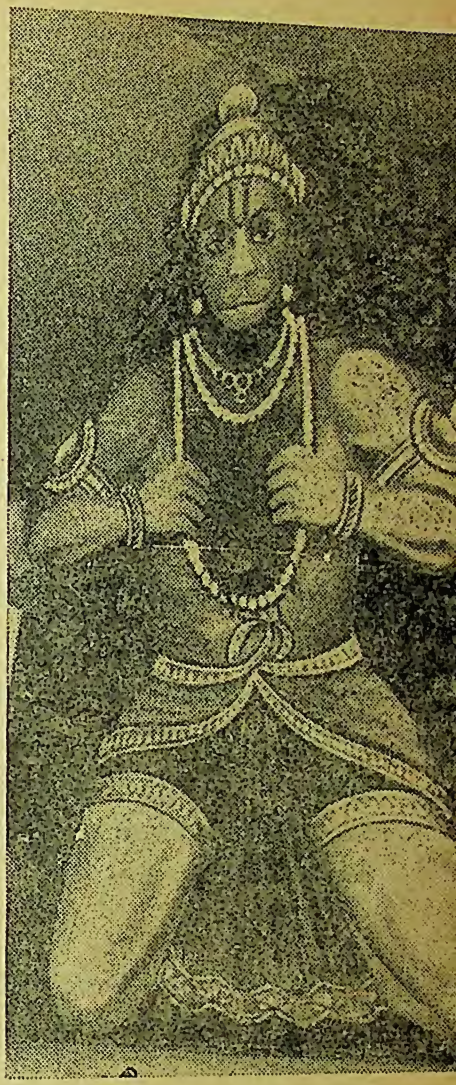

प्रसन्नता के साथ उठ खड़ा हुआ।

ब्रह्मा ने देवताओं से कहा, 'यह साधारण बालक नहीं है। यह देवताओं का कार्य साधने के लिए ही प्रकट हुआ

है। इसलिए यह उचित है कि सब देवता इसको वरदान दें।'

इन्द्र ने कहा, 'मेरे बज्र के द्वारा इसकी हनु टूट गई है। इसलिए आज से इसका नाम 'हनुमान' होगा और मैं वरदान देता हूं कि बज्र से भी हनुमान का कभी बाल बाँका नहीं होगा।'

सूर्य ने कहा, 'मैं अपना शतांश तेज इसे देता हूं। मेरी शक्ति से यह अपना रूप बदल सकेगा और जब शास्त्र अध्ययन की इच्छा होगी तो मैं अपने सम्पूर्ण शास्त्रों का इसे अध्ययन करा दूंगा। यह बड़ा ही वाक्-पटु भी होगा।'

वरुण ने अपने पाश से इसे निर्भय होने का वर दिया। कुबेर आदि देवताओं ने भी अपनी-अपनी ओर से हनुमान को निर्भय किया। विश्वकर्मा ने अपने बनाये हुए दिव्यास्त्रों से इसे अवध्य होने का वर दिया। ब्रह्मा ने ब्रह्मज्ञान दिया; चिरायु करने के साथ ही ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मशाप से भी मुक्त कर दिया।

चलते समय ब्रह्मा ने वायु से कहा—'तुम्हारा पुत्र बड़ा ही वीर, इच्छानुसार रूप धारण करने वाला और तुम्हारे समान तीव्रगामी होगा। इसकी गति अप्रतिहत होगी, इसकी कीर्ति अमर होगी और राम-रावण युद्ध में यह राम का सहायक तथा उनका परमप्रीति भाजन होगा।' ००

(पृष्ठ ६७ का शेष)

प्रधानमंत्री के पद का आधुनिक संस्करण
प्रादुर्भूत हुआ। राजनीति में दलीय संगठन
के विकास ने प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद
की सशक्त स्थापना में बहुत बड़ा योग-
दान दिया। ज्यों-ज्यों मताधिकार व्यापक
होता गया, दलीय संगठन की शक्ति
बढ़ती गयी और संसद के संगठन में दल
बल को प्राधान्य हो गया है। यद्यपि
मंत्रिपरिषद् सदन की एक समिति मात्र
है, किन्तु वस्तुतः दलीय संगठन के कारण
और प्रशासनिक ढांचे के सघन विस्तार
के फलस्वरूप मंत्रिपरिषद सदन का
नेतृत्व करती है; और सदन के प्रति
उत्तरदायी होने के साथ-साथ सदन का
मार्गदर्शन और संचालन भी करती हैं;
क्योंकि दल का बहुमत मंत्रिपरिषद् के
पीछे अविच्छिन्न रूप से जुड़ा रहता है।
संसदीय पद्धति में इसलिए मंत्रिपरिषद
का एकाधिकार की स्थिति आ पहुंची है।

यथार्थ यह है कि पहले तो सम्राट् से
अभिजात वर्ग ने अधिकार मांगा और प्राप्त
किया, फिर मताधिकार के विस्तार से
ये अधिकार संसद में केन्द्रीभूत हुआ।
संसद ने ये अधिकार मंत्रिपरिषद को
सौंप दिये और मंत्रिपरिषद के हाथों से
ये अधिकार प्रधानमंत्री को हस्तांतरित
हो गये। आज ब्रिटेन में प्रधानमंत्री को
व्यापक अधिकार प्राप्त हैं क्योंकि प्रधानमंत्री
संसद में बहुमत का नेता होता है और
साधारणतया मतदाता उसी के पक्ष या
विपक्ष में अपनी राय देते हैं। आज
स्थिति यह है कि ग्रेटब्रिटेन में साधारण-
तया मतदाता अपने निर्वाचन क्षेत्र में खड़े
हुए उम्मीदवारों की तरफ उतना नहीं
देखता जितना कि प्रधानमंत्री और
मतदाताओं के बीच और विशेषतया
प्रधानमंत्री और मतदाताओं के बीच एक
सीधा संबंध स्थापित हो गया है, जिसके
कारण संसद और उसके सदस्यों का
महत्त्व बहुत कुछ अस्त हो गया है।

लेकिन भारत में स्थिति क्या है ?

भारत में अभी तक यह स्थिति
नहीं है। हमारे संविधान में
पार्टी का कोई उल्लेख भी नहीं मिलता।
किन्तु फिर भी हमारी राजनीति पार्टी के
आधार पर संगठित की गयी है। हमारे
देश में निर्वाचन की राजनीति विकेन्द्रित
है और सामान्यतः मतदाता अपने
निर्वाचन क्षेत्र में खड़े उम्मीदवारों को
देखकर अपनी राय जाहिर करता है।
न कि प्रधानमंत्री या मुख्यमन्त्री के पक्ष
या विपक्ष में अपनी राय देता है
अभिप्राय यह है कि भारत में अभी तक
भी मूलतः प्रधानमंत्री और मन्त्रिपरिषद
की शक्ति का स्रोत उनका राजनीतिक
दल और संसद में उनके दल का बहुमत
है। किन्तु यह स्थिति बदल सकती है
और अगर हमारी राजनीति में प्रधानमंत्री
अथवा मन्त्रिपरिषद के नेतृत्व का महत्व
अधिक बढ़ा तो उस हद तक संसद-सदस्यों
के महत्व में न्यूनता आयेगी और प्रधान
मन्त्री तथा मन्त्रिपरिषद के प्रभाव में
अभिवृद्धि होगी। वस्तुतः मतदाता और

उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों और प्रधानमंत्री तथा मन्त्रिपरिषद के सदस्यों के बीच सम्बन्धों का जो सभीकरण बनता है, वही राष्ट्रपति और मन्त्रिपरिषद के बीच के समीकरण का भी बहुत-कुछ निर्धारण करता है।

राष्ट्रपति पद को वास्तविक दृष्टि से अधिकार सम्पन्न मानने वालों का कहना है कि संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जो स्पष्ट रूप से कहती हो कि राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों की सलाह के अनुसार आचरण करने को बाध्य होगा। २६ नवंबर १९६० को डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने अत्यधिक व्यंजनापूर्ण भाषण में लोगों की प्रतिक्रिया जानने के लिये इसी पक्ष को प्रस्तुत किया था। संविधान के अनुच्छेद ७४ (२) के अनुसार किसी भी न्यायालय में इस बात की जाँच नहीं की जा सकती कि मन्त्रियों ने राष्ट्रपति को कैसी और क्यों सलाह दी, और इसीलिये भी वेंकटगिरि नरसिंह राव ने स्वीकार किया था कि संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जिसके कारण राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों की सलाह कानूनी दृष्टि से मानने के लिये बाध्य हो।

राष्ट्रपति पद : अधिकार और प्रतिष्ठा का सामंजस्य

संविधान के निर्माण के समय में डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा था कि, राष्ट्रपति को ब्रिटिश संविधान की परंपराओं का पालन करना होगा। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि राष्ट्रपति यदि अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार काम नहीं करता, तो उसका यह आचरण संविधान का उल्लंघन माना जायगा और राष्ट्रपति पर अभियोग चलाया जा सकेगा। डॉ० अम्बेडकर ने ४ नवम्बर, १९४८ को संविधान सभा में कहा था कि संविधान के मसविदे के अनुसार राष्ट्रपति की स्थिति है, जो ब्रिटेन के संविधान सम्राट् की है अर्थात् वह राज्य का अध्यक्ष है, किन्तु शासन का अध्यक्ष नहीं, राष्ट्र का प्रतीक है, किंतु राज्य का संचालक नहीं। डा० अम्बेडकर ने यह भी कहा था कि भारतीय संघ के राष्ट्रपति तब तक अपने किसी मंत्री को बर्खास्त करने का अधिकार नहीं है, जब तक उसके मंत्रिमंडल को संसद में समर्थन प्राप्त रहता है।

मूलतः देश के शासनतंत्र की रूपरेखा देखने से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश लोकतंत्रीय संविधान के राष्ट्रपति को मंत्रियों के काम में अत्यधिक हस्तक्षेप करने के ऐसे वास्तविक अधिकार देने की भावना नहीं हो सकती; जिन्हें संविधान में प्रथा और औपचारिकता के नाते लिख दिया गया है। क्योंकि, राष्ट्रपति स्वयं मंत्रिपरिषद् की सलाह के बिना इन अधिकारों का प्रयोग करे तो सामूहिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था ही अनावश्यक हो जाती है किन्तु साथ ही यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक

कि हमारे संविधान में राष्ट्रपति का पद केवल शिष्टाचार की रस्में अदा करने के लिए नहीं है। संविधान के निर्माण के समय जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि, राष्ट्रपति के पद में अधिकार और प्रतिष्ठा दोनों सन्निहित होंगे।

हमारे संविधान में राष्ट्रपति को कुछ विशिष्ट और सुरक्षित अधिकार प्राप्त हैं, जिनका प्रयोग वह राष्ट्रीय एकता; स्थिरता, निरंतरता, और संविधान की सुरक्षा के लिए कर सकता है। यदि राष्ट्रपति का पद केवल औपचारिकता का पद होता तो राष्ट्रपति को राष्ट्रीय पैमाने पर आधारित निर्वाचन व्यवस्था से चुनने का कोई कारण नहीं था। हमारे संविधान में राष्ट्रपति न केवल संसद के दोनों सदनों द्वारा चुना जाता है; बल्कि देश की विधान सभाओं के समग्र निर्वाचित सदस्यों का भी उतना ही योगदान उसके निर्वाचन में होता है, जितना कि संसद के सदस्यों का।

राष्ट्रपति का सबसे प्रारंभिक अधिकार है कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त नेता को बुलाकर उसे प्रधान मंत्रित्व का पद सौंपे। अपने आप में यह एक बहुत व्यापक अधिकार है। फिर यदि, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय; तो राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने का अधिकार भी है। साधारणतया राष्ट्रपति अपने कार्यों के निष्पादन में मंत्रिपरिषद और प्रधानमंत्री की सलाह और सहायता काम लेता है; किन्तु ऐसी स्थिति अकल्पनीय नहीं कि जिसमें वह मंत्रि परिषद् या प्रधानमंत्री की सलाह के विपरीत आचरण करने के लिए भी बाध्य हो, क्योंकि राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करते समय यह शपथ लेता है कि वह संविधान और विधि का 'परिरक्षण संरक्षण और प्रतिरक्षण' करेगा।

यह भी विचारणीय है कि यदि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद के परामर्श को अस्वीकार कर दे, तो क्या इस आधार पर राष्ट्रपति के विरुद्ध संसद में 'इंपीचमेंट' का अभियोग लाया जा सकता है और संकल्प पारित होने पर राष्ट्रपति को अपदस्थ होना अनिवार्य होगा। किन्तु यह भी स्मरणीय है कि 'इंपीचमेंट' की शक्ति एक न्यायिक शक्ति है और संसद अथवा मंत्रिपरिषद से उसके राजनीतिक या प्रतिशोधात्मक दुरुपयोग की प्रत्याशा नहीं की जाती।

प्रश्न यह उठता है कि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को किसी भी समय लोकसभा भंग करने के लिए बाध्य कर सकता है अथवा नहीं? सांविधानिक स्थिति इस संबंध में स्पष्ट नहीं है। ब्रिटेन में यह माना जाता है कि प्रधानमंत्री को इस प्रकार का अधिकार प्राप्त है कि और सम्राट् प्रधानमंत्री की राय पर 'हाउस आफ कामंस' को भंग करने के लिए बाध्य है। किन्तु ब्रिटेन में भी यह निष्कर्ष पूरी तरह से मान्य हो, ऐसा नहीं, कहा जा सकता।

भारत में स्थिति कुछ भिन्न है, क्योंकि हमारे देश में अभी तक राष्ट्रीय

निर्वाचन इतना सरल नहीं हैं कि बार-बार आसानी से किया जा सके। साथ ही यह भी विचारणीय तथ्य है कि, भारत का राष्ट्रपति अपने अधिकारों को मंत्रिपरिषद से भी अधिक व्यापक निर्वाचनजन्य लोक शक्ति से प्राप्त करता है न कि वंशानुक्रम से और इसलिए विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति लोकसभा को भंग करने के बारे में प्रधानमंत्री की राय को अमान्य भी कर सकता है। इसी प्रकार कुछ विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति किसी विधेयक पर अपनी अनुमति देने से भी मना कर सकता है, किन्तु ऐसी परिस्थितियां अपवाद के रूप में हो सकती हैं, सामान्य प्रशासन के क्षेत्र में नहीं।

राष्ट्रपति का और मंत्रिपरिषद का संबंध हमारे संविधान में एक विशेष संबंध है। निर्णय राष्ट्रपति के नाम से घोषित किये जाते हैं, किन्तु वे निर्णय वास्तव में मंत्रिपरिषद के होते हैं। राष्ट्रपति यदि किसी मंत्री का व्यक्तिगत निर्णय अमान्य करता है, तो उस निर्णय को इस बात के साथ वापस कर सकता है कि समग्र मंत्रिपरिषद् उस पर विचार करे। राष्ट्रपति का मुख्य कर्त्तव्य तो यह है कि वह मंत्रिपरिषद् को अपनी राय दे, सूचना और जानकारी मांगे मंत्रिपरिषद और उसके सदस्यों को प्रोत्साहन दे और विशेष परिस्थितियों में मंत्रिपरिषद को और प्रधानमंत्री को उद्‌बोधन दे और सावधान करे।

निर्णय लेने का कार्य मंत्रिपरिषद का होता है किन्तु एक राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह मंत्रिपरिषद को पुनर्विचार करने के लिए कहे। मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच पारस्परिक संतुलन का यह मुख्य आधार है और यह संतुलन संसदीय पद्धति का मूलभूत अंग है, विशेषतः भारतीय संविधान में जहाँ कि प्रधानमंत्री लोकसभा के बहुमत का नेतृत्त्व करता है और उसके प्रति उत्तरदायी रहता है और राष्ट्रपति संविधान के परिरक्षण के लिए कृतशपथ है, और संसद के दोनों सदनों तथा सब राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों के मतदान से अधिकार और गरिमा ग्रहण करता हैं।००

(पृष्ठ ८७ का शेष)

गोविन्दसिंह जी की एक हिन्दू तीर्थ की यात्रा का जो उल्लेख है—उसकी पुष्टि दूसरे हिन्दू-तीर्थ प्रयाग के एक पण्डित की 'बही' में लिखित दस्तावेज से होती है। यह दस्तावेज इलाहाबाद के पण्डित रामकृष्ण के पास सुरक्षित है। मदनजीत कौर ने लिखा है कि इन दस्तावेजों से मालूम होता है कि उस समय सिख हिन्दुओं की सामाजिक रीति-रिवाजों का पालन करते थे। खालसा सामाजिक रस्में गुरुजी के परलोकगमन के बाद बनीं।

गंगाजी में अस्थियां

डॉक्टर फौजासिंह ने अपनी उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ ३५ पर 'भरवहि तलौदा परगना जोंद' के हवाले से लिखा है कि, १३ मई १६६४ को गुरु हरिकिशन की अस्थियों का गंगाजी में प्रवाह किया गया। इसके लिये माता सुलखणी, बाबा रामराय और दीवान दुर्गामल छिब्बर हरिद्वार गये। दीवान साहिब गुरुजी के प्रधानमन्त्री और ब्राह्मण थे।

गुरु हरगोविन्द हरिद्वार में

'पण्डित वहि करतारपुर वाली फोलियो ५६' में लिखा है कि गुरु हरगोविन्द सुपुत्र गुरु अर्जुनदेव, बाबा गुरदित्ताजी, अरिनी रायजी, साहिब सूरतसिंहजी, गुरु तेगबहादुरजी, साहिब अरिल राय सुपुत्र गुरु हरगोविन्द, गुरु गोविन्दसिंहजी, श्री अजीतसिंहजी सुपुत्र गुरु गोविन्दसिंहजी, हाथीसिंह सुपुत्र अजीतसिंह, माता गूजरी और माता सुन्दरी ने हरिद्वार की यात्रा की। ये दस्तावेज पण्डित झंडाराम के परिवार के पास सुरक्षित हैं।

गुरु तेगबहादुरजी का फर्मान

पण्डित रामकिशन (इलाहाबाद) की वही में गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंहजी के दो फर्मान हैं जो उन्होंने इस पवित्र स्थान की यात्रा पर लिखे। पहले फर्मान का मतलब यह है :— माघ सुदी पंचमी (रविवार) संवत् १६६६ त्रिवेणी में गुरु हरिकृष्ण के बाद गुरु तेगबहादुर गुरु बने। जाति सोढ़ी क्षत्री लाहौर के निवासी, नैना देवी के उपासक। भोजराज पुरोहिता सोढियों के अंश से और गुरु का जो भी सिख आये वह भोजराज का सम्मान करे। उस पर कृपा होगी। हस्ताक्षर गुरु तेगबहादुर जी।

इलाहाबाद में, पण्डित रामकिशन की बही में गुरु गोविन्दसिंह के हस्ताक्षर से भी इसी प्रकार का हुक्मनामा लिखित है।

इन हुक्मनामों से स्पष्ट हो जाता है कि गुरु साहिबान तीर्थ-यात्रा को जाते थे और उनके कुल-पुरोहित थे, जिनका वे सम्मान किया करते थे।

दरबार साहिब में देवी का चित्र

१२ फरवरी १८९७ को 'खालसा अखबार' अमृतसर में भाई वीरसिंह ने एक पत्र में लिखा कि दरबार साहिब के सामने की दीवार के साथ एक कमरा है

जो कि दुःखभंजनी वेरी के पेड़ के निकट है। यहाँ एक चित्र में देवी और गुरु गोविन्द सिंहजी को दर्शाया गया है। देवी सोने की वेदी पर बैठी है। उसके दस या बीस हाथ हैं। एक हाथ आगे की ओर फैला है और उसमें एक खाण्डा है। गुरु गोविन्द सिंह उसके सामने नंगे पांव हाथ जोड़े खड़े हैं।

अंग्रेजों का षड्यंत्र

विघटन या अलगाव के लिए गलतियां दोनों ओर से हुईं। सभी गुरुद्वारों के हिन्दू महंत हुआ करते थे। उन्होंने गुरुद्वारों के चढ़ावे का दुरुपयोग किया। अपने नैतिक पतन से उन्होंने सिखों को अपना शत्रु ही नहीं बनाया बल्कि उनमें बिघटन की भावना पैदा की।

अंग्रेजों ने खूब शरारतें कीं। मि० मैकालिफ ने अपनी पुस्तक में कई गप्पें हांकीं। उनमें से एक यह थी कि, गुरु तेगबहादुर जब औरंगजेब के कैदखाने में थे तो तीसरी मंजिल पर चढ़ गये। औरंगजेब ने यह आरोप लगाया कि, 'वे महल की स्त्रियों को देख रहे हैं।' गुरुजी ने उत्तर दिया कि 'नहीं! मैं आकाश की ओर देख रहा हूं, जहाँ से यह आवाज आ रही है कि अंग्रेज आ रहा है। वह मुगलशाही खत्म करके सिखों को शासक बनायेगा।' यह एक ही जालसाजी तो नहीं थी। अंग्रेजों ने १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में सिखों से सहायता लेने के लिये इसी तरह की तथाकथित भविष्यवाणियां गढ़ीं। जब महाराजा दिलीपसिंह विद्रोह करके रूस के मार्ग से पंजाब की ओर आना चाहते थे और अंग्रेजों ने देखा कि पंजाब के सिख विद्रोह करके महाराजा से मिल जायेंगे तो फिर ये जाली दस्तावेज गढ़े गये। इन्हीं दिनों सिंह सभा आन्दोलन शुरू हुआ और यह नारा लगाया गया कि, सिख हिन्दू नहीं। सभा का प्रधान एक अंग्रेज उप-राज्यपाल था। जिलों की शाखाओं में गोरे अधिकारियों को लिया जाता था। अंग्रेजों ने तो एक व्यक्ति को 'सर' की उपाधि देकर दरबार साहिब में गुरु गद्दी पर भी बिठाने का षड्यंत्र रचाया था परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। उसके ऐजेन्टों ने जलियांवालाबाग में सकड़ों भारतीयों के घातक जनरल डायर को दरबार साहिब में 'सिरोपा' देकर घोषणा कर दी थी कि, 'जनरल सिख बन गया है।'

अंतर

दो नये मंत्री,
देश की आर्थिक स्थिति
पर चर्चा कर रहे थे
तो उनकी पत्नियां,
अपने घर की
आर्थिक स्थिति पर

अशोक श्रीवास्तव 'अमित'

(पृष्ठ ६५ का शेष)

में इनका स्वास्थ्य बहुत सुधर गया। वे नियमित रूप से प्रातः एक मील टहलने जाने लगे। किन्तु भावी होकर ही रही शिवराम किंकर जी के कथनानुसार जिस दिन तीन महीने पूरे हुये, वायु सेवन के बाद घर लौटते हुए, रास्ते में एक ठोकर लगने से वे गिर पड़े खून की उल्टी हुई और इसके पहले कि उनके दोनों पुत्र कलकत्ता से मधुपुर पहुंच सके, उन्होंने शरीर त्याग दिया।

शिवरामकिंकर जी महाशय चिकित्सा के साथ घर पर कुछ विद्यार्थियों को निःशुल्क पढ़ाने का भी कार्य करते थे। इनके पास दो विद्यार्थी संस्कृत पढ़ने आते थे। वे यदाकदा आपस में अंग्रेजी में बातचीत किया करते थे। वह इनकी समझ में नहीं आती थी। इसके लिये इन्हें बहुत खेद हुआ। अर्थाभाव के कारण किसी अंग्रेजी शिक्षक को रखकर अध्ययन करना इनकी पहुंच के बाहर था। इन्होंने बिना किसी की सहायता के स्वयं ही अंग्रेजी पढ़ना शुरू किया पहली किताब मंगाई अंग्रेजी वर्ण माला का परिचय प्राप्त किया देख-देख कर लिखने का अभ्यास किया। शब्द ज्ञान होने पर एक निकटवर्ती जमींदार के पुस्तकालय में जाकर अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ने लगे। अंग्रेजी उपन्यासों में इनका इतना मन लग गया कि भोजन करने के बाद सारा समय पुस्तकालय में बैठकर इसी प्रकार की पुस्तकें पढ़ने में बिताने लगे केवल भोजन करने के लिये घर आते थे।

एक दिन सन्ध्या के समय में यह उसी पुस्तकालय में बैठे हुये कोई अंग्रेजी उपन्यास पढ़ रहे थे। उसी समय एक संन्यासी उनके घर आये और इनका नाम लेकर पुकारा घरवालों के बताने पर वे इन्हें ढूंढते ढूंढते पुस्तकालय पहुंचे। चपरासी ने इन्हें उनके आने की सूचना दी। बाहर आकर इन्होंने उनको साष्टांग प्रणाम किया। उनके दिव्य तेजोमय मुखमण्डल को देखकर ये अभिभूत हो गये। स्वामी जी संस्कृत में इनको फटकारते हुये बोले, "तुम्हें लज्जा नहीं आती ब्राह्मण के बालक होकर सन्ध्या समय अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते हो? तुम भूल गये हो कि किसके शिष्य हो? मैं स्वामी शिवराम का प्रथम शिष्य हूं। जिस समय गुरुदेव का देहान्त तुम्हारे घर पर हुआ था, मैं हिमालय में तपस्या कर रहा था। मैं तुम्हें जानता नहीं था, गुरुजी की आत्मा से मुझे यह सन्देश मिला कि बराह नगर के निकट वाली ग्राम में मैंने एक शिष्य बनाया है वह अभी बालक है। तुम उसे देखना मैं इसीलिये आया हूं। जाओ अभी गंगा स्नान करके प्रायश्चित करो।

अब से नित्य सन्ध्यावन्दनादि करके नियमपूर्वक गायत्री जाप करना न भूलना इतना कहकर वे इन्हें साथ लेकर उनके घर आये। शिवरामकिंकर के जीवन में इसी समय से अद्भुत परिवर्तन हो गया। उनकी जीवनधारा बदल गयी। उक्त स्वामी जी एक दो दिन रहकर काशी चले

गय । इन्हें नवीन दृष्टि प्रदान करने वाले ये महापुरुष स्वामी चिद्धनानन्द थे ।

घर पर कुछ दिनों तक साधना तथा स्वाध्याय में निरत रहने के बाद शिवराम किंकर जी बीमार माता को लेकर काशी चले आये और यहाँ अपने ज्येष्ठ गुरु भ्राता स्वामी चिद्धनानन्द से वेदान्त पढ़ने लगे । चिद्धनानन्द जी के आश्रम में संन्यासी लोग भी आकर उनसे पाठ लेते थे । शास्त्राध्ययन के समय चिद्धनानन्द जी शिवराम किंकर को अपने सामने बैठाते थे और दृष्टि उन्हीं की ओर रखते थे संन्यासी लोग पाठ सुनते मात्र थे । रात्रि में वे इन्हें योग की शिक्षा देते थे । स्वामी जी इन्हें गृहस्थ रूप में नहीं देखते थे यद्यपि उस समय भी ये गृहस्थाश्रमी थे । शिवराम किंकर जी गणेश मुहाल में रहते थे । साथ में इनकी माता जी थीं । ये अध्ययन के साथ चिकित्सा भी करते थे । इस प्रकार १८८७ ई० के सितम्बर महीने तक ये स्वामी जी के सान्निध्य में रहे । इसी वर्ष इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । इसके पश्चात् ये वराहनगर लौट गये । चिद्धनानन्द जी भी तीर्थ यात्रा पर चले गये । कई महीने पर्यटन करके वे माघ में प्रयाग पहुंचे और गंगा तट पर एक पर्णकुटी में रहने लगे । यहाँ वे पेचिस से पीड़ित हुये कुछ दिन रुग्ण रहने के बाद १८९० ई० के माघ मास में भीमाष्टमी को उन्होंने आसनवद्धमुद्रा में संगम में प्रवेश कर जल समाधि प्राप्त की । इसके पूर्व उन्होंने किसी परिचित व्यक्ति से शिवराम किंकर जी को तार देकर वंगदेश में बुलाने को कहा था और अपना पुस्तकालय उन्हें देने की इच्छा व्यक्त की थी किन्तु उनकी व्यवस्था नहीं हो पायी ।

काशी से वराहनगर जाने पर पहले कुछ दिनों तक ये अपने श्वसुर के घर पर ठहरे उसके बाद एक किराये का मकान ले लिया और उसी में सपरिवार रहने लगे । अर्थागत का कोई स्रोत न रहने से यह समय सारे परिवार के लिये बहुत कष्टकारक था । दिन में तो कभी भोजन बनता ही न था-रात-में यदि कभी कहीं से कुछ आ जाता तो उससे बच्चों के लिये प्रबन्ध कर देते । स्वंय दो बताशे, एक चापाकला (केला) और गुड़ खाकर सो जाते । शास्त्राध्ययन, साधना और अध्यापन में ये किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ने देते थे । स्वामी अभेदानन्द नियमित रूप से उनके पास वेदान्त पढ़ने आते थे । प्रमदादास मित्र का शिव प्रेरित बीमाकृत लिफाफ ३०/ सहित इसी स्थिति में प्राप्त हुआ था इनके आजीवन सेवक सतीशचन्द्र पाल पहले पहल इसी मकान में इनसे आकर मिले थे बाबाजी का मुख्य ग्रन्थ आर्यशास्त्र प्रदीप यहीं लिखा गया था ।

सतीशचन्द्र पाल योगत्रयानन्दजी के एकान्त सेवक थे । इनका जीवन बहुत अद्भुत है । मैं जब बाबाजी से घनिष्ठ-रुपेण परिचित हो गया था, इनका मधुर व्यवहार देखकर मुग्ध हो जाता था । बाबाजी के साथ ये छाया की भाँति लगे रहते थे ।

उनके आदेश से यह रोगियों के पास औषधियाँ भी पहुंचाते थे। इनके जीवन में आध्यात्मिक परिवर्तन का इतिहास बहुत ही अद्भूत है। एक दिन इनके गांव में यात्रीगण (सचल धार्मिक नाट्य मण्डली) द्वारा 'प्रहलाद चरित' नाटक अभिनीत हो रहा था। ये उसे देखने गये। उसका इनके चित्त पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि इन्होंने उसी दिन घर छोड़ दिया और हरिनाम लेकर भजन करने लगे। कुछ दिनों तक साधु सेवा के लिये स्वामी विवेकानन्द के मठ बेल्लूर में भी रहे। अन्त में ये शिवरामकिंकर के पास आ गये और फिर जीवानान्त तक इन्हीं के साथ रहे।

बराहनगर से बाली के जमींदार राजेन्द्रलाल सान्याल इन्हें सपरिवार कलकत्ता ले गये वहाँ कई वर्ष रहे। महेन्द्रदास नामक एक ठेकेदार की प्रेरणा से ये १९०६ में काशी चले आये। यहाँ उन्होंने सोनारपुरा में एक मकान किराये पर लेकर इनको टिकाया इसी समय बम्बई के प्रसिद्ध वकील भाई शंकर काशी आये। योगत्रयानन्द जी से वेदान्त विषय पर उनकी बहुत देर तक अंग्रेजी में बातचीत हुई। वे इनके मौलिक विचारों को सुनकर मुग्ध हो गये। देह त्याग के पूर्व उन्होंने जो वसीयत लिखी उसमें स्वामी जी के नाम कई हजार रूपये देने की व्यवस्था की। उनके मरणोपरान्त वे रुपये इनके पास आये। स्वामी जी ने वह सारा धन आर्त व्यक्तियों को कन्यादान अथवा ऋण मुक्ति के लिये बांट दिया। इनका प्रथम दर्शन मैंने शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ इसी सोनारपुरा वाले मकान में किया था।

इसी मकान में इनके पिताजी निमोनिया से पीड़ित हुये। इस समय उनकी अवस्था ७२ वर्ष थी। योगत्रया नन्दजी ने उनकी स्थिति देखकर जान लिया कि अब अन्त समय है समस्त कुटुम्ब जुट गया। इन्होंने उनके सारे शरीर में चन्दन से राम-राम लिखा, फिर उनके सम्मुख समाधिमुद्रा में बैठ गये। थोड़ी देर बाद इनके दोनों हाथ ऊपर उठे। उसी समय पिताजी का प्राण वायु ब्रह्मतालु से निकला। बाद में जब इनसे पूछा गया कि आपने हाथ ऊपर क्यों उठाया था तो उन्होंने बताया कि मैंने पिताजी की देह में प्रवेश करके उनका प्राण वायु ब्रह्मतालु से निकलवाया है। यदि पिता की इतनी भी सेवा न करता तो मेरे पुत्रत्व से उन्हें लाभ ही क्या होता। इस घटना का विवरण मुझे इनके दौहित्र श्री श्रुतिप्राण भट्टाचार्य ने बताया था १९१० में योगत्रयानन्दजी सोनारपुरा छोड़कर मैदानी चले गये। कश्मीर नरेश महाराजा प्रतापसिंह यहीं इनके दर्शनार्थ उपस्थित हुये थे। जिन दिनों ये भदैनी में निवास कर रहे थे, कालीपद मुखोपाध्याय नामक एक शिष्य ने इनके निवास के लिये राजघाट पर एक मकान निर्मित कराया और इन्हें बड़े आदर के साथ ले जाकर वहाँ ठहरा दिया। उन्होंने

इनकी सेवा के लिये रु०१००/-मासिक का बन्धान कर दिया। स्वामी जी इसी मकान में अपने तीन पुत्रों विभूतिभूषण, फणिभूषण और इन्दुभूषण के साथ रहने लगे।

राजा मोतीचन्द्र योगव्रयानन्द पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। एक दिन उनकी पत्नी, स्वामी जी के दर्शन के लिये आयीं। थोड़ी देर के बाद जब वे जाने लगीं तो चुपके से एक लिफाफे में १००० रु० के नोट बाबाजी के आसन के नीचे रख दिया। वे अभी पालकी पर नहीं बैठी थीं कि स्वामीजी को इसका पता चल गया। उन्होंने तत्काल एक सेवक द्वारा रानी साहिबा को वापस बुलाकर उनसे पूछा,'यह रुपया आपने कैसे रख दिया ? 'रानी साहिबा ने कहा मैं आपकी लड़की हूं। बच्चों के लिये ले आयी थी। स्वामी जी ने कहा, "अभी इसे अपने पास रखे रहो। बच्चों को जब आवश्यकता होगी-चला आयेगा। यह कहते हुये उन्होंने लिफाफा रानी साहिबा को लौटा दिया। रानी साहिबा को भय था कि प्रतिवाद करने से स्वामी जी क्रुद्ध हो जायेंगे। इसलिये चिन्तित मन से उसे रख लिया। उस समय स्वामीजी का मध्यम पुत्र फणिभूषण वहाँ उपस्थित था। उसकी आदतें ठीक नहीं थीं। प्रायः बाबाजी के नाम पर उनके कृपापात्र सेवकों से रुपया उधार लाकर नाना व्यसनों में व्यय किया करता था। दस पन्द्रह दिन बीतने पर राजा मोतीचन्द्र की कोठी पर गया और रानी साहिबा से कहला भेजा कि बाबा ने रुपये मांगे हैं। रानी साहिबा ने उसे तत्काल १००० रु० दे दिया। इसके कई महीने बाद राजा साहब के एक कर्मचारी द्वारा स्वामी जी को इसका पता चल गया। वे पुत्र के इस व्यवहार से बहुत दुःखी हुये। उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब काशी में रहूंगा तो इसी प्रकार हमारे परिचितों से रुपया लेकर मुझे यह बदनाम कर देगा। उन्होंने तत्काल काशी छोड़ देने का निश्चय किया। यह घटना १९२० ई० के अक्तूबर की है। काशी से अन्तिम विदा लेकर ये इसी महीने में कलकत्ता चले गये।

कलकत्ता में राधिकाप्रसाद राय ने इनके निवास भोजनादि का पूरा प्रबन्ध कर दिया। किन्तु वहाँ के जनसंकुल अशान्त वातावरण में इनका मन नहीं लगा। इनके एक शिष्य मुजफ्फरपुर के वकील बाबू नगेन्द्रनाथ चौधरी को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने उत्तरा पाड़ा में गंगातट पर इनके रहने के लिये एक किराये का मकान ठीक कर दिया। वे परिवार सहित वहाँ चले गये। अपने जीवन के शेष वर्ष स्वामी जी ने यहीं बिताये। अन्तिम दिनों में कुछ समय तक इनके एक शिष्य यतीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने नियमित रूप से स्वामी जी के परिवार का व्यय भार वहन किया।

देहान्त के पूर्व स्वामी जी ने आतुर संन्यास ले लिया था। इसी स्थान पर २५ आश्विन १३३६ बंगाब्द (१९२९)

में प्रायोपदेश के द्वारा योगत्रयानन्द महाशय ने अपनी ऐहिक लीला संवरण की।

शिवराम किंकर महाशय भगवान के अनुगत अनन्य भक्त थे। व्यावहारिक जीवन में उन्हें जैसे आवश्यकतानुसार अपेक्षित वस्तु यथासमय अयाचित प्राप्त हो जाती थी। तत्वज्ञान के सम्बन्ध में भी यही स्थिति थी। इनके जीवन की निम्नांकित घटना से यह स्पष्ट हो जायेगा।

पाणिनीय व्याकरण पर पतंजलिकृत महाभाष्य पढ़ने की इनकी बलवती इच्छा थी। किन्तु उस समय बंगदेश में पाणिनी व्याकरण का प्रचार अधिक नहीं था। अतः महाभाष्य पढ़ाने योग्य पण्डित विरले ही मिलते थे। इस विषय के दो विद्वान सर्वाधिक प्रसिद्ध थे। पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति और महामहोपाध्याय पं० गोविन्द शास्त्री। शास्त्रीजी वाराणसी संस्कृत कालेज में प्राध्यापक पं० दामोदर शास्त्री के भाई थे। शिवराम किंकर जी इनसे पढ़ना चाहते थे यही भाव लेकर ये उनके पास गये और उनसे पढ़ाने की प्रार्थना की। उस समय उनके पास कालेज के कई विद्यार्थी बैठे हुये थे, अतः उनसे कहा, "आज नहीं होगा, किसी दूसरे दिन आना।" जब ये दूसरे दिन गये, तब भी उन्हें पढ़ाने का अवकाश नहीं था। तीसरे दिन बुलाया फिर भी समय न दे सके। इसका कारण यह था कि वे बाहर के विद्यार्थियों को पढ़ाने में यह सोचकर रुचि कम लेते थे कि इनसे प्राध्यापक का गौरव नहीं बढ़ता। तीसरे दिन कोरा उत्तर पाकर शिवराम किंकर हताश हो गये। चलते समय उन्होंने शास्त्री जी का पैर पकड़कर अत्यन्त दीनभाव से निवेदन किया, अवश्य थोड़ा समय दीजिये। कोई दूसरा पढ़ाने वाला नहीं है।' किन्तु शास्त्री जी पसीजने के स्थान पर क्रुद्ध हो गये। उन्होंने पैर झटक कर कहा, 'यहां से चले जाओ। मुझे फुरसत नहीं है।"

शून्य से आये योगी

शास्त्री जी के इस प्रकार के व्यवहार से शिवराम किंकर ममार्हत हो गये। मैं तो इनके पास केवल ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से आया था। किसी लौकिक स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं, इस प्रकार इन्होंने हमारा इतना अपमान किया, यह सोचकर वे बहुत दुःखी हुये। वहीं उन्होंने सकंल्प किया कि मैं अब किसी मनुष्य के पास ज्ञानार्जन के लिये नहीं जाऊँगा। 'इस घटना से चित्त में बहुत निर्वेद रहा। घर आकर भोजन नहीं किया। रात भर नींद नहीं आयी। मन में बार-बार विचार उठता रहा कि मैं अभाग हूं, जिज्ञासु हूं किन्तु ज्ञान देने वाला नहीं है। यह सोच उनकी आंखें झपकने लगीं। रात में दो बजे के लगभग अकस्मात उन्हें झटका लगा, देखा घर में आलोक का प्रकाश हो रहा है। सामने शून्य में एक महापुरुष खड़े दिखाई दिये। जटाधारी, वृद्ध शरीर निलम्बित श्मश्रु, करुण नेत्र। समागत महापुरुष ने बहुत करुण भाव से शिवराम किंकर से पूछा, तुमने आज भोजन नहीं

किया। ऐसे ही पड़े रहे। ये बोले महात्मन मेरे मन में अत्यन्त कष्ट है। इसके साथ उन्होंने शास्त्री जी द्वारा किये गये तिरस्कार का वृतान्त रो-रो कर कह सुनाया। मैंने उनसे कोई अर्थ याचना नहीं की, केवल ज्ञान-भिक्षा की, याचना की वह भी नहीं मिली-उल्टे घोर उपेक्षा सहनी पड़ी। महापुरुष ने सान्त्वना देते हुये कहा, घबड़ाओ मत किसी ने तुमको महाभाष्य नहीं पढाया तो क्या हुआ? मैं पढ़ाऊंगा मैंने उसकी रचना की है। क्या पढ़ा नही सकता? 'यह सुनकर शिवराम किंकर महाशय गद्‌गद् हो गये और महापुरुष से पढ़ने के लिये महाभाष्य की वे प्रति सामने रख ली। इसके बाद महापुरुष ने क्या पढ़ाया इसका उन्हें पता नहीं किन्तु कुछ देर तक पढ़ाया। ऐसा इन्हें आभास हुआ। महा-पुरुष अर्न्तध्यान हो गये उनके चले जाने के पश्चात् जब इन्हें लौकिक ज्ञान प्राप्त हुआ तब उनका स्मरण कर रोने लगे। कृतज्ञता से इनका हृदय भर गया। इस दर्शन का प्रभाव यह हुआ कि दूसरे दिन प्रातःकाल जब इन्होंने अपने पढ़ने के उद्‌देश्य से महाभाष्य खोला तो ऐसा लगा जैसे सब कुछ इनका पढ़ा हुआ है। समग्र महाभाष्य एक मात्र ज्ञान गोचर हो गया। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्यशास्त्र प्रदीप' में इन्होंने पतंजलि के व्याख्यान का किसी किसी स्थान में उल्लेख किया है। विशेषरूप से पुलिंग तथा स्त्रीलिंग का रहस्य समझाने के विषय में प्रवृत्ति लक्षण का विश्लेषण बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार योगत्रयानन्दजी ने मुझे एक दूसरी घटना बताई थी, जिसमें एक बार शिवरात्रि की रात्रि में उन्होंने गौतम ऋषि से न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था यह सब विषय साधारण मनुष्य धारणा के अयोग्य है। परन्तु सत्य है।

गणेश-लक्ष्मी

कहानी

इन्द्रविक्रम विद्यार्थी

"दुलारेकी अम्मा, मैंने एकसठ पतझार देखे भए हैं और बासठ फगुनहट्टे। अबकी की चिलचिलाती लू झेल ली है पर इस बरखा की झमाझम झड़ी देखने की नौबत ना आने की।" किशोर ने जमना से कहा।

अपनी झंलगई खटिया से बाहर वह कम ही निकलता था — पास ही टूटही खटिया पर बैठी जमना सदा मुंह ही निहारा करती। बख्शी के तालाब में आपको कोई सारस जोड़ में नहीं बल्कि अकेला खड़ा दिख जायगा—इसकी आस तो आप कर सकते हैं, पर इसका चान्स न मानिएगा कि खजुहा की इस बाहर वाली कोठरी में आपको किशोरी अकेला दिख जायेगा। एक टांग से खड़ी उसकी पत्नी- कभी बेना डुलाती, कभी आव-खोरा से पानी पिलाती सदा वहीं दिखती रहती। किशोरी की आंखों का गढ्ढा काफी गहरा हो चला था। उसकी पीठ उसके पेट से जा लगी थी। मरी राख भरी खपरी उसके सामने हर घरी थूक से भरी धरी ही रहती थी। वह खांसता तो खांसता ही जाता, सांस न लेता था। कलेजा धक् धक् करता दिखाई देता। चालीस बरस के दमे ने उसे तोड़ दिया था। दम तोड़ने की बारी आ रही थी। जब तब जमना भर आँख उसे देख लेती थी और अपने दाहिने हाथ की अंगूरी से मांग के सिन्दूर को छूकर मानो विश्वास जमाती थी कि उसका सुहाग बना है।

सुहाग इस साल भी बना रहेगा-यह देखना था। भगवान जो दिखावे।

किशोरे बोला, 'देख रे! मुझे मरने का डर नहीं ना। सन्तोख है कि मैं काफी देख चुका, काफी सुन चुका। मेरे तेरे हाथ के बने खिलौने ले चौक निख-लऊ से चांदनी चौक देहली तक हाथों-हाथ बिकते हैं। हमारे दोनों सयाने बच्चे भी बाप दादों के धन्धे में काफी हुसियार हो चले। पहले तो मेरे दो ही हाथ, दो ही पैर और दो ही आँखें थी— और अब तो भगवान की किरण से छः छः हाथ, छः छः पैर और आधी दर्जन आंखे हैं। मुझे क्या गम? हां, कोई फिकर अगर मुझे दिन रात खाये जाती है तो वह यह कि इधर मैं भैंसा कुण्ड जाने की तैयारी किए बैठा हूं—उधर इलाज के

चिर प्रतीक्षित

शीघ्र प्रकाशित

डा० हेडगेवार (चरित्र)

पृष्ठ संख्या–५००

मूल्य–रु० ४२ प्रति पुस्तक

की आरक्षण तिथि

१ मास के लिये और बढ़ा दी गई

अब विशेष छूट

१५ दिसम्बर, १९८२ तक

मुद्रण पूर्व आरक्षण मूल्य

रु० २५ प्रति पुस्तक

डाक, पैकिंग, फारवर्डिंग व्यय अतिरिक्त

(एक प्रति रजिस्टर्ड डाक से रु० ५.०० डाक व्यय अतिरिक्त)

अतः

आज ही रु० ३०.०० मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजकर

अपनी प्रति सुरक्षित करायें

सम्पर्क करें—

व्यवस्थापक

लोकहित प्रकाशन

पो० बा० २०७, राजेन्द्र नगर, लखनऊ—४

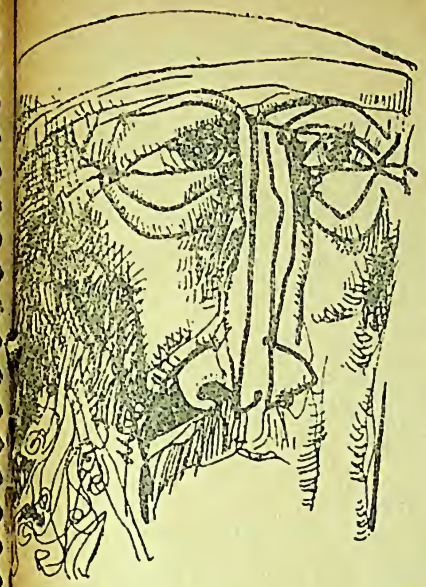

वास्ते लिये मए तीन हजार कर्जे में अभी भी सवा हजार चुकाने को बचे हैं, ब्याज ऊपर से। मैं कर्जी मरूं— इससे बड़ा पाप का घड़ा क्या साथ ले जाऊंगा ? बच्चों को मुन्नीमल सर्राफ का तकाजा सुनना पड़ेगा-सोचते ही मैं कांप जाता हूं।'

जमना रोने लगती।

जब तब किशोर की हालत खराब जाती। अब तब होने को होता। डाक्टर किशोरीलाल भागते आते और उसे संभालते। अबकी बार ऐसा हुआ था कि किशोरे साढ़े पांच घण्टे बेहोश रहा था। डाक्टर ने उसे कोरमिनिका सुई लगाई; जमराज भगवान के दूतों के चंगुल से बाहर निकाला था।

फिर इसकी नौबत न आवे। बच्चों को सर्राफ का तकाजा न सुनना पड़े। यही सोचकर किशोरी ने अपना पुश्तैनी घर साढ़े चार हजार में बेच दिया। फिर उसी में किराऐदार होकर रहता रहा। डेढ़ हजार बचा कर्जा और उसका सूद चुका दिया। हां, डाक्टर बाबू के ऋण से वह सात जनम नहीं उऋण होगा किशोरे यही मानता। सर्राफ मन्नीमल के कर्जे के बोझे का खियाल उसकी छाती पर से डाक्टर बाबू की बारदौलत ही हटा था। उसने आंखों में आंसू ले डाक्टर बाबू के पैर छुवे। उसकी चिरौरी विनती की— लाख-लाख-कहा पर दवा के मुनासिब दाम और अपनी फीस की आधी से अधिक और एक नया पैसा भी लेना डाक्टर ने कबूल न किया। यही कहा, "कोई अपने से भी दाम काम, फीस बीस लेता है ?" किशोरी ने तो किशोरे से सब दाम और आधी फीस ले भी ली है।

किशोरी चुप कर गया। जमना आंखों में आंसू भर ले आई। डाक्टर चलने को हुए। कमरे की अलमारियां पूरी और फर्श तीन चौथाई बने—अध बने, रंगे पुते, बिन रंगे मिट्टी के कलात्मक खिलौनों और दीवाली के गणेश-लक्ष्मी से खजुराहो के एक कक्ष से लगते थे। बच्चों के वास्ते कुछ खिलौने वगैरा चुन के डाक्टर की कार में रखने को जमना ने उठाए ही थे कि किशोरे ने हरक दिया—' बैली कहीं की ! डाक्टर बाबू को लदाएगी कि बंगले जाकर खुद अपने हाथ बच्चों को दे आएगी ?'

जमना ने ऐसा ही किया। डाक्टर

BHARAT GENERAL & TEXTILE INDUSTRIES LIMITED

Leading Exporters in the field of
OIL CAKES, EXTRACTIONS (DEOILED CAKES)

Export Sales Office ;
72A. Mittal Tower, 210 Nariman Point, Bombay-400 021
Telephone : 224114, Gram : BESTCAKES Telex : 011-4405
Answer Back : 'BGTI IN'

Manufacturers of
Washed Cotton Seed Oil and Cotton Seed Oilcakes
Refined Cotton Seed Oil 'COOKEN' Brand and Refined Groundnut Oil 'SAUBHAGYA'

Extraction Division
MALKAPUR (BULDANA), MAHARASHTRA
Phone : 130, Gram : 'BHARAT'

Oil Mills & Vegetable Oil Refineries :
DHAMANGAON, MALKAPUR & ACHALPUR (All in MAHARASHTRA) and GUNTUR (ANDHRA PRADESH)
Dealers in COTTON all over India
Cotton Gin & Press Factories
DHAMANGAON, ACHALPUR & YEOTMAL
(all in MAHARASHTRA)

Spinning Mill :
ASSAM COTTON MILLS, CHARIDUWAR (ASSAM)
Gram : YARNMILL, LOKRA (ASSAM)
Phone : Rangapara 47 & Balipara 51

Regd. & Head Office :
9/1, R. N. Mukherjee Road, Calcutta-700 001.
Phones : 22-7668, 22-0629 & 23-6976
Telex : 021-3394 Answer Back : 'BGTI IN'
Gram : 'KESOSHOP'

खुश हुए। इनाम और दाम देना चाहा। पर हाथ जोड़ चिरौरी कर मना करके जमना वापस लौटी माफी मांग कर।

असाढ़ की बरखा आई। किशोरी ने अपना कहा पूरा किया। पहले ही चल बसा। सावन की हरियारी जमना को छूटी आंख न सुहाती। कातिक में सबके घर लिपे-पुते, जमना का घर ऐसे ही रह गया। अबकी दीवाली के खिलौने भी नहीं बने। हां; छोटी दीवाली के दिन कागज में कुछ लपेटे, बांधे डा० किशोरी लाल के बंगले राजेन्द्र नगर में जमना पहुंची। डाक्टर ने खैरियत पूछी। आंखों में आसूं भर कर जमना ने कागज में से खोलकर एक बड़ा-सा जोड़ा गणेश-लक्ष्मी का उनके सामने रख दिया। डाक्टर ने बहुत पसन्द किया। सभी करते। दाम पूछा। जमना की जबान ने कम कहा उसके आंसुओं ने ज्यादा। डाक्टर दाम दे न पाए।

जमना के चले जाने के बाद गणेश-लक्ष्मी का जोड़ा डाक्टर ने फिर देखा बड़ी-बड़ी मूर्तियां थीं— जितनी बड़ी, उससे अधिक कलात्मक। देखते ही रह जाइए- कम से कम बीस रुपये की तो होंगी। गरीब का नुकसान क्यों किया जाय-उसका इतना भाव है तो अपना भी तो कुछ फर्ज है। डाक्टर सोच में पड़ गये कैसे यह भी हो और जमना के मन को ठेस भी न पहुंचे। डाक्टर को थोड़ा डर था कि

बड़ी साध से लाए पत्नी के गणेश-लक्ष्मी से पूजन न करने पर वह मलाल न करे—पर काम आई उसी की बुद्धि और विशाल हृदय। उन्होंने खुद अपने लड़के को पचीस रुपये और दीवाली के खीलें बताशे वगैरह देकर जमना के पास भेजा। कहलवाया गणेश-लक्ष्मी की पूजा होगी, त्यौहार के अवसर पर। पूजा की मूर्ति मुफ्त में लेनी ठीक नहीं—इनाम दाम का जमना का हक होता है। पर जमना एक होशियार निकली। खीलें बताशे ले लिए पर दाम के नाम पर एक रुपया भर लेकर बाकी के चौबीस यह कह के लौटा दिये कि हमारी गरीब की ऐसी ही श्रद्धा है।

डाक्टर और उनकी पत्नी ने दीवाली पर बगल- बगल बैठ गणेश-लक्ष्मी की पूजा की। उन्होंने ठान लिया कि अबके से हर दीवाली का पूजन जमना के ही गणेश-लक्ष्मी से होगा। यदि किसी वर्ष उससे न मिल पाया तो इसी वर्ष आए गणेश-लक्ष्मी से आराधन करेंगे— चाहे तो कहीं से नये के नाम पर छोटे-मोटे गणेश-लक्ष्मी मंगा लेंगे।

डाक्टर किशोरी लाल पुराने डाक्टर न थे पर घर पर लक्ष्मी की कृपा हुई। चाहे इसे संयोग कहिए, चाहे गणेश-लक्ष्मी का प्रसाद, चाहे तो गरीबनी श्रद्धा —कुछ भी जो आप चाहें। छः माह होते—होते डाक्टर को फिर पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ, डालीबाग में उन्होंने नया बंगला बनवा लिया, नई कार आ गई। घर में वीडियो कैसेट का सेट भी हो गया। अगली दिवाली भी आ गई।

त्यौहार के दो दिन पूर्व डाक्टर ने स्वयं अपने बड़े लड़के को जमना के घर भेजा कि नए गणेश-लक्ष्मी ले आवे। बेचारी जमना लजा गई। उसके हाथ तंग थे लम्बा खर्चा था, बच्चों को पढ़ाने का भी शौक था। एक छोटा-सा जोड़ा निकाल के उसने आलोक से कहा, "इसे ले जाओ बबुआ। डाक्टर बाबू हमारी श्रद्धा को

दीपावली के शुभ अवसर पर सभी ग्राहकों तथा शुभचिन्तकों को
हमारी हार्दिक शुभकामनाएं

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

इतीन कदर करेंगे। हमें मालूम न था नहीं तो हम पार साल से भी अच्छा बना के बंगले पर पहुंचा देते।'

इसके बाद की दीवाली में जमना ने पहले वाली मूर्त्तियों से भी अच्छे गणेश-लक्ष्मी बनाए। बनाए तो पर कैसे? सुनिए। दुलारे नौकरी तलाशने नागपुर गया था; दूसरा बच्चा अभी छोटा था। वह खुद बीमार थी। मूर्तियों के सामान के पैसे कहां से आवें! उसने अपना एक हाथ का चाँदी का पछेला बेंच ड़ाला। इतना दाम हो गया कि मूर्ति का सामान आ जाय, घर में कुछ जिन्स पात हो जाय तथा कुछ दवा दारू का भी दाम हो जाय।

जमना दीवाली की साँझ देर से निकल पाई। छोटा ही सही पर साथी होगा —यह सोच जमना ने छोटे लड़के को साथ ले लिया। गणेश लड़के ने संभाला और लक्ष्मी तथा कुछ खिलौनों को जमना ने। डालीबाग के रास्ते से ज्यादा घरों में दिए जल गये थे। बंगले पर नौकर चाकर मोमबतियाँ जमा रहे थे। बल्ब सजा रहे थे। जमना ने पाया डाक्टर और उनकी पत्नी पूजा पर साथ बैठे हैं—

शुरू ही करने वाले हैं। मूर्त्तियों के नाम पर उनके सामने पीढ़े पर वही पहले साल वाली दोनों मूर्तियाँ रखी हैं— किशोरे के हाथ की बनी उन्हीं पर फूल अक्षत चढ़ रहा है। कुछ दूर पर वहीं एक उस जोड़ से भी अधिक मोहक जोड़ा गणेश लक्ष्मी का नया-नया रखा है, गणेशजी की सूंड — लगता था हाथी दांत की है, लक्ष्मी जी के गले का हार ऐसी झलक देता था जैसा अजन्ता की एक गुफा में एक अप्सरा के हार के मोती के दाने चमक रहे हों।

'आओ, आओ जमना आओ। लाओ, हमारे गणेश-लक्ष्मी यहां पीढ़े पर रख दो। हमारी पूजा के समय तुम भी बैठो। बच्चों का छुआ दो। जाते समय पियारे अपने वास्ते खिलौने, पटाखे, मिठाई वगरह ले कर जाये-ध्यान रखना। तुम लोग खाना खाकर भी जाना-चाहे थोड़ा, चाहे बहुत, जैसा चाहना। चलते समय डाक्टर ने बहुत-सा सामान जमना और उसके लड़के को दिया। इनमें सबसे ज्यादा कीमत का सामान था डाक्टर के अपनी आंखों से ढली आंसू की चार बूंदें जो कहते थे हम गरीब की श्रद्धा समझते हैं, जमना की भावना जानते हैं।

० ० ०

अगली दीवाली आई। बंगले पर पहुंचना जमना के बस के बाहर की बात थी अबकी। सिया सुन्नी का झगड़ा शहर में जोरों पर था। लगभग सारा दिन कर्फ्यू लगा रहता। दंगाई लोग मासूम

बच्चों तक को उठाकर लगाई गई आग में जिन्दा झोंक देते।

बुर्केवालियों के नाक-कान काट लेते। मरदों के हाथ-पैर जिस्म से अलग कर देते या आंखों में गरम सलाखें भर देते।

मुख्यमंत्री स्वयं प्रभावित क्षेत्रों में दौरा करके अमन लाने की चेष्टा में लगे थे, किन्तु वैर और बदले से भरे लोग काबू में अभी नहीं आ रहे थे।

जमना को दो माह हुए किराया न दे सकने के कारण अपने मकान से बेदखल होना पड़ा। ठाकुरगंज में झोपड़ियां वाली एक कोठरी में उसे बच्चों सहित आवास लेना पड़ा। इस मकान का पता डाक्टर बाबू को हो गया था।

दीवाली पर उसे डाक्टर बाबू के वास्ते तो गणेश-लक्ष्मी बनाना था ही। बनाए भी। पर बंगले वह न पहुंचा पाएगी। एक बार तो अपनी जान पर भी खेल जायगी—पर जान देकर भी गणेश-लक्ष्मी न पहुंचा पाई तो जान देने से फायदा क्या-यही सब जमना सोचती रहती। धन तेरस आ गई। गणेश-लक्ष्मी अभी तक पहुंच न पाए थे।

इधर डाक्टर बाबू सोचते-जमना ने उनके गणेश-लक्ष्मी बनाए तो जरूर होंगे पर पहुंचा कैसे पावेगी बेचारी हर-वक्त के लगे कर्फ्यू में। निकलेगी तो या तो पुलिस वाले धरेंगे या बलवाई लोग। अबकी डाक्टर ने हौसले से दो चांदी के

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

GARG CHEMICALS P. LTD.
17, GANESH CHANDRA AVENUE,
CALCUTTA-700013 (India)
Manufacturers
EXPORTERS AND AGENTS
Phones : 26-4538/39
Telex : 021-2340 Garg in
Cable : Gargchem
Proprietor of PIGMENTS & CHEMICAL PRODUCTS
Manufacturing "SCALE" BRAND ZINC OXIDE

रुपये बनवाए थे लक्ष्मी की मुर्ति वाले। पूजन के वास्ते। एक अपने और दूसरा जमना के लिये।

छोटी दीवाली आई। न चांदी का रुपया जमना को मिल पाया था और न गणेश-लक्ष्मी का जोड़ा डाक्टर बाबू को। उन्होंने सोचा उनके घर से बाहर निकलने पर ही काम बन पड़ेगा।

० ० ०

आज बड़ी दीवाली थी। जमना गणेश-लक्ष्मी लिए बैठी थी। बैठे-बैठे रहा न गया। वह बाहर निकल पड़ी-दोनों देवताओं के सहारे। पियारे से कहा दिये जला देगा। भगवान ने चाहा, उसका भाग रहा तो वह आज से काल तक में जरूर किसी न किसी तरह घर वापस आ जावेगी।

० ० ०

सुशीला ने बहुत-बहुत हाथ जोड़े, पर डाक्टर बाबू न माने। निकल ही पड़े चांदी का रुपया दे आने और गणेश-लक्ष्मी ले आने। पत्नी ने बिनती की वह भी साथ चले। पर डाक्टर न माने। हां फोन पर कह कर मिल्र डी०एस-पी० सिटी से तीन पुलिस मैन अंगरक्षा के वास्ते साथ जाने को जरूर मंगवा लिए।

ठीक नक्खास के पास जब इनकी कार पहुंची तो शोर करते हुए दंगाइयों ने कार रोक लिया, घेर लिया। गाड़ी पर का डाक्टरों वाला निशान उनके वास्ते कुछ अर्थ न रखता था। पर, हां जब उन लोगों ने कार के भीतर तीन वर्दीधारी भी देखे तो उनके हवास सही हो गये।

एक तरफ कुछ ज्यादा हो-हल्ला हो रहा था। एक गरीब घर की औरत मुंह औंधे बेहोश पड़ी थी। चेहरे के ऊपर का कपड़ा खून से सन रहा था। पास ही जरा हट कर कागज में लिपटा, सुतली से बंधा कुछ पड़ा था।

डाक्टर के मन ने कहा-यह जमना होगी। कागज के पुलिन्दे में गणेश-लक्ष्मी ही होंगे। उनका सोचा सही निकला।

जमना की हालत फर्स्ट एड से अधिक का उपचार मांगती थी। पास कार भी थी, निकट मेडिकल कालेज था ही। जमना को कार में चढ़वा कर डाक्टर बाबू मेडिकल कालेज की ओर चल लिए।

दीवाली पूजन अबके हो न हो, इसकी उन्हें चिन्ता न थी। जमना अब संभल जायगी ही। उनके गणेश-लक्ष्मी उन्हें मिल गये और जमना का चांदी का रुपया जमना को। अलबत्ता दोनों के काम दोनों चीजें दूसरे साल आने को थीं-इस साल नहीं।

० ० ०

द्वारा-रामकृष्ण सिनहा
'शुभम्' सी-११७।डी सेक्टर ए
महानगर लखनऊ-६

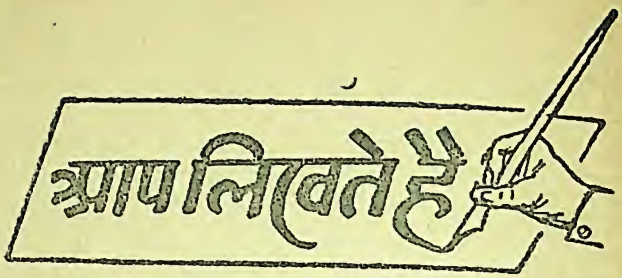

मध्यप्रदेश सरकार की दमनात्मक हरकत : पार्कों में शाखाएं लगाने पर प्रतिबंध : १३ नावों पर शाखा लगी

मध्य प्रदेश-शासन द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की दैनिक शाखाओं के प्रति बरती गई दमनात्मक सख्ती से अनेक बन्धु अभी तक अनभिज्ञ नहीं रहे होंगे। ग्वालियर तथा रतलाम में संघ की रैलियों को, जिन्हें माननीय बालासाहबजी देवरस के आगमन पर क्रियान्वित किया जाना था, सरकार द्वारा सार्वजनिक स्थान प्रतिबन्धित कर परेशान करने की कोशिश की गई। पूजा बालासाहबजी के प्रवास को भी गड़बड़ाने की नाकाम कोशिश की गई। श्रीमती गांधी की चरण-पादुकायें धोने वाले मुख्यमन्त्री अर्जुनसिंहजी ने शायद यह समझा होगा कि इस प्रतिबन्ध से उनकी और भी पद-वृद्धि हो जायेगी, किन्तु उनकी करतूत से संघ-शाखाओं में होने वाली स्वाभाविक-वृद्धि से संघ को ही लाभ हुआ है।

मध्यप्रदेश-शासन ने भोपाल महानगर की ६ संघ-शाखाओं को भी प्रतिबन्धित किया, जिसमें हमारे नगर की (विक्रम नगर) एक शाखा स्थानीय नीलम पार्क में लगती थी उसको भी प्रतिबन्धित किया गया। अतएव इस प्रतिबन्ध के

नावों पर शाखाएं लगाने का दृश्य

विरोध में विक्रमनगर की सायं शाखाओं द्वारा स्थानीय छोटे तालाब में एक विशाल 'जल-संचलन' के नाम से अभूतपूर्व कार्यक्रम किया गया, जिसमें १३ नावों पर लगभग ३० स्वयंसेवकों द्वारा किये गये कार्यक्रम को देखने हेतु विशाल भीड़ उपस्थित थी। कार्यक्रम में तालाब के बीचोबीच शाखा लगायी गई, राष्ट्रीय गीत गाये गये और अन्त में संघ की प्रार्थना के साथ शाखा विकिर की गई। खुशी की बात यह है कि इसमें हमने सी० आई० डी० पुलिस को भी आमन्त्रित किया। वे लोग आये भी किन्तु सरकारी आदेश के अभाव में कुछ कर सकने में असमर्थ रहे। यह कार्यक्रम दिनांक १६-१०-८२ को किया गया। इस कार्यक्रम का विवरण व फोटो-कापी मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री तथा जिला कलेक्टर, भोपाल श्री बादलदास को भी प्रेषित की गई है।

गुरमीत छाबड़ा 'गम्भीर'

विक्रम नगर, खण्ड कार्यवाह (पूर्व के सायं शाखाओं के) भोपाल

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

के

अनुपम प्रकाशन

१–उर्दू हिन्दी शब्दकोश	२८.००
२–हलायुध कोश	२५.००
३–हिन्दू धर्मकोश	४५.००
४–तांत्रिक साहित्य	३०.५०
५–धर्मशास्त्र का इतिहास (५ खण्ड)	६४.५०
६–भारतीय इतिहास कोश	१८.००

इनके अतिरिक्त ५०० अन्य ग्रन्थ मूल्य अत्यन्त ही कम सूचीपत्र निःशुल्क।

सम्पर्क सूत्र
विनोद चन्द्र पाण्डेय
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
महात्मा गांधी मार्ग
लखनऊ

(पृष्ठ ११ का शेष)

सस्वर गाते भी थे कि:—

'हे मातृभूमि ! तेरी सेवा किया करूंगा।
फांसी मिले मुझे या हो जन्म-कैद मेरी,
बेड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन करूंगा ॥'

अश्फाक फांसी की कोठरी में भी कुरान शरीफ के साथ ही गीता का संदेश गले लगाये रहे। लिखा,

मौत और जिन्दगी है दुनिया का एक तमाशा।
फरमान कृष्ण का था अर्जुन का बीच रन में ॥

वे सच्चे मुसलमान थे, मर्देमोमिन थे। देश के प्रति उनके ये उद्‌गार साक्षी हैं:—

तेरे ही वास्ते आलम में हो गये बदनाम, तेरे सिवा नहीं रखते किसी से हम कुछ काम।
वतन ! न दे हमें तर्के वफा[1] का तू इलजाम ! कि आबरू पे तेरी हम निसार होके चले ॥

उन्हें दुःख है तो यह कि:—

मेरा हिन्दूकुश हुआ हिन्दूकश, ये हिमालिया है दिवालिया।
मेरी गंगा-जमना उतर गई हैं, बस इतनी हैं कि नहा सकें ॥

—यानी हिन्दूकुश अब हिन्दू की हत्या करता है, हिन्दू-कश है।

० ० ० ० ० ०

वह स्थान गंगोत्तरी का पवित्तर, पिथौरा की लाट और उदयपुर के दफ्तर।
हिमालय की वे चोटियां सर उठाकर, इक आवाज से कह रही हैं बराबर···

—ये पंक्तियां साक्षी हैं कि अश्फाक गंगोत्तरी को जहां से गंगा निकलती है, पवित्र मानते हैं—मरते समय उन्हें पृथिवीराज की लाट और गर्वीला उदयपुर याद आता है। क्या इससे उनके मुसलमान होने में फर्क पड़ गया ?

जो लोग भारतीय मुसिलमों में अलगाव और हिन्दुत्व-विरोधी विष-बीज बोते हैं—उनका खुद का उनके अपने मजहब के बारे में कितना लगाव है, इसकी मिसाल देखनी हो तो जिन्होंने पाकिस्तान की मांग नितांत शुरू में अंग्रेजों के सामने रखी—वे जिन्ना मियां न कभी नमाज पढ़ते थे, न रोजे रखते थे—शायद सन् १९४० के पहले जिन्ना ने कभी किसी मस्जिद में कदम भी नहीं रखे थे। उस जमाने में लाहौर की बादशाही मस्जिद नमाजियों में मशहूर थी। सन् १९४० की

१. [1]बेवफा

बात है, लाहौर में मुस्लिमलीग का वार्षिक अधिवेशन था—जिन्ना वहां तशरीफ लाये और उस अधिवेशन में प्रथम बार जिन्ना ने यह प्रस्ताव पारित कराया कि मुसलिमों को पाकिस्तान मिलना चाहिये।

अनन्तर वहीं फीरोजखां नून से जिन्ना की मुलाकात हुई, उन्होंने जिन्ना से कहा—'किबला! जुमे (शुक्रवार) को नमाज अदा करने बादशाही मस्जिद में बड़ी तादाद में मुसलिमों का जमघट होता है, वहाँ आपकी तकरीर पुरअसर (प्रभावी) रहेगी।' अतः जिन्ना नूनसाहब के साथ उस मस्जिद में गये और जीवन में पहली मर्तबा उन्होंने किसी मस्जिद को अन्दर से देखा। मस्जिद में जो सामने एक ऊँचा चबूतरा होता है, जिन्ना मियां जूते बिना उतारे ही उस पर जा धमके तो मस्जिद के इमाम ने एतराज करते हुए विनम्रतापूर्वक कह दिया—'हूजूर! जूते नीचे उतार देना लाजिम था।' जिन्ना का अपना स्तर था, विलायती समझ थी—फौरन अपना पांव इमाम की तरफ लपकाया कि 'लो भई! नहीं मानते तो उतार कर रख दो जूते जहां चाहो।'

नूनसाहब ने हकीकत समझी और एक नमाजी को इशारा किया कि जिन्ना-साहब के जूतों के फीते खोलकर जूते निकाले और नीचे रख आये। वही हुआ। जिन्ना खुद अपने जूते उतारना रईसी शान के खिलाफ समझते होंगे। खैर, एक बला टली तो दूसरी हाजिर। इज्जत अफजाई के लिए जिन्ना को मस्जिद के इमाम के करीब ही ठीक उनके रूबरू जगह दी गई। जिन्ना का खड़ा होना था कि उन्होंने फौरन सिगरेट केस जेब से बाहर निकाला और सिगरेट जलाकर धुवें का एक अंबार छोड़ा लापरवाही से—अब इमाम परेशान कि क्या कहें, क्या न कहें। फरमाया, 'हुजूरे आला! यहां सिगरेट पीना मुनासिब नहीं।' अब देखिये, जिन्ना ने तपाक से जलती सिगरेट फेंकी भी तो कहाँ, वहां जहाँ मस्जिद के—खास गुम्बद का गोलाकार आयतन रहता है—मुसलमान मस्जिद में उस जगह को पवित्र मानते हैं। मगर जिन्ना को क्या पता! उधर नमाजियों ने पंक्तिबद्ध होकर नमाज पढ़नी शुरू की, घुटने झुकाकर सिर जमीन पर टेके; बन्दगी की मगर जिन्ना जहां के तहां बुत की तरह सीधे खड़े रहे—न नमाज अदा की, न खुदा की बन्दगी की। अलबत्ता जब नमाज खत्म हो चुकी तो आपने फरमाया—'नून! वेरी गुड डिसि-प्लिन (बड़ा अच्छा अनुशासन है।' गोया नमाजियों का उठना-झुकना कोई परेड हो! नून साहब चुप। इमाम भी अवाक् कि किस आदमी से आज पाला पड़ा है! तब इमाम ने उन्हें हदीस खोलकर बताया—'तीन कुव्वतें इस्लाम की हैं, यानी

अल्लाताला खुद एक ताकत है, फिर रसूल की कुव्वत है और तीसरी कुव्वत है कायद (प्रवर्त्तक)।' यहाँ भी जिन्ना ने टोका। बोले, 'यस नून! आई नो गाड, आलसो आई नो कायद-ऐज आई एम (मसलन मैं खुद ही कायद हूं) बट आई डोन्ट नो दैट हू इज जेंटिलमैन रसूल? (मैं नहीं जानता कि रसूल किसे मानते हैं?)'

नूनसाहब के भी होश फाख्ता कि जिन्नासाहब का धर्म-ज्ञान भी क्या खूब है! इमाम ने तो आज ही यह नायाब मुसलमान और वह भी मुसलिमों का लीडर देखा था। 'तोबा है!' बेसाख्ता निकल गये थे ये शब्द इमाम की जबान से। इतना ही नहीं, जिन्ना शराब के आदी थे, शूकर-मांस के भी।

परन्तु मुसलमानों को इससे क्या, उन्होंने इसी शख्स को रहबर (पथ-प्रदर्शक) चुना और उसकी आवाज पर लाशों के अम्बार लगाये तथा पाकिस्तान बनाकर दम लिया। कहां है मजहब? इन मुसलिम रहनुमाओं का मजहब से कितना लगाव था, जाहिर है। इसके बावजूद आज अनेक भारतीय मुसलमान रोशनी के लिए अपनी आत्मा में झांकने के बजाय ऐसे ही नेताओं का मुंह ताकते हैं और नेता हैं कि इनके यहां पेट्रोडालर की आंच से हलवा-भांडा गरम है। दंगे कैसे न हों! और भारत का औसत मुसलमान यहां के बहुसंख्यक मुसलिमों के साथ मुख्य राष्ट्रीय धारा में कैसे बगलगीर होकर चले! वे बुल्लेशाह को भूल गये, सत्तावनी क्रान्ति के शहीद मौलवी अहमदउल्लाशाह, पीरअली, बहादुरशाह 'जफर', बेगम हजरतमहल, सफदरअली को भूल गये, अश्फाक को भूल गये। शाहजहांपुर में भी अंग्रेजों की छत्र-छाया में एक बार जबर्दस्त दंगा हुआ। दंगाइयों का भारी हजूम शस्त्रों सहित क्रान्तिकारी नेता पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' के आवास की तरफ बढ़ा क्योंकि वे जानेमाने आर्य समाजी थे, आर्य-समाज मन्दिर में ही उनकी बैठक-उठक थी। वे मुसलिमों की शुद्धि करते थे। बिस्मिल आर्य समाज मन्दिर में नहीं थे, मौजूद थे अश्फाक। वे भरी पिस्तौल लेकर आर्यसमाज-मन्दिर की छत पर चढ़ गये और वहां से पिस्तौल की नली दंगाइयों की तरफ करके गरजे-'खबरदार! अगर मन्दिर में कदम भी रखा, एक-एक को भूनकर रख दूंगा। पिस्तौल में छह गोलियां हैं और छह लाशें बिछे बगैर तुम अन्दर नहीं आ सकते। खैरियत चाहते हो तो वापस जाओ।' मुसलमान बनाम मुसलमान। वह था सही मुसलिम। ध्रुवतारा जो अटल रहता है, कैसी भी परिस्थिति हो—आंधी, तूफान हो-अपनी जगह सुस्थिर रहता है। हवा के साथ बहने वाले बहुतेरे होते हैं मगर मर्द

वह है जो जमाने को बदल देता है। अश्फाक वही आलोक थे। नित्य जागृत थे। वह जागरण मुसलिम आबादी में कब आया, कितना आया—इसका लेखा-जोखा करने पर निराशा का अंधेरा सघन हो जाता है।

मुख्यमन्त्री की साफागोई

राष्ट्रीयता पीछे ढकेल दी गई है, फिरकापरस्ती की पौ बारह हो रही है—इसी से पाकिस्तान जन्मा, इसी से खालिस्तान की बांग लग रही है और भी आगे क्या गुल खिलायेगी फिरकापरस्ती, कौन जानता है! मगर हाय-तोबा मचती है हिन्दुत्व की ध्वजा देखकर। हिन्दू का नाम मत लो। नाम लेना गुनाह है। बहुसंख्यक लिखो—कहो, हिन्दू मत कहो। मुसलिम मत कहो, अल्पसंख्यक लिखो। यह क्या रोग का सही निदान है? नतीजा यह कि मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की। दंगे दर दंगे। कब तक, कोई मियाद नहीं। उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री मिश्र ने बेलाग बात कही, कहा—'मौलाना बुखारी बन्द कमरे में जाने क्या मेरठ के मुसलमानों से फुसफुसाते रहे, चकमा दे गये वहां मौजूद अफसरों को और अन्दर जाकर दरवाजे बन्द कर लिये, जहां मेरठ के चन्द मुसिलम मौजूद थे।' हम मुख्यमन्त्री को हार्दिक बधाई देते हैं कि उन्होंने दो टूक बात कही तो, कहने से गुरेज नहीं किया। गरज कि बुखारी भी मुसलिमों के एक रहनुमां हैं, गुलिस्तां का अन्जाम सामने है। मेरठ जलता रहा। बड़ौदा सुलगता रहा। अलीगढ़ और मुरादाबाद सुगबुगाते रहे। रोग कहां पर है? समस्या यह है कि पैदा यहां हों, पलें-बढ़ें यहां भारत की गोद में लेकिन मन रमे अरब में। मौलवी ने पट्टी पढ़ाई, 'म्यां! कुछ खबर है! बिहिश्त में जो जुबान बोलते हैं, वह अरबी ही है और जानते हो, फना (कयामत) के रोज तुम्हारा आखिरी हिसाब कहां होगा, मैदाने अरब में और अरबी में ही फरिश्ता तुमसे सवालात करेगा।' भला हो टर्की के निर्माता मुस्तफा कमाल पाशा का कि एक ही रात में अपने हुक्म से उसने अपने देश में राज-काज से अरबी का खात्मा कर दिया और फिर भी न सिर्फ कमाल पाशा पर बल्कि पूरे टर्की मुल्क पर खुदा की रहमत बरसती रही। तभी से ऊँचा उठ गया वह इस्लामी देश कि फिर अंग्रेजों ने भी उससे पेश न पाया। जबान भाषा के बखेड़े में भारतीय मुसलिम क्योंकर कमाल पाशा से रोशनी नहीं लेते? इंडोनेशिया इस्लामी देश है, शासक भी वहां इस्लाम मत के हैं—फिर भी वहां के किसी औसत मुसलिम परिवार में यदि कोई लड़का घर में लगे अर्जुन-भीम के चित्र की मखौल

उड़ाना चाहे तो उस परिवार का बुजुर्ग उसके गाल पर एक तमाचा जड़ देगा कि अपने पुरखों की हंसी उड़ाते हो ? वे पाण्डवों को अपने पुरखे मानते हैं, स्वयं को उन्हीं के वंशज। इससे उनके इस्लाम में न कोई बाधा पड़ती है, न कोई फर्क वरन् उनकी राष्ट्रीयता उतनी ही बलवती है, उतनी ही सुदृढ़ जितनी किसी जागृत राष्ट्र की होनी चाहिये। एक वे भी मुसलमान हैं, अपने देश की राष्ट्रीय धारा में समरस। एक यहां जिन्ना के मुरीद हैं, जिनके लिए यहां कोई जगह पाक नहीं। फिर वे किस तरह यहां सिर्फ भारतीय बनकर रहना चाहेंगे ? सन् ४७ तक जब-तक कि पाकिस्तान नहीं बना था, यहां के मुसलिमों को यह घूंटी पिलायी जाती रही कि 'तुम खुद को पहले मुसलमान समझो, हिन्दुस्तानी बाद में।' लेकिन १४ अगस्त सन् ४७ को उसी मुसलिम लीग ने अपना स्वर बदल दिया क्योंकि लीग ने भारत में शेष बचे मुसलमानों से कहा—'अब आइन्दा अपने को पहले हिन्दुस्तानी समझो, मुसलमान बाद में।' गरज कि पाकिस्तान तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकेगा। फिर भी मुसलिमों ने यह शिकवा नहीं किया कि पाकिस्तान बनाने के लिए हमने जो गला फाड़-फाड़कर नारे लगाये—जूझे, उसका हमें क्या सिला मिला ?'

मुस्लिम लीग का दावा था कि 'पाकिस्तान बनने दो, फिर यहां साम्प्रदायिकता की समस्या सदा के लिए समाप्त हो जायेगी।' पाकिस्तान तो बना लेकिन मूल समस्या ज्यों की त्यों है। मेरठ, मुरादाबाद, अलीगढ़ और बड़ौदा के दंगे उसी का सबूत हैं। नाराजगी जाहिर की जाती है पी० ए० सी० पर—पी० एम० ए० सी० क्या करे ? उस पर हमले हों तो उसका क्या फर्ज

मेरठ में यह नमूना भी

आर्य युवक परिषद् निरपुड़ा (मेरठ) के तत्वावधान में आयोजित उत्सव में श्री शरीक अहमद अन्सारी (सुलतानपुर, कुन्हारी) ने कहा, 'वेद का मार्ग कल्याण का मार्ग है। वेद मनुष्य को सीधे रास्ते से मोक्ष तक ले जाने की पुस्तक है। कुरान शरीफ, और बाइबिल आदि पुस्तकें भ्रमोत्पादक हैं। इसी कारण मेरा विश्वास वेद और वैदिक धर्म पर है। मैं चाहता हूं कि मेरे बुद्धजीवी भाई गम्भीरता से सोचें और सत्य-असत्य का निर्णय लेकर अपनी भूलों का प्रायश्चित कर लें।०००

बनता है ? पी० ए० सी० पर बमों से हमले करने वाले लाचार या बेकस नहीं कहे जा सकते। सुनने में आया कि मेरठ से पी० ए० सी० हटाने की मुहिम लेकर दिल्ली में ४० मुसलमान सांसदों ने असद मदनी के यहाँ बैठक की। दोनों सदनों में ६५ मुसलमान संसद-सदस्य हैं—इनमें से पूरे ४० इस बैठक में आये। बताया गया कि इसमें रेल राज्यमन्त्री जफर शरीफ, विदेशी मामलों के राज्य मन्त्री ए० रहीम, सिंचाई राज्य मन्त्री जेड० ए० अंसारी और सूचना तथा प्रसारण मन्त्री आरिफ मुहम्मद खाँ भी मौजूद थे। बैठक में बड़ी गरम तकरीरें हुईं। दूसरी बैठक जमी सांसद शहाबुद्दीन के यहाँ। मार्क्सवादी इससे अलग रहे। बैठक में जो भी फैसले हुए हों—इसकी भनक सरकार को हुई तो उसने मेरठ के संदर्भ में फौरन गृह मंत्रालय को सजग किया। कुछ फरमान भी जारी किये। कारण, ४० मुस-लिम सांसदों का जमा होना सरकार के लिए, काँग्रेस के हाईकमान के लिए चिन्ता की बात हो गई। सवाल है कि बैठक में पी० ए० सी० पर नाराजगी खूब जाहिर की गई लेकिन मेरठ हो या मुरादाबाद, दंगे मुस्लिम-बहुल इलाकों में ही क्यों शुरू होते हैं तथा १६०० हथियारों से भरी ६ पेटियाँ मेरठ में किसने भेजीं ? इस पर बैठक वालों ने जरा भी नहीं सोचा। इन पेटियों में रिवाल्वर भी थे और जो दंगाई पकड़े गये, वे ज्यादातर बाहरी थे। यह क्या चिन्तनीय नहीं ? मेरठ में अल्पसंख्यक ४० प्रतिशत से अधिक हैं, क्या इसीलिए दंगे होना जरूरी है वहाँ ? क्या यह प्रतिशत दंगों के कई कारणों में से एक है ? और यही बात मुरादाबाद व अलीगढ़ में भी लागू होती है ? मेरठ की आबादी है साढ़े पांच लाख, जहाँ कर्फ्यू लगा रहा वहाँ की आबादी है एक लाख। इस इलाके से जो लाइसेंसी १६६ हथियार जमा करा लिए गये इनमें रिवाल्वर, रायफलें, बन्दूकें, कार्बाइन थीं—और ऐसे ही १८०० हथियारों के लाइसेंस जब्त कर दिये गये वर्ना पी० ए० सी० पर कहीं ज्यादा हमले होते। मुरादाबाद में सेना के ४ दर्जन राकेट बरामद हुए तो धनबाद से ४८ हजार प्रस्फोटक और दो हजार सेक्टीफ्यूज। इनसे पूरा शहर उड़ाया जा सकता था और तोड़-फोड़ के ही लिए ये जुटाये गये थे। मेरठ या बड़ौदा—दंगे के कारण एक समान ही क्यों हैं ? २४ राकेट गया में एक मुसलमान के ही घर से क्यों बरामद हुए ? बड़ौदा में धार्मिक जुलूस पर हमला हुआ तो मेरठ में मन्दिर को मजार बताते हुए और मन्दिर के पुजारी की हत्या करके। इसी तरह अमृतसर में रामनवमी की शोभा-यात्रा पर दो भयानक बम फेंककर साम्प्र-दायिक दंगा कराने की कुचेष्टा की गई—यह स्थिति कितनी लज्जास्पद है ! वोट

की राजनीति की भी इसमें खासी करामात है, फूट पैदा करके हुकूमत करो, यह रोमन वसूल था—इसी को अंगीकार करके लार्ड एलफिस्टन (बम्बई के तत्कालीन गवर्नर) ने १४ मई सन् १८५९ में कहा था, 'यही रोमन वसूल हमारा भी हथियार है।' फिर सन् १९०६ में लार्ड मिन्टो ने कहा 'पहली अक्तूबर (१९०६) बड़ा ऐतिहासिक दिन है, इस दिन ६ करोड़ मुसलिम अंग्रेज-विरोधी राजनीतिक मोर्चे से अलग छिटक गये।' कारण, इसी दिन मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल लेकर आगा खाँ, लार्ड मिन्टो (तत्कालीन वायसराय) से मिले थे और माँग की कि 'मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय।' इसी वर्ष मुस्लिम लीग कायम हुई और उसी रोज पाकिस्तान का बीज पड़ गया। सियासत को मजहब से जोड़कर मुसलिमों को उभाड़ा गया। मेरठ में भी इसी राजनीति ने खूनी खेल खेला। वहां सन् ५२ से ७७तक सात चुनाव हुए—सबमें हिन्दू प्रत्याशी जीतते आये। सन् ६९ से ७ तक जनसंघ का वर्चस्व रहा, फिर मंजूरअहमद विधायक बने।

जहां वर्ष में सवा लाख बैल काटे गये

संत विनोबा भावे ने कहा है:—

'किसी भी उम्र के गाय-बैल इस देश में न कटें, इसके लिये बम्बई में सत्याग्रह करो।'

उनके इस आदेश के अनुसार विगत ११ जनवरी १९८२ से देवनार के 'कत्ल खाने' पर सत्याग्रह चल रहा है। देश के कोने-कोने से सैकड़ों की संख्या में सत्याग्रही आकर सत्याग्रह में भाग ले रहे हैं। बहुत कम लोगों को यह जानकारी है कि यह दुनियाँ का दूसरे नम्बर का सबसे बड़ा कत्लखाना है। पिछले एक ही साल में यहाँ सवा लाख बैल कत्ल किये गये तथा उनका माँस विदेशों को निर्यात किया गया। इस चालू साल में डेढ़ लाख से भी ऊपर बैल कत्ल होने वाले हैं। इस कत्ल खाने के सामने खड़ा होकर कोई भी व्यक्ति देख सकता है कि कानून बनाने वाली सरकार तथा कानून पालन कराने वाले अधिकारियों और पुलिस के संरक्षण में ही किस तरह कानून की धज्जियाँ उड़ाकर सैकड़ों नौजवान और अच्छे खेती तथा बोझा ढोने लायक बैलों को हर रोज कत्ल किया जा रहा है। जिसका अनुभव कत्लखाने के गेट पर सत्याग्रह करने वाले सत्याग्रही हर रोज करते हैं।

काँग्रेस (इ) ने उन्हें ठेका दिया कि मुस्लिम वोट बटोरे रहो। साम्प्रदायिकता उभार कर ही वे वोट बटोर सकते हैं, फिर श्रीमती मोहसिना किदवई को भी मेरठ ले आया गया, किसलिए उन्हें बाराबंकी और आजमगढ़ से हटाना जरूरी समझा हाई कमाई ने ? क्या इसकी जड़ में साम्प्रदायिकता नहीं ? फिर इलाज कौन करे ? रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं—

> 'आमार ए तोमार पाप, विधातार वक्षे एइ ताप
> बहुयुग हते जमि वायुकोणे आजि के घनाय
> भीरुर भीरुता पुंज, प्रबलेर उद्धत अन्याय
> लोभीर निष्ठुर लोभ, वंचितेर नित्य चित्त क्षोभ
> जाति-अभिमान, मानवेर अधिष्ठात्री देवतार असम्मान
> विधातार वक्ष आजि बिदीरिया.....'

—यह पाप हमारे-तुम्हारे ही हैं कि विधाता का वक्ष आज ताप-ग्रस्त है। भीषण स्थिति है। आकाश अंधकार वमन कर रहा है। निष्ठुर लोभी वंचनारत हैं—देवता का असम्मान हो रहा है परन्तु डरने से तो काम नहीं चलेगा। इसका साहस से सामना करना होगा।

अमीर खुसरो ने यही किया था; उस नितान्त प्रतिकूल परिस्थिति में, घोर अफगानी सल्तनत के रहते वे राष्ट्रीयता की, भारतीयता, भारतीय भाषा (हिन्दवी-हिन्दी,) भारतीय संस्कृति-सभ्यता और भारतीय धर्म की विजय-ध्वजा अपने जीवन तथा सृष्टि के उपकूल पर फहराते रहे थे अविराम-आजीवन, अक्लान्त-अभीत और देश के प्रति आत्म-समर्पित होकर। हम उस मनस्वी से प्रेरणा लें। ०००

राजनीति नहीं संस्कृति

●महादेवी वर्मा

आज हमारी संस्कृति पर संकट है और घोर संकट है। किसी देश में यदि चरित्र का संकट आता है तो उससे बड़ा कोई संकट नहीं और सारी आपत्तियाँ पार कर लेते हैं लेकिन चरित्र का संकट पार नहीं कर पायेंगे। हमारा देश टूट जायगा। उसकी रक्षा करनी चाहिए हमें। राजनीति नहीं कर सकती। देखिये अपना पूरा इतिहास। देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था। वे राजा एक दूसरे से लड़ते रहते थे। तो भी हिमालय से लेकर समुद्र तक एक ही संस्कृति का उद्वेलन है। आप जायें बद्रीनाथमें आपको दक्षिण का पुजारी मिलेगा और रामेश्वरम् में उत्तर का मिलेगा। पूरे देश को उन्होंने बाँधा है। आप तब तक स्वर्ग नहीं जा सकते जब तक चारों धाम न हो आयें अर्थात् अपनी धरती को सब ओर से न देख लें। जिन्होंने बाँधा था, वे तो वास्तव में चिंतक थे, साधक थे, राजनीतिक नहीं थे। मेरी इसी बात को सुनकर जय गुरुदेव और राजस्थान के मुख्यमंत्री नाराज हो गये। मैंने कहा जब देश को एक करेंगे, तो वही लोग करेंगे। राजनीति नहीं करेगी। अपनी राजनीति देखिये उसको दिशा ही नहीं मालूम कि कहाँ जायें। सवेरे तो एक दल में हैं और शाम को दूसरे दल में हैं। दूसरे सवेरे तीसरे दल में हैं। तो, किस प्रकार कोई आदर्श बन सकता है और आदर्श के अनुसार कैसे काम चल सकता है। कोई आदर्श जब बनता है तो उसके लिए निष्ठा भी तो चाहिए। उसमें हमें विश्वास भी चाहिए। आज तो राजनीति के पास ऐसा कुछ भी नहीं है। परस्पर लड़ते हैं जैसे कभी दानवों को शाप मिला था कि परस्पर लड़कर नष्ट हों, तो वे परस्पर लड़ते हुए नष्ट होंगे। यदि हम उनको रोकते नहीं हैं तो रोकेगी उन्हें जनसंघ, जन शक्ति। जनशक्ति को शक्ति, मात्र शक्ति से मिलेगी और किसी से नहीं मिलेगी।'००

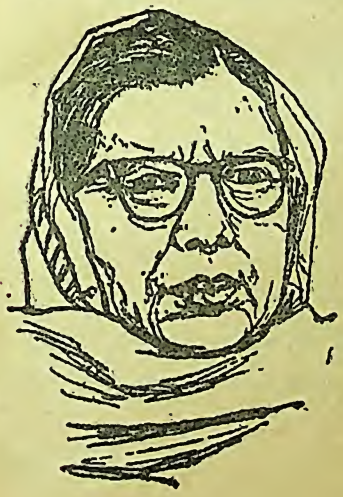

● यशपाल जैन

वतन की धरती

कनाडा से मनोरम प्रदेश क्विबैक की राजधानी को देखकर टोरंटो की ओर चले तो सबके मन बड़े अभिभूत थे। नदी के तट पर बसे कई नगर उन्होंने देखे थे, पर इतना सुन्दर नगर अब तक उनके देखने में नहीं आया था। उसका पुरातन महल कलाकारीगरी का अद्भुत नमूना था, उसके स्मारक देशभक्तों की याद दिलाते थे, मकानों की बनावट, सड़कों की स्वच्छता और बाजारों का वैभव, सब कुछ निराला था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उस नगरी में पुरातन और आधुनिक का संगम था। फ्रांसीसी संस्कृति से वह नगरी ओतप्रोत थी।

विनोद जबर्दस्त यायावर है। देश-विदेश में खूब घूमता है और जो देखता है उसके चित्र उसके भावनाशील मन पर बड़े गहरे अंकित हो जाते हैं। कार राजमार्ग पर तेजी से दौड़ती जा रही थी। पर उसका मन पीछे क्विबैक सिटी में दौड़ लगा रहा था। वह सोच रहा था, मानव में कितनी शक्ति है। वह कुछ-का-कुछ करके दिखा देती है, लेकिन इतिहास की धारा को रोका नहीं जा सकता। इतिहास की पुनरावृत्ति होती ही रहती है। इतिहास करवट लेता है तो सब कुछ बदल जाता है।

पिता को अपने विचारों में डूबा देखकर सुशील ने, जो गाड़ी चला रहा था, कहा, 'बाबूजी, आपने बताया था कि किंग्स्टन में हिन्दुस्तान के डाक्टर श्रीकान्त गुप्ता और उनकी पत्नी हेमलता रहती हैं। किंग्स्टन रास्ते में ही पड़ेगा। मन हो तो उनके यहां होते चलें।'

विनोद की विचारधारा टूट गई। बोला, 'यह तुमने अच्छी याद दिलाई। उनसे जरूर मिलते चलें। दिल्ली में जब हेमलता मिली थीं तो उन्होंने आग्रह किया था कि कनाडा आओ तो बिना मिले मत जाना। पर यहां के लोग बड़े व्यस्त होते हैं। कहीं ऐसा न हो कि हम

उनके घर जाएं और वे न मिलें ! किसी जगह से फोन करके देख लो।'

अगले गैस-स्टेशन से फोन किया तो हेमलता मिलीं। बड़े प्यार से उन्होंने कहा, आप लोग आइये और जरूर आइए।'

विनोद ने कहा, 'लेकिन सुनिये, हमारे साथ पूरा काफिला है। चार बड़े हैं और एक बच्ची है।'

तो क्या हुआ ? हमारा मकान बहुत बड़ा है।' हेमलता ने हार्दिकता से भरे स्वर में कहा, 'आप लोग घंटे भर में पहुंच जाएंगे। तब तक डाक्टर साहब भी यूनिवर्सिटी से आ जाएंगे।'

उनके घर पहुंचते-पहुंचते सवा घंटा लग गया। पति-पत्नी दोनों राह देख रहे थे। बड़े प्रेम से मिले। दोनों ही डाक्टर, पर क्षेत्र उनके अलग-अलग। पत्नी एम० बी० बी० एस०, डाक्टरी करती थीं और पति पी-एच० डी०, पढ़ाते थे।

सामान रखकर पत्नी बातें करने लगीं, पति चाय बनाने चले गये। बात-चीत शुरू करते हुए हेमलता ने कहा; 'आप लोग बेकार संकोच कर रहे थे। देखते हैं, कितना बड़ा मकान है। छः कमरे नीचे हैं, उतने ही ऊपर हैं। रहने वाले बस हम दो जने हैं। लड़के बड़े होकर अपने-अपने काम पर बाहर चले गये, लड़कियों का विवाह हो गया। एक लड़की रह गई है। वह होस्टल में रहती है। बूढ़ापे में ज्यादातर ऐसा ही

होता है।'

हेमलता एक सांस में यह सब कह गई। उनका चेहरा मुर्झा-सा रहा था। आंखें डूबी हुई-सी थीं। थोड़ा चुप रह-कर बड़े मन्द स्वर से बोलीं, 'भया, इस देश में सब-कुछ है पैसा है, सब तरह का आराम है, लेकिन प्यार नहीं है। सब अपने-अपने में मस्त हैं। कोई किसी की चिन्ता नहीं करता।'

विनोद ने उनके चेहरे को और उस पर खिंची रेखाओं को ध्यान से देखा। उसे यह समझते देर न लगी कि इतने साल से वहां रहने पर भी वे दम्पत्ति अपने देश को भूले नहीं है। उनके पारिवारिक संस्कार, मोह-ममता, जैसी-की-तैसी बनी है।

हेमलता ने अपने दिल की बात सहज ही खोलकर रख दी। इससे सबको बड़ा अच्छा लगा, लेकिन उनके मन की व्यथा से उन लोगों को कुछ दुःख भी

हुआ। सब चुप थे। वातावरण कुछ बोझिल-सा हो गया था।

विनोद ने मौन भंग करते हुए कहा; 'ऐसा है तो हिन्दुस्तान क्यों नहीं लौट आतीं ? कमाई कर लो, अब अपने देश में आ जाइये और वहां मौज से रहिए।'

हेमलता ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी। बोली, 'पैसे का मोह कहां छूटता है ! कमाई होती है, लक्ष्मी आती है तो किसे बुरी लगती है ? लेकिन मन अपनों के प्यार के लिए तरसता है। भीतर ही भीतर यहां और वहां के बीच खींचतान चलती है।'

कुछ रुककर उन्होंने कहा, 'यह खींचतान जाने कितनी बार हमें हिन्दुस्तान ले गई है, पर वहां भी तो हालत अब बदल गई है। इधर की हवा वहां भी पहुंच गई है। जो परिवार बरसों से जुड़े थे, वे टूट रहे हैं। बेटा, बाप की परवाह नहीं करता, बाप, बेटे की बात नहीं सुनता। फिर भी अपना देश अपना ही है।'

विनोद उनकी बातें सुन रहा था, उनकी अंतर्व्यथा को अनुभव कर रहा था। वह कहना चाहता था कि भीतर लड़ो क्यों ? यहां रहना है तो यहां रहो और यहाँ के होकर रहो, हिन्दुस्तान में रहना है तो वहां रहो और वहां के होकर होकर। कनाडा, हिन्दुस्तान नहीं हो सकता, हिन्दुस्तान, कनाडा नहीं हो सकता। यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए।

पर यह सब उसने कहा नहीं। वह जानता था कि इससे उनके दिल को सदमा पहुंचेगा।

इतने में डाक्टर गुप्ता चाय की ट्रे लेकर आ गये। सुशील ने उठकर ट्रे उनके हाथ से ले ली और मेज पर सब चीजें लगा दीं। हेमलता ने अलमारी में से कुछ खाने की चीजें निकालीं। उन्होंने काफी सामान तैयार कर लिया था। सब खाने की मेज पर जा बैठे।

डाक्टर गुप्ता ने कहा, 'आप लोग तो जानते ही हैं, यहां नौकर रखने का रिवाज नहीं है। नौकर यहां मिलते भी नहीं। सारा काम अपने हाथ से करना पड़ता है। इनको फुरसत होती है तो कुछ काम ये कर लेती हैं। मुझे फुरसत होती है तो मैं कर लेता हूं। हिन्दुस्तान की तरह यहां ऐसा नहीं है कि औरत घर के काम में पिसती रहे और आदमी बैठा रहे यहाँ तो सारा काम मिलकर करना पड़ता है।'

विनोद अनेक देशों में घूमकर यह सब देख चुका था। सुशील बरसों से टोरंटो में रह रहा था। उनके लिए ये

सब चीजें नई नहीं थीं। पर वे दम्पत्ति तो भीतर से इतने भरे थे कि सब कुछ उगल देना चाहते थे। बाहर से वे जितने सुखी दिखाई दे रहे थे, भीतर से उतने ही दुःखी थे।

विनोद हिन्दुस्तान से गया था, पर उन्होंने वहां के बारे में एक बात भी नहीं पूछी। असल में कुछ ही दिन पहले वे स्वयं हिन्दुस्तान होकर गये थे, इसलिए उनके लिए कोई नई बात जानने के लिए नहीं थी। लेकिन अपने देश से आए आदमी के सामने दिल खोलकर रख देने की उनकी इच्छा बलवती हो उठी थी। आखिर अपना दर्द अपनों से ही तो कहा जाता है। मेज पर बैठे-बैठे डा० गुप्ता ने साफ-साफ कहा, 'हम लोग मानते हैं कि जीवन में कमाई का बड़ा महत्त्व है, पर हम यह भी मानते हैं कि आदमी महज कमाई के लिए नहीं जीता।'

हेमलता बीच-बीच में अपने ढंग पर इसी बात का समर्थन करती रहीं और अंत में उन्होंने कहा, 'आदमी पैसे के लिए नहीं, प्यार के लिए जीता है। आप ही बताइए, क्या मैं गलत कह रही हूं?'

'आप बहुत ठीक कह रही हैं। आदमी के पास दिल है और दिल को दौलत नहीं, मोहब्बत चाहिए।' विनोद ने उनका समर्थन करते हुए कहा।

चाय पीकर वे ड्राइंग रूम में आ गये, पर पुराना सूत्र टूटा नहीं। सोफे पर बैठते ही डाक्टर गुप्ता ने कहा, 'देखिये, हम लोगों ने सालों

यहां गुजार दिये हैं, सालों हिन्दुस्तान में गुजारे हैं, पर मन का समाधान न यहां होता है, न हिन्दुस्तान में। हिन्दुस्तान में रहते हैं तो कनाडा खींचता है, कनाडा में रहते हैं तो हिन्दुस्तान खींचता है। समझ में नहीं आता कि क्या करें? दिल्ली में अपनी लम्बी-चौड़ी कोठी है, पंजाब में अपना बहुत बड़ा परिवार है। उनका मोह नहीं छूटता। लेकिन सच मानिये, दस दिन भी परिवार के बीच बिताने मुश्किल हो जाते हैं। इस बार इरादा करके गये थे कि कुछ महीने वहां रहेंगे, लेकिन हफ्ते भर में ही मन ऊब गया। जैसे-तैसे एक महीना निकाला और यहां लौट आए।

विनोद ने देखा कि अब तक पत्नी अपना दुःखड़ा रो रही थीं, अब पति का स्रोत खुल गया था। वह बोले ही जा रहे थे, 'देखिये जी, जो भी हो, अब मैंने इस देश को हमेशा के लिए छोड़ देने का

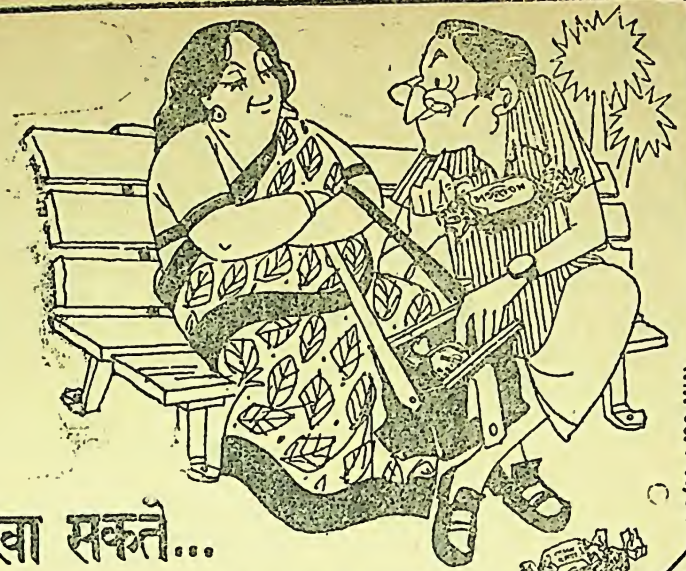

इतनी अच्छी कि आप अकेले नहीं खा सकते...

कोकोनट कुकीज़, लैक्टोबोलबोन्स, टॉफीज, कोकोनट कन्फ
और लाफ्ट लेंटर्ड स्वीट्स, पीपरमींट रोल्स, मिनीपोप्स।

MORTON
sweets of distinction

मॉर्टन कन्फैक्शनरी एण्ड मिल्क प्रोडक्टस फैक्ट्री

(प्रो० अवर गैंजेज सुगर मिल्स लिमिटेड)
पो० मढ़ौरा (जिला सारन) बिहार

CC/M-1/80 HIN

तय कर लिया है। (पत्नी की ओर देख-कर) इनकी ये जानें।'

बड़ी ही गम्भीर आवाज में हेमलता ने कहा, ऐसा मत कहो। हम लोगों की अबतक की जिन्दगी साथ बीती है। आगे की भी साथ ही बीतेगी। हिन्दुस्तान में रहेंगे तो साथ रहेंगे, यहाँ रहेंगे तो साथ रहेंगे। बुढ़ापे में तो एक-दूसरे की और भी जरूरत होती है।'

दोनों साठ के आसपास रहे होंगे। हेमलता पति से दो-तीन साल छोटी होंगी, लेकिन उनके अंतर्द्वन्द्व ने उनके जीवन के रस को सोख लिया था। वे बहुत ही निराश-से जान पड़ते थे। अच्छा-खासा घर था, बढ़िया फर्नीचर था, आराम के सब साधन थे, लेकिन आदमी जब अन्दर में खाली होता है तो बाहरी वैभव उसके खालीपन को भर नहीं पाता।

हेमलता कहती जा रही थीं, 'आप सोच नहीं सकते कि हम कितनी उम्मीदें लेकर यहाँ आए थे। पैसा खूब आया, पर उम्मीदें धीरे-धीरे टूटती गईं और अब तो कभी-कभी ऐसा लगता है, जैसे जिन्दगी में कुछ बचा ही नहीं।

घंटों से एक ही प्रसंग चल रहा था। उन दम्पत्ति को छोड़कर बाकी सब इतना ऊब गये थे कि किसी-न-किसी तरह उनसे छुटकारा चाहते थे।

सुशील ने रास्ता निकाला। उसने कहा, 'हम लोग कल 'वन थाउजैंड आई-लैण्ड' जाना चाहते हैं। उसका कार्यक्रम

आदर्श गाँव कौन होगा ?

वह एक सम्पूर्ण जनतन्त्र होगा जो अपनी जीवन सम्बन्धी मूल आवश्यकताओं के लिए पड़ोसियों पर निर्भर नहीं करेगा। परन्तु फिर भी अन्य आवश्यकताओं के लिए जिसमें दूसरों पर निर्भरता अपरिहार्य होगी, अन्योन्याश्रित रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक गांव का सबसे पहला काम होगा अपना अनाज खुद पैदा करना अपने कपड़े के लिए कपास पैदा करना। उसमें गोचर भूमि होगी। प्रौढ़ों और बच्चों के मनोरंजन के साधन तथा खेलकूद का साधन होगा। गांव में नाटक-घर, पाठशाला, सभा भवन की व्यवस्था होगी।...सारे काम सहकारिता पर होंगे। ००

पुस्तकालय

● गांधीजी

(२६ जुलाई १९४७ के 'हरिजन,

राष्ट्रीय [illegible] और शिक्षण संस्थान

कैसे बनाएं ?'

डा० गुप्ता बोले, 'यह महकमा इनका है। यह सब बता देंगी।'

हेमलता ने कहा, 'सबेरे आठ बजे यहां से चले जाएं। जैटी पर कार छोड़ दें। वहां से एक-एक घंटे में अगिन-बोटें छूटती हैं। वे आपको दो-तीन बजे तक खास-खास जगहें दिखा देंगी। एक बड़े टापू पर वे दोपहर खाने के लिए रुकती है। वहीं आप लोग भी खाना खा लीजिये। चार बजे तक लौट आइए।'

इसके अलावा और जो जानकारी

थी, वह उन्होंने दे दी। फिर बोलीं, 'चलिए, अब खाना खा लें। आप दिन भर के थके होंगे। खा-पीकर सो जाएं। सवेरे जल्दी उठना होगा।'

कुछ ही समय पहले वे लोग काफी भारी नाश्ता कर चुके थे। भूख नहीं थी, लेकिन उनका आग्रह देखकर वे सब फिर मेज पर पहुंच गये। युनिवर्सिटी जाने से पहले डाक्टर दम्पत्ति ने मिलकर पूड़ियाँ और सब्जियां बनाकर रख दी थीं खाते समय डा० गुप्ता ने पूछा, 'आलू-गोभी की सब्जी कैसी बनी है?'

हेमलता के चेहरे पर पहली बार मुस्कराहट दिखाई दी। बोली, 'जानते हैं, यह किसलिए पूछ रहे हैं, इसलिए कि यह सब्जी इन्हीं की बनाई हुई है।'

हेमलता की इस बात पर सब हंस पड़े। सारा वायुमंडल, जो बहुत बोझिल हो रहा था, कुछ हल्का हो गया।

विनोद की पत्नी ने कहा, 'सब्जी वास्तव में बहुत बढ़िया बनी है।'

हेमलता ने मुस्कराहट जारी रखते हुए कहा, 'और पनीर-मटर की सब्जी?'

अब मजाक की बारी डा० गुप्ता की थी। धीरे से उन्होंने मुस्कराकर कहा, 'देखा, यह इसलिए पूछ रही हैं कि इसे इन्होंने बनाया है।'

पति-पत्नी के इस हंसी-मजाक में सबको बड़ा आनन्द आया। सुशील बोला, 'पनीर-मटर की सब्जी मुझे बहुत पसन्द

नो व्हेंबरच्या पहिल्या आठवडयात प्रसिद्ध होते आहे

एकता मासिकाचा

दिवापत्ती विशेषांक मूल्य १२.००

'चलो एशियाड'

६ व्या आशियाई स्पर्धा सम्बंधी भरपूर सचित्र माहिती

शिवाय शिवशाहिर, बाबा साहेब पुरंदरे भालवा केलकर,
योगिनी जोगलेकर डा० सरोजिनी बाबर, अनंत मनोहर
प्रा० न० स० जोशी, बापू पाखे, शरद वाघ
इत्यादीच्या नामवंत कथा–

है। बनी भी बड़ी अच्छी है। बहुत ही स्वादिष्ट है।'

विनोद ने हंसी के बीच कहा, 'वाकई आप दोनों के हाथ में बड़ा रस है। वही रस इन सब्जियों में आ गया है। दोनों एक-से-एक बढ़कर हैं।'

बातचीत का रुख अब दूसरी ओर हो गया था। डा० गुप्ता ने बताया कि यहां ज्यादातर डिब्बों में बन्द सब्जियां मिलती हैं। वे उबली हुई होती हैं। इसलिए उन्हें तैयार करने में खास कुछ नहीं करना होता।

मेज से उठे तो वे लोग सीधे अपने-अपने कमरे में चले गए और सो गए।

बड़े तड़के वे उठ गए। सुशील बच्ची के लिए दूध गरम करने नीचे गया तो उसने ऊपर आकर बताया कि हेमलता बुआजी पूड़ियां बनाने में लगी हैं। जब तक सब तैयार हों, तब तक उन्होंने गत्ते के एक बड़े बक्से में खाने-पीने का सामान लगा दिया। विनोद ने यह देखकर आभार के स्वर में कहा, 'यह आपने क्या किया?'

बोलीं, 'आप लोग शाकाहारी हैं। कहां अपने मतलब का खाना खोजते फिरते! फिर घर के खाने में जो स्वाद है, वह बाजार के खाने में कहां?'

कार में सारा सामान-जमाकर जब वे लोग विदा लेने लगे तो हेमलता ने कहा, 'आप लोग ४ बजे तक लौट आएंगे।'

विनोद ने क्षमा मांगते हुए कहा; 'हम लोग सीधे निकल जाएंगे।'

'सीधे?' हेमलता ने कुछ अधीर

होकर कहा, 'रास्ता तो इधर ही होकर है। यह भी हो सकता है कि आप जल्दी छुट्टी पा लें। वहां हजार टापू जरूर हैं, पर ज्यादातर छोटे-छोटे हैं और पास-पास हैं।'

'ठीक है, देख लेंगे, पर आप प्रतीक्षा न करें।' विनोद ने कहा।

'आप हिन्दुस्तान कब पहुंचेंगे?' हेमलता ने पूछा।

विनोद ने सुशील की ओर मुस्करा कर देखा। सुशील ने कहा, 'अभी ये कुछ दिन हमारे साथ रहेंगे।'

'आप लोग हिन्दुस्तान कब आ रहे हैं?' अनजाने विनोद के मुंह से निकल गया।

डा० गुप्ता कुछ कहें कि उससे पहले हेमलता बोल उठीं, 'देखिये, यहां का अन्न-जल कब तक बदा है। पर वतन की धरती सोते-जागते हमें बुलाती रहती है।'

इतना कहते-कहते उनकी आवाज भारी हो गई और जब वे कार में बैठे तो उन्होंने देखा, हेमलता की आंखें गीली हो गई हैं और डा० गुप्ता के चेहरे पर उदासी की एक हल्की रेखा उभर आई है। ०००

शीतल

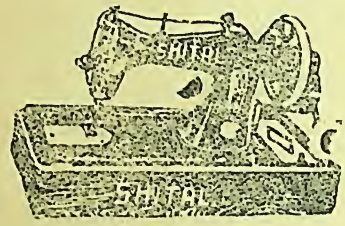

सिलाई मशीन

उत्तम स्टील के पुर्जों से निर्मित
[गारन्टी ५ साल]

विक्रेता :—

प्रकाश ट्रेडिंग कारपोरेशन

खैर नगर बाजार, मेरठ शहर

दीपावली पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएं

पढ़िए—और—विचारिए

वैद्य रघुवीर सिंह वेदी

श्रीराम औषधालय

ठन्ठा कुआं, हरिद्वार

दाद, एग्जिमा, बवासीर, चर्मरोग, मधुमेह, गठिया, वायु विकार, पेट की गैस, उदर विकार, दुर्बलता आदि के साठ वर्षीय अनुभवी चिकित्सक से प्रत्यक्ष अथवा पत्राचार द्वारा सम्पर्क करें।

राष्ट्र-धर्म

(जागृत विवेक का विचार मासिक)

दूरभाष : ४२६०१

संस्कृति भवन
पो०बा० २०७
राजेन्द्र नगर (पूर्व)
लखनऊ–४

एक निवेदन

प्रिय बन्धु,

'राष्ट्रधर्म' का मई अंक जो कि संघ संस्मरण के रूप में प्रकाशित हुआ था का सर्वत्र स्वागत हुआ। उसी समय यह घोषणा भी की गई थी कि शीघ्र ही संघ संस्मरण (द्वितीय) का प्रकाशन होगा। उसी संदर्भ में हम दिसम्बर मास के तृतीय सप्ताह में यह अंक प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है कि पूर्व अंक की भांति इसका भी पाठक स्वागत करेंगे। संघ की नीतियां, कार्य शैली तथा कार्यक्रमों की आवश्यक जानकारी जन-सामान्य तक पहुंचाने की दृष्टि से ही इस अंक का प्रकाशन किया जा रहा है।

अनेक संस्मरणों तथा संघ के वरिष्ठ अधिकारियों के चित्रों से युक्त यह अंक आप सभी के लिए प्रेरणादायक होगा।

जो बन्धु इस अंक में अपनी शुभकामनायें प्रकाशित कराना चाहें वह ५० रु० का मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट अपनी शुभकामना सन्देश के साथ भेज दें जिसे इस पृष्ठ के पीछे नमूने के लिए छपी हुई शुभकामनाओं की तरह हम प्रकाशित करेंगे।

आशा है कि आप सभी बन्धुओं का सहयोग तथा शुभकामनायें प्राप्त होंगी। सधन्यवाद

भवदीय
विज्ञापन व्यवस्थापक

हमें डा० हेडगेवार का ऋणी होना चाहिए जिन्होंने संघ के माध्यम से हमें एक नया जीवन दर्शन दिया।

कृपया अंक के लिए हमारी शुभकामनायें स्वीकार करें

राजेन्द्रप्रसाद अग्रवाल

अग्रवाल कटपीस सेण्टर

लाहौर (पंजाब)

रोक सकेंगे नहीं विरोधी,
संघ शक्ति का प्रबल प्रवाह।

अंक के लिए हमारी शुभ कामनायें स्वीकार करें।

आदित्य मोहन एण्ड सन्स

फैन्सी वस्त्रों के विक्रेता

सदर बाजार, लखनऊ

कंटक पथ अपनाना सीखें
जिये देश के लिए देश हित
तिल-तिल कर मर जाना सीखें

इस अंक के लिये हमारी बधाई स्वीकार करें।

गोविन्दा एण्ड कम्पनी

जयपुर (राज०)

जलते हुए दीप को बुझाना पतंगों के लिए सम्भव नहीं।

यही सन्देश यही शुभकामनायें

योगेश्वरानन्द

भोपाल, (म० प्र०)

हम करें राष्ट्र आराधन, तन से, मन से, तन-मन जीवन से।

समय के अनुकूल अंक प्रकाशन पर हमारी हार्दिक शुभ कामनायें स्वीकार करें।

फर्म-शिवप्रसाद चौरसिया

चांदनी चौक, नयी दिल्ली

अन्याय व अत्याचार के सामने घुटने टेकना सबसे बड़ा पाप है।

कृपया इस अंक में यह संदेश प्रकाशित करने का कष्ट करें।

राम जीवन एण्ड ब्रदर्स

अंग्रेजी दवाइयों के थोक विक्रेता

अहमदाबाद (गुजरात)

मेरे जीवन के मधुर सपने
पिअरलेस के संचय प्रकल्प के जरिये
आज साकार हो गये

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
वीर भवन जम्मू

दि पिअरलेस जेनरल
फाइनैन्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट कं० लि०
रजिस्टर्ड आफिस : पिअरलेस भवन,
३, एसप्लानेड ईस्ट, कलकत्ता-७०० ०६९
स्थापित १९७०

PRASA/PCF 45/82

भारत की बृहत्तम नॉन-बैंकिंग संचय संस्था

With Best Compliments From :—

पुस्तकालय
राष्ट्रीय स्वंसेवक संघ
केशव भवन लखनऊ

Graphite India Limite

H. O. 31, Chowringhee Road
CALCUTTA—700 016

Manufacturers of

GRAPHITE & CARBON PRODUCTS

Phone no. 21-2541 (9 Lines)
Telex : GIL-CA-3109

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए विनोद कुमार पांडेय द्वारा प्रकाशित एवं कोशल प्रेस, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक ओम प्रकाश त्रिपाठी